





- पुस्तक पर लेखक का सर्वाधिकार सुरक्षित है।
- पुस्तक का कोई भी अंश बिना प्रकाशक की पूर्ण अनुमति के प्रकृत नहीं किया जा सकता है।

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय  
 पौ० बॉम्बे नं० ७०, बालवापी, बाराणसी-१

●  
 छापक : मायापति प्रेस  
 मध्यमेरवर, बाराणसी-१

●  
 संस्करण प्रथम ( जनवरी १९९० )  
 द्वितीय ( सितम्बर १९९१ )

●  
 मूल्य : सात रुपए

## प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मेरा ध्येय त्रिभुजी रहा है। प्रथम तो, राम्यशास्त्र के छात्रों को हिन्दी में धार्मिक राजनीतिक विचारमाराधी पर एक उत्तम पुस्तक प्रदान करना और इस रचना से न केवल छात्र-वर्ग ही लाभान्वित हो प्रस्तुत काम साधारण भी काम ठठा सके, क्योंकि आज जबकि भारत में लोकतंत्र की प्रतिष्ठा हो गयी है और शासनाङ्क बन न अपना समय 'समाजवादी समाज की रचना' घोषित कर दिया है तो ऐसी स्थिति में यह सभी नामिकों के लिए आवश्यक हो जाता है कि न राजनीति सम्बन्धी सनस्त विचारों को भूलो-भाँति समझें। आज के इस मार्क्सवादी युग में जबकि साम्राज्यवादी प्राचीरें बह रही हैं और शोषण की प्रक्रिया विद्युत हो रही है तथा सान्यवाद या समाजवाद द्रुतपति से छासोंमें माछा हुआ मानव-समाज पर छाटा जा रहा है, जिसके कारण पूँजीवादी राष्ट्र मयाङ्गस्त एवं किर्कस्यविमुक्त हो गये हैं। ऐसी ललावपूर्ण स्थिति में यह एक विचारलौम प्ररम हा जाता है कि मानव-समाज का हित पूँजीवाद में है या मार्क्सवाद में या सोपो-वाद में या जनतांत्रिक समाजवाद में या अन्य किसी फरॉन में। अतः एक अन्त राष्ट्रीय परिश्ले से भी यह आवश्यक है कि हम इन विवावास्तव बाधों का अनुशीलन करें और कोई समुचित हल खोजें, जो मानव-समाज को सभित दिशा प्रदान कर सके। द्वितीय आज हिन्दी राष्ट्रभाषा क पर पर प्रतिष्ठित हो ययी है और विभिन्न विरवविद्यालयों में अध्यापन एवं अध्यापन का माध्यम हिन्दी ही है। अतः प्रत्येक राष्ट्र-सेवी का हिन्दी भाङ्म्य को समृद्धशाली बनाना भी एक पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है। मुझे विरवास है, यदि यह कृति इस विद्या से भी हिन्दी साहित्य कसेवर के परिवर्द्धन में सहायक सिद्ध होगी।

मैं उन सभी लेखकों का परम आभारों हूँ जिनकी पुस्तकों से मुझे इसके लिखने में सहायता मिली है।

अन्त में, मैं प्रिंसिपल श्री रमार्शकर नाथ जी विपात्रे, कृष्ण डिपो कांसेज, कुशी नगर (बेचरिया) के प्रति भी कुछ लिख देना आना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। अन्तपुर्क में उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ। उनकी सतत मेरणा और निरन्तर प्रोत्साहन के कारण ही यह पुस्तक पूर्ण हो सकी है। प्रकाशक श्रीकृष्णचन्द्र जी बेरो का भी मैं बड़ा आभारों हूँ जिन्होंने इसके मुद्रण में इतनी तत्परता दिखायी।

आशा है, यह पुस्तक पाठकों की जनयोमी सिद्ध होगी।



## आदर्शवाद (Idealism)

राज्य के आदर्शवादी सिद्धान्त के अनेक 'नामकरण' किये गये हैं। कुछ विचारक इसे निरंकुश सिद्धान्त (Absolutist theory) के नाम से पुकारते हैं, तो अन्य दार्शनिक सिद्धान्त (Philosophical theory), और कुछ मनीषियों की दृष्टि में यह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) भी है। किन्तु मैक माइवर (Mac Iver) ने तो इस राज्य का रहस्यमय सिद्धान्त (Mystical theory) तक कहने में संकोच नहीं किया है।

1 वस्तुतः राजनीतिक दर्शन का यह प्राचीनतम सिद्धान्त है। आदर्शवाद वह दर्शन या सिद्धान्त है जिसका यह दावा है कि संसार में मौलिक संपर्कता केवल आत्मा अथवा अस्तित्व है, एवं किसी पदार्थ का अस्तित्व इस पर निर्भर करेगा कि समुक्त व्यक्ति उस वस्तु को किस दृष्टि से देखता है तथा अपने मानस-पक्ष पर उसकी कल्पना का बिना किस प्रकार प्रकट करता है।

जो भी विभिन्न 'नामकरण' प्रस्तुत सिद्धान्त के अभिप्रेतनामक उल्लिखित किये गये हैं, वस्तुतः वे इस सिद्धान्त को वास्तविक प्रकृति का चित्रण करते हैं। किसी सीमा तक उन्हें अनुपपुक्त नहीं कहा जा सकता परन्तु उसे राज्य के रहस्यमय सिद्धान्त की सत्ता से विमुक्ति करना उसके प्रति और असहिष्णुता व्यक्त करना है। वास्तविकता तो यह है कि इस सिद्धान्त के विभिन्न नाम इसकी विभिन्न धारणाओं का स्वीकारण करते हैं। उदाहरणार्थ बोसके (Bossanquet) इसे दार्शनिक सिद्धान्त कहता है, हाब हाउस (Hob House) इसे आध्यात्मिक सिद्धान्त बतलाता है तथा इस सिद्धान्त के अमन उद्योगी समर्थक इसे निरंकुश सिद्धान्त का नाम देते हैं।

प्रस्तुत सिद्धान्त को आदर्शवाद का सिद्धान्त तो इस कारण कहा जाता है कि यह राज्य की परिमत्ता तथा व्याख्या उसके आदर्श स्वभाव और गुण के अनुसार करता है अर्थात् राज्य का आदर्श क्या है और उसे क्या होना चाहिए, यह वह अपने ध्येय से दूर ही क्या न हो? निरंकुश सिद्धान्त इसलिए कहा



## आदर्शवाद (Idealism)

राज्य के आदर्शवादी सिद्धान्त के अनेक 'नामकरण' किये गये हैं। कुछ विचारक इसे निरंकुश सिद्धान्त (Absolute theory) के नाम से पुकारते हैं, तो अन्य दार्शनिक सिद्धान्त (Philosophical theory), और कुछ मनीषियों की दृष्टि में यह एक धार्मिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) भी है किन्तु मैक माइवर (Mac Iver) ने तो इसे राज्य का रहस्यवादी सिद्धान्त (Mystical theory) तक कहने में संकोच नहीं किया है।

वस्तुतः राजनीतिक दर्शन का यह प्राचीनतम सिद्धान्त है। आदर्शवाद यह दर्शन या सिद्धान्त है जिसका यह दावा है कि संसार में मौलिक अर्थार्थता केवल आत्मा अथवा मस्तिष्क है एक किसी पदार्थ का रूप यह इस पर निर्भर करेगा कि प्रत्येक व्यक्ति उस वस्तु को किस दृष्टि से देखता है तथा अपने मानस-पटल पर उसकी कल्पना का चित्र किस प्रकार अंकित करता है।

जो भी विभिन्न नामकरण प्रस्तुत सिद्धान्त के अभिव्यक्तार्थ उपस्थित किये गये हैं, वस्तुतः वे इस सिद्धान्त को वास्तविक प्रकृति का विवरण करते हैं। किसी सीमा तक उन्हें अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता परन्तु उसे राज्य के रहस्यवादी सिद्धान्त की संज्ञा से विमुक्त करना उसके प्रति जोर असाध्यपुत्रा व्यक्त करना है। वास्तविकता तो यह है कि इस सिद्धान्त के विभिन्न नाम इसकी विभिन्न धारणाओं का स्पष्टीकरण करते हैं। उदाहरणार्थ, बोसान्क्वि (Bosanquet) इसे दार्शनिक सिद्धान्त कहता है, हॉब हाउस (Hob House) इसे धार्मिक सिद्धान्त बतसाता है, तथा इस सिद्धान्त के अर्थ में असादी समर्थक इसे निरंकुश सिद्धान्त का नाम देते हैं।

प्रस्तुत सिद्धान्त को आदर्शवाद का सिद्धान्त तो इस कारण कहा जाता है कि यह राज्य की परिभाषा तथा व्याख्या उसके आदर्श स्वभाव और कुछ के अनुसार करता है अर्थात् राज्य का आदर्श क्या है और उसे क्या होना चाहिए, यह सब अपने-आप में दूर ही क्यों न हो? निरंकुश सिद्धान्त इसलिए कहा





आधुनिक राजनीति.

ज्जी

चिन्त्य - धारा

[ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण ]

वेदव्रत शर्मा

एम ए., बी ए  
प्रभुल राजनीति-विभाष  
जे एम. डिग्री विभी कॉलेज, अमरोहा



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

धारावासी : १

## द्वितीय संस्करण की भूमिका

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में दो राज्य लिखते हुए प्रशंसा की अनुपमि स्वाभाविक है। पुस्तकका भारत के विभिन्न संघों में प्रथम क्रेण्ड स्वागत हुआ है। अतः, सम्पादक एवं राजनीतिक कार्यकर्त्तियों ने इसकी मुद्रणशुल्क से अछंता की है। मुझे निश्चय है, द्वितीय संस्करण जिसमें अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, अर्थोपपन्न, राज्य शक्त एवं अद्वैतवाद, कलून धीर बरुण सिद्धान्त सम्पादकों का समालोचन धीर बन एवं परिवर्द्धन एवं संशोधन हुआ है अपनी नवीन छात्र-समाज के साथ पाठकों को अधिकधिक रुचिकर प्रतीत होगा।

-वेदवत शर्मा

## अनुक्रम

अध्याय	पृ. सं.
१ आदर्शवाद (Idealism) ✓	१
२ व्यक्तिवाद (Individualism) ✓	४२
३ साम्यवाद (Communism) ✓	७०
४ अराजकतावाद (Anarchism) ✓	११५
५ संघवाद (Syndicalism)	१२६
६ श्रेणी-समाजवाद (Guild-Socialism) ✓	१७४
७ समष्टिवाद (Collectivism)	१६०
८ उपयोगितावाद (Utilitarianism) ✓	२१०
९ फासिस्मवाद (Fascism) ✓	२२४
१० बहुलवाद (Pluralism) ✓	२५२
११ राष्ट्रवाद (Nationalism) ✓	२७१
१२ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद (Internationalism)	२६१
१३ साम्राज्यवाद (Imperialism) ✓	३१६
१४ गांधीवाद (Gandhism) ✓	३११
१५ सर्वोदय (Sarvodaya)	३५५
१६ प्रमुखता और अद्वैतवाद (Sovereignty of the State and Monism)	३९६
१७ कानून (Law)	४२२
१८ दण्ड-सिद्धान्त (Theory of Punishment)	४१२



## आदर्शवाद (Idealism)

राज्य के आदर्शवादी सिद्धान्त के अनेक 'नामकरण' किये गये हैं। कुछ विचारक इसे निरंकुर सिद्धान्त (Absolutist theory) के नाम से पुकारते हैं, तो अन्य दार्शनिक सिद्धान्त (Philosophical theory), और कुछ मनीषियों की दृष्टि में यह एक प्राध्यात्मिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) भी है। किन्तु मैक माइवर (Mac Iver) ने तो इसे राज्य का रहस्यवादी सिद्धान्त (Mystical theory) तक कहने में संकोच नहीं किया है।

वस्तुतः राजनीतिक दर्शन का यह प्राचीनतम सिद्धान्त है। आदर्शवाद यह दर्शन या सिद्धान्त है जिसका यह दावा है कि संसार में मौलिक यथार्थता केवल आत्मा अथवा मस्तिष्क है, एवं किसी पदार्थ का रूप रंग इत्यादि पर निर्भर करेगा कि समुक्त व्यक्ति उस वस्तु को किस दृष्टि से देखता है तथा अपने मानस-पन्थ पर उसकी कल्पना का चित्र किस प्रकार संकित करता है।

जो भी विभिन्न 'नामकरण' प्रस्तुत सिद्धान्त के अभिव्यक्तार्थ उल्लिखित किये गये हैं, वस्तुतः वे इस सिद्धान्त की वास्तविक प्रकृति का विषय करते हैं। किसी सोमा तक उन्हें अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता परन्तु उसे राज्य के रहस्यवादी सिद्धान्त की संज्ञा से विमुचित करना उसके प्रति जोर असहिष्णुता व्यक्त करना है। वास्तविकता तो यह है कि इस सिद्धान्त के विभिन्न नाम इसी विभिन्न धारणाओं का स्पष्टीकरण करते हैं। उदाहरणार्थ बोसकि (Bosanquet) इसे दार्शनिक सिद्धान्त कहता है, हॉब हाउस (Hob House) इसे प्राध्यात्मिक सिद्धान्त कहता है, तथा इन सिद्धान्त के जर्मन उग्रवादी समर्थक इसे निरंकुर सिद्धान्त का नाम देते हैं।

प्रस्तुत सिद्धान्त को आदर्शवाद या सिद्धान्त तो इस कारण कहा जाता है कि यह राज्य की परिभाषा तथा व्याख्या उसके आदर्श स्वभाव और गुण के अनुसार करता है अर्थात् राज्य का आदर्श क्या है और उसे क्या होना चाहिए, चाहे वह अपने ध्येय से दूर ही क्यों न हो? निरंकुर सिद्धान्त इतिहास कहा

जाता है, क्योंकि राज्य की सर्व-शक्ति-संग्रहण शक्त है तथा राज्य को व्यक्ति पर निरंकुश शक्ति प्रदान करता है।

### भादर्शवादी सिद्धान्त का विकास

भादर्शवाद का प्रयोग केवल राजनीति तक ही परिमित नहीं है, बल्कि दर्शन, साधारणज्ञान, साहित्य और कलादि जीवन के विविध क्षेत्रों में होता है। राजनैतिक भादर्शवाद की उत्पत्ति दार्शनिक घड़ेतवाद से हुई है। घड़ेतवाद के अनुसार इस मानवी विरस के मूल में केवल एक ही तत्व है और जो के परिस्थान-बन्धन माना मानकाननव इस सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता हुआ है, अतः इस तत्व को घड़ेत की संज्ञा प्रदान की गई है। परन्तु इस इरम जगत् का यह नीतिक तत्व क्या है? यह एक विचाराम्बर प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में राजनैतिक विचारकों में मतभेद है। कुछ चिन्तकों की मान्यता है कि यह नीतिक तत्व बद् बचार्ब (Matter) है। इनको हम बद्बैतवादी (Materialistic monists) कहते हैं। इस वर्ग में भारत देश के चार्बीक-पन्धी तथा पाषाण्य दार्शनिक जिलमें हेकेल (Heckel), कार्ल मार्क्स (Karl Marx) और अन्य वैज्ञानिक प्रमुख हैं, आते हैं। किन्तु इस तत्व के सर्वथा विपरीत अन्य विचारकों की दृष्टि में इस विरस का मूल तत्व बद् बचार्ब न होकर चेतन रहता है। ये चेतनचैतवादी (Spiritualistic monists) कहें जाते हैं। बस्तुतः चेतनचैतवाद् ही भादर्शवाद की दार्शनिक आधापठिका है। इस विरस का प्रप्रसूत प्रश्न रहता या चेतन-तत्व से ही बना है। आत्मा सभी में विराड करती है, अतः सभी को प्रसूता प्रबवा प्रप्रसूण कर से कम या अधिक मात्रा में भाजाड होता है। आत्मा सर्वथा पूर्ण और शान्तिमय है, किन्तु जब इसकी सृष्टि शीबलता में ही जाती है तो संस्कार-विरोधरत उसका यह पूर्णतः मसिन ही जाता है। इस मसिनता के कारण उसमें जाडिडिडिता नहीं आ जाती, अतः उसकी अन्तः प्रकृति सदा ही उस पूर्णरत की फिर से ब्रह्म कर सैने की ओर सतत प्रयत्नशील रहती है। पूर्णरत की ओर निरन्तर प्रयत्नशील इस मानवीय अन्तःप्रेरणा को ही नैतिकता प्रबवा कर्तव्य-कर्तव्य विवेक कहते हैं। भादर्शवाद के अनुसार राज्य हुआपी नैतिक मनोभूति का ही अन्विरार्य परिणाम है। व्यक्तिगत के पूर्ण विराड हेतु राज्य की आवश्यकता होती है। दरीनिक राज्य कोई उन्नित संस्था न होकर मानवीय प्रकृति वा प्रयत्नवादी एवं निर्य परिणाम है। अरन्तु के मत में, 'अनुत्य एक आनाधिक प्राणी है' (Man is a political animal)। हम आदमी वैर्वाधिक प्रकृति से प्रेरित होकर राज्य की मान्यता प्रदान करते हैं। राज्य

के नियमों का वासन हम इस प्रकार करते हैं कि वे हमारी मौखिक-बुद्धि के अनुसार हैं। वह एक नैतिक संस्था है। उनका कर्तव्य हमारी धार्योप्रति में सहायता पहुँचाना है। राज्य के प्रति जो हमारी मिष्टा एवं भ्रष्टा है उसका एकमात्र कारण यह है कि यह व्यक्ति को पूर्णत्व की ओर से जाता है। जीवन का अन्तर्मुख धार्योप्रति ( Self-realisation ) ही है, अतः राज्य के लिए प्रत्येक प्रकार का त्याग और समिदान करना चाहिये।

### प्राचीन आदर्शवाद

किसी भी नाम से इस सिद्धान्त को सम्बोधित किया जाय, किन्तु इस आदर्शवादी विचारधारा का एक अन्वय इतिहास है जो कि पूर्णतया अममल नहीं है। यह आदर्शवादी सिद्धान्त राजनीतिक दर्शन में एक विशिष्ट स्थान रखता है और आधुनिक विचारधारा को अपने अद्वैत रूप से प्रभावित किया है। यह आदर्शवादी विचारधारा अनेक प्रकार के युग में अनेक विचारधाराओं के साथ सम्बन्ध हुआ किन्तु विचारों ने भावी राजनीतिक चिन्तकों को पीढ़ी को प्रभावित किया। प्लेटो के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'द रिपब्लिक' ( The Republic ) में राजनीतिक आदर्शवाद का सर्वप्रथम विवेचन हुआ है। प्लेटो के अनुसार, 'राज्य मनुष्य-धारा की वास्तविकता की प्रति है। ' राज्य किसी पत्थर या लकड़ी से नहीं उत्पन्न हुआ है अपितु वह मानवों के नैतिक धर्मबुद्धि की उत्पत्ति है।'

प्लेटो की दृष्टि में धार्या की मुख्य प्रकृतियाँ हैं—बुद्धि ( Reason ) असाह ( Spirit ) और वासना ( Appetite )। इन्हीं के अनुसार राज्य में भी तीन वर्ग हैं—राजनीतिक शासकों का ( बुद्धि ), उच्च धर्मियों का ( असाह ) और भोग्य वस्तुओं का ( वासना ) है। अतः राज्य धार्या की वास्तविक प्रति-बुद्धि है। प्लेटो के अनुसार राज्य में व्यक्ति का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता, उसके अधिकार और उसका नैतिक विकास सभी राज्य पर निर्भर करते हैं। व्यक्ति इनका उपयोग तथा अपने व्यक्तिगत विकास राज्य में रह कर तथा राज्य के द्वारा ही कर सकता है। प्लेटो के इन विचारों का प्रभाव अस्तु पर भी पड़ा और उसने कहा—“राज्य स्वाभाविक है।” अस्तु के सिद्धान्त में निर्दिष्टता के बिन्दु देखने को मिलते हैं। उसके

1 "The State is nothing but human mind writ large"  
 'States do not come out of oaks or rocks it results from the activities of mind who live in them.'



कथनानुसार, "राज्य धारमपूरित जोकन है। केवल राज्य में ही व्यक्ति सेठ जोकन किताने योग्य है तथा अपने अपने जीवन के पूर्ण सख्य की प्राप्त कर सकता है। राज्य सभी दुखों की साझेदारी है।" मत. धरन्तू ने समुप्य की एक सामाजिक प्रणाली बना। अपने राज्य तथा समाज में भी कोई विनेष नहीं किया। इन दार्शनिकों की दृष्टि में राज्य एक बाध्यव हकई (Organic unity) है। जिस प्रकार एक बाध्यव की विभिन्न भागों पर सम्पूर्ण की प्रयत्नता है, वही प्रकार राज्य की प्रयत्नता अपने सभी सदस्यों पर है।

बस्तुतः आधुनिक आदर्शवादियों पर मूलानी दार्शनिक की प्रभिट छाप है। मूलानी दार्शनिकों ने कई हीन प्रकार से प्रभावित किया—(१) राज्य की नैतिक दृष्टि से देखने तथा आचार वा नीतिशास्त्र के द्वारा राजनीतिक सिद्धांतों के विवेकन करने की प्रवृत्ति, (२) राज्य और समाज की एकत्वता की प्रस्तावना और (३) राज्य एक बाध्यव है।

मूलानी युग में जेडा तथा धरन्तू का राज्य सम्बन्धी महान् आदर्श सार्व भौमिकता से स्वीकृत नहीं हो सका था वैया कि जेम्स सेठ (James Seth) ने कहा है कि "मूलानी नीतिशास्त्र व्यक्तिवाद और स्थितवाद्युक्त की पुनार के साथ समाप्त हो गया।

धरन्तू के बाद मूलानी विचारवाद्य समनम हो हजार वर्षों तक रही रही और उसके स्थान भौतिक बुद्धवाद्य, विरक्तिवाद और मध्यकालीन पाश्चिमाद्य धारि ने लिया। परन्तु १२ वीं शताब्दी में मेकेवेली (Machiavelli) ने पुनः निरंकुश राज्य की धारणा को जन्म दिया और १७ वीं शताब्दी में हम्स (Hobbes) तथा स्पिनोजा (Spinoza) ने भी इसका समर्थन किया।

### आधुनिक आदर्शवाद

१७ वीं शताब्दी में जेडी (Rousseau) ने इन ग्रीक रीन का पुनरुत्पान किया। बस्तुतः यह आधुनिक आदर्शवाद का जन्मदाता है। उसी की सामान्य दृष्ट्या (General will) का सिद्धांत ही आदर्शवाद के विचार की प्रवृत्ति है। जेडी के विचारों पर जेडी का सर्वोपेक प्रभाव पड़ा। जेडी के कारण ही यह माने आरवो लॉक (Locke) की व्यक्तिवादी विचार-धारा से निरुक्त करने में और अनिश्चित सिद्धांत को हर्षनम करने में समर्थ हो सका। परन्तु महान् दृष्टि 'सोशल कांट्रैक्ट' (Social Contract) में जेडी ने राज्य

की बाराखा एक भित्तक संगठन के रूप में की है और सामान्य इच्छा को प्रतिपादित किया है। उसी की दृष्टि में, राज्य नागरिकों के वैधानिक अधिकारों के रक्षार्थ किया गया कोई वैधानिक संगठन न हो कर एक नैतिक संगठन है, जिसके द्वारा ही मनुष्य अपना नैतिकोत्थान कर सकता है। बिना राज्य के व्यक्ति मुक्तत्व पशु है। राज्य की सभ्यता उसके भौतिक धरातल को उन्नत करती है और उसे सभ्य मानवकर प्रदान करती है। राज्य मानव प्रेरणा के स्थान पर न्याय और उसकी सुधा के स्थान पर विधान को प्रतिष्ठित करता है। राज्य का प्रथम कर्तव्य व्यक्ति को भौतिक बन्धनों से विमुक्त कर, नैतिक-स्वातन्त्र्य का मार्ग प्रशस्त करना है। राज्य अपने नागरिकों को पूर्ण स्वाधीन करन के लिए विवश भी कर सकता है। ऐसी स्थिति में यदि राज्य की आज्ञा की शक्ति प्रवहेतना करता है तो इसका स्पष्ट अर्थ है कि वह अपने स्वतन्त्र नैतिक संकल्प (Free moral will) के अनुकूल आचरण नहीं कर रहा है क्योंकि सामान्य इच्छा राज्य का स्वल्प मात्र है। इस प्रकार उसी ने नागरिक को राज्य या सामान्य इच्छा के पूर्णतः अधीन बनाया। किन्तु उसकी सामान्य इच्छा प्रजा-सन्धारक एवं स्वतन्त्रतावर्धक की।

उसी की सामान्य इच्छा के सिद्धान्त में बहुत से दोष हैं। इन दोषों का निवारण माजी विचारकों ने किया और इसका अर्थ मुख्यतः आदर्शवादी दार्शनिकों को पाठा है। उसी के गम्भीर विचारों ने काएट (Kent) तथा अन्य समकालीन विचारकों को यद्यपि रूप में आकर्षित किया। काएट विशेषतः प्रभावित हुआ और इसी कारण उसी की सामान्य इच्छा उसके दर्शन का केन्द्र बिन्दु हो गई। काएट ने ही आदर्शवादी सिद्धान्त को पूर्णतः प्रदान दिया। यद्यपि इसका अर्थ अधिकतम राजनीतिक विचारक उसके उत्तराधिकारी हीयेन को प्रदान करते हैं, किन्तु यह तथ्यपूर्ण नहीं है।

इंग्लैण्ड में इस विचारधारा को कंसर्रिज तथा कार्लायल जैसे उन्धकीर्णिक के साहित्यकार एवं नवि वर्मनी से लाभे। इसका अनुपयोग ग्रीन (Green), बोसाङ्गे (Bossanquet) तथा ब्रेडले (Bradley) आदि ने अपनी रचनाओं में प्रयोग कर किया। ब्रिटेन में आदर्शवाद का प्रभाव ग्रेने के पुस्तक 'दिर लीण' ही गया। यद्यपि आज भी इस सिद्धान्त को राज्य तथा उसकी कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में उपयोगी नहीं समझा जाता, फिर भी इसके समर्थक संसार के प्रत्येक क्षेत्र में मिलते हैं।

## आदर्शवादी सिद्धान्त की दो प्रमुख धाराएँ

आदर्शवादी सिद्धान्त की दो प्रमुख शाखाएँ हैं। प्रथम उदारवादी धर्मन विचारक हैं, जिसका मन्दुरन हीयेस करते हैं। ये धार्शनिक राज्य की पूजा एक द्विविध शक्ति के रूप में करते हैं धीर साधन की अपेक्षा राज्य की साम्य मानते हैं। उनकी दृष्टि में, राज्य सर्वशक्तिमान् एवं परम है। उसका ध्येय व्यक्तिगत धीर उसकी धानी इच्छा है, जिसमें सबकों के व्यक्तिगत धीर इच्छाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन धर्मन धार्शनिकों में काएट, फिन्टे (Fichte) हुम्बोल्ड्ट (Wilhelm Von Humboldt) तथा हीयेस धार्शनिक प्रमुख हैं।

दूसरे वर्ग में उदारवादी आदर्शवादी सम्मिलित हैं, जिसका मार्च-ग्रेन प्रथम आदर्शवादी धार्शनिक धीम (Thomas Hill Green) करते हैं। इन विचारकों के मतानुसार राज्य का कर्तव्य केवल नकारात्मक (Negative) है। यद्यपि उन्का धन धियात्मक (Positive) है। राज्य का प्रदान कर्तव्य धन धरकोओं को दूर करना है की व्यक्तिगत-विकास में बाधक हों। इन धार्शनिकों के अनुसार राज्य का धीर मानव का सध्य एक ही है—सर्वोत्तम जीवन का साक्षात्कार धीर नागरिकों की नैतिक सभ्रति। यह नैतिकोद्धार केवल व्यक्तिगत प्रयत्न द्वारा ही सम्भव है। यद्यपि इन उदारवादी आदर्शवादीओं का मत है कि मनुष्यों की व्यक्तिगत धार्मिक एवं नैतिकोन्नति में धन्य कोई सहायक नहीं हो सकता। मद्यपि राज्य का कर्तव्य नकारात्मक होना चाहिए, धीर मनुष्य के उत्तम जीवन-यापन हेतु गुणवत्तर प्रदान करने चाहिए। मध्येक की सर्वोत्तम विचार है सर्व-सुखम धरसर धीर स्वतंत्रता मिमनी चाहिए। इस पूर्ण-विकास के मार्ग में को धरराप है उन्में हटाना राज्य का सर्वोपरि कर्तव्य है। इन धर्मन उदारवादी आदर्शवादीओं में धीम, बोसाट्टे धीर ड्रेडले सर्वोपरि प्रसिद्ध हैं।

## आदर्शवाद और उदारवाद में अन्तर

उदारवादीयों की दृष्टि में, राज्य एक धावरपक विचार है जब कि आदर्शवादी इसे एक धावरी संस्था मानते हैं। उदारवाद राज्य की एक साधन तो आदर्शवाद साम्य रहता है। उदारवादी राज्य के कार्यक्षेत्र को परिमित करते हैं तो आदर्शवादी पूर्ण स्वातंत्र्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार के किसी प्रकार के हस्तक्षेप पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते। उदारवादीयों का दृष्टिकोण स्वतंत्रता के सम्बन्ध में स्वेच्छापूर्वक जीवन-यापन करना है। आदर्शवादी इनसे धमदमति प्रकट करते हैं धीर स्वतंत्रता से धान्य, उनके विचार में राज्यीय निधनों के

अनुसार जीवन व्यतीत करना है। मान्तेस्क्यू ( Montesquieu ) ने स्वतंत्रता स्थापना में शक्ति-विभाजन का प्रौढत्व सिद्ध किया। किन्तु भावदर्शियों ने अपना इससे निम्न दृष्टिकोण रखा। सौंफ की वृष्टि में जन-स्वीकृति राज्य की आवश्यकता है। वह इसका प्रामाण्य है। किन्तु भावदर्शियों इसे निरपेक्ष की संज्ञा प्रदान करते हैं। प्रारम्भिक भावदर्शियों उदारवादी विचारधारा से प्रभावित तो हुए, किन्तु उन्होंने उसे नवीन रूप प्रदान किया। इसकी स्पष्ट भ्रमक हमें काएट के दर्शन में दिखाई देती है। किन्तु फिस्के का दर्शन अधिक भावदर्शियों है और उदारवादी रूप। हीगेल तो पूर्णतः भावदर्शियों है। फ्रीड के दर्शन में इन दोनों विचारधाराओं का सामन्तस्य हुआ है। इसी कारण उसे नवीन व्यक्तिवादी और नवीन भावदर्शियों कहा जाता है। वेदसे और बोसके दोनों हीगेल के पर-विशेषों पर ही बने हैं।

### इममनुएल ( Immanuel Kant )

( १७२४-१८०४ )

काएट प्राबुनिक भावदर्शियों का जन्मदाता है। उसकी माता बड़ी धार्मिक महिला थी, जिसका काएट पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। वह बड़ी ही कुशाग्र बुद्धि वाला था। शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त वह कोनिग्सबर्ग ( Königsberg ) विश्वविद्यालय में प्राफेसर हुआ। उसका लेख दर्शन था। उसके दर्शन का प्रभाव राजनीति शास्त्र पर परिलक्ष्य से पड़ा। नगर की जनता में उसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण यह था कि वह समय का विशेष ध्यान रखता था। उसकी लोकप्रियता में प्रभाव लिखा था और सामन्तशाही के प्रति घोर घृणा। उसकी दृष्टि में, मनुष्य साधन की अपेक्षा एक साध्य है। उसकी प्रमुख पुस्तक ( Critique of Pure Reason ) थी। अपने राजनीतिक दूर दसों के समान काएट भी, १८ वीं शताब्दी के व्यक्तिवाद और प्राकृतिक अधिकार तथा सामाजिक समझौता के सिद्धान्त से जो सम्मुख १९वीं शताब्दी के भावदर्शियों और राज्य की नैतिक साधन धारणा में हुआ, उसका स्वर्णकरण करता है; वैसे कि जॉन डेवी ( John Dewey ) ने कहा है, 'किन्तु इसमें काएट दार्शनिक चिन्तन के पुराने युग के अन्त का संकेत करता है। स्पष्टतः उससे प्राबुनिक चिन्तन का प्रारम्भ होता है।'

काएट के समय में यूरोपीय दर्शन का बड़ा विविध रूप देखने को मिलता है। फ्रांस के बुद्धिवादी विचारकों की, जिनमें कान्टेयर प्रमुख था पाएया थी

1 "In a genuine sense Kant marks the end of the older age in philosophy. He is the transition to distinctively modern thought." ( John Dewey )

कि धर्म अन्धविश्वास मात्र है। इस प्रकार इन बुद्धिवाधियों ने नास्तिकता के प्रचार एवं प्रसार में पर्याप्त योगदान दिया। सौक बर्कले (Burkley) और ह्यूम (Hume) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि इन्द्रिय-बन्धु ज्ञान से सबैव सत्य का आनास नहीं होता, केवल संशयमयक ज्ञान की ही अनुसृष्टि होती है। फर्वाहूरव्याच सुर्व प्रतिपिन पूर्ब में ही उच्य होता है और इस आचार पर हमने यह आख्या बना सी कि वह भक्ति में भी पूर्ब से ही उचित होमा। किन्तु इस विचार निर्माण में हमारे पास कोई ठोस, निरिक्त तथा ठर्कबंधत प्रमाण नहीं है। सुर्व का पूर्ब की अपेक्षा पश्चिम में निकलना या बिलकुल सवय ही न होना सम्भव ही सकता है। फरत हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अनुभव से भी हमें बोध होता है उससे केवस सम्भावनाओं का ही पता चलता है। एतदर्थ ज्ञान वा कोई अन्य साधन न होकर एकमात्र इन्द्रिया ही हैं। यतः ह्यूम के मत में सभी कुछ संशयात्मक है। इस प्रकार संशयवाद की प्राबुध्ति हुई। इसी ने संशयवाद को भ्रान्त एवं व्याम्ब बतलाया क्योंकि बुद्धिवाद नास्तिकता और संशयवाद का मार्ग प्रशस्त करता है। यतः ह्यूम ने बुद्धि के अनुसरण की अपेक्षा भाव (Sentiment) तथा इच्छा (Will) के अनुसरण पर बल दिया। काण्ट ने यूरोपीय दर्शन की इन महत्त्वपूर्ण समस्याओं का सामाधान कर सत्य और धर्म की शिथिलता को स्थापित किया। उसके मत में, ज्ञान की अनुसृष्टि हमें इन्द्रियों से नहीं अपितु बुद्धि द्वारा होती है।

काण्ट का राजनीतिक दर्शन यद्येष्ट रूप में नीसिक नहीं है। उसकी प्रक शक्तियाँ ह्यूमो और माटेस्कु हैं, जिनका रचनात्मक प्रभाव उसके राजनीतिक चिन्तन पर पड़ा है। डनिंग (Dunning) ने ठीक ही कहा है—“राज्य के पदार्थ और स्वरूप के सम्बन्ध में काण्ट वा सिद्धांत ठीक वही सिद्धांत है जो ह्यूमो का वा और जिसे उन्होंने अपनी राज्यापत्नी में अपनी ठर्क-नीति के साथ प्रकट किया है। इसी प्रकार उन्होंने सरकार की व्याख्या करने में माटेस्कु का अनुगमन किया है।”

### फ्राण्ट की दन

(१) काण्ट की आदर्शावादी दर्शन के लिए जो सर्वश्रेष्ठ दैन है वह उनका नतिवता के इच्छिण से राजनीति वा विवेचन करता है। बलुत प्रारम्भ में

1 His doctrine as to the origin and nature of the State is merely Rousseau's put into the garb of Kantian terminology and logic; his analysis of government follows Montesquieu in like manner"—Dunning

उत्पन्न यह दृढ़ मत था कि राजनीतिक चिन्तन नैतिक चिन्तन के निर्देशन में ही होना चाहिए। नैतिक दर्शन के अभाव में राजनीतिक दर्शन निरर्थक एवं महत्वहीन है।

(२) काएट की द्वितीय रीति यह थी कि उसने नीतिकता से अधिक प्रधानता व्यापारिकता को दी। उसकी दृष्टि में एक वस्तु (पुस्तक) का ज्ञान उसकी बनावट की अपेक्षा उस प्रतिबिम्ब से होता है, जिसको देखकर हमारे मस्तिष्क में बनता है। हम अनेक वस्तु को पुस्तक क्यों कहते हैं? उसका कारण यह है कि वह हमारे विचार के अनुसार पुस्तक के समान है और इसलिए नहीं कि वह है। काएट ने अपनी इस विचार-सरणी को कोपर्निकन-क्रान्ति (Copernican Revolution) भी संज्ञा दी। वस्तुतः काएट ही सर्वप्रथम दार्शनिक का जिसने इस विचार का प्रतिपादन किया।

(३) काएट की तृतीय रीति थी कि जीवन में विगुण विवेक (Pure reason) का अनुभव की अपेक्षा अधिक महत्व है। काएट से पूर्व ज्ञानार्जन में अनुभव तथा प्रयोग को प्रधानता प्रदान की जाती थी किन्तु काएट ने इस विचार को अमान्य ही नहीं बतलाया अतः कहा कि ज्ञानार्जन हमें इन्द्रिय-जन्य अनुभव तथा प्रयोग से न हो कर बुद्धि द्वारा होता है। इनापी बुद्धि, जो कुछ हम इन्द्रियों द्वारा सुनते, देखते और स्पर्श करते हैं उसे, ग्रहण कर सुस्पष्टस्वियत कर देती है और तभी हमें उस ज्ञान की अनुभूति होती है। जो कुछ भी हम मनन तथा अनुशीलन करते हैं वह सब बुद्धि से, काव्य कार्य मात्रा और पृच्छात्ति की सीमा के अन्दर है। अतः अर्थ (Space), काल (Time) और कारण-कार्य (Causation) हमारे लिए निरर्थक सत्य हैं। इस प्रकार हमारा ज्ञान भी संशयात्मक न हो कर हमारे लिए निश्चय और सत्य है।

काएट ने बुद्धि के दो पक्ष स्वीकार किये हैं—प्रथम, 'विगुण विवेक' (Pure reason) और द्वितीय 'व्यावहारिक विवेक' (Practical reason)। विगुण विवेक द्वारा हमें इत्यजगत् (Phenomenal world) का निरवधारण बोध होता है किन्तु यह विगुण विवेक अर्थ काव्य, कारण-कार्य की सीमा से परिमित है। अतः यह दूरगामी नहीं है। इत्यजगत् के गर्भ में क्या है, वह विगुण विवेक द्वारा मापन करना सम्भव नहीं है। प्रथम उक्तप्रमाण अर्थ विषय हमारे लिए रहस्यात्मक हैं क्योंकि हमारा विगुण विवेक वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाता। तादृश दृष्टि से अर्थ के अतिरिक्त और कुछ उक्तप्रमाण नहीं हो पाता। किन्तु यहाँ एक स्वानुभविक प्रमाण उठता है कि जब विगुण विवेक द्वारा हमें दूरगामी वस्तु का बोध नहीं हो पाता तो क्या उस उक्तप्रमाण में कोई अन्य विवेक है अथवा नहीं? काएट ने प्रत्युत्तर

में कहा है—ऐसे समय का आभास हमें व्यावहारिक विवेक (Practical reason) द्वारा होता है। इन व्यावहारिक विवेक को ही इच्छा-शक्ति (Will) की उन्मा प्रदान की गई है। वस्तुतः इसी स्वयं पर कण्ट और कडा के विचारों में साम्यत्व है। दोनों एक ही विचारधारा के हैं। क्यो नै कहा जा कि हमारा वास्तविक पथ-प्रदर्शन भावों (Sentiment) द्वारा सम्भव है, न कि उन्हें विवेक या मस्तिष्क द्वारा।

(१) कान्ट की चौथी वेब है—'सर्वव्यापक नैतिक नियम' (Universal moral laws)। मानव की प्रेरक शक्ति एवं संरक्षक ये नैतिक नियम ही हैं। ये नैतिक नियम ही उन्हें प्रेरित रखे हुए हैं, नहीं तो मनुष्य अपनी स्वार्थी एवं बिगाठ वाली आकांक्षाओं के कारण कमी नग्न हो गया होता। इसी शक्ति के द्वारा मानव को आकांक्षाएँ संशोधित तथा नियमित होती हैं। नागरिक को भावार्थ बनाने में इसी नियमों का हाथ है। इसी कारण कान्ट का यह दृढ़ मत है कि यदि नागरिक अपने कर्तव्य का पूर्णत्व से पालन करे तो अधिकार स्वयं ही उसका अनुसरण करे। इस प्रकार कान्ट कर्तव्य-परायणता पर अधिक जोर देता है।

### अधिकार और कर्तव्य

कान्ट शक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों में, विशेष बल कर्तव्यों पर देता है। बर्नहार्डी (Bernhardi) कहता है—“एक झंडीसी छोग धारिण्य और एहिक निरङ्कुशता के विषय विमोह करके मानी दासता की गृहबाधों को पीड़ कुके से और अपने अधिकारों की पीपला कर कुके से, उन प्रतिभा में एक विलकुल निर कोटि की अस्थि हो रही थी, वह कलम को अस्थि थी”<sup>1</sup> और इस अस्थि के देवदूत कान्ट थे। व्यावहारिक विवेक (Practical reason) का मौलिक नियम—“निरपवाद कर्तव्यप्रेरक” (Categorical imperative of duty) है। वस्तुतः व्यावहारिक विवेक हमें बर्तव्य कर्तव्य पालन की प्रेरणा देता है। कर्तव्य-कर्तव्य विवेक (Moral reason) ही व्यावहारिक विवेक है। अधिकार के साथ कर्तव्य भी जुड़ा हुआ है। अधिकार का रखन करने प्रति, राज्य के अन्य व्यक्तिगत सदस्यों के प्रति तथा राज्य के प्रति एक समान कर्तव्य होता है। मनुष्य में एक कर्तव्य-विवेक की इसकी प्रभावता एवं प्रवणता है कि यह इसकी प्रवणता नहीं कर सकता। कर्तव्य-विवेक अपना अन्तरप्रया हमारा जीवन मार्ग-दर्शन करती

1 "While the French people in savage revolt against Spiritual and secular despotism had broken their chains and proclaimed their rights, another quite different revolution was working in Prussia, the revolution of duty" (Bernhardi)

है। कर्तव्य विस्तृत रूप में अन्तर्विभेद ( Inner consciousness ) का विषय है। इसका अद्वैत मनुष्य के निम्न भौतिक अहम् का उच्च विकसित अहम् द्वारा शोषण करना है।<sup>१</sup> अतः काएट का मत है कि समस्त कार्य कर्तव्य-पालन की दृष्टि से ही करने चाहिए, न कि कुछ एवं सुखानुभूति के उद्देश्य से। काएट का यह सिद्धान्त ( Categorical Imperative of duty ) के नाम से प्रसिद्ध है।

कर्तव्य-पालन के लिए इच्छा शक्ति की स्वतन्त्रता ( Freedom of will ) परमावश्यक है; क्योंकि व्यक्ति पर कार्य के उत्तरदायित्व का औचित्य अथवा अनौचित्य तनी रखा जा सकता है जब कि वह पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग करता हो। सदाचार और नीति दोनों ही क्षेत्रों में काएट कसो का श्रेणी है, क्योंकि उसने कसो के नैतिक इच्छावासे सिद्धान्त को ही नहीं अपनाया, बल्कि वह उसके सम्पूर्ण चिन्तन की आधार मिति है। उसका कथन था कि अपने अर्थ में वह व्यक्ति स्वाधीन है जो नैतिक दृष्टि से भी स्वाधीन है। 'नैतिक इच्छा की स्वायत्तता' राजनीतिक चिन्तकों के लिए एक नया मत बन गई है। स्वाधीनता से अतिप्रधान निर्गुण स्वाधीनता से नहीं और न व्यक्तिवादियों की भाँति पूर्ण स्वतन्त्रता से ही है। उसकी दृष्टि में व्यक्ति को केवल एक ही प्रकार की स्वाधीनता की अधिकार है जो अन्य व्यक्तियों के सम्मान और सार्वभौम विधानों से निर्धारित है। काएट ने कहा है, "स्वाधीनता का अर्थ ऐसा कोई भी कार्य करने की शक्ति है जिससे अपने पड़ोसी पर किसी प्रकार का कोई आघात न पहुँचे।" यह स्वाधीनता सर्वव्यापक नैतिक नियम ( Universal moral law ) से सम्बन्धित हो सकती है। काएट के अनुसार कोई शराबी या पुष्पाड़ी स्वाधीन नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये दोनों ही पूर्ण सर्वव्यापक नैतिक नियम के पूर्णतः प्रतिकूल हैं। मिस की दृष्टि में बुद्धि अज्ञानता और परिवर्तित व्यक्ति की स्वाधीनता के अनुकूल हैं, यदि उनसे समाज की शान्ति भंग न हो। वह इन दृष्टियों को नैतिक समझता है। काएट ऐसे दुर्बलता का खण्डन करता है, क्योंकि व्यक्ति ही समाज की अड़ है और जब अड़ ही विकृत तथा दूषित हो जाती तो उसे सम्पूर्ण समाज में व्याप्त होने से कोई नहीं रोक सकता। इस प्रकार काएट के विचार से स्वतन्त्रता और अधिकार समकाल ( Co-incident ) हैं। वौडान ( Vauvhan ) ने कहा है, 'अधिकार का विकास स्वाधीनता में और स्वाधीनता का विकास

१ 'It stands for the correction of the lower empirical self by the higher rational self'

२ "Liberty consists in the power to do anything which in facts no injury on one's neighbour"



अधिकार में है।” अधिकार नैतिक स्वाधीनता का पर्याय है। उसका अर्थ है, “मनुष्य की मानवता के नाते जो एकमात्र नैतिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है वह स्वाधीनता है।”

### राज्य का कार्य क्षेत्र

व्यक्तिगत वा साम्प्रदायिक कानून के दायरे का क्षेत्र-विस्तार है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक सत्य है। अतः किसी को भी दूसरे की सत्य-व्यक्ति का अक्षय मान नहीं बनाया जाना चाहिए। हमारे कार्य एक ऐसे सिद्धान्त पर आधारित होने चाहिए, जिससे एक सार्वभौम विचार-निर्णय सम्भव हो सके। व्यक्ति का अर्थ एकमात्र अपना साम या सम्पत्ति नहीं होगा चाहिए। जो अर्थ सार्वभौम दृष्टि से उपभोगी हो केवल नहीं मन्नाया चाहिए। व्यक्ति की वही सत्य स्वाधीन है जो सार्वभौम अर्थों से परिपूर्ण हो। अस्तुतः कानून की दृष्टि में अधिकार को त्यागकर अन्य किसी वस्तु की शक्ति नहीं की जा सकती। राज्य का अस्तित्व इस कारण है कि वह इस प्रकार की अधिकार को विकसित एवं संरक्षित करे और साथ-ही-साथ स्वामी अधिकारियों को रोके। स्वतंत्रता राज्य द्वारा ही सम्भव है। उसके बिना वह अर्थहीन है। अतः राज्य स्वतंत्रता का पोषक एवं संरक्षक है। स्वतंत्रता नैतिक जीवन के लिए परम आवश्यक है। अतः राज्य एक नैतिक संस्था (Ethical institution) है। व्यक्ति साम्य और राज्य एक अनुभव साम्य है, क्योंकि व्यक्ति की साम्यप्रति इसी के द्वारा होती है। अतः राज्य को सकारण (Positive good) कहना है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति को सकारण नैतिक नियमों का पालन करने का अवसर मिलता है। किन्तु कानून राज्य का कोई अन्तर्गत नहीं है। उसका निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति के स्वाधीनता अर्थों में अर्थहीन होते हैं। इन अर्थों में व्यक्ति की स्वाधीनता, साम्य की स्वाधीनता और और-परिभाषित होती है। अतः ‘सभी का समो के लिए अधिकार’ होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के राज्य का अर्थ नैतिक स्वाधीनता (Moral freedom) की उपस्थिति करना नहीं है। उसका पूर्णतः अर्थ ही व्यक्ति के कार्य में जो बाधा है उन्हें हटाना है। नैतिक स्वाधीनता की उपस्थिति केवल व्यक्ति ही उपस्थित कर सकता है। राज्य की एक मात्र अर्थ ही है।

1 Right expands into freedom and freedom expands into right.”

2 “The only original right,” he says, “belonging to each man in virtue of his humanity is freedom.”

सामाजिक बाताबरण स्थापित कर देता है जिसमें अत्यन्त नैतिक कार्य क्रमशः मानवता के राज्य को विकसित कर सकें। राज्य द्वारा जिस बल का प्रयोग किया जाता है वह धन्य प्रकार के बलों से पुरुषुतया भिन्न है। 'उसकी एक पवित्र महत्ता है, क्योंकि वह ऐसी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जो आध्यात्मिक, नैतिक और विवेकमय अरु कल्याण की स्थापना और उसके विकास में रत है।' किन्तु कारण राज्य की बेसी पर व्यक्तिगत स्वार्थस्य की आहुति देने की तत्पर नहीं है। वह व्यक्तिगत स्वाधीनता का समुचित मूल्यांकन करता है। यद्यपि वह व्यक्तिगत स्वाधीनता को सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के अन्तर्गत रखता है किन्तु ऐसा करके वह व्यक्तिगत स्वाधीनता का परित्याग नहीं कर रता। "स्पष्ट यह न्याय और व्यक्तिगत स्वाधीनता के मध्य असनेबाधा उसका मानसिक संघर्ष है। इन दोनों को पूर्ण समन्वित करने का मार्ग उसे दृष्टिगोचर नहीं होता और वह इतना ईमानदार है कि दोनों में से किसी एक को भी बलिदान करने के लिए तैयार नहीं है।"

### क्रान्ति का अधिकार

अस की राज्य-अन्ति ने कारण के मानस को यथेष्ट रूप में प्रभावित ही नहीं किया बरन् उसे विचलित भी किया। कारण के मत में मानव की नैतिक मूल्य पुति के हेतु राज्य का अस्तित्व तो आवश्यक है किन्तु वह उसे अन्ति या विद्रोह का अधिकार नहीं देता। उसकी दृष्टि में शासक को पश्चुत करना तथा उसकी हरया करना बोर अनैतिक एवं अप्रम्य कृत्य है। यह एक ऐसा अपराध है जो क्षम्य नहीं है। अस्तुत यह बेसा ही निहृष्टम पाप है बैसा कि बर्नशासकों में 'पुनीतात्मा' के प्रति किया गया पाप, जो अप्रम्य है। अतः कारण व्यक्ति को विद्रोह का अधिकार प्रदान नहीं करता। यदि किसी संवैधानिक मुबार की आवश्यकता है तो वह शासक द्वारा होना चाहिए, न कि क्रांति द्वारा। इस दृष्टि से कारण हीमेत-पन्थी है।

1 It has a sort of sacred import, for it represents force consecrated to the assertion and expansion of final goods which are spiritual, moral, rational'

2 It is clearly a conflict in his mind between the claims of justice and the claims of individual freedom. He does not see his way fully to reconcile the two. He is honest to sacrifice either'

## अनुभव और सरकार

कास्ट अनुभववाद का विरोधी है। उसके कथनानुसार राज्य क्रांतियों की जन-स्वीकृति पर आधारित नहीं है। राज्य की उत्पत्ति एवं संभ्रमण अनुभव द्वारा न होकर एक हाथ हुआ है। जगता में ही सामंतीयता निहित है और विधि-निर्माण की सर्वोच्च-शक्ति भी वहीं में है। सामान्य इच्छा (General will) ही विधि की उत्पत्ति-स्वामी है। वह कसो की सामान्य इच्छा का बड़ा प्रशंसक है। किन्तु सामान्य इच्छा के विचार में कास्ट और कसो में एक अंतर है। कसो की सामान्य इच्छा केवल प्रत्यक्ष प्रवर्तन में ही सम्भव हो सकती है, किन्तु कास्ट के अनुसार व्यक्ति विशेष भी ऊँचा प्रतिनिधित्व कर सकता है। संविधान सामान्य इच्छा का वह निरूपण है जिसके द्वारा जन मीड सुसंयोजित जगता में परिणत हो जाती है।

कास्ट ने राज्य के तीन श्रेणियाँ किये हैं — एकलव्य कुमीन एवं और प्रवर्तन। सरकार की दो भाषों में विभक्त किया है—'संवैधानिक और 'साधारण'। यदि विधान सर्वोच्च और नावैधानिक पूरक-पूरक हैं तो सरकार संवैधानिक, साधारण साधारण है। सरकार यदि प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं है तो वह अवैधानिकपूर्ण है और वास्तव में ही सरकार को असवीकृत करता है।

## फिशले (J G Fichte)

( १७६१-१८१४ )

फिशले एक जूनाई का लड़का था। बचपन में उसे गार्डिन लुबर के नायिक विचारों ने प्रभावित किया था। वह बेना किरानविद्यालय को छोड़कर प्रशासना गया और वहाँ कर्मिक किरानविद्यालय में प्रोफेसर हो गया। उन्होंने अपने एक प्रसिद्ध भाषण में सर्वोच्च शक्ति के साथ एवं किरान-सम्बन्धी एक उच्च विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने यह मत था कि प्रशासकीय व्यवस्था का प्रमुख कारण जनता में राजनीतिक अज्ञान्य का होना है। इसी कारण उसने सर्वोच्च शक्ति के धारकों की बहाल की।

१७८८ के उपरांत फिशले 'कास्ट' के समर्थक में आया। वस्तुतः कास्ट के धारकोंवाद को विकसित करने का श्रेय फिशले को ही है। उन्होंने कास्ट के धारकों वा उदारवादी विचारवाद्य से विमुक्त कर विमुक्त धारकोंवाद में परिणत कर दिया। किसी कसो में भी व्यक्ति प्रभावित हुआ था किन्तु फिशले के विचारों में हजारों जनता परिवर्तन होगा दिगर्त होता है। प्रारम्भ में उसने व्यक्तिवाद,

अन्ततः वाद धीर विरवबन्धुत्व का प्रतिपादन किया, पर बाद में वह अधिनायकवाद, राष्ट्रवाद धीर व्यक्तिवाद-विरोधी भावना का कट्टर समर्थक हो गया ।

फिक्टे अपने युव काएट का समर्थी भी है । काएट कहता है कि वास्तविक जगत् की ज्ञान-प्राप्ति में विवेक धीर विचाररत्न ( Intuition and reason ) का प्राधान्य है ही, किन्तु वस्तुविद्या ( reason of the object ) का भी प्राथमिक रूप में प्रभाव पड़ता है । किन्तु फिक्टे ने काएट के इस कथन में संशोधन कर दिया है । वह कहता है कि वास्तविक जगत् का ज्ञान हमें केवल विवेक या अन्त-प्रेरणा ( Intuition ) द्वारा ही होता है, न कि वस्तु-विद्या द्वारा ।

फिक्टे के मत में भारतीय राज्य में नागरिक को पूर्ण स्वतंत्रता होनी । किन्तु फिक्टे की स्वतंत्रता व्यक्तिवादियों की स्वतंत्रता से पूर्णतः भिन्न है । फिक्टे का स्वतंत्रता से तात्पर्य दो प्रकार की स्वतंत्रता से है - प्रथम, 'मान्तरिक स्वतंत्रता' धीर द्वितीय, 'बाह्य स्वतंत्रता' । मान्तरिक स्वतंत्रता का अर्थ है व्यक्ति की पुच्छ वासनाओं का प्रभाव, जिससे कि व्यक्ति अपने किशुद्ध विवेक द्वारा जीवन-यापन करे । बाह्य स्वतंत्रता से अभिप्राय है ऐसी स्वतंत्रता जिसमें व्यक्ति के कार्यों में किसी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप न हो । इस प्रकार बाह्य स्वतंत्रता से फिक्टे का यह अन्तव्य नहीं है कि व्यक्ति अपनी मनमानी करे, बस कि व्यक्ति-वादी बहते हैं, बल्कि उसका अर्थय उस स्वतंत्रता से है जिसमें व्यक्ति के कार्य नैतिक इच्छा ( Moral will ) द्वारा संवाधित एवं प्रेरित हों । इसके अतिरिक्त व्यक्तिवादियों के अनुसार बाह्य स्वतंत्रता केवल 'अदमात्म्यम्' नीति द्वारा ही सम्भव है, किन्तु फिक्टे स्वतंत्रता के लिए राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक समझता है क्योंकि इसके हस्तक्षेप द्वारा ही समाज में उस बाधाकरण का निमित्त होता है जिसमें व्यक्ति को अपने नैतिक-स्वातन्त्र्य का उपभोग करने की सुविधा मिलती है । अतः स्वतंत्रता राज्य द्वारा ही सम्भव हो सकती है । राज्य के विरुद्ध व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हो सकते । व्यक्ति का पुरीत कर्तव्य राज्य द्वारा निर्मित कानूनों का परिपालन करना है, क्योंकि उनका निर्माण विवेक द्वारा हुआ है । राज्य ही सर्वसत्ताधीन है । राज्य समाज की एक राजनीतिक संस्था है । यह मानव ज्ञानि के लिए एक आवश्यक साधन है । मानव कल्याण के लिए शान्ति-स्वायत्त, सुरदा धीर युद्ध-बहिष्कार आवश्यक है । अतः फिक्टे एक राष्ट्र-संघ धीर एक विरवम्याप्तमानय की प्रतिष्ठा को न्यायसंगत बतलता है किन्तु उसके ये विचार स्थायी नहीं रहे । इनमें अन्तरा परिवर्तन होता गया । अन्तराष्ट्रीयता की भावना विमुक्त हो गयी धीर वह कट्टर राष्ट्रवादी हो गया । उसके मत में,

राष्ट्रीयता ही व्यक्ति के जीवन का परम मूल्य है। व्यक्ति मानवता की सेवा करने को राज्य के सम्मुख समर्पित करके ही कर सकता है। उसका राज्य एक राष्ट्र की भावना की अतीव अभिव्यक्ति है। वह साक्षर है। फिर के मत में, एक राष्ट्रीय राज्य के पुनर्जातन हेतु यह आवश्यक है कि उसमें भाषा की एकता, भाषिक राष्ट्रीयता और समाज पर पूर्ण नियंत्रण की अधिकार-शक्ता हो। इससे अभिप्राय है कि एक राज्य में केवल एक ही भाषा भाषी होने चाहिए और वह राज्य धार्मिक दृष्टि से पूर्णतः अतन्त्रिभर भी हो तथा नागरिकों के सर्व-व्यवहार पर राज्य का एकाधिकार भी होना चाहिए। यह व्यक्तिगत पर कर तथा सङ्घता है और उसकी सम्पत्ति की रक्षण भी कर सकता है।

फिर अपनी पुनरावस्था में जनबादी था। यह सत्ता को ही अधिकार-शक्ता का स्रोत मानता था। उसने अतीवसे राज्य-शक्ति का पुनर्जात भी किया था। फिर वह धीरे धीरे अभिव्यक्तकारी ही बना। निरन्तर राज्य-शक्ति को ही उसने धारण माना। उसके मत में पैतृक शासन-व्यवस्था ही सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था है। वह राज्य-शक्ति को नागरिकों के निर्वाह-महत्त्व से अधिकतर एवं सर्वोपरि समझता है। नाएट में व्यवस्था-शक्ति समा को प्रभावित थी है, फिर फिर इसे स्वीकार नहीं करता। बल्कि फिर का यह दर्शन बीसवीं शताब्दी के अभिवाचक-कारियों का प्रेरक बना। दूसरे का भावी वर्तनी फिर के विचारों का मूर्तका था।

## हीगेल (G.W.F. Hegel)

(१७७०-१८३१)

हीगेल प्राथमिक धारणा-वाद का सर्वोत्कृष्ट वेत्ता एवं व्याख्याकार है। उसने नाएट और फिर द्वारा प्रतिपादित धारणा-वाद को अत्यन्त भीमा पर पहुँचाया और उसमें उस प्रतिनिधित्व का मुद्र दिया। इसी कारण अनेक व्यक्ति प्रथम महापुरुष का उत्तराधिकारी उठी पर रहते हैं। हीगेल एक अत्यन्त सम्पन्न-वर्गीय परिवार में पैदा हुआ था। उसके पिता की यह सत्तवीं दृष्टि थी कि वह एक प्रोटेस्टेंट पादरी बने। अपनी इस भावना को मूर्तका देने के लिए, उसके पिता ने उसे लैटिन में धार्मिक शिक्षा दी। हीगेल हेनलर-धर्म और बर्लिन निरन्तर-विद्यालय में दर्शन का प्राध्यापक था। १६ वीं शताब्दी में फिरे, फरलापन और हीगेल सम्पन्न-वर्गीय थे। हीगेल अतीवसे राज्य-शक्ति के कारण उत्तराधिकारी दर्शन से परिचित हुआ और अपने इसे धारणा-वाद में परिवर्तित कर दिया।

हीगेल की सोच-विचारणा अपनी अत्यन्त-व्यवस्था पर थी। वह धार्मिकों का सत्ता-धर्म नष्ट करने का धार्मिक था। राज-शासन उससे अत्यन्त के लिए अत्यन्त

रहते थे। वह इतना प्रतिभाशाली धार्मिक था कि १२वीं शताब्दी के सभी धार्मिक एवं विचारक यहाँ तक कि कार्ल मार्क्स भी उसके चर्क एवं विस्तारण से बिना प्रभावित हुए न रह सके। हीगेस का चरित्र बड़ा गम्भीर, गूढ़ और कठिन है। कुछ विचारकों की धारणा है कि हीगेस का चरित्र इतना कठिन है कि बीस बर्षों के परिशीलन एवं मनन के उपरान्त भी उसे समझना मुमकिन है। एक बार हीगेस ने कहा था कि उसके चरित्र को केवल एक ही व्यक्ति समझ सका और उसने भी उसे बहुत समझा। वस्तुतः प्रकृता उसके चरित्र का रहस्य है।

हीगेस के धार्मिक विचारों में भावार्थवादी सिद्धान्त अपनी चरमावस्था पर पहुँच गया है। हीगेस के चरित्र की प्रकृति परस्पर की ऐतिहासिक-वस्तु है—“मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है”, उसकी स्वाधीनता प्रगति और विकास केवल समाज और राज्य में ही सम्भव है। हीगेस काएट के द्वैतवादी विचार का अर्थन करता है। काएट के मत में, “केवल हरय-जगत् (Phenomenal world) ही बुद्धिमत् है, किन्तु उसके मूख में का तत्व है वह प्रमत्त है और अज्ञान है। उसका केवल व्यावहारिक विवेक (Practical reason) द्वारा ही प्राप्त निष्कर्ष है।” हीगेस ने काएट के इस द्वैतवादी विचार का मूलोद्घेद किया। हीगेस का मत है कि जब मौलिक तत्व पूर्णतया प्रजात है तो उसकी उन्मत्ता हमारे लिए कुछ है ही नहीं। उसके सम्बन्ध में कल्पना करना भी व्यर्थ है। इसके प्रतिरिक्त, यह चर्क प्रस्तुत करना कि वह सर्वथा प्रजात है, नितास्त प्रान्त ही नहीं, अधिक तर्कसंगत भी नहीं है, क्योंकि इतना तो हमें बोध है ही कि वह सर्वथा प्रजात है और इसके सम्बन्ध में हमें इतना बोध है उसे हम प्रजात नहीं कह सकते। इस प्रकार हीगेस की दृष्टि में बुद्धि द्वारा सभी कुछ जाना जा सकता है।

हीगेस का कथन है कि इस बड़ वेतन की विस्व के मूख में जो तत्व या बस्तु है वह विस्वमा (Universal Spirit or reason) है। विस्वमा अपनी धार्मिक प्रेरणा द्वारा माना रूपों और श्रेणियों में क्रमशः विकसित होता हुआ अपने मूल रूप में सीट जाता है। यही दृष्टि का रूप निरन्तर चलता रहता है जो विस्वमा का एक खेस है। विस्वमा के इस विकास में अनेक सीढ़ियाँ हैं, जिनमें कुछ आन्तगत या विचार-जगत् की (Subjective) हैं, तो कुछ बस्तुगत या हरय-जगत् की (Objective)। उदाहरणार्थ, धार्मिक धार्मिक के अनुसार प्रमुख बस्तु एक सेखनी है, क्योंकि उसकी बनावट भेदे विभाग में सेखनी जियो है। भेदे विभाग का भी एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। किन्तु यह सेखनी और भेदे विभाग दोनों ही बस्तुगत धार्मिक के अनुसार एक

‘सर्वव्यापक-विचार-रूप’ (Universal idea of Universal mind) के ही प्रतिबिम्ब हैं। बलुपठ भावार्थवाद के अनुसार भेदे मस्तिष्क की कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं है।

हीबेन का धारणवाद बलुपठ भावार्थवाद है। बलुपठ भावार्थवाद के अनुसार मस्तिष्क और बस्तु बस्तु दोनों का संज्ञान ‘सर्व व्यापक विचार-रूप’ या विरवात्मा द्वारा होता है। यह विचार-रूप ही वास्तविक जगत् का प्रतिबिम्ब है और विषय विज्ञ में सहायारी है। ‘विरवात्मा’ या विचार-रूप विचार के दूसरे नाम हैं।

इस विकास क्रम में मनुष्य-मानि सर्वोच्च है क्योंकि ज्ञानमें वेदव्यवस्था का निवास है, किन्तु फिर भी विरवात्मा की अपेक्षा जीवात्मा विज्ञ स्तर पर है। जीवात्मा का भी उत्तरोत्तर विकास होता रहता है जो कि प्राकृतिक एवं वास्तविक दोनों प्रकार का है। जीवात्मा के वास्तविक विकास के विज्ञ-विज्ञ स्तरों के रूप में विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ हैं। इन सामाजिक संस्थाओं में राज्य की स्थिति सर्वोपरि है, क्योंकि यह इकाई संरक्षक तथा नियामक है। बिना राज्य के इकाई अस्तित्वहीन है। राज्य विरवात्मा का प्रतिबिम्ब है यद्यपि उसके विषयों का समान ध्येय की कक्षा चाहिए। इसी में बलुपठ यौत उसकी स्वतन्त्रता सम्बन्धित है।

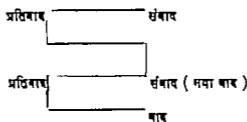
### द्वन्द्ववाद (Dialecticism)

इसके और बाँधी की का विचार था कि मानव जाति का इतिहास प्रगति की अपेक्षा अवकृति का है। संस्कृति और सभ्यता का नरमोत्कर्ष न हीकर प्रकृतगत हुआ है। किन्तु बोर्दा (Bodin) ही सर्वप्रथम विचारक था जिसने धारणा की कि मानव जाति का इतिहास प्रगति का इतिहास है। इस सम्बन्ध में बोर्दा राज्य विचारकों का एक प्रवर्तक बना। दो सताब्दी उपरान्त हीबेन ने बोर्दा के इस ऐतिहासिक सत्य का समर्थन दिया और कहा कि मानव इतिहास केवल कुछ बटमाओं का वर्तन ही नहीं है बल्कि प्रगति की प्रकृति की बाधा है। हीबेन इसका एंटीथेसिस माने इष्टतम विचार के आधार पर कहा है। उनका यह है कि यह विज्ञान-प्रगति द्वन्द्ववाद है। द्वन्द्ववाद का अर्थहीनता (dialectical) है। उनकी मूल्यवृत्ति ड्यूगो (dualism) से हुई है, जिसका अर्थ विचार-विपरीत करना या बाधपूर्ण करना है। सोफिस्ट (Sophists) और प्रीक सॉफिस्टों ने इसका प्रयोग किया था। उनके अनुसार द्वन्द्ववाद अथवा सत्य के सर्व-प्रदर्शन की या अन्य सम्बन्धों की एक प्रगति नहीं थी। इसका प्रयोग उनके द्वारा शास्त्रार्थ-प्रगति की बताने के लिए किया गया था जिसका प्राथमिक अर्थ

ब्रह्मा को उसके कथन के मात्र धारम-आदर्शनीय एवं अन्तर्विरोधों से परिपूर्ण है, बताने से था। इनका प्रयोग न्यायालय-कर्तों धार्मिक समाधी तथा दार्शनिक प्रदर्शनियों में किया जाता था। प्लेटो की दृष्टि में यह विचार-पद्धति की जिसके द्वारा विचारों के मातृतीय विरोध को परिमापा द्वारा निर्धारित किया जाता था। इन्द्रबाद एक प्रणाली थी जिसके द्वारा एक तार्किक पद्धति के बनावट को खोज की जाती थी। किन्तु हीमेस के लिए इन्द्रबाद केवल तार्किक विचारों के विकास की ही एक पद्धति नहीं थी प्रयुक्त यह कथन के समस्त विचारों को विकसित करने की एक प्रणाली थी। इसकी प्रत्येक सीढ़ी—बाद (Thesis) प्रतिबाद (Anti-Thesis) और संवाद (Synthesis) है। यह तीन त्रुसुताधी से निर्मित त्री (Triads) है।

जिस शक्ति का सर्वप्रथम संगठन हो जाता है वह अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करती है। इसी कार्यक्रम द्वारा विरह का संचालन होता है, जिसे हम 'बाद' (Thesis) की संज्ञा प्रदान करते हैं। (भारतीय राजनीति में १८८२—१९०२ तक उदारवादियों (Moderates) के कार्यक्रम को हम 'बाद' कह सकते हैं।) यह प्रस्तुत कार्यक्रम सभी व्यक्तियों के अनुकूल न हो, ऐसा नहीं हो सकता। धीरे धीरे विरोधी प्रवृत्तियाँ संगठित हो जाती हैं और अपना मूलतः कार्यक्रम प्रेष करती हैं। इस नवीन कार्यक्रम को 'प्रतिबाद' कहते हैं। [१९०२ से १९२० तक उग्रवादियों (Extremists) की नीति उदारवादियों की नीति का 'प्रतिबाद' स्वरूप थी]। कुछ काल तक, इन दोनों कार्यक्रमों में परस्पर संघर्ष चलता है। फलस्वरूप अन्ततोगत्वा एक नये विचार का जन्म होता है, जो दोनों की विधि-तापी का सामंजस्य कर और नवीनता का पुट दे एक नया कार्यक्रम प्रस्तुत करता है जिसे हम 'संवाद' (Synthesis) कहते हैं। (माँची जी ने नरम और परम दोनों दलों की नीतियों का समन्वय किया और उसमें नवीन सिद्धान्तों का समावेश कर एक नवीन विचारधारा जो 'माँचीवाद' के नाम से प्रसिद्ध है, प्रस्तुत की—यही संवाद है)। यह जन्म ब्रह्म नहीं हुआ जाता, अन्तु धागे चलकर यह संवाद ही 'बाद' का रूप ले लेता है। इस प्रकार बाद, प्रतिबाद और संवाद का जन्म प्रभाव रूप से चलता रहता है। यह विकास-क्रिया धागे बढ़ती, पीछे हटती और फिर धागे बढ़ती है। किन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं है कि जिस स्थान से हम चलते थे पुनः वहीं वापस या जायें—अन्ततः उच्चतर स्थान की ओर बढ़ते जाते हैं। ऐसा कि निम्नोक्ति विव प्रकट करता है —





यही मानव-व्यक्ति को परिचित करता है। इस क्रिया से इतिहास परिपूर्ण है।

हीरोस ने ही इस इन्द्रवाद का सर्वप्रथम प्रयोग नहीं किया है। ग्रीक युग में भी यह प्रयुक्त हुआ था। किन्तु हीरोस का इन्द्रवाद वास्तविक हीरोस की भाँति है, जब कि ग्रीक इन्द्रवाद वृत्तमय (Circle) था। हीरोस ने इस इन्द्रवादी क्रिया को समाज राज्य और दर्शन में लागू किया है। वास्तव में हीरोस का इन्द्रवाद राजनीति-दर्शन के लिए एक विशिष्ट ढंग है। वास्तव में हीरोस भी इस सम्बन्ध में हीरोस का श्रेणी है। उसने इसे इन्द्रमय भौतिकवाद का स्वरूप प्रदान किया।

यह इन्द्रवाद केवल विचार बतल ही सीमित नहीं है। प्रकृति में भी यह व्याप्त है। उदाहरणार्थ, गेहूँ का बाना जो खेत में बोया गया वह 'ढार' था। किन्तु यह बाना भूमि में सड़ कर गूँथ हो गया और उसके स्थान पर अनाज का एक छोटा सा पीया लगा—यह 'प्रतिवाद' हुआ। फिर यह पीया भी कुछ काम तक बढ़ा, फूला-फूला और फिर सूख गया—यह 'संवाद' हुआ। किन्तु यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि हमने गेहूँ का एक बाना बोया था किन्तु प्राप्त हमें ४० या ५० बाने हुए—यही अक्षय-व्यवस्था को इंगित करता है। सेबाहन ने लिखा है, 'इतिहास एक चक्कर मशीन है जो चलने के साथ ही ऊँची उठती है। इसकी प्राण-शक्ति विरोधाभास है।'<sup>1</sup>

## इन्द्रवाद और राज्य

इन्द्रवाद द्वारा हीरोस ने बताया है कि राज्य सामाजिक दृष्टि से मानव-व्यक्ति का अन्तर्गत है। सामाजिक संस्थाओं में सर्वप्रथम कुटुम्ब पाया है। कुटुम्ब की आचारधरिता स्पष्ट है। स्त्री में एकल की भावना सन्निहित है। व्यक्ति और सन्निहित एकता की भावना में आच्छाद करते हैं, क्योंकि उनके द्विज समान हैं

1 'History is a spiral that mounts as it turns, its driving force is Contradiction' (Sibine)

धीर परस्पर विरोधी नहीं। धन कुटुम्ब समानता के पुनोव सिद्धान्त पर प्राणा रित है। बाहे कुटुम्ब का एक व्यक्ति प्रथमा अधिक बोधिकोपार्जन करे, किन्तु उनमोम बन्धुओं का समी में समान बितरण होता है। किसी प्रकार की असमानता दृष्टिगोचर नहीं होती। कुटुम्ब त्याग, सहानुभूति सहनशीलता आदि सामाजिक गुणों की पाठशाळा है। बच्चे के प्रति विरोध रूप से ज्वरमें सहानुभूति प्रदर्शित की जाती है। उनके पाङ्गन-बोध पर विरोध ब्याप्त दिया जाता है। इसे हम 'बाद' कहते हैं। यह कौटुम्बिक स्थिति अस्थायी सिद्ध हुई क्योंकि कुटुम्ब का पोषक (Paternal) पाव मानव-प्रपति में अवरोधक सिद्ध हुआ। जीवनपर्यन्त परिवार पर निर्भरता ब्यक्तिगत विकास को असम्भव बना लेगी और अन्य शक्तियाँ सुप्त ही रह जायेंगी, धन सुखबन्धित समाज का उद्भव हुआ। इस सामाजिक प्रांगण में समी को संघर्ष करना पड़ता है और भय प्रस्थित को स्थायी बनाने के हेतु सतत प्रयास करना पड़ता है। यह संघर्ष-स्वामी है वहाँ ब्यक्ति परिष्करी, बिदेही धीर दूरदर्शी बनता है। निरन्तर जागरूकता ज्वकी स्थिति को सुदृढ़ कर देती है। इस प्रकार कुटुम्ब का सुखबन्धित समाज 'प्रतिवाद' हुआ। पर यह ब्यापार कब तक चल सकता है? निरन्तर संघर्ष 'बिसेही साथी ज्वकी मैस' का मार्ग प्रशस्त करता है और यह समाज ब्यक्तिगत विकास के साधन की अपेक्षा अवरोधक हो जाता है, क्योंकि संघर्ष में रचना कम और विनाश अधिक होता है। केवल शक्ति में विकास सम्भव है, धन राज्य की प्राप्ति हुई बिसेसे कि संघर्ष निवमित धीर घोमाबड हो सके। इस प्रकार राज्य कुटुम्ब धीर समाज का सामाज्य है। यह 'संवाद' हुआ। राज्य ब्यक्ति को पारस्विक संघर्ष का भी अवसर प्रदान करता है और साध-साध शक्तिहीनों की रक्षा भी करता है। 'इस प्रकार स्वातंत्र्य भावना से प्रेरित बाह्यता के संस्थात्मक विकास की जरम परिणति राज्य में होती है।' इसलिए राज्य 'विराज्या' या ईश्वर के प्रतिबिम्ब रुस्य है।

हीमेस ने राज्य के स्वरूप का इन्द्रबाबी विप्रण किया है। प्राचीन काल में स्वैच्छापाठी राज्य था—धन यह 'बाद' था। इसके विपरीत भोवर्तव का अवयव हुआ वा प्रतिवाद था। इन दोनों के संघर्ष से एक संबैधानिक राजतंत्र का अवयव हुआ जोकि 'संवाद' था। हीमेस की दृष्टि में यही सर्वोच्च षंभ है।

### हीमेस का राज्य सिद्धान्त

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विभिन्न दृशता ईश्वर के प्रतिनिधि या अवतार हैं। उन्हे ईश्वर के समकक्ष समझा जाता है और उनसे ज्ञासना से मोक्ष की प्राप्ति

होती है। हीरोन के मत में राज्य भी विश्वात्मा का प्रतिनिधि है। इसीलिए राज्य के विषयों के अनुसार नीयन-नापन करना ही वास्तविक स्वतंत्रता है। उसकी छात्रा का शिरोधार्य करने से मोक्ष मिल जाना सम्भव है। इतिहास में राज्य ही व्यक्ति है। जीवन्मरिच में जो स्वान व्यक्ति का है वही इतिहास में राज्य का है। राज्य स्वतंत्रता का मूर्तस्व है, क्योंकि वह विवेक का मूर्तस्व है (embodiment of reason)। यह एक विवेकशील पारणा की प्रतिपूर्ति है। इतिहास तर्क की शुद्ध विधि है, पूर्ण विचार-शक्ति है। इच्छा के इतिहास से इतिहास सार्वजनिक व्यवसा इच्छा का नीयन-नापन स्वस्व है।<sup>1</sup> अतः राज्य के विधान का पालन करना ही व्यक्ति की मर्यादा स्वतंत्रता है। राज्य व्यक्ति की इच्छा में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है उसी का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी अपनी एक इच्छा और प्रजा एक व्यक्तित्व है। व्यक्तियों की इच्छाओं और व्यक्तित्वों से यह सम्भव है और इस सम्भव स्वतंत्रता की प्राप्ति राज्य के एक सदस्य के रूप में ही हो सकती है। राज्य का स्वयं अपने में ही एक निर्धारित धर्म धर्म है (an absolute fixed and in itself) और वह सार्वभौम इच्छा (Universal will) तथा व्यक्तिगत इच्छा (individual will) की एकता (Unity) का प्रतीक है। इस प्रकार राज्य वास्तव्य का एक अन्तर्गत, अनन्त और परमात्मिक तत्व है। धारणा स्वतंत्रता काही है। स्वतंत्रता से अभिप्राय—'विश्वत्मा' के अनुसार कार्य करना है। राज्य भी इसी 'विश्वत्मा' का प्रतिनिधित्व करता है, अतः उसकी छात्रा पालन ही में सच्ची स्वतंत्रता है। राज्य नीतिवत्ता का सगु और संरक्षक है। उसकी दृष्टि में—जो बलु वैदिक है वही वैश्व नीतिक है और अन्य नहीं है। अतः किसी बलु का नीतिक या अनीतिक होना यह व्यक्ति पर निर्भर न होकर राज्य पर निर्भर करता है। राज्य हम नीतिक विचारों से सम्भव है और उसके कार्य इस नीतिवत्ता के अन्तर्गत नहीं होते।

जोड (C E M Joad) इस पारणा के कारण तीन निष्कर्षों पर पहुँचता है—( १ ) राज्य कभी भी प्रतिनिधित्व का से कार्य नहीं करता। एतदर्थ, जो पुलिस का सिपाही रॉय जगानेरासे की पकड़ता है, और जो दरमनामक पसे कमीशु में बैठता है, वे दोनों ही अर्थ में उस रॉय सपाने की साक्षात्क इच्छा (real will) को अभिव्यक्त करते हैं।<sup>1</sup>

1 "First, the state can never act unrepresentatively, thus the policeman who arrests the burglar, and the magistrate who

( २ ) जो सम्बन्ध व्यक्ति को समाज के अन्य व्यक्तियों और समस्त राज्य से सम्बन्ध रखता है, वह उसके व्यक्तित्व का एक अखण्ड अंग ( Integral part ) है। फलतः उसका प्राचरण केवल राज्य के सदस्य के रूप में ही सम्भव है न कि एक अकेले व्यक्ति के रूप में, और उसकी इच्छा विरुद्ध-रूपेण व्यक्तित्वत इच्छा नहीं हो सकती, इसमें राज्य की इच्छा का एक अंग अवश्य ही होगा।<sup>1</sup>

( ३ ) राज्य अपने समस्त नागरिकों की सामाजिक नैतिकता को अपने अन्तर्गत समेटे रहता है और उसका प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रकार राज्य के व्यक्तित्व में इसके समस्त नागरिकों का व्यक्तित्व मिला जाता है तथा वह उनसे घेरा है, उसी प्रकार राज्य में समूहित सामाजिक नैतिकता में व्यक्तियों के परस्पर नैतिक सम्बन्ध मिला जाते हैं।<sup>2</sup>

हीगेस के शब्दों में "राज्य एक आत्म-चेतन नैतिक तत्व है जो आत्मज्ञानी है तथा आत्म-विकासमय है, उसे यथार्थरूप से देना जाता है।"<sup>3</sup>

locks him up, are really expressing the burglar's real will to be arrested and locked him up, the policeman and magistrate being the executive officials of a state which necessarily represents and expresses the real will of the burglar who is a member of it"<sup>4</sup>

1 "The relation which binds the individual not only to every other individual in the community, but also to the state as a whole themselves from an integral part of the individual's personality" "It follows that he cannot act as an isolated individual but only as an integral part of the state and that he cannot will with a purely individual will but only with a part of the state's will."

2 "The state contains within itself and represents the social morality of all its citizens. Just as the personalities of all the individuals in the state are transcended by and merged in the personality of the state so the moral relations which each citizen has to each other citizens are merged in or transcended by the social morality which is rested in the state"

3 State as a "Self-Conscious ethical substance and a self-knowing and self-actualising individual"

इस प्रकार हीनेस राज्य को सर्वोच्च तथा रहस्यवादी बना देता है। उसने राज्य की अनेक रहस्यवादी परिभाषायें की हैं, "राज्य पृथ्वी पर ईश्वर का प्रयाण है (the march of God on earth) यह एक प्रथमज्ञानी एवं यथार्थवादी मानव है। यह प्रथमा का मूर्त रूप है (most perfect embodiment of spirit)। यह इस जगत् में देवी विचार तुल्य है। इस प्रकार हीनेस राज्य को अन्ततः सर्वोच्च पुनर्-पव प्रदान करता है और सर्वस्वात्मतवादी बनाता है। गार्नेर (Garner) के शब्दों में 'हीनेस की दृष्टि में राज्य वैश्विक राज्य है; यह कोई मूल नहीं कर सकता यह सर्व शक्तिमान, अन्तःप्रधान है तथा भारत हित में नागरिकों से प्रत्येक बलिदान का अपेक्षापत्र है।' 'बोसाकु' ने भी इसी तथ्य का समर्थन किया है—'विशाल जन-समाज में राज्य का कोई निश्चित कार्य नहीं है; परन्तु यह स्वयं सर्वोच्च समज्य है। समस्त मानवता का संरक्षक है, परन्तु स्वयं किसी संबन्धित नैतिक सत्ता का प्रात्तरिक घाम नहीं है।'

अन्ततोगत्या हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राज्य निरंकुश, सर्वसम्पन्न और अन्तःप्रधान है। यह पृथ्वी पर परमात्मा है। इतिहास में ईश्वर की ही प्रति इष्टिवाचर होती है और यह अपने अन्तःप्रधान सदस्यों के अन्तःप्रधानों को विमुक्त सदस्यों के स्वार्थ से विमुक्त कर समुद्र करता है। हीनेस ने कहा है, 'व्यक्ति की यह प्रकृति है कि वह अपना ही केन्द्र बन जाना चाहता है, राज्य उसे उच्च संदीर्घ परिधि से जीव कर सार्वभौमत्व के जीवन में से बाता है। प्रत्येक राज्य नास्तविक स्वाधीनता का मूर्तकार' तथा "स्वतंत्रता की यथार्थता" है। राज्य के नियमों के अनुसार जीवन-याग करना ही नास्तविक स्वतंत्रता है।

हीनेस ने सदावादी प्राकृतिक नियम और प्राकृतिक अधिकार का लक्षण दिया है। अधिकार राज्य के अन्तर्गत है। अनुवादी क्रिया से राज्य द्वारा उपलब्ध अधिकार ही संबन्ध है, यह अधिकार राज्य के ही अन्तर्गत है।

1 "The state, to Hegel, is a 'God state' incapable of wrong, infallible, omnipotent and entitled to every sacrifice which its interest may require of the individual" (Garner)

2 "The state has no definite function in a larger community but is itself the Supreme Community; the guardian of a whole world but not a factor within an organised moral world" (Bosanquet)

## राज्य का संगठन

राज्य के तीन ध्य है—विधान-मण्डल (Legislature), कार्यपालिका (Executive), तथा न्यायपालिका (Judiciary)। विधानमण्डल राज्य का सामान्यतः, कार्यपालिका राज्य का व्यक्तिगततः तथा न्यायपालिका राज्य का विधिगततः प्रतिबन्ध करती है। यद्यपि राज्य के ये तीन ध्य असंग-असंग हैं, किन्तु फिर भी, इनमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

हीनेस राज्य की प्रमुखता का स्वान राजा में ही संकित करता है। सम्राट् विहीन राज्य अपूर्ण है क्योंकि उसमें पूर्ण एकता सम्भव नहीं हो सकती। राजा एकता का सजीव प्रतीक है। वही शासन के विभिन्न ध्यों के ध्यों का साम-बन्धन प्रीर सम्पादन करता है। ये धर्म किसी-न किसी रूप में समा ध्यका समितियों की ध्यका व्यक्ति द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

हीनेस ने ध्यारण व्यवस्थापक-मण्डल की याचना रखी है। यह विधानमण्डल द्विसदनात्मक (bicameral) होना चाहिए। उच्च सदन कुसीनों का प्रतिनिधित्व करेगा धीर निम्न सदन समाज की ध्य सस्थाओं का। किन्तु विधान-मण्डल में संघठित ध्यों का ही प्रतिनिधित्व होना चाहिए, असंगठित ध्यों का नहीं। हीनेस का ध्यक मताधिकार में विश्वास नहीं है। उसने ध्यने ध्यारण समाज में ध्यों की प्रमुख स्थान दिया है। ये सम पूर्णतया राज्य के अन्तर्गत हैं। हीनेस का विश्वास है कि शासन का ध्य अनन्त द्वारा होना सम्भव नहीं है। इसे कोई प्रतिमा-सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है।

## युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीयता

हीनेस युद्ध को ध्यम्य एवं टर्कसंगत बताता है। युद्ध जन-वस्थापकारी है, क्योंकि उससे राष्ट्र-प्रेम धीर राष्ट्रियता की भावना बसवती जाती है। युद्ध जातीय ध्यन के लिए वही धर्म करता है जो युधान समुद्र के लिए करता है। युद्ध मानव-जाति की ध्यनी भद्र एवं पठितावस्था स विकासता है। यह व्यक्ति की स्वार्थी दृष्टि का ध्यन करता है। युद्ध राज्य की सर्व-उक्ति-सम्पन्नता की प्रतिबन्धक है। युद्ध ध्यप गृहयुद्धों की ध्यारणक कम होती है धीर शान्ति क ध्यारण एवमन्तक ध्यारण होते हैं। युद्ध राज्य का सदन बनाता है। हीनेस युद्ध का प्ररंभक नहीं है बरन् वह उसका ध्यनित्य सिद्ध करता है। उसकी दृष्टि में वह मानव-जाति के लिए परम ध्यारणक धीर हितकर है। हीनेस का राज्य की सर्वोन्नति में विश्वास है, अतः अन्तर्राष्ट्रीयता का कोई ध्यन ही नहीं

उठता। राज्य संस्थात्मक विकास का चरमोत्कर्ष है। इससे अधिक विविध और व्यापक कोई अन्य संस्था हो ही नहीं सकती। राज्य पूर्णरूपेण स्वतंत्र है और अन्तर्राष्ट्रीय संघियों से भी बाध्य नहीं है। यह अन्तर्राष्ट्रीय विधान को तभी तक धीमीकार करता है, जब तक कि उसके और अन्तर्राष्ट्रीय विधान के मध्य कोई संघर्ष नहीं है। जो राज्य "किसी समय में विश्वभारता के क्षेत्र का बाहुक होता है उसको परम अधिकार सत्ता के विरुद्ध अन्य जातियों की आत्माओं को विवादात्मक कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।'

## टाउनस हिल ग्रीन (T H Green)

( १८३६-१८८२ )

'ग्रीन' ब्रिटेन में आदर्शवाद का सर्वप्रथम दार्शनिक था। यह ओक्सफोर्ड (Oxford) विश्वविद्यालय में बर्लिनशास्त्र का प्रोफेसर था। उसने ग्रीक-बर्लिन और जर्मन आदर्शवादी बर्लिन का अध्ययन किया। ग्रीन ने ब्रिटेन में नवीन दर्शन की आधार रिसा रखी, था कि ऑक्सफोर्ड-महाविद्यालय (Oxford School) के नाम से प्रख्यात है। ग्रीन एकमात्र दार्शनिक ही नहीं था, उसकी अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियों में भी परिस्थिति थी। उसने अपने देश की उत्कृष्टतम समस्याओं में अग्रिम भाग लिया। यह जन-निर्वाचन-क्षेत्र से ऑक्सफोर्ड टाउन काउन्सिल (Oxford Town Council) के लिए चुना गया। ग्रीन कास्ट का अनुयायी था। उसका ग्रीन पर विशेष प्रभाव है। हीरोस की भाँति ग्रीन के आदर्शवाद में उद्यता नहीं है। आधुनिक दार्शनिक रिचि (G D Ritchi), ब्रेडले (F H Bradley) बोसक्वे (Bosanquet) लॉडसे (A D Lindsay) और बार्कर (E. Barker) प्रभृति ग्रीन से प्रेरणा लेते हैं।

### ग्रीन पर विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव

(१) ग्रीन प्लेटी और अस्तू के समान राजनीति-शास्त्र की आधार-शास्त्र का संघ मानता है। वह इन ग्रीन दार्शनिकों के समान ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी तथा राज्य की एक प्राकृतिक संस्था धर्मोद्धार करता है। यह उन्हीं की भाँति राज्य को सामाजिक एवं धारण्यक मानता है और व्यक्ति का जीवन समाज के जीवन का एक अंगिष्ठ अंग है—इसे स्वीकार करना है। किन्तु यह इन गुनली दार्शनिकों के इस विचार से पूर्ण अलग-थलग प्रकृत करता है कि सामाजिक और आत्मानुभूत जीवन केवल कुछ व्यक्तियों के लिए ही सम्भव है। ग्रीन उत्कर्षवादी है और उद्यता यह इह विरासत है कि नागरिक जीवन उस

सभी व्यक्तियों के लिए सम्भव है, जिनकी सामूहिक हित को मानना में थास्वा है। शीन जेटो की अपेक्षा धरस्तु से अधिक प्रभावित हुआ है। अस्तुतः वह अपने नीति-शास्त्र को धरस्तु के समान ही राजनीति से पुरा करता है और साथ साथ उम्हा यह भी बटस विरवास है कि राज्य का अपने व्यक्तिगत सदस्यों के लिए वह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह एक ऐसे हित को सम्भव बनाये जिससे सब व्यक्ति हित हो सके। शीन अपने नीतिशास्त्र में धाचरण का उद्देश्य 'भारतुतुप' या 'भारतुतुमिति' को बताता है और अपनी राजनीति में सार्वजनिक हित को ही परम हित (Common good as the Supreme good) कहता है।

( २ ) शीन को पूर्ण विरवास बस्तु के इस कथन में है कि "नैतिक स्वतन्त्रता मनुष्य का विशिष्ट और सर्वोत्तम गुण है।" यद्यपि शीन मानव की स्वतन्त्र इच्छा (Free will) को स्वीकार करता है, किन्तु यह स्वतन्त्र इच्छा अनेक कारणों से परिमित भी है। विद्युत् धर्य में स्वतन्त्रता से अभिप्राय व्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता से क्वाभि नहीं है। सच्चा सन्तोप ही स्वतन्त्र इच्छा का परिचायक है और तभी नैतिक स्वतन्त्रता सम्भव ही सकती है। सच्चा सन्तोप शक्ति अथवा परमात्म में सन्निहित है। सच्चा सन्तोप, मन की वह अन्वस्था है जिसमें मानव की सम्पूर्ण इच्छा का तर्पण हो चुका होता है। वह स्वाधीन होता है क्योंकि उसे धारम ज्ञान हो चुका होता है। उसी प्रकार उसे धारम-ज्ञान हो चुका होता है, जिस प्रकार एक विद्यालय पासनकर्ता को जो कि विद्यालय का रक्षिता भी है।

( ३ ) शीन दर्शन पर जर्मन धारदर्शाद का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। काएट के दर्शन में शीन के धाचरण शास्त्र और राफ्यशास्त्र को प्रभावित किया है। उसके दर्शन में काएट के समान धारदर्शाद और धारदर्शाद का सार्वजनिक मितता है। किन्तु शीन को हीनेस इतना प्रभावित नहीं कर सका, जितना काएट ने किया है। शीन हीनेस के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है कि राज्य स्वतन्त्रता की या अत्यन्तानुत्त स्वतन्त्रता की प्राप्ति (State is the realization of freedom or freedom objectified) है। उसके मतानुसार राज्य स्वतन्त्रता की अधिक से अधिक स्वीय प्रतिमा (living embodiment) बन सकता है, किन्तु उसको स्वतन्त्रता की पूर्ण प्राप्ति कहना, तर्कसंगत नहीं है। शीन हीनेस के इस कथन को भी स्वीकार नहीं करता कि 'जो धर्याय है वह तर्क-संगत है और जो तर्क-संगत है वह धर्याय है।' इसके साथ साथ वह प्रतिष्ठित नैतिकता

1 "The Actual is the Rational and the Rational is the Actual"



को भी मायमता नहीं देता है। इस प्रकार ग्रीन का हीगेन के व्यक्तिगत स्वतंत्रता (individual liberty), पूरा (whole) और अन्तरराष्ट्रीय नैतिकता (international liberty) आदि विचारों से स्वतः प्रभावित है किन्तु इन धारणाओं के सम्बन्ध में वह कार्ट के अधिक समापन का करता है। उसका कार्ट के समापन ही यह विश्वास है कि सविष्ठा (good will) में ही एकमात्र बरखाण है। किन्तु प्रतिनिधि शासन राजा की संविधान में स्थिति, और एण्ड की तर्क-संबन्धि (the rational of punishment) आदि विषयों में ग्रीन का दृष्टिकोण कार्ट और हीगेन दोनों से भिन्न है। जहाँ तक राज्य के शीर्ष की महत्ता (moral value of the majesty of the state) का सम्बन्ध है, ग्रीन बिना जनता की स्वतंत्रता की प्राप्ति बिना हीगेन के विचार का समर्थन करता है।

(४) ग्रीन क्रॉमवेल (Cromwell) का बंटा हुआ होने के कारण प्यूरिटन और नानकॉन्फॉर्मिस्ट (Nonconformist) विचारवादी है। उसका इनकी मुरि मुरि प्रशंसा की है और नैतिकता तथा स्वाधीनता को महत्व प्रदान किया है।

(५) ग्रीन के समय में मित का बड़ा प्रभाव था। उसकी 'स्वतंत्रता' और 'अर्थशास्त्र' बड़े लोकप्रिय ग्रन्थ समझे जाते थे। ग्रीन भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। ग्रीन ने मित की 'स्वतंत्रता' को आदर्शवादी रूप प्रदान किया। उसके दर्शन की नवीन व्यक्तिवाद और नवीन आदर्शवाद की संज्ञा प्रदान की गयी है।

### ग्रीन का राजनीतिक दर्शन

ई बार्कर (E. Barker) ने ग्रीन के राजनीतिक दर्शन के सम्बन्ध में लिखा है, "मानव चेतना स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता में अधिकार निहित है, अधिकारों के लिए राज्य की आवश्यकता है।" मानव-चेतना स्वतंत्रता चाहती है और स्वतंत्रता मानव जीवन के लिए परम आवश्यक है। यदि स्वतंत्रता न रहे तो मानव जीवन ही जाय। अतः स्वतंत्रता ही जीवन है। स्वतंत्रता के दो प्रकार हैं—(१) आन्तरिक और (२) बाह्य। आन्तरिक स्वतंत्रता से अभिप्राय है—शत्रुओं का दमन करना और उनके बर्धोपन नहीं होना। आन्तरिक स्वतंत्रता कुमन आचार-शास्त्र के अन्तर्गत आती है किन्तु—बाह्य स्वतंत्रता

1 'Human consciousness postulates liberty, liberty involves right rights demand the state' (E. Barker)

पूर्णतः राजनीतिक विषय है। इसका अर्थ ऐसी वास्तविक व्यवस्था की स्थापना से है जहाँ मानव अपने व्यक्तित्व का विकास बिना किसी अवरोध के कर सके। ऐसे वातावरण के निर्माण हेतु जो तत्त्व या शक्तें हैं, उन्हें ही अधिकार की संज्ञा प्रदान की गयी है। अधिकार जन्म व्यवस्थाओं या शक्तों का नाम है, जिनके अन्तर्गत स्वतंत्रता सुलभ हो सकती है। किन्तु अधिकार बिना सरक्षण के अर्थहीन है। अतः अधिकारों के संरक्षण हेतु राज्य का निर्माण होता है। राज्य का निर्माण मानव-चेतना की नैतिक प्राथम्यता को व्यक्त करता है। अतः राज्य एक नैतिक संस्था है।

### स्वतंत्रता का अर्थ

स्वतंत्रता के विचार के सम्बन्ध में वीन काण्ट का अनुयायी है।<sup>1</sup> वीन के मत में स्वतंत्रता से तात्पर्य न तो केवल अहस्तक्षेप की नीति से है और न पूर्ण स्वच्छन्दता से ही।<sup>2</sup> प्रथम के अनुसार, यह केवल नकारात्मक (negative) स्वतंत्रता होगी और दूसरे के अनुसार यह उच्चतम शक्ति को अर्थ देगी। अतः स्वतंत्रता के दो स्रष्टा हैं: (१) सकारात्मक, जिसमें व्यक्ति की वांछित कार्यों को करने की सुविधा उपलब्ध हो। (२) ऐसी स्वतन्त्रता जिसमें निर्धारित कामों को करने की सहूलियत हो और हमारे आत्मोन्नति में सहायक हो। ऐसे प्रामाणिक दृश्य जिनके द्वारा व्यक्ति की आत्मोन्नति में बाधा पड़ती हो, उसे हम स्वतंत्रता नहीं कह सकते। इस प्रकार व्यक्ति और राज्य के दृष्टियों में कोई पारस्परिक विरोध नहीं है। राज्य स्वतंत्रता का शोषक न हो कर अस्वतंत्रता को प्रोत्साहित कर सकता है। यह स्वतंत्रता केवल राज्य में ही सम्भव हो सकती है।

1 "Green begins from, always clings to and finally ends in the Kantian doctrine of the free moral will in virtue of which man always wills himself as an end" (E. Barker)

2 "Liberty is therefore no negative absence of restraint any more than beauty is the absence of ugliness. It is a positive power of doing or enjoying something worth doing or enjoying. Liberty, again, inhering as it does in the good will, and in that will only is not a power of pursuing any and every object, but the power of pursuing those objects which the good will presents to itself" (E. Barker)

प्रथम राज्य का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह, पारमोदयि के मार्ग में जो बाधाएँ हैं, उन्हें हटावे।

### अधिकार

अधिकार उन व्यवस्थाओं या शक्तियों को कहते हैं जिनके परमार्थ स्वतंत्रता सुलभ हो सके। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकास हेतु अपने प्रकार की सुविधाएँ चाहता है और साथ साथ में वह अन्य व्यक्तियों की इस उचित माँग का समर्थन भी करता है। इस प्रकार ये व्यक्तिगत माँगें समाज द्वारा स्वीकृत एवं संरक्षित होती हैं। हम सबको ही अधिकार संज्ञा प्रदान कर सकते हैं जिसके पीछे समाज की स्वोन्नति और संरक्षण हो। फलतः अधिकारों को तब तक से निमित्त है ( १ ) व्यक्ति द्वारा माँग और ( २ ) समाज द्वारा स्वीकृति। किन्तु अधिकारों की समाज द्वारा स्वीकृति के दो आधार हैं। प्रथम के अनुसार, सोचनेवाले कुछ अधिकारों के अतिरिक्त को मान ले किन्तु जिन्हें अभी तक राज्य या बिबि द्वारा स्वीकृति या संरक्षण न मिला हो। दोन के मध्य में वे प्राकृतिक अधिकार हैं। और जिनको राज्य या बिबि द्वारा स्वीकृति मिल चुकी है वे वैधानिक अधिकार हैं। किन्तु प्राकृतिक अधिकारों के सम्बन्ध में दोन की यह मान्यता नहीं है कि हाथ, कान और कड़ी ने प्राकृतिक वटा के सम्बन्ध में नहीं है। दोन और अनुभववादी बिचारकों के दृष्टिकोण में भिन्नता है। वे बिचारक प्राकृतिक अधिकारों की राज्य एवं समाज से सम्पूर्ण स्वतंत्र मानते हैं, जब कि दोन सामाजिक स्वोन्नति के बिना अधिकार का कोई अस्तित्व ही नहीं समझता। "समाज से पूर्व अधिकारों के अर्थ में प्राकृतिक अधिकारों की कल्पना एक अर्थात्काल कारण है, पर नैतिक अथवा धार्मिक अधिकारों के रूप में प्राकृतिक अधिकार साक्षुर्ण है।" दोन न उन्हें प्राकृतिक अधिकार नहीं कहा है ? क्योंकि उनको दृष्टि में न मानव-पारमोदयि के पारमपरक साधन और उनको नैतिक प्रकृति की अतिरिक्त माँग है। अधिकारों का आधार वैधानिकता ही नहीं है बल्कि यह आधार सार्वजनिक नैतिक चेतना (Common moral Consciousness) है। एक सुखा नैतिक व्यक्ति अधिकार प्राप्ति पर धन्य कल्प सार्वजनिक हित बना

1 "A right may be analysed into a claim of the individual upon society and a power conceded to him by society, but really the claim and concession are sides of one and the same common consciousness." (Lectures on principles of political obligation.)

सेता है। अतः अधिकार बिधि-संश्लेष न हो कर नैतिकता से सम्बद्ध है और उनके नियमन के लिए अन-स्वीकृति आवश्यक है।

## राज्य

राज्य की सृष्टि का आधार अधिकारों के संरक्षण की भावना है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज-हित में ही उसका हित-निहित है। किन्तु फिर भी, कुछ ऐसी नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ हैं जैसे—भोग पूणा स्वार्थ पादि, जो सशक्त प्राणियों में उद्दीप्त हो जाती हैं और समाज-हित की भावना धुंसि प्रसरित हो जाती है। ऐसे अवसरों पर व्यक्तियों के अधिकारों पर कोई ठुठारा पाल न हो इसकी उपादेयता सभी अनुभव करते हैं, अतः यह सभी की सामान्य इच्छा है कि कोई ऐसी मुख्यवस्तुतः सन्ध्या हो जो प्रत्येक अवसर पर अधिकारों की रक्षा कर सके। यह संस्था राज्य है।

चीन राज्य को शास्त्रवादी परम्परा के अनुसार नैतिक एवं अधिभार्य मानता है। उसके मत में राज्य एक नैतिक संस्था (ethical institution) है, जो कि व्यक्ति की धार्मिकता के लिए परम आवश्यक है। इसका परम धर्म अधिकारों की रक्षा करना है। यदि उचित समझे तो बलात् भी लागू कर सकता है। राज्य हमारे विरुद्ध कभी-कभी बल का भी प्रयोग करता है। किन्तु यह भी बल-प्रयोग करता है हमारी सब की इच्छा के कारण करता है, क्योंकि वही उद्देश्यहीन हमने इसकी स्थापना की है, अतः चीन की यह ऐतिहासिक उक्ति है कि "अन-स्वीकृति राज्य का आधार है बाहुबल नहीं (Will, not force is the basis of the state)।" १

सामान्य व्यक्तियों की यह भावना है कि राज्य का आधार शक्ति या बाहुबल है। शक्ति के आधार पर ही वह कर वसूल करता है तथा शक्ति स्थापित करता है। कुछ विचारकों ने स्पष्ट रूप से जो शक्ति का प्रतीक कहा है। देकेवली के शब्दों में, "राज्य केवल एक 'शक्ति साध्य' प्राणी है (The state is a power organism)"। स्पिनोसा ने भी कहा है, "राज्य श्रेष्ठतम प्राकृतिक शक्ति को प्रकट करता है। (The state expresses superior physical strength)।" स्पेन्सर के मतानुसार, 'राज्य एकमात्र वस्तु-शक्ति का

१ चीन की पुस्तक—"Lectures on the principles of political obligation" में एक अध्याय का शीर्षक है—'will, not force is the

प्रतीक है (The state was an expression of mere brute force.) । ऐसा प्रतीत होता है कि राज शक्ति को बुरे पर केन्द्रित है, किन्तु ग्रीक इसे प्रदूरदर्शिता समझता है। उसने कहा है, 'यह केवल सर्वोच्च प्रतिभार्य शक्ति ही नहीं, जो राज्य का निर्माण करती है, बल्कि सर्वोच्च प्रतिभार्य शक्ति का एक विशेष रूप से एक विशिष्ट सध्य की पूर्तिहेतु उपयोग है, जो बस्तुतः राज्य का निर्माण करती है। उदाहरणतः लिखित या व्यावहारिक कानून के प्रदुवार अधिकारों की रक्षा करना।'<sup>1</sup> इस प्रकार राज्य की उसके सम्पूर्ण के पारस्परिक सम्बन्ध शक्ति पर आधारित होने की अपेक्षा सामयिक अधिक है। राजनीतिक प्रतीकता के सिद्धान्त का उद्देश्य राज्य की नैतिक स्थिति को व्यक्त करना है। राज्य धार्य-बोध ( Self-consciousness ) की जाय है।

ग्रीक राज्य को एक नैतिक सङ्कल्प मानता है। राज्य 'नैतिक जीवन की वास्तविकताओं को रक्षित करता है। यह सामूहिक रूप में समाज को 'उपयोगिता स्थिरता तथा उच्चतम धार्य-ज्ञान प्रदान करता है।' यह अधिकारों का सङ्कलन-कर्ता और सामाजिक न्याय का संरक्षक है। 'अतः राजनीतिक प्रतीकता एक पूर्णतः कर्तव्य या धर्म ही जाता है। राज्य का सर्वोच्च धर्मव्य अधिकारों की व्यवस्था करना है। आवश्यकता पड़ने पर उसे यह बल-प्रयोग द्वारा भी करना होगा। राज्य के इस प्रयोग का प्रीतिरय इस कारण से है क्योंकि यह साम्य जनता की सामान्य इच्छा (General will) को प्रतिबन्धित करता है। सामान्य इच्छा से तात्पर्य सामान्य हित की सामान्य चेतना (Common consciousness of the common end) से है, अतः शक्ति नहीं जन-स्वीकृति (इच्छा) राज्य का आधार है।

ग्रीक का नैतिक धार्य, शक्ति की धार्योपति है। यदि मनुष्य को अपने व्यक्तित्व-निवास के पूर्ण धार्यर उपलब्ध हैं तो वह पूर्ण स्वतन्त्र कहा जायेगा। किन्तु यह विकास केवल समाज में रहकर ही सम्भव है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपने हित के साथ-साथ सामान्य-हित की भी इच्छा रखता है, समाज के नैतिक (Ritual) धार्यर को प्रशिक्षित करता है और वह सामान्य-हित ही वह

1 It is not supreme coercive power exercised in a certain way and for certain ends, that makes a state viz, exercised according to law, written or customary and for maintenance of rights."

नैतिक आदर्श है जो राज्य की नैतिक इच्छा ( Rational will ) है। यह राज्य का आधार बन-स्वीकृति है, बाहुबल नहीं। राजनैतिक प्रयोगता से वास्तव में नहीं भी वास्तव से नहीं है, क्योंकि व्यक्ति बनने-वाप ही एक सामान्य-हित को प्राप्त करने के लिए समाज की नियामक शक्ति ( Regulative power ) के समक्ष तब-तब-तब होता है। समाज सामान्य ध्येय की सामान्य बनना को व्यक्त करता है। यही सामान्य ध्येयता अधिकारों तथा सार्वभौम शक्ति का सृजन करती है। सामान्य हित की सामान्य बनना नैतिकता तथा राजनैतिक प्रयोगता ( Political obligation ) दोनों की जन्मदात्री है।

यदि राज्य का आधार बन-स्वीकृति है तो तीन महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं—

(१) यदि इच्छा राज्य का आधार है तो वास्तविक द्वारा प्रतिपादित सार्वभौम मूर्तिस्थित सर्वोच्च मानव का क्या होगा? क्योंकि इच्छा एक क्षणिक प्रयुक्त वस्तु है। धर्म का उत्तर है, राज्य का वास्तविक शासक ही सामान्य इच्छा का प्रतिनिधि है।

(२) अधिकार शासक निर्दोष होते हैं। यदि बन-स्वीकृति ही आधार है तो जनता किसे उन्हें सहन करती है? प्रश्न यह है कि ऐसे राज्य आदर्श राज्य की श्रेणी में नहीं आते। यदि जनता उनके आदेशों का पालन करती है तो उसकी योग्य प्रपत्ति शासक में सहमति अवस्थ है।

(३) क्या हमें अपनी इच्छा का बोध है? प्राप्त का उत्तर है कि प्रगतिशील जनताओं के देशों में जनता अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति करके न्यायिक तथा प्रतिनिधि विधान के अधिकार द्वारा किया करती है।

### राज्य का कार्य-क्षेत्र

राज्य एक नैतिक संस्था है। यह उसका मूल उद्देश्य प्राप्तिक्रम या आत्म-व्यक्ति ( Self-realization ) में सहायता प्रदान करता है। किन्तु यह नैतिकता या मानवता के उच्चा-सम्बन्धी कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता। इसके यह अभिप्राय नहीं है कि राज्य की सार्वभौम शक्ति परिमित है या इसके व्यक्ति-स्वार्थ को आधार पड़ता है। इसका प्रमाण कारण यह है कि राज्य उन धार्मिक एवं नैतिक-वृद्धि के कार्यों से सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि राज्य को प्रत्यक्ष कार्य अन्तर्गतता बलप्रयोग प्रपत्ति दण्ड द्वारा ही करना पड़ता है किन्तु नैतिक या धार्मिक उत्पत्ति बलप्रयोग द्वारा नहीं करनी जा

सकती। इसका पालन व्यक्ति स्वच्छा या अन्तःप्रेरणा से करता है। यदि राज्य नैतिकता की उत्पत्ति बलप्रयोग से करता है तो वह सच्ची नैतिकोन्नति नहीं है, यद्यपि एक आदर्श है। इससे यथिप्राप्त यह भी नहीं है कि राज्य नैतिकता, नैतिकता और शिक्षाचार सम्बन्धी कार्यों के प्रति उत्सुक रहे। उसका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह नैतिकता की उत्पत्ति में परीवारण से सहायता प्रदान करे और जो नैतिकोन्नति के मार्ग में अवरोध हैं उन्हें दूर करे। उसे सद्जीवन के मार्ग में जो बाधाएँ हैं उन्हें विधि एवं विज्ञान द्वारा हटाना चाहिए (To act as a hindrance to hindrances against good life)। अन्तःप्रेरणार्थ यदि एक व्यक्ति राजनीति है तो राज्य उसका मद्यान बसाना नहीं चुका सकता। राज्य मदिरासह बन्द करके परीवारण से उच्च नैतिकोन्नति में सहायता कर सकता है। जब शराब नहीं होगी तो सम्भव है उस इस दुर्व्यसन से उपा के लिए व्यक्ति मिले।

अधिकतर राजनीतिक विचारक "बाधाओं की बाधा के सिद्धान्त" को निगेटिव मानते हैं। किन्तु प्रोफेसर डीन इसे निगेटिव (negative) रूप में रखता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह क्रियात्मक (positive) है। यदि राज्य श्रेष्ठ जीवन को सम्भव बनाने के लिए अवरोधों को दूर करता है तो यह सकारात्मक कार्य है। राज्य की जन साधारण के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए विभिन्नताओं को धीमे-धीमे हटाने के लिए विस्तृत-स्तर को उन्नत करने के लिए बाधा-राज्यों की रचना करना होनी चाहिए और मध्य-मिडियम की कार्यान्विति हेतु मदिरासहों को बन्द करना होगा। डीन मन्त्रिपरिषद् का इतना विरोधी था कि उसे एक कोफ़ी की दुकान (Coffee house) सौंपनी पड़ी। इस प्रकार वह बेचन सिद्धान्तवादी ही नहीं था, यद्यपि प्रयोगवादी भी। डीन का "बाधाओं की बाधा का सिद्धान्त" अब आदर्शवाद और समाजवाद में एक मध्य-मार्ग (Mid way) उद्घोषित करता है।

### व्यक्ति को विरोध का अधिकार

यदि राज्य अपने कर्तव्य का पालन नहीं करे और ऐसा कार्य करे जिससे नैतिक जीवन-पालन में अशुभिका हो तो क्या ऐसी स्थिति में व्यक्ति राज्य के आदेशों को अस्वीकार कर सकता है? डीन का मत है कि ऐसी धराया में व्यक्ति को राज्य का विरोध (Right to resist) करने का पूर्ण अधिकार है। वह राज्य को आदर्श बंधा तो अक्षय मानता है किन्तु एक राज्य (as a state in itself) नहीं मानता। वह नैतिक जीवन की विधि का एक साधन मात्र है।

चीन व्यक्ति को राज्य का विरोध करने का अधिकार तो प्रथम देना है, किन्तु उसके इस अधिकार को उसने दो प्रतिबन्धों से परिमित कर दिया है—प्रथम के अनुसार, जब कभी राज्य द्वारा बिनायचरमक भ्रुटि दृष्टिगोचर हो तो उसे यह सोचना चाहिए कि क्या यह भ्रुटि इतनी महत्वपूर्ण एवं घम्भीर है कि इसके लिए राज्य का विरोध करके अन्य राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा सुविधाओं को खतरे में डालना सम्भव है। यदि इसका उत्तर सचे 'हाँ' में मिलता है तो नागरिक का कर्तव्य है कि वह राज्य की केवल उसी भ्रुटि का विरोध करे। चीन इस सम्बन्ध में सर्वव्यापक विरोध का अधिकार नहीं देता। व्यक्ति को राज्य के अन्य नियमों का स्वेच्छापूर्वक परिपालन करना चाहिए। यहाँ हम चीन और महारमा नाबी के विचारों में साम्य देखते हैं। नाबी जी ने भी ब्रिटिश सरकार का विरोध करते हुए अन्य कानूनों का पालन किया था। नाबी जी ब्रिटिश सत्ता के बोर विरोधी होते हुए भी शांति बन्वी थे। द्वितीय प्रतिबन्ध जो चीन ने लगाया है उसका तात्पर्य यह है कि विरोध करने के पूर्व नागरिक को यह सोचना चाहिए कि यह राज्य-सकल हित नागरिकों की दृष्टि में भी उतनी ही महत्वपूर्ण एवं उचित है जितनी कि मेरी में। यदि अन्य नागरिकों की दृष्टि में उसे यह उतनी महत्वपूर्ण नहीं मने तो सर्वप्रथम उसका यह कर्तव्य है कि वह शोकमत्त बनाये और जब शोकमत्त बन जाय तो उसे सक्रिय विरोध करना चाहिए। चीन ने जो प्रतिबन्ध समझे हैं वे ऐसे हैं जिनका पूर्ण होना प्रायः असम्भव है।

## युद्ध

चीन के मत में युद्ध एक नैतिक अपराध है। यह मनुष्य के स्वाधीन जीवन-मरण के अधिकार पर कुठाराघात करता है। यह सत्कारण्यवी जीवन का अधिकार तथा मार्गशीम समाज शीलों के निरालम्ब बिच्छ है। यह एक ऐसी बुराई है जो ब्याप्त बुराई को बुर करना चाहती है या फिर उसका उन्मूलन करना चाहती है। देश-रक्षा के लिए किया हुआ युद्ध भी न्यायसंगत एवं लक्ष्यसंगत नहीं है, क्योंकि यह एक अनुचित कार्य को रोकने के लिए दूसरे अनुचित कार्य करने का प्रयत्न है। अतः चीन अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का प्रबल समर्थक है।

युद्ध प्रामोचकों का मत है कि युद्ध से शीर्ष राष्ट्र प्रेम और त्याग प्राधि तद्गुणों को बल एवं प्रोत्साहन मिलता है। युद्ध के अभाव में ये मानव्य सुगुण ही रह जायेंगी। अतः मानव प्रगति के लिए युद्ध भी आवश्यक है। चीन का उत्तर इन प्रामोचकों का यह है कि बहुमूल्यक लोप इन उद्देश्यों से प्रेरित ही नहीं होते। उनका सदर्थों का आचार स्वार्थपरता ही होती है। देशभक्ति का स्वयं चीन



सकती। इसका पालन व्यक्ति स्वयंसेवा या मनु-प्रेरणा से करता है। यदि राज्य नैतिकता की उत्पत्ति बनप्रयोग से करता है तो वह सच्ची नैतिकोत्पत्ति नहीं है, बल्कि एक साइम्बर है। इसके प्रतिपक्ष यह भी नहीं है कि राज्य नैतिकता, बाधिका और शिष्टाचार सम्बन्धी कार्यों के प्रति उत्सव रहे। अथवा पूर्णतः कर्तव्य यह है कि वह नैतिकता की उत्पत्ति में पर्येयक से सहायता प्रदान करे और जो नैतिकोत्पत्ति के मार्ग में बाधक हैं उन्हें दूर करे। उसे सद्जीवन के मार्ग में भी बाधाएँ हैं उन्हें विधि एवं विधान द्वारा हटाना चाहिए (To act as a hindrance to hindrances against good life)। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति शराबी है तो राज्य उसका मद्यालय बसाना नहीं चुका सकता। राज्य मद्यपान बन्द करके पर्येयक में सच्ची नैतिकोत्पत्ति में सहायता कर सकता है। अब राज्य नहीं होंगी तो सम्भव है उस इस दुर्व्यसन से सदा के लिए मुक्ति मिले।

प्रसिद्ध सांख्यिक विचारक "बाबाओं की भाषा के सिद्धान्त" को निरपेक्षक बहते हैं। निःसन्देह चीन इसे निरपेक्षक (negative) रूप में रखता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि वह सकारण (positive) है। यदि राज्य श्रेष्ठ जीवन को सम्भव बनाने के लिए बाधकों को दूर करता है तो यह सकारण विचारक कार्य है। राज्य को जन साक्षात्कार के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए विनिष्काल्यों को खोलना होना शिष्टाचार-स्तर को उत्तम करने के लिए पाठ-शास्त्रों की स्थापना करनी होगी और मध्य-मिथेव की कार्यप्रणिति हेतु मद्यपानों को बन्द करना होगा। चीन मद्यपान का हटाना विरोधी था कि उसे एक कोषी की दुकान (Coffee house) खोलनी पड़ी। इस प्रकार वह केवल सिद्धान्तवादी ही नहीं था, बल्कि प्रयोगवादी भी। चीन का "बाबाओं की भाषा का सिद्धान्त" का आधारभूत और समाजवाद में एक मध्य-मार्ग (Mid way) उत्पन्न करता है।

### व्यक्ति को विरोध का अधिकार

यदि राज्य अपने कर्तव्य का पालन नहीं करे और ऐसा कार्य करे जिससे नैतिक जीवन-यापन में अनुविधा हो तो क्या ऐसी स्थिति में व्यक्ति राज्य के आदेशों की अज्ञेयता कर सकता है? चीन का मत है कि ऐसी अवस्था में व्यक्ति को राज्य का विरोध (Right to resist) करने का पूर्ण अधिकार है। वह राज्य को धारण संस्था तो अक्षय मानता है किन्तु एक साम्य (an end in itself) नहीं मानता। वह नैतिक जीवन की सिद्धि का एक साम्य मान है।

दीन व्यक्ति को राज्य का विरोध करने का अधिकार तो प्रदत्त देता है, किन्तु उसके इस अधिकार को उसने दो प्रतिबन्धों से परिमित कर दिया है—प्रथम के अनुसार, जब कभी राज्य द्वारा विधेयारम्भ भ्रुटि दृष्टिगोचर हो तो उसे यह धोषणा चाहिए कि क्या यह भ्रुटि इतनी महत्वपूर्ण एवं गम्भीर है कि इसके लिए राज्य का विरोध करके अन्य राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा सुविधाओं को बतारे में डालना सम्भव है। यदि इसका उत्तर उसे हाँ में मिलता है तो नागरिक का कर्तव्य है कि वह राज्य की केवल उन्ही भ्रुटि का विरोध करे। दीन इस सम्बन्ध में सर्वव्यापक विरोध का अधिकार नहीं देता। व्यक्ति को राज्य के अन्य नियमों का स्वेच्छानुपूर्वक परिपालन करना चाहिए। यहाँ हम दीन और महात्मा गांधी के विचारों में साम्य देखते हैं। गांधी जी ने भी ब्रिटिश सरकार का विरोध करते हुए अन्य कानूनों का पालन किया था। गांधी जी ब्रिटिश सत्ता के मोर विरोधी होते हुए भी धारण बन्दी थे। तृतीय प्रतिबन्ध जो दीन ने समायो है उसका तात्पर्य यह है कि विरोध करने के पूर्व नागरिक को यह धोषणा चाहिए कि यह राज्य-प्रवृत्ता दूसरे नागरिकों की दृष्टि में भी उतनी ही महत्वपूर्ण एवं उचित है जितनी कि मेरी में। यदि अन्य नागरिकों की दृष्टि में उसे यह उतनी महत्वपूर्ण नहीं लगे तो सर्वप्रथम उसका यह कर्तव्य है कि वह लोकमत बनाने और जब लोकमत बन जाय तो उसे सक्रिय विरोध करना चाहिए। दीन ने जो प्रतिबन्ध समायो हैं वे ऐसे हैं जिनका पूर्ण होना प्रायः असम्भव है।

## युद्ध

दीन के मत में युद्ध एक नैतिक अपराध है। यह मनुष्य के स्वाधीन जीवन-यापन के अधिकार पर कुठारापात करता है। यह ससारव्यापी जीवन का अधिकार तथा धार्मिक समाज दोनों के निरालस विच्छेद है। यह एक ऐसी बुराई है जो व्याप्त बुराई को दूर करना चाहती है या फिर उसका अनुमूलन करना चाहती है। देश-रक्षा के लिए किया हुआ युद्ध भी स्वायत्तगत एवं तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि यह एक अनुचित कार्य को रोकने के लिए दूसरे अनुचित कार्य करने का प्रयत्न है। अतः दीन अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का प्रबल समर्थक है।

कुछ धार्मिकों का मत है कि युद्ध से शीघ्र, राष्ट्र प्रेम और त्याग आदि धर्मगुणों को बल एवं प्रोत्साहन मिलता है। युद्ध के अभाव में ये भावनाएँ सुप्त ही रह जायँगी। अतः मानव प्रगति के लिए युद्ध भी आवश्यक है। दीन का उत्तर इन धार्मिकों को यह है कि बहुसंख्यक लोग इन उद्देश्यों से प्रेरित ही नहीं होते। उनके सपनों का आधार स्वार्थरक्षा ही होती है। देशभक्ति वा स्वयं दीन

की माहुर करता है, किन्तु यदि देशभक्ति नैतिक शिविरो में परिलुप्त हो जाय या राष्ट्रीय के परदयन एवं विनाश में बहान जाय तो फिर राष्ट्र प्रेम का भीषण मही पड़ जाता। साम्प्रतिकता ही यह है कि देश-प्रेम धीरे-धीरे क्षीयमान में एकक्यता मही है। फिर राज्य की वृद्धि-वस्था में कुछ उच्चतर साम्प्रतिक कुछ मही रहता। स्वामी केमारी का रचना स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करता है कि मानव-जाति धनी राजनीतिक दृष्टि से सुसम्बन्धित मही है। जब राज्य का राजनीतिक भीषण सम्बन्धित ही जायया तब युद्ध की कोई जरूरत मही रहेगी धीरे-धीरे यह घुलास्वर रूप समझ जायगा।

### सुसम्बन्धित

दोन मनुष्य के व्यक्तित्व के लिए सम्बन्धित का होना प्राथमिक समझता है। प्रत्येक व्यक्ति की सम्बन्धित पैदा करने का पुरा अधिकार होना चाहिए। दोन का सम्बन्धित की सम्बन्धित में विश्वास मही है। किन्तु मही सम्बन्धित का केन्द्रीयकरण होता है, वह ऐसी स्थिति में राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन करता है। दोन धनी धारी प्रथा का इसी दृष्टि से विरोधी है। वह जर्मोदार की व्यक्तित्व सम्बन्धित की धर्मिक सम्बन्धित है, किन्तु पूर्णभीषण की धर्मिक सम्बन्धित को नैतिक मानता है। उसका विचार है कि जर्मोदार राष्ट्र के उत्पादन में सक्रिय भाग मही लेता। प्रत्येक धनीधारी-प्रथा पर नियन्त्रण होना चाहिए। उसकी धारण करण का के अनुसार एक ऐसा वर्ग जिसमें छोटे-छोटे मनु-स्वामी स्वयं अपनी भूमि जोड़ते हों होना चाहिए।

### ब्रेडले (F H Bradley)

(१८४६-१९०५)

ब्रेडले की राजनीतिक विचार-धारा अपनी रचना 'एथिकल स्टडीज' (Ethical Studies) के एक अध्याय 'मेरा स्थान धीरे-धीरे इसके कर्तव्य' (My station and its duties) में मिलती है। इसमें ब्रेडले ने अपने राज्य सम्बन्धित सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है ब्रेडले पर जीटो धीरे-धीरे शिपेल दोनों का प्रभाव पड़ा है। ब्रेडले के मत में मनुष्य का परिलुप्त विभा सम्राज के संक्षिप्त है। सम्राज ने उसे मानव रूप प्रदान किया है। प्रायः मनुष्य का जो सांस्कृतिक नैतिक एवं धार्मिक बराबर इत्यादि उभरत है उसका संघ सम्राज को ही है। "मनुष्य" जिसे हम एक व्यक्ति-मानव मही हैं वह मही मनुष्य है जो सम्राज के धारण धीरे-धीरे सम्राज के बल से बन जाता है, धीरे-धीरे विभिन्न सम्राज केवल धारा मही है धर्मिणु कुछ यथार्थ सरय है।" व्यक्ति सम्राज में जन्म लेता है। प्रत्येक

पग पर समाज उसे प्रभावित करता है। उसका प्रत्येक उच्छ्वास सामाजिकता से प्रोत् प्रोत् है। समाज ही उसका जीवन है और समाज ही उसकी मृत्युस्पर्शी है। प्रत्येक मनुष्य का समाज में एक स्थान होता है जो कि परिस्थितियों या उनके स्वतन्त्र चुनाव द्वारा निश्चित होता है। मत जब समाज में एक बार स्थान निश्चित हो जाय तो एक नागरिक होने के लिये तो सभी कर्तव्यों का स्वेच्छापूर्वक पालन करना चाहिए। व्यक्ति-विकास तभी सम्भव है जबकि हम समाज और राज्य-सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बनायें। इसी में समाज और व्यक्ति दोनों का कल्याण है। इसी से विरहवन्धुत्व की भावना भी बसकती होती है।

### बोसांक्वे ( B Bosanquet )

( १८४८-१९२३ )

हाबहाउस ( L. T. Hobhouse ) ने बोसांक्वे को हीमेल का "माधुनिकतम और सर्वाधिक निष्ठावान् व्याख्याकार" कहा है। निस्सन्देह वीम कास्ट का अनुयायी है और बोसांक्वे हीमेल का। बोसांक्वे ने जर्मनी के उच्च धार्मिकवाद को अपनाया। उसका प्रारम्भ रूसो और वीम से होता है और उसकी परिष्कृति हीमेल में हो जाती है।"

बोसांक्वे ऑक्सफोर्ड ( Oxford ) में नीतिशास्त्र का प्रोफ़सर था। उसने 'फिलोसॉफिकल थ्योरी ऑफ़ स्टेट' ( Philosophical Theory of State ) नामक राजनीतिक ग्रन्थ की रचना की। बोसांक्वे ने रूसो के 'सामान्य इच्छा' नामक सिद्धान्त को हीमेलवादी फु दी। 'सामान्य इच्छा' उसके सिद्धान्त का केन्द्रबिन्दु है।

#### सामान्य इच्छा

रूसो की 'सामान्य इच्छा' का विवेचन करते हुए बोसांक्वे ने व्यक्ति की दो प्रकार की इच्छाओं का संश्लेष किया है—प्रथम, स्वर्णी इच्छा ( Actual will ) और द्वितीय सामाजिक इच्छा ( Real will )। स्वर्णी इच्छा की व्यापारिता स्वार्थपरता है। उसका एकमात्र लक्ष्य निजी स्वार्थ है। यह अल्पिक और अल्पव्यय होता है। जीवन के समष्टित्व का ध्यान नहीं करती। यह अस्विकर, अनित्य और दुर्घ इच्छा है। यह अर्थात् और धार्मिक-विरोधिनी है। सामाजिक इच्छा व्यक्ति की सच्ची स्वाधीनता को व्यक्ति करती है। यह स्थायी और निःस्वार्थ इच्छा है। सामाजिक इच्छा समाज-हित का दृष्टि में रहती है और

विशेष पर आधारित है। यह कल्याणमूलक और जीवन के समष्टि रूप का ध्यान रखती है। सामाजिक इच्छा की अभिव्यक्ति और विकास समाज के समन्वय से होता है। यह बुद्धिसंगत और सार्वजनिक होती है।

जिन व्यक्तियों की मिला कर समाज बनता है उनकी 'सामाजिक इच्छाओं का पुरखे संकलन (Sum total) या संनठन अथवा सार्वजन्य ही सामान्य इच्छा है। बोसके के शब्दों में, 'समस्त समाज की इच्छा या सम्पूर्ण व्यक्तियों की इच्छा वहाँ तक उच्चका उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण हो।' राज्य सामान्य इच्छा का ही साकार स्वरूप है और इसी के द्वारा मंचालित होता है। इस प्रकार बोसके ने राज्य की इच्छा को 'सामान्य इच्छा' बतसाया है; और राज्य द्वारा शासित होने में हम 'सामान्य इच्छा' को जो कि हमारी सामाजिक इच्छा है, अभिव्यक्त करते हैं। नैतिक दृष्टि से कोई व्यक्ति तभी स्वतंत्र समन्वय प्राप्तगा जब कि वह अपनी सामाजिक इच्छा के अनुसार कार्य करता है। 'सामान्य इच्छा' राज्य में निहित है और राज्य द्वारा निर्मित कानून इसका प्रतिनिधित्व करते हैं। राज्य के कानूनों का पालन करने का अभिप्राय है कि हम अपनी सामाजिक इच्छा का पालन करते हैं जो कि सच्ची स्वतंत्रता है। एकत्र राज्य के निगमों के पालन करने से ही व्यक्ति की वास्तविक स्वतंत्रता सम्भव है। राज्य सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। अतः व्यक्ति को राज्य के आदेशों की अग्रहणता या विरोध व्यक्तित्व विचारों के आधार पर नहीं करना चाहिए। असो की मति बोसके ने भी 'सामान्य इच्छा' और सबके इच्छा (will of all) में अन्तर किया है। किन्तु बोसके ने असो के इस कथन से असहमति प्रकट की है कि राज्य की इच्छा जब बन, अथवा और रीति के विचार से सामान्य हो, तभी सामान्य हो सकती है। उसकी सम्मति में, प्रत्येक राज्य की इच्छा ही 'सामान्य इच्छा' है। असो के अनुसार सामान्य इच्छा का अर्थवत्तन केवल जनतन्त्र में ही सम्भव है, किन्तु बोसके की दृष्टि में प्रत्येक प्रकार का राज्य चाहे वह अधिनायक-शाही ही क्यों न हो, 'सामान्य इच्छा' को अभिव्यक्त करता है। एक अधिनायक की आज्ञा वास्तविक स्वतंत्रता का अधिभ्य सिद्ध करती है। इस प्रकार नागरिक को राज्यशाही की आज्ञा को शिरो-धार्य करना चाहिए और इसके परिपालन हेतु उन्हें विवश भी किया जा सकता है।

'The real will of the whole society as such; or the wills of all individuals in so far as they aim at the Common good

## राज्य

बोसकि राज्य को प्रतिभार्य और नैतिक संस्था मानना है किन्तु राज्य प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों की नैतिक उत्थति नहीं कर सकता। इसलिए राज्य का सर्वोपरि कर्तव्य व्यक्ति के आत्मोत्थान के मार्ग में जो बाधाएँ हों उन्हें दूर करना है।

राज्य सम्पूर्ण नैतिक व्यवस्था का संरक्षक है। वह नैतिक नियमों से उत्पन्न है। इनका प्रवर्धन एवं संरक्षण राज्य द्वारा ही होता है। वह "हमारे समस्त नैतिक संसार का संरक्षक है वह हमारे संगठित नैतिक संसार का एक तत्व नहीं है।" व्यक्तिगत नैतिकता और राष्ट्रीय नैतिकता में भिन्नता है। राज्य को हम गृह, मृत्यु-दण्ड, चोरी और छत-कपट के कारण अनैतिक नहीं कह सकते। उसके कार्यों का उसका अपना एक भावना है और उसकी अपनी एक दण्ड व्यवस्था है जो हस्तक्षेप-रहित है। वह व्यक्तिगत अनैतिकता का कभी भी बोधो नहीं हो सकता।

राज्य की अपनी इच्छा और अपना व्यक्तित्व है। इस कारण नागरिकों के प्रति उसका एक उत्तरदायित्व शान्ति-स्थापन और नागरिकों की रक्षा करना है। "वह नैतिक हितों का संरक्षक है और अपने कर्तव्यों के प्रति उसे निष्ठावान् होना ही चाहिए।" इस प्रकार गृह युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय विचार से राज्य पूर्ण नैतिकतावादी और निरंकुश है।

## आदर्शवाद की विशेषताएँ

( १ ) आदर्शवाद के अनुसार व्यक्ति स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है। समाज से निम्न उसकी कोई सत्ता नहीं है। समाज ही व्यक्ति के पूर्ण विकास हेतु आवश्यक साधनों को पृटाता है। समाज ही व्यक्ति का पूर्णत्व प्रदान करता है।

( २ ) राज्य एक नैतिक संस्था है जो कि व्यक्ति की आत्मोत्थति के लिए परम आवश्यक है। राज्य जो बल का प्रयोग करता है वह हमारी इच्छा की ही प्रतिब्यक्ति है।

( ३ ) राज्य आदर्शवादी परम्परा के अनुसार प्राकृतिक एवं प्रतिभार्य संस्था है और वह मानव-संस्थाओं का अन्तिम स्वरूप है। राज्य का अपना व्यक्तित्व और अपनी इच्छा है। राज्य सामान्य इच्छा का प्रतीक है।

( ४ ) ये आदर्शवादी राज्य को साम्य मानते हैं, किन्तु नरम आदर्शवादी इसे साधन मानते हैं।

( ५ ) आदर्शवादी स्वतन्त्रता को सकारात्मक मानते हैं न कि नकारात्मक । सकारात्मक से अभिप्राय अक्षरों की जगतत्व से है ।

( ६ ) आदर्शवादियों के अनुसार अधिकार और स्वतन्त्रता समाज में ही सम्भव है और राज्य इनका निर्माता तथा संरक्षक है । राज्य और व्यक्ति के अधिकारों में परस्पर समर्थ नहीं है ।

( ७ ) यह आदर्शवादियों के मतानुसार राज्य युद्ध के समय अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है ।

### आदर्शवादी सिद्धान्त की आलोचना

( १ ) आदर्शवाद व्यावहारिक है । यह जीवन की वास्तविकता से दूर, एक भाव सूरम ( abstract ) और व्याप्यात्मिक विचार है । व्यावहारिक दृष्टि कोश से यह कल्पना-प्रधान ही है । बुद्धिवाद इसकी आधार मिति है । विलियम जेम्स का यह कथन निरालम्ब सङ्गत है कि 'जिसे किस्से-दिह नामिक कहा जा सकता है विष्णु की बोध शक्तियों, सुखों और दुःखों के निरिच्छत सम्पर्क से निरालम्ब प्रलय रहता है । यह एक विशुद्ध बौद्धिक सिद्धान्त है ।'

आदर्शवाद एक अर्थहीन सिद्धांत है, क्योंकि यह हमारे जीवन के अनुकूल नहीं है और न इसको मूर्तकर प्रदान किया जा सकता है बल्कि अस्तित्व में नहीं है, 'आदर्श राज्य स्वर्ग में ही कदापि स्थापित हो सके, पृथ्वी पर वा वह नहीं गयी है ।'

( २ ) आदर्शवाद पूर्णतया हानिकारक भी है । यह आदर्श को अन्तर्गत करने की अपेक्षा अन्तर्गत को आदर्श में परिणत कर देता है । हीबेल और जेम्स इसके प्रबलत उदाहरण हैं । अस्तु ने पुसासी को आदर्श माना है, हीबेल ने युद्ध का धीरत्व विद्वि विद्या है और प्रीत ने व्यक्तिगत पूर्वो के स्वामित्व की नकारण की है । हाबडन ( Hobson ) यह कह कर आदर्शवाद पर अक्षरत आक्रमण करता है कि यह, ' कठिनायिता की एक नाम है ।'

( ३ ) आदर्शवादी विमुक्त विवेक ( Pure reason ) सामान्य इच्छा ( General will ) और स्वतन्त्र इच्छा ( Free will ) आदि क विचार विवेक में इतने दृढ़ गये हैं कि नैतिक मुद्दों की उन्होंने पूर्ण अवेद्या ही कर दी है ।

I Idealistic theory as "a rationalistic philosophy that indeed may call itself religious, but that keeps out of all definite touch with concrete facts and joys and sorrows"

उनका हक मत है कि नतिक मुबार भौतिक मुबार का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसी कारण सम्पत्ति का समुचित विवरण, व्यक्तियों के जीवन-स्तर की उन्नता धीर निर्धनता-उन्मूलन आदि का विरोध करते हैं। परन्तु ने कहा है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति में बाध न होकर मानव प्रकृति में बाध है।

( ४ ) आदर्शवादी सिद्धान्त विशेषतः राज्य-कार्य क्षेत्र में नकारात्मक दृष्टि कोसु को अपनता है। उसके पास कोई ऐसा साधन नहीं है जिसके द्वारा प्रत्यक्षरूप से मानव की भौतिक उन्नति हो सके। बीसाके ने तो इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया है, 'धर्म्यात्मिक उद्देश्यों की उन्नति करना कबस नम धीर अप्रत्यक्ष साधनों द्वारा हो सम्भव है।

( ५ ) बीसाके का कथन है कि आदर्शवादी सिद्धान्त धार्मिक संकुचित तथा कठोर है। बस्तुतः यह सिद्धान्त यूनाइटेड के नगर राज्यों ( City States ) के लिए ही उद्योगी सिद्ध हो सकता था जहाँ नगर धीर राज्यों के मध्य कोई मिश्रता नहीं थी। आज बेसी स्थिति नहीं है। उन परिवर्तित परिस्थितियों में राज्य धीर समाज के बीच स्पष्ट भेद है धीर न्यायो संबंधों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है।

( ६ ) जोर्ड धीर मैकमाइवर ( Mac Iver ) ने आदर्शवाद की आलोचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित कर्त प्रस्तुत किए हैं —

( १ ) आदर्शवादी राज्य धीर समाज को एकलपकता प्रदान करते हैं जो कि एक सम्धीर भूस है। समाज एक स्वामी बुद्धिमत् हो सकता है, किन्तु राज्य नहीं।

( २ ) व्यक्ति का पूर्ण विकास निस्संशेह राज्य बिना नहीं हो सकता, किन्तु इससे यह समिप्राय नहीं है कि यह सर्वशक्तिमान् है।

( ३ ) राज्य की रचना व्यक्तियों से प्रदरद होती है, किन्तु इससे यह सम्य निष्कलना कि राज्य एक व्यक्ति है, ऐसा नहीं है। यह उसी प्रकार एक व्यक्ति नहीं है, जिस प्रकार बुरों से निर्मित एक बाग कोई बुर नहीं है या जानवरों की बसी स्वयं जानवर नहीं हो पाती।

( ४ ) स्वार्थीरच्छा ( Actual will ) धीर सामाजिक इच्छा ( Real will ) का विमर् अरिड ( unbound ) धीर सम्भावहारिक है।

( ५ ) हाबशाउन ने आदर्शवाद को बट्ट आलोचना की है। उसन आदर्शवाद

I 'It is denounced as unbound in theory, Untrue to fact and liable to extend a dangerous sanction to actions of State' ( C E. \ Joud )



को निरंकुशता अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता और युद्ध का समर्थक होने के लिए बोली गयी है। इसके प्रतिरिक्त साम्यवाद और फीदीवाद ने हीरोस से प्रेरणा ली है।

उन्मुख आलोचनाओं के बावजूद, भारतीयारी विचारधारा अनेक दृष्टियों से बड़ी महत्वपूर्ण है। प्रथम यह एक प्रकार से जर्मोविना के विरुद्ध स्वातन्त्र्यमक प्रतिस्धिया है, जबकि जर्मोवितावाद का आधार विविष्ट मौरिक मुक्तवाद है जबकि भारतीयार गैरिक एवं उदारवादी की उपमन्य का अर्थ मानव के सम्मुख प्रस्तुत करता है। द्वितीय व्यक्तिवाद व्यक्ति को प्रधानता देता है और सामाजिक दृष्टियों के प्रति उपेक्षणीय दृष्टिकोण अपनाता है। यह अकारणमक स्वतंत्रता का प्रतिपादन करता है और राज्य-कार्य-क्षेत्र को परिमित कर देता है। इसके विरुद्ध भारतीयार ने राज्य को सामाजिक सामाजिक अभावकति का प्रतिफल बताया है और राज्य को एक अनिवार्य संस्था मानता है। यह अकारणमक स्वतंत्रता का अर्थन कर अकारणमक स्वतंत्रता का अधिकार सिद्ध करता है। भारतीयार राज्य के कार्य-क्षेत्र को परिमित कर देता है और जन-वस्थापकारी राज्य-सिद्धान्त का निरूपण करता है। तृतीय, भारतीयार ने राज्य राज्य और आधार राज्य में महान सम्बन्ध स्थापित किया है और अन्तिम यह राज्य तथा समाज के तात्पर्य (Organic unity) पर बल देता है। भारतीयारी व्यक्ति और समाज के मध्य शरीर और उसके अंगों के बीच अंतर ही सम्बन्ध मानते हैं। गार्नेर का मत है कि 'भारतीयार के विरुद्ध जो आलोचनाएँ की गयी हैं उसमें से अधिकतर के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे अनुचित, प्रतिरुचिकपूर्ण एवं इस सिद्धान्त के विरुद्ध विचार पर आधारित हैं।'<sup>1</sup>

1 "Much of the criticism which has been directed against idealistic theory is unfair, exaggerated and based on misconception of theory itself" (Garner)

## व्यक्तिवाद (Individualism)

राज्य का कार्य-क्षेत्र राजनीति का एक विधादात्मक प्रस्त है। राजनीतिक विचारकों ने इस सम्बन्ध में अपने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं जिन्होंने मित्र मित्र 'बाद' का रूप से लिया है। उनमें से व्यक्तिवाद भी है। व्यक्तिवादी विचारक व्यक्ति-स्वतंत्रता पर अधिक बल देते हैं और राज्य के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत ही परिमित कर देते हैं। उनकी विचारसरणी का एकमात्र सत्य व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना है। राज्य का ऐसे कार्यों का सम्पादन करना ही जो व्यक्ति की प्रगति में बाधक न हों। राज्य की कार्यवाही और व्यक्ति-स्वातंत्र्य में पारस्परिक विरोध है, क्योंकि राज्य का प्रत्येक कानून अनिवार्य है। उसका पालन स्वच्छ पर निर्भर नहीं करता। राज्य अपनी विधियों का बलात् पालन करता है। राज्य का कार्य-क्षेत्र जितना ही व्यापक एवं विराट होगा, व्यक्ति की स्वतंत्रता उतनी ही सीमित हो जायेगी। इस प्रकार राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। यह व्यक्ति-स्वातंत्र्य में एक जबरदस्त प्रारोह है। हिन्दु राज्य का अस्तित्व हमारे लिए उपयोगी ही नहीं परन्तु परम आवश्यक भी है क्योंकि समाज प्रथम व्यक्तियों से परिपूर्ण है। उसमें जोर शक्त और हठधारे भी हैं जो सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में, एक गुरु संस्था की आवश्यकता है जो इन विनाशकारी शक्तों को नियंत्रित कर सके, प्रत्येक प्रत्येक शक्ति व्यक्तियों का जीवन, उनकी सम्पत्ति और अधिकार संकट में है। ऐसी संस्था राज्य ही है जो अपनी शक्ति-व्यवस्था द्वारा ऐसे व्यक्तियों का नियंत्रित करती है। शान्त वातावरण में ही समाज प्रगति करता है और व्यक्ति की उन्नति और स्वतंत्रता सम्भव है। दक्षिण राज्य निस्सन्देह व्यक्ति-स्वातंत्र्य में प्रारोहक है, हिन्दु सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक भी है। यह एक बुद्धि होते हुए भी हमारे लिए आवश्यक है। इसी कारण व्यक्तिवादी राज्य को एक आवश्यक बुद्धि (Necessary evil) कहते हैं। ऐसी स्थिति में राज्य भी आवश्यक है और व्यक्ति-स्वतंत्रता भी। एकमात्र विकल्प यही है कि राज्य के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर लिया जाय, जिससे व्यक्ति-स्वातंत्र्य में कम-से-कम

इस्तझे हो सके। अतः व्यक्तिवादियों का विचार है कि राज्य को कम-से-कम बहुत आवश्यक कार्यों को ही करना चाहिए। फ्रीमन (Freeman) का कथन था कि 'सर्वोत्तम सरकार नहीं है जो न्यूनतम शासन करती है।' उसका तो यहाँ तक कहना था कि 'किसी समाज में किसी प्रकार की सरकार का होना मनुष्य की अपूर्णता का चिह्नक है। आदर्श सरकार नहीं है जिसका मनुष्यों पर कोई नियंत्रण न हो।'<sup>१</sup>

व्यक्तिवाद के अनुसार राज्य के तीन प्रमुख कार्य हैं—( १ ) बाह्य प्राक्रमण से देश की रक्षा ( २ ) आन्तरिक शान्ति एवं सुव्यवस्था ( ३ ) न्याय-व्यवस्था। इन तीन कार्यों के अतिरिक्त राज्य को अन्य कार्य जैसे स्कूल और बिजनेसलाय खोलना, रेल या डाक प्रबन्ध करना और अन्य आर्थिक एवं व्यावसायिक कार्यों को नहीं करना चाहिए। यदि राज्य आर्थिक एवं व्यावसायिक उन्नति हेतु कार्य करता है तो इससे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप होता है। स्वतन्त्रता से अभिप्राय है हस्तक्षेप का अभाव। अतः राज्य को 'मिनिमम गवर्नमेंट' ( Leastest State ) को अपनाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित स्वयं मनीमोति जानता है और वह स्वयं अपनी आवश्यकताओं का निर्वाहक है। जोन स्टुअर्ट मिल का कथन था कि 'अपने शरीर, मस्तिष्क और स्वयं अपने पर मनुष्य स्वतन्त्र कर से अधिकारी है।' इस प्रकार, राज्य को नागरिकों की उन्नति से अलग रहना चाहिए और उन कार्यों के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करना चाहिए, जो नागरिकों की सुरक्षा और विदेशी शत्रु से रक्षा करने के लिए आवश्यक हैं।

### १. व्यक्तिवाद का उदय

व्यक्तिवाद के उदय का इतिहास लम्बा है। इसकी जन्मस्थली पुर्बीकारी संघर्ष है। पुर्बीकारी काल से पूर्व यूरॉप में सामन्तशाही का बोलबाला था। इस काल में

1 "That government is the best which governs the least."

2 "The existence of government in any form is a sign of man's imperfection. The ideal form of government is no government at all (Freeman)"

3 "State should abstain from all solitude for the positive welfare of the citizens and ought not to proceed a step further than is necessary for their mutual security and protection against foreign enemies" (Humboldt)

सामन्त, पादरी और सम्राट् जन-जीवन के कर्तुधार थे। उनकी प्रसुता थी। प्रत्येक क्षेत्र में—धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन पर उनका एकाधिपत्य था। सबकुछ वे बन-प्रभु थे। इस युग में व्यापारी वर्ग धार्मिक शक्तिशाली हुआ। व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण उसने सामन्त-शाही की प्रतिनाशकशाही को चुनौती दी। जबतक व्यापारी सामन्त की भूमि में व्यापार करत थे, धन उनको कर देना पड़ता था और साथ-साथ सामन्तों द्वारा लगे प्रातबन्धों को भी मानना पड़ता था। किन्तु अब उसने इन नियमों को तोड़ना चाहा। फ्रान्स ईंग्लैण्ड में वुजी फ्रांस में छोटे-छोटे युद्धों तथा जर्मनी में सर्व निर्माण द्वारा सामन्तशाही के विरोध में अपनी प्रतिबिम्बाकारी भावना को व्यक्त किया। उसने पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की। वह नहीं चाहता था कि धार्मिक एवं व्यावसायिक कार्यों में सामन्ती समाज धनका राज्य किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप करे। इस प्रकार वह नकारात्मक स्वतन्त्रता (Negative liberty) का परम उपासक बना। नकारात्मक स्वतन्त्रता से अभिप्राय है, हस्तक्षेप का अभाव।

१६वीं और १७वीं शताब्दी में व्यापारी वर्ग ने राज्यविरोधी कार्यों में पर्याप्त भाग लिया। उसने धार्मिक सुधार आन्दोलन, फ्रांस के नौ यूह-युद्धों और १६४२ में राजा-विरोधी यूह-युद्ध (१६४२-४६) तथा १६८८ की रक्तहीन क्रांति आदि में प्रकाशम कन से सहायता दी तथा नेतृत्व किया। अस्तुत धार्मिक व्यक्तिवाद से राजनीतिक व्यक्तिवाद का जन्म हुआ। सुधार का सुधारवाद धार्मिक व्यक्तिवाद का जन्मदाता है और इसी धार्मिक व्यक्तिवाद ने राजनीतिक व्यक्तिवाद को, जिसने अनुबन्धवाद का रूप ग्रहण किया, जन्म दिया।

लॉक (Locke) को अनुबन्धवादी विचारक है, सन् १६८८ की रक्तहीन क्रांति का दार्शनिक था। वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अनुबन्ध प्रेमी तथा समर्थक था। उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति पर राज्याधिकार की माँग का अण्टम किया और उसके कर्तव्यों को परिमित कर दिया। इस प्रकार लॉक ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिपत्य सिद्ध कर वुजीवाद को सबस बनाया।

१७८६ की फ्राँसीसी राज्य क्रांति का मारा था—'स्वतन्त्रता, समाजता और बन्धुत्व।' किन्तु यह स्वतन्त्रता निर्बन्धों की अनेकानेक वुजीपतियों के लिए थी। अतः निर्बन्ध रूपक वर्ग ने इसमें साहसि थी, किन्तु स्वतन्त्रता का अनुबन्ध सम्पत्ति के स्वामियों के लिए था। इस क्रांति के दार्शनिक नेता भी ऐसा ही सोचते थे। वॉल्टेयर (Voltaire) की दृष्टि में जनसाधारण की कोई उपयोगिता ही नहीं है। जनसाधारण दुष्टों के झुण्ड के समान है। जनसाधारण का निर्बन्ध

१ + १ = ४ की अंकश्रृंखला (Arithmetical progression) से होती है। इस प्रकार अनसंख्या जीवन-मालम के सामानों की प्रयोग प्रथम अनुपात में हीम ही बहुत बढ़ जाती है। इसके रोकने का केवल एक ही साधन है और वह है, 'राज्य को अनसंख्या की वृद्धि के रोकने का प्रयास करना चाहिए।' ऐसा न करने पर प्रकृति अनसंख्या की वृद्धि को बनाए, कुछ महामारी प्रादि द्वारा रोकती। मास्वस के इस सिद्धान्त ने सर्वसाधन को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया।

### डेविड रिकार्डो (David Ricardo)

रिकार्डो का जन्म सन् १७७२ में हुआ। उसने 'दि प्रिन्सिपल्स ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी (The Principles of Political Economy) नामक पुस्तक लिखी, जो १८१७ में प्रकाशित हुई। रिकार्डो के विचारों का प्रभाव राजवर्ग पर भी पड़ा। रिकार्डो ने अपनी पुस्तक में कर सिद्धान्त (Law of Rent) का बड़ा उत्संघटित विश्लेषण किया है। उनका मत था कि भूमिकर का निर्धारण राज्य द्वारा नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह धाने प्राप ही स्थिर होता है। जिस प्रकार नैसर्गिक नियम अपरिवर्तनीय हैं वे वही एक समान और स्थायी होते हैं, उसी प्रकार भूमि कर का सिद्धान्त भी शाश्वत और स्थायी है। उसके कथनानुसार भूमि पर कर सदैव शीघ्र से अधिक होनावाली उपज पर लगा करता है। उदाहरणार्थ, 'य लैंड की उपज शीघ्र उपज है, किन्तु 'ब' लैंड की उपज उस शीघ्र उपज से अधिक होती है तो जो अतिरिक्त उपज है वह उस लैंड का कर होगा। यह नियम अपरिवर्तनीय है। राज्य को इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। रिकार्डो का यह सिद्धान्त भूमि-कर का सिद्धान्त कहलाया।

### हम्बोल्ट (Wilhelm Humboldt)

हम्बोल्ट का जन्म १७७६ में हुआ। वह प्रशासक विभागी था। उसकी प्रसिद्ध रचना उनकी मृत्यु के उपरान्त सन् १८३२ में प्रकाशित हुई। उसका कथन था कि राज्य को प्रजा के कार्यों में केवल उत्तम ही हस्तक्षेप करना चाहिए, बिलना कि उनकी पारलारिक शांति-स्थापन करने में सुधारस्था बनाये रखने में धीरे धीरे शासकों में रक्षा करने में आवश्यक होना राज्य व्यक्तियों को पुर्ण स्वतंत्र छोड़ दे। उन्ने उपयोग व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा प्रादि कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हम्बोल्ट का यह दृष्टिकोण था कि 'शासन को, बर्हा उच्च सम्पन्न हो सके कम-से-कम शासन-कार्य करना चाहिए। सबसे कम शासन

ही सर्वोत्तम शासन प्रणाली का चोटक है। उसका प्रथम कर्तव्य अपने राज्य के व्यक्तियों के ब्यक्तित्व को विकसित करना है।'

### हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer)

स्पेन्सर का जन्म सन् १८२० में हुआ। उसकी शिक्षा साधारण हुई। उसे किरकविद्यालय में पढ़ने का प्रयत्न नहीं मिला। स्पेन्सर की धर्मरचि दीवशात्र में प्रारम्भ से ही थी। उसे बचपन में कीड़े-मकोड़े पालने का शौक था। वह अपने चाचा रेबरेण्ड टामस स्पेन्सर से बड़ा प्रभावित हुआ। उन्हीं के प्रोत्साहन से उसने 'गॉल कनफर्मिस्ट' में १२ निबन्ध लिखे। स्पेन्सर की राजनीति में भी बिरोध रचि थी। उसने मताधिकार-सम्बन्धी प्राम्दोसर्गों में सक्रिय भाग लिया। वह सन् १८४१ में 'इकनामिस्ट' (Economist) नामक पत्र का उन-सम्पादक भी रहा। ब्रिटिश कान से स्पेन्सर को दिन विचारकों ने प्रभावित किया उनमें प्रमुख रेबरेण्ड टामस स्पेन्सर, मार्शल हाजमिन और कौमरे मारि हैं। स्पेन्सर ने निम्नलिखित पुस्तकें लिखीं:—

- (1) Proper Sphere of Government (1842)
- (2) Social Statics (1851)
- (3) Principles of Sociology (1898)
- (4) Man Versus State (1884)

✓ स्पेन्सर के मत में मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी और हृषित प्रकृति का है। राज्य की स्थापना का कारण उसकी यह कल्पित प्रकृति ही है। "राज्य का अस्तित्व मनुष्य के अमज्जात एवं परस्परगत अहंभाव और हृषित प्रकृति का फल है। जब यह राज्य उत्पन्न होने से अनेकालत अर्थव्यवस्था प्रसक्त है।" "राज्य हमारा रक्षाकर्मी है, अतिवृत्त प्रमाहमक है और सरकार एक अनेतिक संस्था है जो प्राम्दोसर्ग के द्वारा ही उत्पन्न होती है।" राज्य की उत्पत्ति मनुष्य के अनेतिक बार्धों पर निर्वन्धन करने तथा पारस्परिक आघात प्रत्याघात को रोकने के लिए हुई है। जब मानवसुमात्र पूर्ण नैतिक हा जायेगा तब राज्य की कोई आवश्यकता हो नहीं रहेगी। एक आदर्श समाज में राज्य की आवश्यकता यह ही नहीं जाती। राज्य एक नैतिक संस्था है और उसका कार्य-नेत्र 'नरायणमक नियन्त्रकता' (Negatively regulative) होना चाहिए। उसका पुनीत कर्तव्य न्याय करना और व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करना है। व्यक्ति

1 'State is an aggressor rather than protector and government is essentially immoral which is begotten of aggression and by aggression. (Spencer).

जिन कार्यों को सुचारु रूप से स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता है राज्य को अपने हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

स्पेक्टर आर्थिक क्षेत्र में राज्य द्वारा हस्तक्षेप का भी खोर विरोधी था। उसने राज्य द्वारा स्वास्थ्य-सुधार के लिए विधियों के निर्माण की भी निन्दा की। उसने स्पष्ट रूप से कहा कि राज्य को वाणिज्य व्यापार स्वास्थ्य टीका, शिक्षा, डाक-तार, मुद्रा और पंजीयन (Registration) आदि के सम्बन्ध में कानून नहीं बनाना चाहिए। शिक्षा का कार्य हजारों वर्षों से व्यक्तियों एवं सामिक संस्थाओं द्वारा होता रहा है। यद्यपि राज्य को यह कार्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि राज्य शिक्षाई व्यक्ति की सम्पत्ति का प्रपहरण करता है तो वह ऐसा करके लक्ष्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार अन्य सामाजिक संस्थाएँ अस्पताल खोलने, डाक कर बनाने का तथा अन्य कार्य सुचारु रूप से कर सकती हैं। राज्य को लोक-कल्याणकारी कार्य नहीं करने चाहिए। उसने तो यहाँ तक कहा कि विद्वित्त्वकों को साइसेस को राज्य द्वारा दिया जाता है, वह अनुचित है क्योंकि व्यक्ति इतना बुद्धिशीली एवं चतुर है कि वह यह जान सकता है कि कौन विद्वित्त्वक प्रच्छन्न है या झुठ। स्पेक्टर आर्थिक संस्थाओं को भी स्वतंत्र रखने के पक्ष में था। इसी आधार पर उसने मुद्राचक्रण (Currency) का भी विरोध किया। यह कार्य बैंक और आर्थिक संस्थाओं को करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मुद्राचक्रण सम्बन्धी कानून निर्माण से व्यक्तियों के नैतिक अधिकारों पर दुष्प्रभाव होता है, क्योंकि वस्तुओं के लेन-देन तथा विनिमय सम्बन्धी को व्यक्तियों के प्राकृतिक नियम हैं, उनमें हस्तक्षेप होता है। इस प्रकार लोक-कल्याणकारी कार्यों में राज्य को 'यद्भाष्यम्' नीति का प्रवर्तन करना चाहिए।

### जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill)

जिसे व्यक्तिवारी विचारवादी या सर्वश्रेष्ठ विचारक का। सम्पूर्ण वह कट्टर व्यक्तिवारी या प्रौर व्यक्तिवारी मकापरमक स्वतंत्रता का मुख्य विरोधक भी। व्यक्ति-स्वार्थ एवं व्यक्ति-विज्ञान हेतु उसने व्यक्तिवारी राज्य और 'यद्भाष्यम्' नीति (Laissez Faire) को आवश्यक बताया। मिल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (On Liberty) नामक पुस्तक में व्यक्तिवारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

### विचार, मापण और लेखन की व्यवस्था

मिल का विचार था कि व्यक्ति को विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता में मिस कर प्रवर्तन कोट कर विचार

व्यक्त करने की स्वतन्त्रता का भी समावेश है। यह स्वतन्त्रता आवश्यक इसलिए है जिससे कि मानव प्रगति हो सके। मानव प्रगति में ही समाज-प्रगति निहित है। इस अधिकार का उल्लंघन तभी होता है जबकि वह अन्य व्यक्तियों के इस प्रकार के अधिकारों पर कुछराधात करता हो। जिस में इस अधिकार का भीष्पिप निम्नलिखित तीन कारणों से बताया है—

(१) “किसी व्यक्ति के विचार धर्म सब लोगों के विचारों के विरुद्ध हैं। यदि वह व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करे और अन्य व्यक्ति उसकी विचारानि व्यक्ति में बाधा डालें तो वे उतना अन्याय करेंगे जितना कि वह एक व्यक्ति अन्य सब व्यक्तियों को प्रकट करने से रोक कर सकता है।” यदि एक युव की विचारधारा के विरुद्ध कोई एक व्यक्ति अपने विचार अभिव्यक्त करता है तो उस नई विचार-धारा का स्वागत होना चाहिए, क्योंकि स्वतन्त्रता के अभाव में यह नवीन विचारधारा समाज के समक्ष न आ सकेगी। इसके अतिरिक्त यह निरर्थक सम्भव हो सकता है कि पूर्ण प्रकृतित विचार-धारा अस्तित्व हो। जिस में अपने इस तरह के समर्पण में अत्यन्त और मुक्तता के उदाहरण प्रस्तुत किये। तत्कालीन विचारधारा से इन दोनों किशकों की विचार-धारा सर्वथा नवीन और विपरीत थी। इनकी विचारधारा अन्तिमारी थी जो तत्कालीन सत्ता-प्रभुओं को मान्य नहीं थी। अतः इनके विचारों का दमन ही नहीं किया गया अपितु इन विचारों को मृत्यु का भासिगन करना पड़ा। किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि मावी समाज के ये युव-युवक प्रणेता हुए। आज सम्म-जन्म की ये महा-नाट्याएँ घाटी हैं। इन्होंने इसी जन्म के अवतार और मुक्तता यूरोपीय दर्शनों के जनक हैं। इस प्रकार व्यक्ति को विचार-अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अत्यन्त-पण का एकमात्र साधन यही है और समाज की प्रगति तभी सम्भव है।

(२) राज्य के अनेक पहलू होते हैं। और ये पहलू अवरोधक की अपेक्षा सहायक सिद्ध होते हैं। किसी विचार की उपाता अथवा दमन इस अभाव पर करता कि इसमें अर्थार्थ नहीं है, निदान् अन्ति है और मानव-प्रगति के लिए हानिप्रद है। प्रत्येक विचार में कुछ-न-कुछ अर्थार्थ अवश्य होता है। अतः विचार-स्वातन्त्र्य तभी को होना चाहिए। आज भारत में अनेक राजनीतिक दल हैं। एक ही इस निश्चित अर्थ का धारा नहीं कर करता। अन्तिविषय यह है कि प्रत्येक दल की विचारधारा एवं कार्यक्रम में कुछ-न-कुछ अर्थार्थ है। एक निश्चित एवं पूर्ण अर्थ का धारण हमें सभी राजनीतिक दलों के समन्वयन



में ही हो सकता है और यह सामंजस्य तभी सम्भव है जबकि विचार एवं वाक्-स्वार्थम्य हो।

(३) कमी-कमी एक पुगीय विचारवाच धर्मविरास में परिणत हो जाती है। जब प्रचलित एवं प्रतिष्ठित विचारवाच के अनुयायी नवीन तर्कों एवं मान्यताओं को उपेक्षा करते हैं तो वह विचारवाच धर्मविरास का रूप से सेती है। धर्मविरास से समाज में गतिहीनता या जाती है। यत्र तर्क सत्यान्वेषण के लिए परम प्राकरयक है। इससे उरय ठोस होता है और ऊसका धीवित्त सिद्ध होता है। सत्व और असत्य का संघर्ष ही मानव-समाज की गतिशील बनता है; क्योंकि इससे पूर्ण सत्य का प्राप्ता होता है जो कि समाज की प्रेरक शक्ति है। मिस का मत था कि एक विचारवाच तभी जीवित रह सकती है जब कि ऊसका निरन्तर संघर्ष अन्य विचारवाचों से होता रहे। यदि ऐसा नहीं होगा तो वह धर्मविरास का रूप से बेगी और पड़वत् ही जायेगी। बल्युत व्यक्ति की सभी प्राप्ता तभी सम्भव है जबकि वह विचारवाच तर्कसंधत ही। इसी कारण मिस ने विचार एवं तर्क-स्वार्थम्य का प्रबल ला से समर्थन किया और "मोग्यतम के जीवित रहने के सिद्धान्त" ( The principle of survival of the fittest ) को विचार-वचन में लागू किया।

## ॥ कार्य की स्वतन्त्रता

मिस ने व्यक्ति के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया था—(१) अलग नियमक ( Self regarding ) और (२) पर-नियमक ( Other-regarding )। अथवा से अभिप्राय है कि जिनका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता हो और द्वितीय से धर्म है जिनका प्रभाव समाज पर पड़ता हो। मिस का कथन था कि जब तक कोई व्यक्ति ऐसे कार्य करता है जिनका प्रभाव केवल उसी पर पड़ता है तब तक राज्य या समाज को व्यक्ति के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ व्यक्ति को अपने मनोरंजन के लिए रेडियो रखने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। किन्तु यदि वह अपने हम धर्मकार का प्रयोग यानि कि १२ बजे रेडियो की ध्वनि को बहुत तेज करके बजाता है तो वह बल्युतः अपने इस धर्मकार का दुसरेपर करतार है, क्योंकि इससे सामाजिक अशांति बढ़ती है। राज्य ऐसे कार्य में हस्तक्षेप कर सकता है। इस प्रकार व्यक्ति के कार्यों के दो प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक होते हैं जिनके प्रति व्यक्ति का पूर्ण उत्तरदायित्व है। अपनी दोनों के प्रति जिम्मा होनी चाहिए।

मिस का कथन था कि कार्य-स्वातंत्र्य ( Freedom of action ) परिलक्षित और समाज-प्रगति के लिए बहुत आवश्यक है, क्योंकि (१) व्यक्तिगत अनुभव एवं परीक्षण द्वारा ही सभ्यता-सृष्टि होती है और उसकी पुष्टि भी सम्भव हो सकती है।

(२) व्यक्ति को सामाजिक परम्पराओं का दास नहीं होना चाहिए, क्योंकि इन परम्पराओं के कारण मानव की विचार-शक्ति कुण्ठित हो जाती है। वह प्रगति नहीं कर सकता। अतः व्यक्तित्व के विकास के लिए उस पर कोई सामाजिक रीति-रिवाजों का बन्धन नहीं होना चाहिए।

(३) मिस नवीन आविष्कारों तथा नवीन प्रेरक शक्तियों को भी प्रधानता देता था। उसका कथन था कि जो अमृतपूर्व प्रतिभावाले व्यक्ति हैं, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए जिससे समाज निरन्तर गतिशील रहे और प्रगति-पथ की ओर अग्रसर भी होता रहे।

### राज्य का कार्य-क्षेत्र

राज्य का यह पुनीत कर्तव्य है कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु उसे कार्य-सम्बन्धी पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करे। -राज्य को केवल तभी हस्तक्षेप अवकाश मिलना चाहिए जब कि—

(१) व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता के दुर्योग से अपने ही स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करे।

(२) समाज में घातक विस्तार या बाध आक्रमण की शक्ति हो।

(३) शान्ति की सुव्यवस्था में नागरिक के कार्य बाधक हों।

### मिस का 'यद्माव्यम् नीति' के पक्ष में तर्क

(१) व्यक्ति केवल उन्हीं कार्यों के करने में प्रतिबन्धित होता है जिनके द्वारा उसका व्यक्तिगत काम हाथा है। किन्तु सरकारी कर्मकारी सामाजिक कार्यों में कोई निजी आग्रह होने से रुक नहीं सकते। अतः राज्य को सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(२) जब व्यक्ति स्वयमेव कोई कार्य करता है तो उसका ज्ञान बढ़ता है और उसकी अनुभवशीलता ज्ञान को परिष्कृत बनाती है। अतः व्यक्ति को स्वयं कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।

(३) सभी कार्य राज्य द्वारा करने पर व्यक्ति उस पर निर्भर हो जाते हैं। जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तो वे उसी की ओर निर्भर रहते हैं। ऐसी

स्थिति में नानरिक्त घालनी एवं किर्करतब्यविमुक्त हो जाते हैं। पतत समाज की प्रगति संभव हो जाती है।

(४) राज्य की कार्य-सम्बन्धी व्यापकता से नीकरत्याही पल्पती है। नीकर शही सामाजिक प्रगति के लिए एक अवरहस्त संकरोम है। अतः राज्य को व्यक्ति-हित एवं समाजहित की दृष्टि से सामाजिक और धार्मिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

मिस्र का कथन था कि "मनुष्य के कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करने देने का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य की अल्पमरसा की प्रेरणा देना है। मानव जाति की धार्मिक प्रगति सभी सम्भव है जबकि हम प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करें जिन्हें वह अपने लिए हितकर समझता है। उन कार्यों को करने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए, जिनसे अल्प मनुष्यों का अहित होता हो और जिन्हें वह स्वयं अस्वीकार नहीं समझता हो।"

### ✓ व्यक्तिवाद की पुष्टि में तर्क

व्यक्तिवाद के विचारक तथा अल्प बुद्धिजीवी व्यक्तिवाद के समर्थन में निम्नलिखित तर्कों को प्रस्तुत करते हैं—

- ( १ ) धार्मिक
- ( २ ) धार्मिक
- ( ३ ) प्राणि-शास्त्रीय
- ( ४ ) ऐतिहासिक
- ( ५ ) व्यावहारिक

( १ ) धार्मिक—अर्थ शास्त्रोप व्यक्तिवादियों में प्रमुख प्रथम निम्न मास्बस, रिक्कार्डो और जॉन स्टुअर्ट मिल धार्मिक हैं। व्यक्तिवादी अर्थशास्त्र वा जन्म पक्ष में नीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा हुआ जो कि फिजियोक्रैट्स ( Physiocrats ) कहलाते। फिजियोक्रैट का अर्थ नीतिकवादी है। इस विचार धारा का विकास वाणिज्यवाद (Mercantilism) के प्रतिनिध्या-स्वरूप हुआ। फिजियोक्रैट वाणिज्य धार्मियों के बोरुतम विरोधी थे। अल्प वैश्यों की प्रवेसा कोष में इस विचारधारा का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। फिजियोक्रैट विचारधारा में अंकाय नीतिकतन ( Francois Quesnay ), जॉन डे गूर्ने ( Jean de Gournay ) नर्वीयर डी ला रेवियर ( Mercier de la Riviere ) जेक्स टर्गोट ( Jacques Turgot ) और द्युपोएट डी नेमूर ( Dupont de Nemours ) धार्मिक प्रमुख हैं। इस

स्विचियोकेट्स के विचारों को संश्लेष प्रदर्शात्मो एवम स्मिय, मास्पत रिफार्डों और स्टुमटै मिस ने विकसित किया ।

व्यक्तिवारी धर्मशास्त्रियों का कथन था कि प्राकृतिक नियमों के समान धर्मशास्त्र के भी निश्चित एवं अपरिवर्तनयोग्य नियम हैं । जिस प्रकार शरक के परबाल् शीष्म श्नु प्राठी है और राजि की समाप्ति पर प्रमात्त होता है और यह क्म निरन्तर बसता रहता है कोई परिवर्तन नहीं होता उसी प्रकार धर्मशास्त्र के नियम भी हैं । उनके अनुसार बीबन-संवादन से ही मानक-कस्मात्त सम्भव है । राज्य को इसमें किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि सबसे हानि होती है । ये धार्मिक नियम निम्नलिखित हैं—( १ ) निजो स्वार्थ का नियम ( Law of self interest )—इसका प्रतिपात्त एवम स्मिय था । इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने हानि-नाम को मत्तीमाति और अन्य मनुष्यों से अधिक अज्ञा सम्भत्ता है । अतः धार्मिक क्षेत्र में उसे पूर्णस्नेह स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए । वह अधिकतम सुख और लाभ के लिए प्रयास करेगा तभी "अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित" को समाज में सम्भव हो सकेगा । अतः राज्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्मनीति 'मद्माभ्यम् नीति' ही है ।

माँग और पूर्ति का नियम (Law of Demand and Supply)—इस नियम के अनुसार सभी वस्तुओं का मूल्य माँग और पूर्ति के अनुसार अपने मान ही निर्धारित हो जाता है । यदि कोई वस्तु मात्रा में कम है, किन्तु उसकी माँग अधिक है तो उस वस्तु का मूल्य बढ़ जाएगा । इसके विपरीत यदि कोई वस्तु अधिक मात्रा में उपलब्ध है और उसकी माँग कम है तो उसका मूल्य घट जाएगा ।

इस प्रकार बाजार में वस्तुओं के मूल्यों में जो उतार-चढ़ाव होता रहता है वह माँग और पूर्ति के ही कारण होता है । वस्तु के मूल्य के समान ही बेटन या मजदूरी भी अपने मान माँग और पूर्ति के नियम द्वारा निर्धारित होती रहती है । यह म ग और पूर्ति का नियम अपरिवर्तनयोग्य है । राज्य को किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । उसे मूल्य और बेटन निर्धारित नहीं करना चाहिए । उसके हस्तक्षेप से माँग, पूर्ति और मूल्य के सन्तुलन में अस्व-व्यवस्था भा जाएगी ।

( १ ) स्वतन्त्र प्रतियोगिता का नियम—इसके अनुसार व्यक्ति अपने हानि-नाम को मत्तीमाति सम्भत्ता है । वह अपने अपनी वस्तु का महँगी बेच या सस्ती वह अन्य व्यक्तियों से सस्ती वस्तुएँ खरीदे और उन्हें बाजार में महँगी बेच, यह सब उसका अपना हितकोट है । किन्तु उनका साम होगा वह बसा

ही करेगा। यदि इससे किसी की हानि होती है तो वह उसके लिए उत्तरदायी नहीं है। घट राज्य को उद्योगों के साथ प्रतियोगिता करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। राज्य को किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं लगाया चाहिए, क्योंकि वह परामर्श बंध है और उद्योग वाले हानि-नाश का समुचित ज्ञान है। राज्य का हस्तक्षेप अनुचित एवं अवाश्यक है। बस्तुतः स्वतन्त्र प्रतियोगिता व्यक्तिवादी धर्मशास्त्र का मेरुबिंदु (Key-stone) है।

(४) बेतन का नियम—धर्मियों के बेतन भी प्राकृतिक धार्मिक नियमों के अनुसार ही निर्धारित होते हैं। बस्तु के मुख्य के समान ही बेतन या मजदूरी भी अपने साथ मान और पूर्ति के नियम द्वारा निर्धारित होती रहती है। यदि एक मजदूर काम के लिए दो पूर्वापत्तियों के पास जाता है तो मजदूरी घटेगी। इसके विरुद्ध यदि दो पूर्वापत्ति एक मजदूर से काम करने के लिए कहते हैं तो एही दशा में मजदूरी बढ़ जायेगी। इस प्रकार राज्य को बेतन निर्धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आय (National Income) का एक निश्चित भाग बेतन या मजदूरी के लिए निर्धारित रहता है, जिसे 'बेतन-निधि' (wage fund) कहते हैं। यदि मजदूरों की संख्या ग्लूतम होती तो उन्हें अधिकतम काम होया और यदि वे अधिक संख्या में होते तो उन्हें हानि होती। अतः यदि मजदूर अधिकतम काम चाहता है तो उसके समस्त एक ही कर्ण है और वह है सन्तति-नियम। इस प्रकार राज्य को प्रत्येक इच्छित से 'मद्गाम्य नीति' को अज्ञाना चाहिए। राज्य का हस्तक्षेप अवाश्यक और हानिप्रद है।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय का नियम—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी स्वतन्त्र प्रतियोगिता सम्भव हो सके, इसके लिए समुक्त व्यापार-नीति (Free Trade Policy) आवश्यक है। राज्य को आयात निषेध पर कोई कर नहीं लगाया चाहिए। निर्यात आयात निषेध पर उचित कर लगा कर स्वदेशी व्यापार को प्रोत्साहन एवं संरक्षण दिया जा सकता है, किन्तु संरक्षण नीति और समुक्त व्यापार नीति में पारस्परिक विरोध है। इंग्लैण्ड में समुक्त व्यापार-सम्बन्धी आन्दोलन भी बने और अन्ततः अन्ततः १८४६ में अन्त-कर हटा दिया गया तो इंग्लैण्ड में समुक्त व्यापार का भीगलेश हुआ। इससे ब्रिटिश पूर्वापत्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी लाभ हुआ। भारत में भी ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत 'समुक्त व्यापार नीति' को प्रस्तावित किया जिसके कारण अनेक बस्तुओं का भारत के बाजारों पर एकाधिकार हो गया। बस्तुतः ब्रिटिश व्यक्तिवादी धर्मशास्त्रियों का

उत्सुक व्यापार नीति का समर्थन उनकी स्वार्थी भावना को व्यक्त करता है। इस नीति के अन्तर्गत से बिना और उसके पूर्वीपति पर्याप्त रूप से सामान्य हो गए।

(६) जनसंख्या का नियम—मान्यता का विरवाह है कि राज्य के हस्तक्षेप अथवा विधि निर्माण से सर्वसाधारण के आर्थिक-वैयर्थ्य का मिटाना या उसके जीवन-स्तर को उन्नत करना कदापि सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि जनसंख्या की वृद्धि का प्राकृतिक नियम इसके सर्वथा विपरीत है। जीवन-यापन के साधनों में वृद्धि अंक रीति (Arithmetical Progression) द्वारा होती है जबकि जन-संख्या में वृद्धि ज्यामितिक प्रगति (Geometrical Progression) द्वारा होती है। इस सम्बन्ध में पहिले प्रकार का ज्ञान या बुद्धि है।

उत्सुक विवेचन का निष्कर्ष यही है कि राज्य को आर्थिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए और राज्य को उद्योग व्यापार, श्रम आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई निरन्तर नहीं लगाना चाहिए। माँग और पूर्ति के नियमों के अनुसार आर्थिक व्यवस्था अपने आप से संचालित होती रहेगी।

(९) दार्शनिक—दार्शनिक दृष्टि से प्रत्येक मानव अपना अलग व्यक्तित्व और अपनी अलग विधि-रूढ़ि रखता है। राज्य का यह पुनोत्कर्ष है कि वह मानव को ऐसे प्रसन्न करे जिससे कि वह अपने व्यक्तित्व को अपनी विधि-रूढ़ियों के साथ निरन्तर कर सके। यह विकास तभी सम्भव हो सकता है जबकि राज्य द्वारा कोई निरन्तर या प्रतिबन्ध न हो। उसे विचार एवं प्रतियोगिता-सम्बन्धी पूर्ण स्वतन्त्रता हो और प्रत्येक सम्भव सुविधा उपलब्ध हो। कान्ट, फिशर, ह्यूम्स और मिस गा इस तर्क की पुष्टि करते हैं। कान्ट का विरवाह था कि व्यक्ति-स्वार्थी नैतिक दृष्टि से उचित है और नैतिक कर्मों के लिए यह आवश्यक है। ह्यूम्स के शब्दों में 'मानव का अन्तःकरण या वह सदैव जिसको विचार उसके लिए स्थिर करता है, अपनी समस्त शक्तियों का पूर्ण एवं सार्वजनिक विवाह है।' 1 जॉन स्टुअर्ट मिस ने भी व्यक्ति-स्वार्थी का नैतिक दृष्टि से औचित्य सिद्ध किया था। अपनी पुस्तक लिबर्टी (Liberty) में उन्होंने व्यक्ति-स्वार्थी के दो पक्ष बतलाये थे—(१) विचार स्वार्थी (Freedom of Thought) का

1 "The true end of man or that which is prescribed by the immutable dictates of reason is the highest and most harmonious development of his power to a complete and consistent whole" (Humboldt)

( २ ) कार्य-स्वातंत्र्य ( Freedom of Action ) । विचार ( १ ) एवं, ( २ ) धर्म एवं धीर ( ३ ) निरालस प्रसन्न हो सकते हैं । इन तीनों प्रकार के विचारों की व्यक्तिगतता की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए, क्योंकि इनसे काम ही होता है । कार्य भी दो प्रकार के होते हैं—( १ ) आत्म-विषयक ( Self-regarding ) धीर ( २ ) पर-विषयक ( Other regarding ) । मिस का कथन था कि आत्म-विषयक कार्यों में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए । वहाँ तक पर-विषयक कार्यों की स्वतंत्रता का सम्बन्ध है व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती, क्योंकि पर-विषयक कार्य सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं । इसकी स्वतंत्रता से सामाजिक हानि बर्बरित हो जायेगा । व्यक्ति को पर-विषयक कार्यों के सम्पादन में केवल उतनी ही स्वतंत्रता दी जा सकती है जहाँ तक उनके कार्यों से सम्बन्धित व्यक्तियों की बेसी ही स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं पड़े । इस प्रकार राज्य को व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार नहीं है जब कि आम व्यक्तियों की बेसी ही स्वतंत्रता पर बाधा होता हो । मिस का विचार था कि आधुनिकता से अधिक प्रतिबन्धों के कारण केवल स्वतंत्रता ही सीमित नहीं होती, अपितु "अससे राष्ट्रीय एकता बढ़ती है, जन-कार्य तथा में धीर आने-सर्विक रूप में होते हैं धीर समस्त समाज मृत समस्त बन जाता है ।"

( ३ ) प्राणिशास्त्रीय — व्यक्तिवाद के समर्थकों का यह कथन यह था कि इस सिद्धान्त की आधार शिखा स्वस्थ वैज्ञानिक है, धीर यह विकासवादी सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है । यह एक ऐसी पद्धति है जिससे प्राणिक संघर्ष में योग्यतम की विजय हो सकेगी ।

हर्बर्ट स्पेंसर जैसे प्राणिशास्त्रियों ने भी विकासवादी सिद्धान्त ( Theory of Evolution ) का प्रचार किया था । विकास की प्रक्रिया जीवों के पारस्परिक जीवन-संघर्ष ( Struggle for Existence ) द्वारा संघासित होती है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष होता रहता है । इस संघर्ष में केवल वे ही जीवित रहते हैं, जो शक्तिशाली हैं धीर कमजोर मृत हो जाते हैं । वेद-वीधे धीर जीव-जन्तुओं में संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । जिन पक्षों में अधिक जीवन शक्ति है वे हरे धरे विचार्य देते हैं धीर जिनमें संघर्ष करने की क्षमता कमवा शक्ति नहीं है वे मृत जाते हैं । जीव-जन्तुओं का जीवन भी इसी संघर्ष द्वारा संघासित होता है । विकासवादी की इन प्रक्रिया में अशक्त जन्तुओं का विनाश होता रहा है धीर उनका स्थान सबल जन्तु लेते हैं । ऐसा क्यों होता है ? इसका मूल कारण

प्रकृति का नियम है। इस प्राकृतिक नियम के अनुसार जीवन-सर्वय प्राकर्यक है। किन्तु इस जीवन-सर्वय में जो कमजोर हैं वे मृत हो जाते हैं और जो योग्यतम मरणा जिनमें जीवित रहने की क्षमता (Survival of the fittest) है, बचत न ही रोप रह पाते हैं। मानव भी इस नियम से बचत नहीं है। वह भी मरणा गति से बच रहे इस प्राकृतिक नियम का शिकार है। अतः राज्य को इस जीवन-सर्वय में बाधक नहीं बनना चाहिए। यदि सरकार निर्धनों या असहायों की इज्जत रीति से रक्षा करती है तो उसका यह इत्य समाज के लिए बड़ा हानिप्रद है, क्योंकि अनुसुक्त और निर्धन व्यक्ति जिन्हें जीवन-सर्वय में मृत हो जाना चाहिए रोप रहेंगे। इसके समाज की प्रवृत्ति होती। स्पेन्सर सिद्धता है, "यद्यपि ऊपर से देखने में यह अन्यायपूर्ण प्रतीत होता है कि विधवाओं और अनाथों को जीवन एवं मृत्यु से सर्वय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाने किन्तु समस्त मानव जाति के कल्याण को दृष्टि में रखते हुए यह विचार हितकारी ही है।

अतः 'यद्माम्बु नीति श्राद्धोत्सव एव प्राकृतिक व्यवस्था के लिए सर्वथा अनुकूल है। स्पेन्सर स्वतंत्रता प्रवृत्तता और सर्वय को सामाजिक उन्नति के लिए प्राकर्यक समझता था। उसका स्पष्ट मत था कि 'यदि हम शक्तिशाली, योग्य और कर्मठ संवृति का विकास करना चाहते हैं तो हमें व्यक्तियों को उनकी इच्छा पर ही छोड़ देना चाहिए, जिससे सबको की उन्नति और प्रकृत व्यक्तियों का विनाश हो सके।' अतः राज्य को किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए जिससे कि समाज का नैसर्गिक विकास और उन्नति हो सके।

(४) ऐतिहासिक—इतिहास एसे अनेक उदाहरणों से परिपूर्ण है जबकि राज्य द्वारा प्राकृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में हस्तक्षेप हानिप्रद सिद्ध हुआ है। जब कभी राज्य न ब्यतार बचन और मानव प्राति पर नियंत्रण लगाया यमिक था

1 It seems hard that widows and orphans should be left free to struggle for life and death, never the-less when regarded in connection with interest of universal humanity these harsh fatalities are seen to be full of beneficence" (Spencer)

2 "If we are to evolve a race of strong, able and verile human beings, we should leave individuals to themselves the strong will survive and unfit will be eliminated" (Spencer)



केवल पूर्वीयों का मुनाफा धीरे-धीरे बस्तु का कम-बिक्रम निर्धारित किया, वह पूर्ण तया विफल रहा है। भारत में चाय, बस्त्र और अन्य जीवनोपयोगी सामग्री पर नियन्त्रण (Rationing) सरकार की असफलता का चोकर है। इस प्रतिबन्ध से नियन्त्रित वस्तुओं का उत्पादन घटा और बाजार की बड़ी धीरे-धीरे घटाचार किया है। जब कभी बाजार पर नियन्त्रण समा तो छिने तौर से बस्तुएँ दूसरे राज्यों में से जाई गई धीरे-धीरे जिस दुस्म पर जाया उन्हें बेचा। मात्र भी बिन राज्यों में मद्यान का निवेश है, वहीं उसका धीरे-धीरे प्रयोग हो रहा है धीरे-धीरे इससे घटाचार को बढ़ावा मिला है। इस प्रकार राज्य द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप पर्युतया असफल हो सिद्ध नहीं हुआ है, यद्यपि उससे समाज अन्य विकारों का उद्वार हो गया है। बर्किंस का कहना था, "राज्य के अधिकारी इस प्राचीन सिद्धान्त का प्राम्थ से समाज पर प्राम्थ धीरे-धीरे व्यापार की प्रवृत्ति करते रहे कि बिना उनके हस्तक्षेप के उद्योग-क्षेत्रों एवं व्यापार की उन्नति ही संभवना असम्भव है। विश्व प्रकार समता का विकास इन निरन्तर प्रतिबन्धों के समक्ष ही संभवता या ?"

(५) व्यावहारिक—जो व्यक्ति राज्य को सर्वोच्च सम्पन्न समझे है धीरे-धीरे बिनका यह विश्वास है कि प्रत्येक काम सम्पादित करने को उसमें लयता है, सबकुछ उनकी यह भावना मारखा है। राज्य सभी कामों के करने की न तो लयता ही रखता है धीरे-धीरे न उसमें सामर्थ्य ही है। राज्य की भी योग्यता धीरे-धीरे एक सीमा है। इसके प्रतिरिक्त राज्य कर्मचारी अन्य व्यक्तियों की प्रवेष्टा अधिक योग्य धीरे-धीरे अनुभवशील नहीं होते। एक व्यक्ति की अपने निजी उद्योग या व्यवसाय में अधिक अधिकारिता होती है क्योंकि उसमें उसका प्रयत्न स्वार्थ है। वह निरन्तरिता का भी ध्यान रखता है। चिन्तु सरकारी कर्मचारी की राज्य द्वारा संभालित उद्योग में अपनी बहि नहीं होती क्योंकि उसका न तो उस उद्योग में पैसा हा लगा है धीरे-धीरे न अधिक काम होने पर उसे सामान्य ही होता है। अतः उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं है धीरे-धीरे न वह निरन्तरिता का भी ध्यान रखता है। अन्वहारणार्थ रैस का संभालन राज्य द्वारा होता है। रैसके कर्मचारियों को

1 "They went blundering along in the old track believing that no commerce could flourish without their interference hampering that commerce by repeated harassing regulations. How civilisation could have advanced in fact of such repeated obstacles." (Buckle)

उसमें कोई विशेष रुचि नहीं है, बल्कि साम हो प्रयत्न हानि । इसके प्रतिरिक्त कार्य-शैपित्य, रिश्ततजोरी घोर साररबाही भादि अनेक प्रबुध उनमें पाये जाते हैं । इन दोषों के कारण रस-उद्योग को क्षति पहुँचती है । वस्तुतः राज्य द्वारा संशान्ति उद्योग-अन्वों में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का प्रमाण है और न अमिकों पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध या प्रदुय ही है । किन्तु व्यक्तिगत उद्योग के कर्मकारियों पर उद्योगपति का पूर्ण नियन्त्रण है और उसके आदेश उनके लिए शिथोभार्य हैं । व्यक्तिगतियों का कथन या कि राजकीय उद्योग व्यक्तिगत उद्योग की अपेक्षा अधिक महत्ता भी पड़ता है और व्यक्तिगत कार्य-शक्ति एवं दक्षता से नहीं अधिक श्रेष्ठतर है । भारतक जिले भी मनीन आदिष्कार हुए हैं अधिकारत उनका येय व्यक्तिगत प्रयत्नों को हो है । इसके प्रतिरिक्त यदि व्यक्तिगत व्यवसाय को क्षति पहुँचती है तो उसका प्रभाव समस्त राष्ट्र पर नहीं पड़ता, जबकि राजकीय उद्योग को हानि पहुँचने पर सम्पूर्ण देश पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ता है । अतः राज्य को अपना कार्य-क्षेत्र केवल शान्ति-व्यवस्था एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा तक ही सीमित रखना चाहिए । यह कार्य उसके द्वारा समुचित रूप से हो भी सकेगा । धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उसका हस्तक्षेप न आवश्यक ही है, और न लाभप्रद ही ।

### ७। व्यक्तिवाद का नवीन रूप

व्यक्तिवाद के प्रतिनिध्या-स्वरूप आदर्शवाद और समाजवाद का प्रादुर्भाव हुआ । जिस समय विश्व में व्यक्तिवादी विचार-धारा की प्रचलता थी उसी समय जर्मनी में आदर्शवादी विचार-धारा उल्लिखित हुई । इस विचार-धारा ने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की बहु आलोचना की । १९ वीं शताब्दी में समाजवादी विचार भी पनपने लगे थे । कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने समाजवादी दर्शन को वैज्ञानिक स्वरूप दिया । समाजवादी विचारकों ने व्यक्तिवादी धार्मिक दृष्टिकोण का सख्तन किया । उन्होने उत्पादन के साधनों पर पूर्वीपतियों के एकाधिकार्य को खारिज किया । इन विचारों का प्रभाव रूस पर पड़ा, जहाँ सेलिन् के नेतृत्व में १९१७ में क्रांति हुई और समाजवादी व्यवस्था स्थापित हुई । इस व्यवस्था में व्यक्तिवादी धार्मिक दृष्टिकोण के लिए कोई स्थान नहीं था । कृषी क्रांति ने विश्व के समस्त राष्ट्रों को प्रभावित किया और इससे अमिक आन्दोलन सुसंघटित हुआ । अमिकों ने राज्य की उदात्तता समझ कर उनसे धन-व्यवस्था सम्बन्धी नियम निर्माण का आग्रह किया ।

प्रथम महायुद्ध के उपरान्त जर्मनी और इटली में भी त्रिसु शासन व्यवस्था की स्थापना हुई वह व्यक्तिवाद-विरोधी और समाजवादी दर्शन की परंपरा थी। जर्मनी का नात्सीवाद और इटली का फासिस्टवाद मद्यपि कभी साम्यवाद का घोर विरोधी था, किन्तु उसने राज्यीय समाजवाद (State Socialism) में अपनी धारणा प्रकटित की। इन दोनों देशों में व्यक्ति के कार्यों पर राज्य के एकाधिकार को उक्ति ठहरोया गया। व्यक्ति-स्वतंत्रता का कोई प्रश्न ही नहीं रहा। यह व्यवस्था व्यक्तिवाद एवं सारवाद की बटूर विरोधी थी।

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त समाजवादी शक्तियाँ प्रबल रूप में प्रकट हुईं। चीन, पोर्तूगल, बेल्जियम, स्पेन, इटली, युगोस्लाविया, बल्गेरिया आदि नवीन समाजवादी शक्तियाँ उभरीं। इन देशों में समाजवादी व्यवस्था स्थापित हुई। इन देशों के प्रतिरिक्त इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि देशों में समाजवादी बलों की स्थिति सुदृढ़ होने लगी। बहुमत व्यक्तिवादी दर्शन समाधिस्म हो गया था और समाजवादी विचारधारा युवीय विचारधारा हो गई। ऐसी स्थिति में व्यक्तिवाद ने एक नवीन रूप धारण किया। समाजवाद के शत्रुओं ने उस, जर्मनी, इटली और अन्य समाजवादी राष्ट्रों पर व्यक्ति-स्वतंत्रता के अग्रहण के आशेष समये। उन्होंने कहा कि इन समाजवादी राज्यों में व्यक्ति-स्वतंत्रता एक मजाक बनकर रह गई है। वहाँ अधिनायकशाही पनपती है चाहे वह एक व्यक्ति एक बर्ग अथवा एक राजनीतिक दल की ही कर्तव्य हो? राज्यशक्ति इस अधिनायकशाही में ही निहित है। ये कृत्रिमता के व्यक्ति-स्वतंत्रता का प्रीतिप्रिय चित्र करते हैं और प्रजातंत्र (Democracy) को आदर्श व्यवस्था की संज्ञा प्रदान करते हैं। चर्चिल (Winston S. Churchill) का १९४२ में घाम निबॉकन के समय का नेस्टोवो भाषण (Gestapo speech) इसका स्वतंत्रत घटाहण है। इसी इंग्लैंड की लेबर पार्टी की भासना इसी आधार पर थी, कि यदि वह शक्ति में आ गई तो अधिनायक स्वतंत्रता का अग्रहण हो जायेगा। लेबर पार्टी समाजवाद की स्थापना करेगी और समाजवादी व्यवस्था नेस्टोवो शासन की, जो कि नात्सीवाद की विनिष्ठता की प्रतिध्वनि करता है। घमरीका के राजनीतिक नेता भी ऐसे ही विचार रखते हैं। वे भी समाजवाद के बटूर शत्रु हैं। समाजवादी शक्तियाँ विगत ही दशकें नियु के प्रगल्भ हैं। समाजवाद के विरोध में उनका प्रबल तर्क यही है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाजवादी व्यवस्था में समाप्त ही जाती है। राज्य का एकाधिकार ही जाता है और अधिनायकशाही पनपती है।

रूसी अधिनायकशाही के कट्टर शत्रु समाजवादी विचारक भी हैं। वे समाजवादी विचारक मार्क्स को अपना पवित्र मानते हैं। वे उससे प्रेरणा लेते हैं, किन्तु रूसी अधिनायकवाद के विरोधी हैं। इंग्लैण्ड फ्रान्स, इटली, भारत बर्मा, इण्डोनेशिया और जापान प्रायः देशों के समाजवादी दल साम्यवाद के विरोधी हैं। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य उनके दर्शन का केन्द्र-बिन्दु है। इन समाजवादी दलों की धारणा प्रजातान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) में है। यद्यपि ये समाजवादी इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को प्रमानता देते हैं, किन्तु इससे यह धमिप्राय नहीं है कि वे व्यक्तिवाद या पूंजीवाद के समर्थक हैं। इनकी दृष्टि में मार्क्स का सच कोटि का प्रजातन्त्रवादी था। प्राचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में कम्युनिज्म की जो चरम धनस्था है वह मार्क्स के अनुसार धर्म निग्रह समग्र है। जनता सांस्कृतिक स्तर इतना ऊँचा हो गया है कि जनसाधारण स्वतः बिना किसी बाह्यी नियंत्रण के या राजदण्ड के भय के बिना ही सहयोग की भावना से प्रेरित हो समाज का संभालन करते हैं। जनतन्त्र का यह चरम विकास है। जनतन्त्र को समग रक्ष कर समाजवाद की कल्पना हो ही नहीं सकती।

मिल की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की कल्पना राजनीति दर्शन के लिए एक विशिष्ट देग है। उसकी इस स्वतन्त्रता का वैयक्तिकवादी विचारकों तथा भादर्यवादी धीन पर पबक्षिक्य से प्रभाव पड़ा है। सास्की और जी० डी० एच० कोल जैसे विचारक भी इससे प्रभावित हुए। सास्की स्व के कायारस्य से अधिक प्रभावित हुआ। वह अपनी कृपाध्या में स्व का बड़ा ही प्रशंसक हो गया था। यद्यपि वह व्यक्तिवादी विचारधारा का बट्टु धालोचक था, किन्तु व्यक्ति-स्वातन्त्र्य उसके विचारों का केन्द्र-बिन्दु बना रहा। बहुसंवादी विचारकों ने राज्य को एक मानव समुदाय बताया। उनकी दृष्टि में वह सर्वोपरि एवं सर्वशक्तिमान् नहीं है। समाज में अनेक धन्य समुदाय हैं जिनकी उपयोगिता राज्य के ही समान है। प्रत्येक धन्य समान समुदायों के कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। प्रत्येक समुदाय अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र एवं शक्तिमान् है। "य प्रकार बहुसंवादीयों ने समाज में स्थित धन्य समुदायों का धीविरव सिद्ध कर व्यक्तिवाद का समघन ही किया। इस प्रकार नवीन व्यक्तिवाद राज्य की सर्वशक्तिसम्यक्तता, नीकर शाही, सरदार की शाशाही, मसवीय सरकार में बहुमतवत्त की निर्भुक्तता आदि की धालोचना करता है।" प्राचीन और नवीन व्यक्तिवाद में जो मूलमूल धन्तर

1 "Modern individualism condemns the omnipotence of the

है वह यह है कि प्रथम व्यक्ति पर किये गए बल बेला है, जब कि शिथिल संघ एवं संस्थाओं पर अधिक बल बेला है। मान का सामाजिक बांधा इतना जटिल या पेशीबा है कि सबसे व्यक्ति का कोई महत्व नहीं रहा है। व्यक्ति के कर्तों की रता एकमात्र संघों के सबसे होकर ही हो सकती है। प्रायुक्तिक व्यक्तिवादी विचार-चार निम्नलिखित तर्कों के कारण विकसित हुई—

( १ ) उत्तरोत्तर ऐच्छिक संघों ( सांख्यिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, शैक्षिक आदि ) की वृद्धि। ये संघ व्यक्ति के कर्तों की रता करते हैं और संघ तथा राज्य के बीच परस्पर होने पर व्यक्तियों ने राज्य की रता को चुनौती दी है। इस प्रकार जितना मान राज्य महत्वपूर्ण है उतना ही व्यक्तियों के लिए संघ भी है।

( २ ) प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जलता में वैराय भाव का संचार हुआ। युद्ध-काल में राज्य के लिए व्यक्तियों ने सर्वस्व समर्पित किया किन्तु युद्ध की विभीषिका बढ़ती ही गई। फलतः राज्य के विरुद्ध व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धात्मक भावना जागृत हुई। इस प्रकार राज्य की उपयोगिता व्यक्तियों के लिए संक्षिप्त हो गई, क्योंकि राज्य हो उनके लिए युद्ध और विनाश लाया। यह व्यक्तियों को यह अनुमति हुई कि राज्य की सर्वोपरिता एवं सर्वशक्तिमत्ता मर्यादित होनी चाहिए।

( ३ ) सर्वशक्ति सरकार में बहुमत बल की निरंकुशता व्यक्ति-स्वात्म्य के लिए एक चुनौती है। पारलमन में बहुमत बल को राज्य के नाम में की वैधानिक शक्तता स्थापित की गयी है, उसे लोक-व्यस्य नहीं हो सकता। जब कस्याए के लिए राज्य के कर्म एवं रता या विकेन्द्रीकरण ही एकमात्र विकल्प है। किन्तु यह विकेन्द्रीत व्यवस्था व्यक्तिवादी समाज में ही सम्भव हो सकती है न कि समष्टिवादी समाज में। ग्राहम वालास ( Graham wallas ) का विचार है कि बहुमत बल की निरंकुशता व्यावसायिक एवं प्राथमिक प्रतिनिधित्व की दोनों प्रणालियों के अन्तर्गत जाने पर नियंत्रित हो जा सकती है।

( ४ ) बहुमतवादी के अनुसार राज्य संघों का एक संघ है और सर्वोपरि एवं सर्वशक्तिमान् नहीं है।

state it protests against the despotism of the bureaucratic government. It criticises the tyranny exercised by the majority in parliamentary forms of government ' ( Joad )

## व्यक्तिवाद की आलोचना

व्यक्तिवादियों को यह धारणा कि राज्य एक आवश्यक बुराई ( Necessary evil ) है, निरान्त आन्ति है। राज्य एक बुराई नहीं है अपितु वह एक निश्चित रूप से अच्छाई है। उसका विकास इन्ध्रिम की अयेला स्वाभाविक है। राज्य स्वाधीनता का विरोधी नहीं है और न उसकी विधियों से यह आवश्यक ही है कि स्वतंत्रता का अयहरण हो। उसका एकमात्र कार्य अरराओं को रोकना ही नहीं है अपितु सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों को प्रोत्साहन भी देना है। अरस्तू ने कहा था, "राज्य का अम्म सुखी जीवन बनने के लिए हुमा या और इसीलिए ही उसका अन्तिरव स्थिर है।" इतिहास इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि मानव जीवन के सफलमूत हेतु राज्य की सहायता परम आवश्यक है। प्राथमिक काल में समाज का आर्थिक एवं सामाजिक ढांचा परिवर्तित हो गया है और आज हम सम्यता की अरमावस्था पर आ अये हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों पर निर्भर है। अतः राज्य के बिना हस्तक्षेप के मनुष्य का समुचित विकास हो अना अयम्भव है। इसी कारण आज विभिन्न राष्ट्रीयों का सत्य एक अोक कल्याणकारी राज्य ( Common Welfare State ) ही मया है। यह 'आम्मन नीति' अयिद्वय हो गई है और राज्य का कार्य-क्षेत्र अपरिमित हो मया है। फिर 'राज्य अितना अिवमन करता है अयना ही वह हर्ने स्वतंत्र एवं प्रमतिशील बनाता है।' राष्ट्रीयकरण' शोपण की प्रक्रिया का आज एकमात्र अरचार समझा जाता है। अतः आज राज्य का अतरावित्व अर्थिक बह मया है और व्यक्ति उसके प्रति अपनी अर्थिक निष्ठा प्रदर्शित करते हैं। उसके नियंत्रण में के अरना अर्थिक कल्याण समझते हैं।

( २ ) व्यक्तिवादियों की विचारधारा में राज्य व्यक्तियों का एक समूहमात्र है। यह अजन अर्कवगत नहीं है। समाज व्यक्तियों की सामाजिक अाजना का प्रतीक एवं परिणाम है। बहु-व्यक्तियों का समूहमात्र हो नहीं है अपितु उसका एक अररूप होता है, अयन्तिरव हाता है और इच्छा होती है। उसका अरमान और अरन होता है। वह एक सावयव पराम है। यह अहना ठीक नहीं है कि वो एक व्यक्ति के हित में अचित है वह सभी के हित में अचित होमा। व्यक्ति

1 'The state comes into existence for the sake of life ( i e physical well-being ) and continues to exist for the sake of the good life ( i e moral welfare ) —Aristotle

केवल समाज का एक अंग ही नहीं है, अपितु यह उसका प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी इच्छा, हित और उद्देश्य होता है जोकि समाज नहीं है। अतः उनमें संघर्ष होना स्वाभाविक है। समाज या राज्य का कर्तव्य व्यक्तियों के व्यवहार में सामंजस्य स्थापित करना है और इसी कारण यह नियम-निर्माण करता है।

( ३ ) व्यक्तिवाद की यह धारणा कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है, उचित नहीं है। व्यक्ति में दोनों प्रवृत्तियों का समावेश है। यह स्वार्थी भी है और परमार्थी भी। दूसरों का यह हित-चिन्तन भी करता है। परमार्थ को भावना कभी कभी उसमें इतनी बसवती होती है कि वह अपना कलिबाल तक कर देता है। वस्तुतः व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाएँ परस्परपरोक्षी नहीं हैं। दोनों में सम्बन्धोपस्थित सम्बन्ध हैं। इसी कारण वा मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से अलग व्यक्ति की अस्तित्व ही ही नहीं सकती। समाज उसके विचारों का केन्द्र बिन्दु है, अतः समाज-हित-मन्वन्धी नियम राज्य के लिए बनाए जावश्यक हैं।

( ४ ) व्यक्तिवाद की यह मान्यता कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हित मधीनस्थित समझता है, साम्यावहारिक है। सभी व्यक्तियों के लिए यह सत्य लागू नहीं होता। सामाज्य व्यक्तियों में दूरवामी हितों को समझने की क्षमता नहीं होती। इसके अतिरिक्त यदि व्यक्ति अपने दूरवामी हितों को समझ भी लेता है तो फिर सामानों के द्वारा उन्हें मूर्च्छित मिल सकेगा, समझने में असमर्थ होता है। अतः राज्य द्वारा ही व्यक्ति अपने नैतिक, साम्यावहारिक एवं शारीरिक आवश्यकताओं को समझ पाता है। राज्य को ही ऐसा वातावरण पैदा करना चाहिए जिससे मानव क्षमति कर सके। मिला भी इस विचार से उद्भवत वा कि राज्य को व्यक्ति की अनभिज्ञता, नैतिक अक्षमता और संकट से रक्षा करनी चाहिए।

( ५ ) व्यक्तिवादियों की दृष्टि में नकारात्मक स्वतंत्रता (Negative liberty) आवश्यक है। निःसन्देह स्वतंत्रता और हस्तक्षेप को विरोधी वस्तुएँ हैं। जब किसी कार्य में असाध्य हस्तक्षेप होता है तो वहाँ स्वतंत्रता नहीं रह जाती। किन्तु स्वतंत्रता का ऐसा अर्थ अपना अनुचित है। हस्तक्षेप से एक विद्या में हथकड़ी स्वतंत्रता वा यदि अच्युत होता है तो अन्य विद्याओं में हमारी स्वतंत्रता के

1 "Apart from his surroundings and relationships, he is mere abstraction, a metaphorical spectre, a mere negation,

श्रेय का विस्तार भी हो जाता है। यदि बच्चे की खेलने की शक्ति स्वतंत्रता का प्रदर्शन करके उसे स्फूर्त में ला जाता है तो उससे वह अधिक सामान्य होता है। शिक्षित होने पर उसे विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता के उपयोग का प्रदर्शन मिलता है। स्वतंत्रता केवल नियंत्रण का अभाव ही नहीं है, अपितु अनेक प्रकार के प्रसरणों की उपलब्धि भी है। नियंत्रण स्वतंत्रता को परिपुष्ट, सुदृढ़ एवं स्थायी बनाता है। जिस प्रकार एक रोमी कड़वी कुनैन से स्वस्थ हो जाता है, वही प्रकार राज्य का हस्तक्षेप व्यक्ति-विकास का मारक है। मुख्यतः धीरे सामाजिक हित के लिए नियंत्रण आवश्यक है। जिस प्रकार व्यक्ति के विकास के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है, उसी प्रकार इस स्वतंत्रता को स्वामित्व प्रदान करने के लिए नियंत्रण भी आवश्यक है। स्वतंत्रता निरन्तर में ही साकार होती है।

( ६ ) व्यक्तिवादियों का जीवन-सम्बन्धी सिद्धान्त निराधार है। कार्लर का कथन है कि "स्पेन्सर का जीवन-सम्बन्धी सिद्धान्त धीरे धीरे एक सिद्धान्त एक दूसरे के परस्पर विरोधी हैं।" जीवन संघर्ष का सिद्धान्त निम्नतम जीवों के लिए है। मानव एक-छोटि का नैतिक प्राणी है। असाधारणों की रक्षा करना वह अपना परम धर्म समझता है। इसका लक्ष्य सामाजिकता की ओर है। हक्सले के शब्दों में, "हमारे सम्य समाज में अब मनुष्य अपने जीवन के लिए अधिक संघर्ष नहीं करता अपितु पारस्परिक सहयोग तथा सहायता के लिए प्रयास करता है।" 'व्यक्ति के लिये जैसे कठोर एवं निर्मम नियम क्यों न हों, व्यक्ति उनमें मनुष्योचित सुधार कर लेता है। वस्तुतः यह मानव के लिए धीरे धीरे है कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सामाजिक जीवन को सम्भव बनाया है धीरे धीरे नैतिक सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की है। स्पेन्सर का यह कथन कि जो योग्यतम होते हैं वे ही जीवित रहते हैं, निराधार प्रमाण है। 'योग्यतम' शब्द एक सापेक्षिक (relative) शब्द है। जो आज योग्य है सम्भव है वह कल अयोग्य सिद्ध हो। जिस स्थिति में वह योग्य है सम्भव है उससे निम्न परिस्थिति में वह योग्य न रहे; जैसे, काब्रिज का एक विद्यार्थी। आज वह अपनी कक्षा में योग्य है, क्योंकि अन्य छात्रों पढ़ने में कमजोर हैं किन्तु अन्य योग्यतम छात्रों के आने पर या किसी अन्य छात्र के आने पर उसका योग्यतम होना संदिग्ध है। यदि योग्यतम का अर्थ अक्षरों

1 "In civilized society man has stopped the ruthless struggle for existence in the interest of the moral principle of mutual sympathy and help." ( Huxley )



व्यक्तियों से क्या सिखा जाये वह तो निरुद्धतम तथा बूर्त व्यक्ति ही हमारी प्रतीक्षा का पात्र हो जायेगा। और एक बरीब शार्सनिक मद्देनपूर्ण हो जायेगा फिर उसके प्रतिरिक्त यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो बात निम्न बातों के बीच-जानुओं के सिद्ध आवश्यक है वह उस कोश के मानव प्रगृही के सिद्ध भी आवश्यक हो। निम्न कोश का बीच प्रकृति पर आधारित है, किन्तु मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अपनी आवश्यकता के अनुसार उसको बना लिया है। यह प्रकृति का बाध नहीं, यन्त्र प्रकृति उसकी बाधो है। यह प्रायः जीवों से घने क क्षेत्रों में स्थित है। उसने सामाजिक जीवन का विकास किया है। यह सबकोश का आध्यात्मिक एवं भौतिक प्राणी हो गया है। अपनी इस भौतिकता के कारण प्रसङ्गों की रक्षा करना वह अपना परमवर्ण समझता है।

(७) व्यक्तिवादियों ने राज्य की असफलताओं एवं अत्याचारों का विमर्शन करवा है। निस्सन्देह राज्य न अनेक मूलों की है, किन्तु इन मूलों की अपेक्षा उसने सङ्कटमयी भी किये हैं जो प्रतीतगोच्य हैं और यदि राज्य से मृतकाम में बुद्धियाँ हुई हैं तो भविष्य में भी होंगी वह बुद्धिकाम्य एवं ठर-ठमर नहीं है। इसके प्रतिरिक्त राज्य की अपेक्षा व्यक्ति अधिक मूलों करता है और वे बड़ी गम्भीरता होती हैं। राज्य की प्रत्येक विफलता हमारे सम्मुख रहती है, किन्तु व्यक्ति और व्यक्तिगत सम्पत्तियों की असफलताओं को हम नहीं देख पाते। इससे के शब्दों में "राज्य का निवास एक शीशे के महल में है, वहाँ हम उसके समस्त कुत्यों और विफलताओं को देख पाते हैं, किन्तु व्यक्ति के साहस एवं काम की अपारदर्शक ईंटों से निर्मित स्थान में रखा जाता है, जिसे जनता सरलता से नहीं जान पाती।" इस प्रकार व्यक्तिवादियों का वह ठर-ठमर राज्य की महत्ता को कम नहीं कर पाता। आज व्यक्ति की धारणा राज्य में अधिक है। उसके कार्यों में उसका अधिक विश्वास है और इसी कारण राज्य का कार्य-क्षेत्र उत्तरोत्तर अधिक व्यापक एवं विस्तृत होता जाता है।

1 "The state lives in a glass house. We see what it tries to do and all its failures, partial or total, are made the most of. But private enterprise is sheltered under good opaque bricks and mortar. The public rarely knows what it tries to do and only hears of the failures when they are gross and patent to all the world." (Huxley)

( ८ ) व्यक्तिवाद के व्यावहारिक ठरुं के सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि राज्य का प्रबन्ध व्यक्तिगत प्रबन्ध की अपना बेष्ठर है । राज्य द्वारा जो सार्वजनिक कार्य किये जा रहे हैं, वे सफल और बेष्ठर हैं । यदि राज्य को कहीं असफलता मिली है तो उसका कारण यही है कि राजकीय प्रबन्ध कुछ अधिक खर्चीला है । किन्तु राज्य के अन्तर्गत मानव का शोषण नहीं होता । उसका परम सम्म समाज-सेवा है । इसके प्रतिरिक्त व्यक्तिगत श्रमियों में कहीं शोषण की प्रक्रिया पनपती है और कहीं समाज-सेवा क त्याग पर स्वार्थपरता की प्रधानता है, असफलताएँ मिलती हैं । प्रतिदिन विभासा निहसने की बटनाएँ पण्डि होती हैं जो कि प्रकाश में नहीं आ पातीं । बन्तु एतिहासिक दृष्टि से व्यक्तिवाद के अनेक मयाबह परिणाम निकसे हैं । मन्तुओं के प्रति पूंजीपतियों के निर्मम अत्याचारों ने सामाजिक व्यवस्था को दूषित ही नहीं किया खर्चीला भी किया है । उन्हें अस्वास्थ्यकर कर्णों में रूना पड़ता था अधिक समय तक कार्य करना पड़ता था और बेतन कैबल उतना ही बिससे कि वे जीवित रह सकें । फलत अनुमित पनपति इन दुःख श्रमियों के हाथों में एकत्र हो गई । व्यक्तिवादी सिद्धान्त समाज के लिए एक विभीषिका के रूप में प्रकट हुआ बिसका और विरोध किया जाने लगा और अन्ततोगत्वा राज्य को हस्तशेप करना पड़ा । १८३३ में इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम फैक्ट्री कायून बनाना पड़ा, बिसके द्वारा अमिकों की बरा में सुधार हुआ । अलीसवीं शताब्दी के अन्त तक राज्य का कार्य-शेप बड़ा ही विस्तार हो गया और व्यक्तिवादी सिद्धान्त बिरुद्ध हो गया ।

व्यक्तिवाद के मूस्याकन के सम्बन्ध में गिब्रस्ट<sup>१</sup> ( Gilchrist ) ने निम्न लिखित निष्कर्ष निकाले हैं—

- ( १ ) व्यक्तिवाद धारम-निर्मरता पर अधिक बल दता है ।
- ( २ ) अतन अर्थ के राजकीय हस्तशेप के प्रति विरोध ब्रकट दिया है ।
- ( ३ ) यह समाज में मानव की महत्ता का भीक्ष्य सिद्ध करता है ।
- ( ४ ) व्यक्तिवाद अनावश्यक बिनेरकों के रह बरने में अछलीमूत हुआ है ।

1 "With the development of democracy there is not the same reason to support individualism. Democracy gives the people the management of their own government" ( Gilchrist )

निस्संदेह व्यक्तिवाद में व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर बल दिया है। उसने राज्य के प्रभावस्वक हस्तलेन का विरोध किया है। उसने ऐसा कर व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता प्रदान की है आत्म-निर्मत्ता का सुन्दर उपदेश किया है और राज्य की निरंकुशता को रोकने के लिए सिखाया है। इस सिखाए की उपमोक्ति इसी से सिद्ध होती है कि वह आत्म की किसी घंटा में जीवित है और इसकी व्यक्ति-स्वातंत्र्य की आरक्षा समाजवादी विचारकों को प्रभावित करने में है।

---

## साम्यवाद (Communism)

### कार्ल मार्क्स के पूर्ववर्ती

कार्ल मार्क्स ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था उसे वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific socialism) मार्क्सवाद (Marxism) और साम्यवाद आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इस समाजवादी या साम्यवादी विचारवाद का प्रणेता प्रफेसे मार्क्स ने ही नहीं किया था किन्तु ऐसे अनेक विचारक हुए जिन्होंने इसके विभिन्न रूपों का प्रतिपादन किया। बन्सुत यह समाजवादी विचार-सरणी उतनी ही पुरातन है जितना कि मालक-समाज। यूनानी सभ्यता के युग में सर्वप्रथम प्लेटो (Plato) ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'द रिपब्लिक' (The Republic) में साम्यवादी समाज की कल्पना की थी। उसने 'सम्पत्ति एवं पत्नियों के साम्यवाद' (Communism of property and wives) सम्बन्धी विचार प्रकट किए थे। उसने अपने आदर्श राज्य का जो विवरण किया था उसमें शारीरिक राजाओं (Philosopher kings) और भूमिदों का जिम्हा उसने अभिभावक वर्ग (Guardian Class) में रखा था सम्पत्ति और निजी परिवार से वंचित कर दिया था। उसने उन्हें एक एकड़ भूमि पर भी स्वामित्व

1 Marx was not of course, the first socialist writer of the 19th century. There was a rich crop of socialist ideas before he wrote; its very abundance bearing witness to the spiritual emptiness of the age. St. Simon and Guizot were spreading the idea of the class war. Proudhon the notion that property is theft; Fourier the conception of the middle classes as commercial despots; Sismondi the view of the mer- itability of crises, booms and slumps; Owen the faith that the new factory era would be one of co-operation instead of Com- petition." (C. L. Weyper)

प्रदान नहीं किया और न उनके लिए कोई गृह-व्यवस्था ही थी। उनके निवास के लिए बैरक ( Barracks ) जो सभी के लिए जुड़े होंगे, उन्हें निर्धारित बैठक मिलेगा और सार्वजनिक भोजनालयों में वे भोजन करेंगे। उसका सोना बर्तन का सर्वो भी उसने लिपिबद्ध ठहरेगा। जेटो की दृष्टि में, शासकों और धर्मियों का कियत एक ही घर है और वह है राज्य। सम्पत्ति एवं पत्नी विहीन अभिभावक वर्ग की कल्पना उसकी इस बारछा पर आधारित थी कि सम्पत्ति का प्रयोग तथा पत्नी और बच्चों का ममत्व शासकों को भ्रष्ट कर देता है। उन्हें गिरफ्तार, आतंकी और शोषक बना देता है। क्या जेटो अपने इन विचारों में मौलिक था? नहीं। स्पार्टा में सार्वजनिक भोजनालय ( Common messing ) की परम्परा थी और राज्य-अध्वेय हेतु, अन्य व्यक्तियों को पत्नियों द्वारा अपनी पत्नियों को उपहार देने की प्रथा प्रचलित थी ( wives were lent by husbands to others for state purposes )। एरिपिडस ( Euripides ) ने भी 'रिपमिड' के तिले जाने से पूर्व 'पत्नियों के साम्प्रदाय' विषयक विचार प्रकट किए थे। जेटो इनके विचारों से अवश्य प्रभावित हुआ होगा। किन्तु प्राथमिक साम्प्रदाय और जेटो के साम्प्रदाय में विचित्र अन्तर है। जेटो द्वारा प्रतिपादित साम्प्रदाय नैतिक, धार्मिक साम्प्रदायिक और पारदर्शिक या जबकि प्राथमिक साम्प्रदाय पारदर्शिक, धार्मिक और धर्म विहीन है। जेटो जमान की बर्षीय रूप प्रदान करता है, जब कि प्राथमिक साम्प्रदाय धर्म-विहीन-समाज की कल्पना करता है। उसका मुख्य साधन आत्म-संयम ( Self restraint ) और ध्याय था, जोलाइड उत्पन्न के साधनों के राष्ट्रीयकरण के। उसकी साम्प्रदायी व्यवस्था केवल अभिभावक वर्ग तक ही सीमित थी। जन-साधारण वर्ग हेतु, व्यवस्थायी और उत्पन्न-वर्ग उसकी परिधीय में नहीं आते। इसी कारण जेटो का साम्प्रदाय अर्ध साम्प्रदाय ( Half Communism ) कहा जाता है। जेटो के साम्प्रदाय में सर्वहाय या अभिभावकत्व, तथा

1 "Pull down walls." Plato replies, "they shelter at best a restricted family feeling they harbour at the worst avarice and ignorance Pull down the walls, and let the free air of a common life blow over the place where they have been"

2 "It is the way of surrender, and it is surrender imposed on the best and only on the best." ( Barker )

नता, प्राक्तिक एवं राजनीतिक सत्ता के सामंजस्य और राज्यविहाय समाज के लिए कोई स्थान नहीं है।

जेटा की मृत्यु के समय १६०० वर्ष उत्तरात्त ग्रंथेजी विचारक सर टॉमस मोर ( Sir Thomas More , ने भी अपनी पुस्तक 'द यूटोपिया' ( The Utopia ) में व्यक्तिगत सम्पत्ति-रहित आदर्श साम्यवादी-समाज का चित्रण किया था। उसमें जिस आदर्श राज्य की बहना की थी उसे 'यूटोपिया' की उच्चा प्रशंसा की। इस यूटोपिया राज्य में मुख्य व्यवसाय कृषि होमा। ६ घंटे प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति की बिना किसी विभेद के कार्य करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को उन्नतित पदार्थ में से आवश्यकतानुसार वस्तु मिलने का अधिकार होगा। दस वर्ष के बाद गृह-परिवर्तन भी लाठी द्वारा होता रहेगा। यद्यपि सभी अपने-अपने घरों में रहेंगे किन्तु भोज्य-व्यवस्था सामूहिक ही होगी। पंटी बजठ ही सभी परिवार करने-करने निर्धारित भोजन-कजों ( Dining halls ) में बसे जाएंगे। सभी की बेर-भूपा एक ही होगी किन्तु की और पुरय की बर-भूपा में भिन्नता होगी। प्रशासन में भी सभी को समान अधिकार हाया। इसी प्रकार के विचार फ्रांसिस बेकन ( Francis Bacon ) ने, न्यू एटलान्टिस ( New Atlantis ) में इन्सी के कंपानेला ( Campanella ) ने, सिटी ऑफ़ दिसन' ( City of the Sun ) में और 'ओसियाना ( Oceana ) में ग्रंथेजी विचारक जेम्स हैरिंगटन ( James Harrington ) ने प्रकट किए थे। इसके अतिरिक्त सेंट सारमन ( St Simon ), राबर्ट ओवन ( Robert Owen ) और चार्ल्स फूरिये ( Charles Fourier ) प्रभृति कास्मिक समाजवादी विचारक जिनकी समाजवाद याचनाएँ करना और समा पर आधारित थी विशेष उल्लेखनीय हैं।

## सेंट सारमन ( St Simon )

( १७६५-१८२५ )

सेंट सारमन फ्रांसीसी ज्ञान्ति से प्रभावित विचारक था। उस समय उसकी व्यवस्था तीस वर्ष से भी कम की उमरा नाम फ्रांस के प्रसिद्ध सामन्तवादी परिवार में १७६० में हुआ था। वह प्रारम्भ से ही ईसाई पादरियों के सम्पर्क में

रहा। वह १७७७ में फ्रीज में मरी हो गया और १७७९ में अमेरिका बना गया। अमेरिका के स्वतंत्र्य युद्ध में उसने भाग लिया। वह मेक्सिको भी गया और उसके बाद फ्रांस लौट आया। साइमन ब्राने मृत्यु जीवन से ऊब चुका था। पठ उसने फ्रीजी भीकरी छोड़ दी। उसने दार्शनिक वैज्ञानिक एवं बुद्धिजीवियों के सम्मेलन में रह कर आत्मार्जन किया और अपने विचारों में उन्नतारी हो गया। १७८८ की फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति के समय उसने अपने कुलीनत्व (Nobility) का परित्याग कर दिया और अपना नाम चार्ल्स हेनरी बानहाम (Charles Henri Bonhomme) रखा। उससे अपना विवाह किया, किन्तु मठवेद रहने के कारण अपनी पत्नी को तलाक दे दिया। उसने अल्पकाल में ही अपनी पत्नी को कुछ उसके पास भी, का ही और फलतः वह निर्धन हो गया। यहाँ तक कि उसे अपनी बीविका हेतु एक लवर्क के काम में भी काम करना पड़ा। साइमन ने अपने अन्तिम दिन बड़ी शक्ति में बिताये। यदि उसके मित्रों ने उसकी सहायता न की होती तो वह भूखों मर जाता। अपने इस धार्मिक संकटात्म में भी साइमन ने अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ा। यद्यपि उसके शिष्यों की संख्या अधिक नहीं थी, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके शिष्यों ने उसकी सिद्धान्तों का प्रचार जगत् में जारी रखा और इस वर्ष के अन्त ही वह फ्रांसीसी जनता का अग्रदूत हो गया। डॉट साइमन ने 'दि इण्डस्ट्री (The Industry) और दि क्रिश्चियनिज्म' (The Christianity) नामक पुस्तकें लिखीं, जो उसके विचारों पर प्रकाश डालती हैं।

डॉट साइमन यह भलीभाँति जानता था कि वर्ग का प्रभाव जनता पर से बट रहा है और ऐसी दशा में नैतिक सिद्धान्तों का भी कोई प्रोत्साहन नहीं रहेगा। पठ उसकी इच्छा थी कि नैतिक सिद्धान्तों को इसी के उद्देशों के आधार पर प्रमिलनीयत्व दिया जावे। उसने इस नवीन नैतिकता को 'सकारात्मक नैतिकता' की संज्ञा प्रदान की।

साइमन का लक्ष्य नैतिक एवं आचारिक दृष्टि के समाज का सुन्दर संवर्धन करना था। वह समुदाय के आधार पर समाज को संवर्धित करना चाहता था। उसने धर्म एवं धर्म के सहयोग का समर्थन किया, जिससे कि सर्वोत्तम फल उत्पन्न हो सके। उसने वर्ग-संघर्ष का प्रतिपादन नहीं किया था। बल्कि उसके काव्य में धर्मोन्माद अभी अपनी शोचनीयता में ही था। अथ वह धार्मिक एवं धर्मोन्माद के परस्पर विरोध ईश्वरों और प्रजा को नहीं देख पाया था। उसने पारिष्पतिक समता (equality of remuneration) का भी समर्थन नहीं किया था, क्योंकि उसकी दृष्टि में वह व्यक्ति की क्षमता एवं पैरो पर निर्भर करती है।

सेंट साइमन ने अपने 'जनता के पत्र' द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, 'सभी मनुष्यों को काम करना चाहिए।' उसने फ्रांसीसी क्रांति को एक बर्ग युद्ध की संज्ञा प्रदान की थी जिसमें कि सभी वर्गों ने भाग लिया था। उसका महत्त्व एक ऐतिहासिक तथ्य था जो उसकी उच्छ्वासात्मक प्रतिभा पर प्रकाश डालता है। सन् १८१६ में साइमन ने घोषित किया था कि राजनीति उत्पादन का ही विशाल है। उसका अर्थ था कि यदि हम किसी भी राजनीतिक सिद्धान्त की विवेचना करना चाहते हैं तो हमें तात्कालीन उत्पादन के साधनों का अध्ययन करना होगा उनकी प्रकृति को समझना होगा। उसकी दृष्टि में, राजनीतिक परिवर्तनों का आधार आर्थिक या उत्पादन के साधनों में होनेवाले परिवर्तन ही थे। उसने यह भी मतिपक्वबासी की कि कुछ दिनों में राजनीति अर्थशास्त्र में विलीन हो जाएगी। इस प्रकार उसके मत में आर्थिक समस्याएँ ही राजनीतिक संस्थाओं की आधारभूत हैं। उसने 'उत्पत्ति के अनुक्रम' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसने कहा था कि व्यक्तियों पर होनेवाला प्राथमिक राजनीतिक शासन वस्तुओं पर होनेवाले शासन में परिवर्तित हो जाएगा और ऐसी स्थिति में उस व्यवस्था का उद्देश्य उत्पादन-क्रिया का संचालनमान रह जाएगा।

सेंट साइमन की 'रिऑर्गनाइजेशन ऑफ यूरोपियन सोसाइटी' (Reorganisation of European Society) नामक पुस्तक १८१४ में प्रकाशित हुई। उसने लिखा था कि यूरोप एक नवीन सामाजिक संयोजन के लिए लूबर के समय से ही तालाबद्ध रहा है। ऐसे समाज में वैज्ञानिकों का समुचित मूल्यांकन होना चाहिए। उसका न तो किसी प्रकार की समानता में विश्वास था, और न स्वतंत्रता में और न लोकप्रिय चार्ममीयता में ही। वह साम्यवादी अधिनायकत्व का समर्थक था। वह सत्तारक्षिकता की प्रणाली का अनुमति चाहता था। सरकार के साधनों को वह उन व्यक्तियों के अन्तर्गत रखना चाहता था जो उनका प्रयोग कर सकें। उसका लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वरप्रदत्त क्षमता के अनुसार स्वतंत्र और कार्य के अनुसार पारिष्कारित मिलता रहे। उसकी वर्ग-विहीन समाज की योजना में केवल धर्महीन वर्ग के लिए ही स्थान था। जो धर्म नहीं करनेवाला समाज अन्त हो जाएगा। उसने यहाँ तक कहा था कि यदि पूँजीवादी, सामन्तवादी और धार्मिक वर्गों को प्राथमिक समाज से बहिष्कृत कर दिया जाये तो कोई हानि नहीं है। किन्तु धर्महीन-वर्ग के विकृतन का वह पक्षपाती नहीं था क्योंकि ऐसा करने से सम्पूर्ण समाज को विनष्ट करना होगा।



उस समय अन्य कारखानों में श्रमिकों के काम करने के बटे १३ या १४ थे। किन्तु न्यू यार्क मिस में मजदूरों को केवल सप्ते दस ही काम करना पड़ता था। एक बार जब ठीक के अभाव में कारखाना चार मास के लिए बन्द हो गया तो भी बेकार श्रमिकों की संख्या पुरा बेटन बिया गया। ऐसी बर्सा में भी कार खाने की बत्ते की अपेक्षा दुपुना साम हुआ।

किन्तु धोवेल को श्रमिकों की इस आदर्श-अवस्था से मानसिक असुख नहीं हुआ, क्योंकि धनी ने रोपित थे। धोवेल ने स्वयमेव ही कहा, 'ये सभी मेरे बास हैं।' उसका कहना था, २,५०० श्रमिकों का यह श्रमिक जनसमुह प्रतिदिन बितना वास्तविक धन पैदा करता है। वर्ष की सभी पूर्व जैसे उत्पन्न करने के लिए ६,००,००० श्रमिकों की आवश्यकता होती। किन्तु ६ लाख श्रमिकों के जीवन-निर्वाह हेतु पहले बितनी मनपाति की आवश्यकता थी उससे बहुत ही कम धन से २५० श्रमिकों का जीवन निर्वाह हो जाता है। मैं अपने से ही प्रश्न करता हूँ कि रोय धन कहाँ जाता है?' उसका संकेत बड़ा स्पष्ट था। यह रोय धन 'न्यू यार्क मिस' के अयोग्यवर्तियों की जेबों में जाता जाता है। धोवेल ने कहा था, यदि 'मशीनी द्वारा उत्पन्न किया हुआ यह धन न खर्चा तो न तो निर्दोषजन को ही परचित किया जा सकता था और न कुलीनवर्ग के सिद्धांतों के रक्षार्थ युद्ध ही होते। फिर भी इस मशीन शक्ति को श्रमिक वर्ग ने ही पैदा किया था।' अतः धोवेल चाहता था कि श्रमिक-वर्ग को भी इस धन का उपयोग करना चाहिए।

किन्तु जब तक धोवेल ने अपने साम्यवादी विचारों को प्रकट नहीं किया तब तक यह एक अन्धकोटि का समाज-नुषारक धीर जनप्रिय लोफ-नेत्रा था। उसके प्रति प्रगाढ़ मित्रता थी। कुलीनवर्ग ने धोवेल को उसके विचारों का पालन करते थे। किन्तु जैसे ही उसने अपने साम्यवादी विचारों को व्यक्त किया, पूर्वी वाली वर्ग उसका कट्टर शत्रु हो गया। यूरोप का यह महामानव समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। समाचारपत्रों में उसके लिए कोई स्थान नहीं रहा और अमेरिका में उसकी योजना असफल ही पड़ी। अब वह लगभग हीन हो गया था।

धोवेल ने अब पूर्णतः अपना सम्बन्ध श्रमिक-वर्ग से जोड़ा और जीवन के शेष ३० वर्ष उनके बीच बिताये। उसने श्रमिक-आन्दोलन को सुदृढ़ किया। इनका द्वि-विस्तार ही अब उसका एकमात्र सख था। धोवेल का नाम इंग्लैण्ड में उन सभी कार्यों, समाज-नुषारकारी आन्दोलनों और शत्रुता से जुड़ा हुआ है जिनके द्वारा मजदूरों का द्वि-विस्तार हुआ है। या अन्य किसी प्रकार की कोई प्रवृत्ति हुई

है। इंग्लैण्ड के फैक्टरी ऐक्ट का अर्थ धोबेन को ही है। उसने ही १८३३ में इंग्लैण्ड की प्रथम अधिकांश कांग्रेस का समापन किया था। इस कांग्रेस में इंग्लैण्ड की सभी अधिकांश-संस्थाओं ने भाग लिया था।

धोबेन का कथन था कि सरकार का सकल शासक और शाशित दोनों का हित-चिन्तन होना चाहिए। शिक्षा समाज की मलाई में एक बहुत बड़ा भाग प्रदा करती है। बाताबरण मानव का निर्माण करता है, किन्तु वह उसमें परिवर्तन भी कर सकता है। मनुष्य धान्य-प्राप्ति की इच्छा लेकर पैदा हुआ है। वही इच्छा उसकी समस्त पतिविवियों का प्रथम कारण है जो जीवन-पर्यन्त रहती है। इसे धार्मिक-हित (Self-interest) कहते हैं। वह कुछ जिसकी व्यक्ति अनु-भूति करता है और वह कुछ जिसका वह धान्य सेता है, ज्ञान को उन मात्रा और पुण्य पर निर्भर करता है जिसे वह प्राप्त कर सकता है और जिस पर उसके चारों ओर के व्यक्तियों का अधिकार है। संसार में मिथ्या वारण्यों ने सब कुछ और धुन्ध को पैदा किया है। इसके अस्तित्व का एकमात्र कारण मानव की मानवीय प्रकृति के प्रति अनभिज्ञता रही है। अधिकांश जनसंख्या अधिकांश-वर्ग की है। यही वर्ग सभी के सुख एवं सुविधा की प्रमाणात् करता है।

धोबेन समाज की पूर्णतः साम्यवादी रंग पर संपठित करना चाहता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने संपठन-स्वरूप सहयोग समितियों की स्थापना की। इनमें सरनाटक और जनमोक्षा दोनों थे। इसी प्रकार दूसरा संपठन, अम बाजार का था। इन बाजारों में बस्तुओं का विनिमय उनके उत्पादन में लगे अम के घंटों के आधार पर होता था। विनिमय की सुविधा हेतु 'अम के नोट' भी प्रचलित किये गये थे, जिनकी कीमत अम के घंटों में छठी थी। यह योजना सफलभूत नहीं हो सकी। इसी योजना को प्रुषों ने 'विनिमय बैंक' के रूप में अनायास।

कुछ विचारकों का कथन है कि धोबेन अपने जीवन-काल में विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सका। उसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक पटीक्षण 'न्यू लानार्क मित्र' का था, जिसने कि संसार का ध्यान अन्धी धार अर्कदित किया था। लेकिन जब उसने अपना सम्बन्ध धीरोगिक जगत् से तोड़ा और सामाजिक परिवर्तनों के लिए एक मुबारक की शक्ति कार्य किया तो उस अक्षयताओं का अनुभव करना पड़ा। जब कि एमर्सन (Emerson) ने धोबेन से पूछा कि धारके शिष्य कीन हैं? किनके व्यक्तियों में धारके विचारों को अनायास है? कीन धारके बाह्य धारके विद्यार्थी की कियत्कर बन देना तो धोबेन का उत्तर था 'एक भी नहीं।'

किन्तु सोवियत का यह मूल्यांकन सचित नहीं है। उसकी भूमों एवं योजनाओं की प्रसफुलताओं के होने पर भी उस प्रसाधारण व्यक्तित्व ने विश्व की सामाजिक चिन्तनधारा को बड़ा प्रभावित किया था। उसका यह बोधोत्प्रेरक कि आधुनिक सामाजिक जाँचा सम्प्राप्य बेकापी धीर बर्बादी के लिए उत्तरदायी है, उसका यह बत देना कि सामाजिक मुक्त मानवीय प्रगति का धारक है, उसका यह साधक कि सामाजिक प्रसाधारण चरित्र की बहुत प्रभावित करता है, धीरे उसका यह ठकें कि सामान्य बर्बाद के लिए सम्प्राप्ति के उत्पादन एवं विवरण में सभी सहयोग करते हैं, धारि विचारों ने भावी पीढ़ी पर अपनी गहरी छाप सजाई। सचमुच विश्व व्यक्तियों ने समाजवादी सङ्घर्षों तथा ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में भाग लिया धीरे जिन्होंने धिगु-प्रतिधारा धमिक-कातून धीरे धेल-मुबार धारि कार्यों में अपनी विमत्सली प्रवृत्ति की, उनके लिए सोवियत का स्वाद, वपत्सा एवं सचक समय मेरसुसमक सिद्ध हुई।

### चार्ल्स फूरिये ( Charles Fourier )

( १७३२-१८३७ )

फूरिये एक फ्रांसीसी समाजवादी विचारक था। उसका जन्म १७३२ में फ्रांस में हुआ था। अपने प्रमा जीवन एक बरह के रूप में धारण किया। उसके मानव को इस बटना से बड़ा धाधान पहुँचा कि हजारों टन चावल समुद्र में इसलिये फेंक दिया गया क्योंकि उसे कम मूल्य पर नहीं बेचा जा सकता था। उसने फ्रांस में सङ्घर्षों धाम्नीसतन का समर्थन किया था किन्तु उसने धार्मिक सामाजिक राजनीतिक एवं नैतिक धम्यबन्धा की धोर मित्ता की की की क्योंकि समाज इससे अनीहित था। गरीबी, सामाजिक प्रसमानता, गृह धीरे कौटुम्बिक धीपन की निरधमता इन धम्यबन्धा की ही धेल की।

फूरिये एक मुरर धनीधक धीरे सत्तार के उधनीति के ध्य-नीधरों में से था। अपने फ्रांसीसी राष्ट्र-जाति की पराधय के उरधम फ्रांस में फेनी धोबेबादी सट्ट बाकी धीरे धीरे ध्याबनायिक मनोदृष्टि का बड़ा नान विरल किया था। उसका बपन था कि किसी समाज की स्वाधीनता का धनुमान उस समाज की धिधरों की स्वर्तबता त सभाया जा सकता है। अपने सामाजिक विचार के सम्पूर्ण इतिहास की धार पुनों में धिनल किया था—बायन, बर्बर, गिदु सत्तारमक धीरे धम्य। उसका बहना था कि बर्बर पुन में, 'जो पाप धाधारण धंग प्रकाश्य कन से हुमा करते हैं, वे सभी धम्य पुन में भी होते हैं, किन्तु उन पर सभ्यता का धाधारण

रहा है, पाकएडपूर्ण बीकन का मह्य परवा पड़ा रहता है ।” उसके मत में सम्यता अपने ही अन्तर्बिरोधों की परिधि में अकसर काट रही है, और बिन अन्तर्बिरोधों को बह समाप्त करना चाहती है उनका बार-बार प्रकटीकरण होता रहता है । इस प्रकार बितने भी सामाजिक परिवर्तन हुए हैं उनके फल अपने व्यक्तिगत सभ्य के विपरीत सिद्ध हुए हैं । उदाहरणार्थ, फूरिये ने कहा था कि “सम्य युग में आवश्यकता से अधिक उत्पादन से निर्बन्धता का जन्म हुआ है ।” उसने उन्मुखाद के आचार पर यह सिद्ध किया कि प्रत्येक युग में उत्पादन-मत्तम की दो अवस्थाएँ आती हैं । इसी आचार पर उसने भविष्यवाणी की कि एक दिन मनुष्य-जाति का भी अन्त ही आया ।

फूरिये ने आदर्श समाजों की एक योजना बनाई थी जिसमें उसने समस्त मानवता को छोटे-छोटे समुदायों में बाँट दिया था । उसने इन समुदायों को ‘फैलान्ग’ (Phalange) की संज्ञा प्रदान की थी । उसके मत में, ऐसे प्रत्येक समुदाय की संख्या १६०० से २००० तक होनी चाहिए और बार-बार व्यक्तियों की एक पारिवारिक इकाई हो । काम के अति कम होने चाहिए और आय का प्रमुख स्रोत कृषि हो रहे । ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि कम-से-कम इतना अया प्रत्येक परिवार को अवरय मिले कि वह अपना जीवन-यापन महीमाँति कर सके । जो व्यक्ति निम्न श्रेणी का कार्य करें उन्हें अधिक पारिवारिक मिले । सामुदायिक काम के सम्बन्ध में फूरिये का कहना था कि एक निश्चित अनुपात के अनुसार इनको समस्त परिवारों में बाँट दिया जाये । उसने इन समस्त बगों में अधिक-वर्ष की ही प्रथानता दी थी ।

फूरिये ने रातनीतिक राज्य के पुनर्जीवन पर विचार नहीं किया था । उसके कल्पानुसार राज्य के अन्त के बाद वैश्विक समुदाय ही सामान्य मामलों की व्यवस्था करेंगे । फूरिये अराजकतावादी नहीं था । वह प्रथानता सहकारवादी था । उसने व्यक्तिवाद और पितृवाद दोनों को अस्वीकार किया । यद्यपि फूरिये न तो अराजकतावादी था और न साम्यवादी, किन्तु फिर भी उसके विचार पूँजीवाद के अनुषों को बड़े सामकारी सिद्ध हुए । ‘यज्ञाभ्यन् नीति’ में आलोचकों ने उसके दर्शन से अनेक तर्कों को ग्रहण किया । समाजवादियों ने उसके अम सम्बन्धी दृष्टिकोण को अपनाया । निस्सन्देह उसके विचारों का ऐकटरी कायून और स्वाम्ब-सम्बन्धी मुधारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा ।

## प्रुथों ( Proudhon )

( १८०६-१८६२ )

प्रुथों 'अराजकतावाद का पिता' माना जाता है। उसका जन्म १८०६ में हुआ था। वह पत्रकार और असीसी संवैधानिक सभा का सदस्य था। वह मार्क्सवाद के प्रमुख धामीबनों में से था। उसका कथन था 'समृद्धि शक्ति-शासी द्वारा बहिष्कृत का शोषण है। साम्यवाद बहिष्कृत द्वारा शक्तिशाली का शोषण है। "साम्यवाद क्रास्यनिक है। जब कभी साम्यवाद के साधु करने का प्रयास किया जाता है तो उसका परिणाम समृद्धि के एक सभाक में होता है। मैं साम्यवाद का विरोधी हूँ क्योंकि मैंने कसना का परिव्याग कर दिया है और समाजवादी मनी इसके बसोमुठ हूँ।' प्रुथों साम्यवाद को बुद्धिमत् के साथ कुछ बेमेल-सा मानता था। "यह विज्ञान नहीं है, अफिनु विज्ञान का फिनाश है। यह शिष्टाण और संगठन के एक सुन की मासुम करने में असमर्थ रहा है। यह अमुण-ग्राहक, अस्मिन्धी एवं अज्ञात है। यह कुरीति का बने है। हमने अपने विचार अति प्राचीन, रहस्यमयक अमरमिठ अमिदिधत और अपरिभाषित परम्पराओं से ग्रहण किये हैं। साम्यवाद का अर्थ सर्वत्र और सर्वत्र सुख के समाव से है।" मार्क्स ने भी प्रुथों की बटु धामीबना की थी। उसने उसे 'पूर्ण और बेकार' से सम्बोधित किया और उसके पुस्तक फिसासपी धौक पावर्टी ( Philosophy of Poverty ) की 'पावर्टी धौक फिलानथी ( Poverty of Philosophy ) की संज्ञा दी थी।

प्रुथों का अर्थन शिष्टाणवादी था। वह समृद्धि के शिष्टाण में विश्वास करता था। उसका कथन था कि पूर्ण प्रजातंत्र पुंकीपठियों को असा-बिहीन किये बिना सम्भव नहीं है। वह एक गरम समाजवादी था। उसका सत्य धार्मिक पुनर्नि-माजन एवं निर्वन्धन द्वारा वर्ग हीन समाव की प्राप्ति था। उसके विचारों ने प्रथम एवं द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ का भी प्रभावित किया था। किस्किह वह अमानता, स्वतंत्रता और अमिनों की अविप्यसम्बन्धी समस्यार्थों का महान् शिष्टा-णक था।

एक अत्युक्त क्रास्यनिक समाजवादियों की शिष्टाणारा ने अनीसरी अण्यपी के समाजवादियों को बहुत काल तक प्रभावित किया। एंगेल्स और अर्थ के सभी समाजवादी अनी ने प्रेरणा सेते से और इन्हें ही अमना सुन मानते थे। अमनी की आरम्भिक साम्यवादी शिष्टाणारा पर भी इनका अनेक प्रभाव पड़ा। इनके अमुनार

समाजवाद परम सत्य, विवेक धीर श्याम की अभिव्यक्ति है। किन्तु अपने विचारों में मौखिक साम्य पाते हुए भी, ये एकमत नहीं थे धीर न इनके विचारों की प्रथममि बैज्ञानिक ही थी। यद्यपि इन विचारकों ने तरकाशील सामाजिक प्रत्याय की प्रसंगता की थी किन्तु उनके पास न तो सामाजिक विरलेपख की कोई प्रणाली ही थी धीर न संसार से प्रत्याय के उन्मूलनार्थ उसे दूर करने के उपाय ही थे।' अतः वे सभी विचारक 'काल्पनिक विचारक' (Utopian Thinkers) कहे जाते हैं। किन्तु हम इन विचारकों की उपेक्षा नहीं कर सकते। समाजवाद के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। वे भावी चिन्तकों के लिए अनुप्रेरक सिद्ध हुए। इन्होंने समाजवाद की प्रचारित ही नहीं किया, प्रख्युत कार्ल मार्क्स को इनके द्वारा यह सुन्वर एवं झूठी सामग्री उपलब्ध हुई थी उसके विचारों की प्रचार भूमि बनी।' कार्ल मार्क्स ही सर्वप्रथम ऐसा विचारक था जिसने समाजवादी विचारधारा को वैज्ञानिक बन प्रचल किया।' 'उसने समाजवाद को एक पर्यन्त के रूप में पाया धीर उसे एक प्राचीनतम के रूप में छोड़ा।' उसने इसे वर्तन एवं निर्देशन का रूप प्रचल किया धीर उसके द्वारा यह एक विरलसंघटन बन

1 "The Utopianism of Owen, Fourier and Saint Simon was but devoid of historical perspective and largely unaware of economic process. Almost no attention was paid to the mechanics of change- it was confidently expected that persuasion and example would suffice" (Wasserman)

2 "They voiced those irrational longings of the empty soul from which so much of the driving force of socialism comes. They provided him with many a useful brick and too! They popularised the idea of a socialist society They elaborated the labour theory of value" (C. L. Wayer)

3 "Marx, then, is the first socialist writer whose work can be termed scientific He not only sketched the kind of society which he desired but spoke in detail of the stages through which it must evolve" (C. E. M. Joad)

4 "He found Socialism a conspiracy and left it a movement" (Wasserman)

गया। मार्क्स का वर्ग-विहीन समाज का सपना कल्पना पर आधारित न होकर वास्तविक एवं ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित था। इसी कारण मार्क्स की विचारधारा को 'वैज्ञानिक समाजवाद' की संज्ञा प्रदान की गयी है। कार्ल मैटिन का कथन है, "मार्क्स के वर्गों में पूर्ण सम्बन्धता है। स्वयं बहु सम्बन्धता इसलिये है क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति कार्यक्रम की आधार नीति का वर्ग-वर्ग का सिद्धान्त है; वर्ग-वर्गों की आधारभूत इतिहास की प्राथमिक मूल्य का प्राथमिक सिद्धान्त है, प्राथमिक सिद्धान्त स्वयं मार्क्स-वैज्ञानिक का वर्ग या इतिहास है और यह आधारित है भौतिकवादी दृष्टिकोण पर।"

### कार्ल मार्क्स (Karl Marx)

(१८१८-१८८३)

मैक्सी (Maxey) का कथन है कि ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में संघर्ष से लिखना बड़ा कठिन है, जिसे एक और प्रसंग्य तक देख-सुन्य समझते हैं और दूसरी ओर सातों व्यक्ति के रूप मानकर बूझा करते हैं। कार्ल मार्क्स के सम्बन्ध में विष्णुका से कुछ कहने का सर्व प्रथम अर्थना करना होना क्योंकि जो व्यक्ति मार्क्सवादी संघर्ष में पूजा करते हैं वे एक ओर प्रतिस्पर्धावादी कर्तव्य और जो व्यक्ति मार्क्सवादी संघर्ष को पूजा करते हैं प्रथम उससे प्रार्थना करते हैं वे एक साम्यवाद या साम्यवाद-सहजमुक्ति की संज्ञा देते। ऐसे व्यक्ति को, जिसके विचारों से संसार को दो प्रतिस्पर्धी क्षेत्रों में विभक्त कर दिया है, उपेक्षा

- 1 "Through him it acquired a philosophy and a direction Through him, also, it became an international organisation laying continuous emphasis upon the unified interest of the working classes of all countries." (Laski-Communism)
- 2 "The Marxian Philosophy is a coherent whole. It is massive because revolutionary action is built upon class-war theory the class-war upon the economic theory of surplus value, this economic theory upon the economic interpretation of history- this interpretation upon the Marx-Hegelian logic or dialectic and this upon a materialistic metaphysics." (George Catlin)

करना भी स्वातंत्र्यगत नहीं होगा। अतः ऐसे विचारक के सम्बन्ध में विचार करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम भावना-बिहीन होकर उसे समझने का प्रयास करें।

मार्क्स का जन्म ३ मई १८१८ में प्रशा प्रांत के ट्रीर शहर में एक सुखी मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। इनके पिता बकील थे और ऐसे यहूदी थे जिन्होंने मार्क्स के जन्म के ६ वर्ष बाद ईसाई धर्म के प्रोटेस्टेंट मत को अपनाया था। उनकी माँ का जन्म एवं पालन-पोषण हल्लिएड में हुआ था। वह कट्टर धार्मिक महिला थी। मार्क्स ने त्रियेर की पाठशाला में पढ़ने के उपरान्त, बोन और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई। यद्यपि वह कानून पढ़ता था किन्तु उसका अधिकतर समय इतिहास और दर्शन के अध्ययन में ही व्यतीत होता था। उसमें उल्फोर्ट की बौद्धिक प्रतिभा थी। वह असाधारण प्रौढ़ छत्र था, जिसकी प्रतिभा के सम्बन्ध में उसके अध्यापकों ने कहा था, 'वह उन अनुभूत छात्रों की पूर्ति करेगा जिनका धीरिय उसकी समता द्वारा सिद्ध होता है। १८४१ में विश्वविद्यालय की शिक्षा के बाद मार्क्स ने शोध-कार्य प्रारम्भ किया। उसका शोध विषय था Epicure's Philo-Sophy। मार्क्स अपने छात्र-जीवन में ही हीगेल के 'मादरशवार' से प्रभावित हुआ था और वह बर्लिन में ब्लोबायर धारि क साक्ष प्रगतिशील हीमेसर्पियों में से था। मार्क्स ने स्नातक होने के उपरान्त विश्वविद्यालय में प्रोफसर होने की बात सोची, किन्तु सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति ने उसे पत्रकारिता को अपनाने के लिए विवश कर दिया। १८३२ में सरकारी प्रतिक्रियावादी नीति का स्पुडविन फायर बाब भी शिकार हुआ था और फसत उसे अध्यापक-पद छोड़ना पड़ा था। फायरबाब की विचारधारा से मार्क्स प्रभावित था, जैसा कि एमेस ने लिखा था, 'हम (मार्क्स सहित सभी प्रगतिशील हेगेसर्पयी) शीघ्र ही फायरबाब के अनुयायी हो गए।' कोलोन में 'राइनिश जार्नल' (Rheinische Zeitung) नामक पत्र का मार्क्स १८४२ में प्रधान सम्पादक हो गया, किन्तु सरकारी हस्तक्षेप के कारण १८४३ में उसे बन्द कर देना पड़ा। इस पत्रकारिता के जीवन में मार्क्स इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसे अभी धर्मशास्त्र का समुचित ज्ञान नहीं है। अतः वह धर्मशास्त्र के अध्ययन में लग गया।

१८४३ में मार्क्स ने डायल्लाब में जेनी फॉन बेस्ट फावेन से विवाह किया। जेनी उसकी बचपन की मित्र थी और कुलीन परिवार की थी। उनका बड़ा भाई



प्रथा सरकार में गृहमंत्री था। सितम्बर १८४४ में मार्क्स की पेरिस में एंथोनी से मेट हुई और उसी से दोनों अनिष्ट मित्र हो गये। दोनों ने पेरिस के कम्युनिस्ट वर्कों के कामों में सक्रिय भाग लिया। मार्क्सने प्रूबों की विचारधारा से जिसका अर्थ में विरोध प्रभाव था वहमेद प्रकट किया। उसने प्रूबों की रचना किया 'सर्वे प्रॉफ पावर्टी' (Philosophy of Poverty) को 'पावर्टी प्रॉफ फिलासफ़ी' (Poverty of Philosophy) की संज्ञा प्रदान की। उसने निम्न-मध्यम वर्गीय समाजवाद के विभिन्न सिद्धांतों का विरोध करते हुए कम्युनिस्टिक समाजवाद (Revolutionary Proletarian Socialism) के सिद्धांतों एवं नीति नीति का प्रतिपादन किया। १८४२ में मार्क्स को पेरिस से निर्वासित होना पड़ा। १८४७ में मार्क्स और एंथोनी संघ में कम्युनिस्ट लीग (Communist League) के सदस्य हो गये। नवम्बर १८४७ में इस लीग के द्वितीय परिशेष में दोनों ने भाग लिया। कम्युनिस्ट लीग ने मार्क्स से संकलन के लिए एक घोषणापत्र तैयार करने को कहा। फलतः मार्क्स और एंथोनी ने प्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' (Communist Manifesto) को तैयार किया जो

१ उसके प्रकाशन के समय इसे सोशलिस्ट घोषणापत्र का नाम इस नहीं दे सकते थे। १८४७ में ही उसके सोप सोशलिस्ट कहलाते थे। एक तरह की वे तरह-तरह के बहानावादी व्यवस्थाओं के अनुयायी, जैसे रॉबिन्सन के प्रोबेन-पपी और अर्थ के फूरियेवादी। वे दोनों पढ़ते करते उस समय बुद्धि के रूप में यह कहे से और मर्यादात्मक हो रहे थे। दूसरी ओर वे तरह-तरह के सामाजिक नीति-हकीम, जो पूर्वी और पुनाके को बरा भी वति पहुँचाने बिना ही तरह-तरह के अर्थ प्रकृतित रामबाणों और तरह-तरह के जोड़-टोड़ों के द्वारा सामाजिक दुख-दुखों का अन्त कर देना चाहते थे। वे दोनों ही तरह के लीग मजदूर-आन्दोलन से बाहर थे और वे अन्तर्गत के लिए 'सिद्धि' बर्ष की ओर टकटकी लगाते थे। किन्तु मजदूरवर्ग का वह हिस्सा जो राजनीतिक अन्ति को ही पपति नहीं समझता था और समाज के बुनियादी पुनर्निर्माण की मग करता था उस समय अपने को कम्युनिस्ट कहता था 'गोफि इस कम्युनिज्म की तररेखा अभी अस्पष्ट केवल आदर्शमक और कुछ सीझि-सी थो।' १८४७ में सोशलिज्म पूर्वीवादी आन्दोलन था और कम्युनिज्म मजदूरवर्ग के आन्दोलन का सूत्र था। कम-से-कम योरोप में सोशलिज्म को धारण की दृष्टि से देखा जाता था और कम्युनिज्म को अन्तर्गत को दृष्टि से और बुद्धि हनायी गहने से ही यह पथी बारणा बन गई थी कि

फरवरी १८४८ में प्रकाशित हुआ। किन्तु इसके साधारणभूत सिद्धान्त की रचना का श्रेय मार्क्स को ही है वैसे कि एंगेल्स ने कहा था, 'बुकि 'घोपछापत्र हम दोनों की सम्मिश्रित कृति है इसलिये यह बतला देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि उसके केन्द्रीय आधारभूत सिद्धान्त की रचना मार्क्स ने ही की थी। इसका महत्व इसी से समझा जा सकता है कि इसका अनुसार सत्तार की सभी मायाओं में हो गया है। सास्की ने कहा था कि इसने प्रथम बार सर्वहारा की चेतना को जागृत किया। यह उन सब व्यक्तियों की रचना है जिन्होंने एक विशिष्ट रूप से इतिहास की समस्त पद्धति पर विचार किया और उसमें से अनिर्धार्य परिणाम का अन्वेषण किया। कम्युनिस्ट घोपछापत्र साम्यवादी अर्थ की बाती एवं प्रेरकशक्ति है। यह मार्क्स की प्रतिमा, उसके विचारों की स्पष्टता एवं मनीन कल्पना की अभिव्यक्त करता है। यह बतलाता है कि मतिभूतक अन्तर्भाव विकास का सर्वव्यापक एवं आधारभूत सिद्धान्त है। यह वर्म-सर्वर्ष के एक नवीन समाजवादी समाज की रचना तथा यमिकों की ऐतिहासिक क्रान्तिकारिणा का सृष्टीकरण करता है।

१८४८ की क्रांति के समय मार्क्स बेरुनियम से निकल गया। इसके बाद जर्मनी और पेरिस से भी उसे निकलसित होना पड़ा। अन्ततोगत्वा इस महान् विचारक को अपने जीवन के शेष दिन लंदन में बिताने पड़े। वह 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' (New York Tribune) का संचालकता भी रहा। किन्तु १९११ में प्रकाशित मार्क्स और एंगेल्स के पत्र-व्यवहार से मालूम होता है कि उसका पारिवारिक जीवन बड़ा कष्टपूर्ण रहा। सम्भवतः मानव इतिहास में सर्वाधिक विषम दार्शनिक नहीं था। उसके जीवन में ऐसे भी दिन आये जब उसके पास न खाने को घस या और न पहिने को कपड़ा। बन्ध से वह रखा जा रहा था। यदि एंगेल्स ने दांति उठा कर उसकी आर्थिक सहायता न की होती तो वह भूखों मर जाता। ऐसी घोर दरिद्रता में भी वह निरबस भाव से अपनी साधना में रत रहा। वह ब्रिटिश मूत्रियम के पुस्तकालय में दिन भर अध्ययन किया करता था। मार्क्स लंदन में २८ सितम्बर १८९४ को स्थापित अन्तर्गण्ट्रीय यमिक संघ था, जो बाद में प्रथम अन्तर्गण्ट्रीय संघ (First International Union) के नाम से विख्यात हुआ, प्राप्त था।

'मजदूरवर्ग का उदार स्वयं मजदूरवर्ग ही कर सकता है' इसलिये इन दोनों में से कौन सा नाम हम अपने लिए चुनें इसमें कोई द्विचिकिषाहट नहीं हो सकती थी और उसके बाद इस नाम को बदलने की जरूरत हमें कभी महसूस नहीं हुई।

(कम्युनिस्ट पार्टी का घोपछापत्र)

२ दिसम्बर १८८१ को उससे परी जेनी की मृत्यु हो गई। माक्स का स्वास्थ्य भी खराब हो गया था, क्योंकि उसे प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संघ के लिए प्रबन्ध परिष्कृत करना पड़ा था और 'कैपिटल' के सिद्धांत में भी अनेक मायावी को छोड़ना पड़ा था। उसकी मृत्यु १४ मार्च १८८३ को हो गई। १७ मार्च १८८३ को कार्ल मार्क्स की समाधि पर एंसेल् ने अपनी व्याख्यान प्रवृत्ति करते हुए कहा था, "इस मनुष्य की मृत्यु से योरोप और अमेरिका के कुठरत सर्वहारा वर्ग और ऐतिहासिक विज्ञान की अन्तर्गत हानि हुई है। जिस प्रकार सजीव प्रकृति में जीवन के विकास के नियम की खोज की थी, वैसे ही मार्क्स ने मानव-इतिहास में विकास के नियम की खोज की थी। इसने उस साधारण-सी बात का अन्वेषण किया जो अब तक शैक्षणिक ज्ञान से छिपी हुई थी—कि राजनीति, विज्ञान, धर्म, कला आदि को अन्तर्गत करने से पूर्व मानव-जाति के लिए आत्म-विकास के पहिलगा और पर में रहना आवश्यक है। किसी भी रूप में समाज के आर्थिक विकास की संश्लेषण ही वह आधार मिति है जिस पर राजकीय संस्थाएँ, न्याय-सम्बन्धी कानून, कला और यहाँ तक कि व्यक्तियों के आर्थिक विकास भी पनपते हैं। मार्क्स ने मिति के उस विशिष्ट निबन्ध का अन्वेषण किया जिससे अन्तर्गत की पूर्णवारी प्रकृति और इस प्रकृति से पैदा पूर्णवारी समाज दोनों ही नियंत्रित हैं। ऐतिहासिक दृश्य की खोज ने उस समस्या की प्रकृति विज्ञान विज्ञान के हस्त में पूर्णवारी अन्तर्गत और समाजवारी आलोचक दोनों ही संस्कार में मटक रहे थे। सर्वप्रथम अन्तर्गत-वर्ग की माक्स ने ही उनकी स्थिति और आन्तरिकताओं के प्रति संवेत किया और बताया कि किस परिस्थितियों में वे विमुक्त हो सकते हैं। मार्क्स अपने युग का सर्वाधिक साक्षित एवं प्रतापित व्यक्ति था। एक सत्तावारी और दूसरी जनवारी सरकारों ने उसे अपने राज्यों से निष्कासित कर दिया था। अब वह इस संसार में नहीं है। आमेरिका की आत्मा से बेकर कैलिफोर्निया

राइट्स ( An Introduction to the Criticism of Hegel's Philosophy of Rights ) १८४४ ।

( २ ) दि होली फॅमिली ( The Holy Family ) १८४३ ।

( ३ ) पावर्टी ऑफ फिलासफी ( Poverty of Philosophy ) ।

( ४ ) कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो ( Communist Manifesto ) १८४८ ।

( ५ ) क्रिटिक्स् ऑफ पॉलिटिक्स इकोनॉमी ( Critique of Political Economy ) १८३६ ।

( ६ ) लेटर्स ऑफ गोथा प्रोग्राम ( Letters of Gotha Programme ) १८७३ ।

( ७ ) दि कैपिटल ( The Capital ) प्रथम खण्ड १८६७ ।

( एंकेस द्वारा त्रितीय एवं तृतीय खण्ड १८८३, १८८४ में प्रकाशित ) ।

## II माक्स की प्रेरक शक्तियाँ

माक्स पर उत्पत्ती की तीन विचार-बाराओं का विशेषतः प्रभाव पड़ता—( १ ) हीगेल का इन्डुवाद, ( २ ) ब्रिटेन का अर्थशास्त्र ( एडम स्मिथ और रिकार्डों आदि ) और ( ३ ) फ्रांस का कास्मनिक समाजवाद । माक्स इन तीनों विचार बाराओं से प्रभावित तो अवश्य हुआ, किन्तु उसने इन सिद्धान्तों को पूर्णतः ग्रहण नहीं किया । इसके विपरीत उसने इन तीन विचारबाराओं को पूर्णतः प्रभाव दिया । उसने हीगेल के इन्डुवाद को तो अवश्य ग्रहण किया, किन्तु उसके कास्मनिक स्वरूप को स्वीकार नहीं किया । माक्स ने हीगेल के विचार-तरंग के स्थान पर भौतिक तत्व की प्रतिष्ठा की । इसी प्रकार माक्स ने उत्पत्ती की ब्रिटेन अर्थशास्त्र की पुँजीवाद के विश्लेषण में सहायता सा । ब्रिटेन के अर्थशास्त्रियों का ( प्रमुखतः रिकार्डों ) का कथन था कि कोई भी वस्तु केवल धन द्वारा ही उपयुगी होती है । यह जॉन लॉक ( John Lock ) की दृष्टि थी । लॉक के इस सिद्धान्त को रिकार्डों ने उत्पत्ती की अर्थशास्त्र पर लागू किया । माक्स ने रिकार्डों के इस विचार को ग्रहण कर उत्पत्ती की अर्थशास्त्र की व्याख्या की । किन्तु माक्स ने जिस प्रकार हीगेल के इन्डुवाद को नहीं कर प्रभाव दिया था उसी प्रकार अर्थशास्त्रीय नियम का भी नवीनीकरण किया । उसने इस नियम द्वारा पुँजीवाद की आन्तरिक अंतर्घटियों ( Inner Contradiction ), पुँजीवादी संघर्षों तथा धनिक एवं पुँजीपति के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया । माक्स फ्रांस के समाजवादियों से भी प्रभावित हुआ । वह कान्ट तथा बर्त-सर्पर के सिद्धान्तों को लिए इनका श्रेणी

बा। इन समाजवादियों के सम्बन्ध में हम पहले प्रकार बात चुके हैं। इन समाजशास्त्री विचारकों की चारणा थी कि भौतिकवादी दृष्टि ने लचील उद्योग शर्तों को स्थापना की है। इससे विज्ञान और उत्पादन में वृद्धि हुई है और मानव समाज आज प्रगति कर रहा है, किन्तु आज समाज में जो बेरोजगारी और भ्रमियों की हव स्थिति है, उसका मूलमूल कारण वितरण-असमता का दोषपूर्ण होना है। मार्क्स ने इन समाजवादियों की सभी बातों से सहमति प्रकट की, किन्तु बेरोजगारी और भ्रमियों की वैश्व-स्थिति का मूल कारण वितरण-असमता की अपेक्षा उत्पादन-शक्ति का बोझी होना बताया। उसने कहा कि वितरण-व्यवस्था की आधार-भित्ति उत्पादन प्रणाली है। उत्पादन की शक्तियों पर अन्य पूर्वी-शक्तियों का एकधिपत्य है। वे उत्पादन जन-हित की भावना की अपेक्षा स्व-हित भावना से करते हैं। जब तक उत्पादन के साधनों का समानिकरण नहीं होता तब तक सबूर वर्ग नामा भ्रमियों का शिकार होता ही रहेगा। मार्क्स ने निम्नलिखित तथ्यों को सिद्ध किया—

( १ ) उत्पादन-असमता के अनुकूल ही वर्गों की उत्पत्ति होती है। बाघ और सामान्य पुरों में वैसी उत्पादन-व्यवस्था थी वैसी ही वर्गों की उत्पत्ति एवं संघर्ष रहा। पृथ्वीवर्ती युग में भी उत्पादन-व्यवस्था के अनुकूल ही वर्ग-सृष्टि और संघर्ष हुआ।

( २ ) वर्गों में परस्पर संघर्ष होना अनिवार्य है और यह वर्ग संघर्ष सर्वहारा की अभिनायकताही का मार्ग प्रशस्त करता है।

( ३ ) सर्वहारा का अभिनायकत्व संक्रमणकालीन होना। इसमें केवल एक वर्ग रहेगा और वह भी सर्वहारा का हीगा। अन्य वर्गों का घनघन हो जाएगा और एक वर्ग एवं राज्य विहीन समाज की सृष्टि होगी।

### III **द्वन्द्ववादी दार्शनिक विचार** ( Dialectical Materialism )

द्वन्द्ववादी दार्शनिक विचार एक दार्शनिक प्रणाली ( Methodology ) है जो हमें उन दार्शनिक नियमों का ज्ञान कराती है जिनके अनुसार इस भौतिक जगत् का विकास होता है, इस भौतिक जगत् के रहने वाले प्राणियों का विकास होता है और उनके विचारों में स्फूर्ति होता है। द्वन्द्ववादी दार्शनिक विचार इस

1 "The value of the Commodity depends on the relative quantity of labour necessary to its production" ( Ricardo )

अणु की गति ( Motion ) के नियमों की व्याख्या करता है । "यह अणु-तमक भौतिकवाद इसलिए कहलाता है कि प्राकृतिक घटनाओं को देखने, परखने और पहचानने का इसका ढंग अणु-तमक है तथा इस प्राकृतिक घटनाओं की इसकी व्याख्या, बनना और सिद्धान्त-बिबचना भौतिकवादी है ।" मार्क्स के अणु-तमक भौतिकवाद पर हीबेल की स्पष्ट छाप है । स्वयं मार्क्स ने बड़ा होकर प्रकृत्यक्षय से हीबेल के उपकार को माना था और कहा था कि मैंने हीबेल के अणु-तमक सिद्धान्तों को अपनाया था । "परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मार्क्स और एंगेल्स के अणुवाद का वही अर्थ है जो हीबेल के अणुवाद का था । वास्तव में मार्क्स और एंगेल्स ने हीबेल के अणु से वह सार-तत्व से लिया था जो 'बुद्धिसंपन्न' था और उसका भाग्य इस तरह बिकास किया था कि उसे एक प्राकृतिक वैज्ञानिक अर्थ मिला था ।"

हीबेल और मार्क्स दोनों ही इस विचार के थे कि विरोधी तत्वों के संबंध द्वारा ही सत्य की प्रतिष्ठा होती है । किन्तु मार्क्स ने इस सिद्धान्त को विचारों तक ही परिमित न रहकर प्रवृत्तियों ऐतिहासिक घटनाओं में भी इसे लागू किया । मानव इतिहास में जैसे ही एक प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा होती है जैसे ही एक अन्य विरोधरमक प्रवृत्ति का जन्म हो जाता है जो पहली प्रवृत्ति के विकारों को दूर कर उसके स्थान को ग्रहण करना चाहती है । फलतः दोनों

१. मार्क्स नरेन्द्र देव—राष्ट्रीयता और समाजवाद ।

२. "It is Called dialectical materialism because its approach to the phenomena of nature, its method of studying and apprehending them, is dialectical, while its interpretation of the phenomena of nature, its conception of these phenomena, its theory, is materialistic." ( J Stalin )

३. जे. स्टालिन—अणु-तमक और ऐतिहासिक भौतिकवाद ।

४. हीबेल के अणुवाद के सम्बन्ध में मार्क्सवाद का प्रथम दृष्टि ।

५. "Contradiction is the root of all motion and of all life," Hegel wrote, "It is only because a thing contains a contradiction within itself, that it moves and acquires impulse and activity. That is the purpose of all motion and all development."

में समर्पण होता है। यह प्रकृति भी एक विरोधात्मक प्रकृति की जगमगी है। इस प्रकार ताप (thesis) प्रतिताप (antithesis) और संघात (synthesis) के चक्र में घूमता हुआ मानव-इतिहास हमारा विकासोन्मुख है।

यद्यपि इन्द्रात्मक प्रणाली के द्वारा ऐतिहासिक समिति होने का विचार हीमेल और मार्क्स दोनों में ही मिलता है, किन्तु मार्क्स का संसार हीमेल के संसार से सर्वथा भिन्न है। यह संसार आदर्शवाद और भौतिकवाद का है। हीमेल के अनुसार बाह्य जगत् (बस्तुएँ) विचार का ही प्रतिबिम्ब मात्र है। यद्यपि हीमेल की दृष्टि में विचारों का ही संसार सच्चा संसार है। किन्तु मार्क्स ने इससे अपनी असहमति प्रकट की। उसने हीमेल के इन्द्रात्मक विकासवाद को मान्यता तो प्रदान की, किन्तु उसके धारणा के सिद्धांत को परिकल्पना का विषय बह कर त्याग दिया और सूक्ष्म स्थापना पर भौतिक तत्व (matter) की स्थापना की। उसके लिए प्रतिबिम्ब के अनुभव का संसार ही सच्चा संसार है। सत्ता के हमें प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो पाते, यद्यपि उसका अस्तित्व एवं सत्ता हमारे लिए कोई महत्ता नहीं रखती। इसके विपरीत भौतिक पदार्थ जैसे मिट्टी, पत्थर, रक्त मांस, मज्जा आदि को हम प्रत्यक्ष देखते और अनुभव करते हैं। यद्यपि वे हमारे लिए स्वयं एवं अस्तित्व हैं। हीमेल के अनुसार भौतिक बस्तुएँ या प्रकृति धारणा ही सत्य हैं, किन्तु मार्क्स की दृष्टि में धारणा मन या मस्तिष्क धारणा विचार की उत्पत्ति भौतिक शरीर से हुई है। विचार से पूर्व प्राणी सत्ता है, क्योंकि विचार मानव के द्वारा और मानव के विषय में ही पैदा हो सकता है। हम बिना किसी बस्तु के बोले या समझें कोई बस्तु नहीं कर सकते। मार्क्स ने कहा था, 'मिट्टी इन्द्रात्मक प्रणाली हीमेल से मूलतः भिन्न ही नहीं है, बल्कि उसके विपरीत विरोधी दशा में है। हीमेल के अनुसार वास्तविक जगत् का निर्माण विस्तार किया की प्रेरक-शक्ति से हुआ है, विचार-रज्जु को विचार-तत्व का नाम देकर वह उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करता है। वह कहता है कि वह 'विचार-तत्व' ही वास्तविक जगत् का निर्माण करता है। हीमेल के लिए बस्तु जगत् विचार-तत्व का बाह्य अन्तर्गत स्वरूप है। इसके विपरीत मैरी दृष्टि के विचार मानव चित्त में प्रतिबिम्बित भौतिक संसार की छोड़ कर और कुछ नहीं है, विस्तार किया में भौतिक-संसार का ही वह अन्तर्गत है। 'हमारे मस्तिष्क पर जो

१ कार्ल मार्क्स - वैपिन (अनुवाद-अ टासिन-इन्द्रात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद)।

शून्य बाह्य जगत् की धारणा पड़ती है वही विचारों द्वारा अस्मिन्मय की जाती है। यह बाह्य प्रकृति और संसार को धारणा ही हमारे अस्तित्व की विचार-समता की धारणा भरिता है। विचारों का स्वयं कोई अस्तित्व नहीं है, वह केवल हमारे विभाग की एक प्रक्रिया है जो बाह्य प्रकृति के द्वारा ही सम्भव हो सकती है। एमिस्स ने लिखा था, 'संसार की एकता उसके अस्तित्व में नहीं है। संसार की वास्तविक एकता उसकी भीतिकता में है। जो दर्शन और सुबोध और विभिन्न विकास से सिद्ध होती है। भूत ( या प्रकृति ) के अस्तित्व की पद्धति का नाम गति है। कहीं भी भूत का अस्तित्व गति के बिना नहीं रहा, न हो सकता है। गति के बिना पदार्थ उठी तरह अचिन्त्य है जिस तरह पदार्थ के बिना गति । यदि हम यह जानने को कोशिश करें कि विचार और चेतना क्या हैं, वहाँ से पैदा होते हैं, तो हमें पता लगता है कि वे मानव-अस्तित्व की उत्पत्ति हैं, और मनुष्य स्वयं प्रकृति की उत्पत्ति है, तथा उसका विकास अपनी परिस्थिति के अनुसार एवं उसके साथ-साथ है। तो यह स्पष्ट है कि मानव-अस्तित्व की उत्पत्ति, अन्त में, प्रकृति की उत्पत्ति है, और शेष प्रकृति से उसका कोई विरोध न होकर वह उससे मिलती जुमती है।' इस प्रकार मार्क्स का दर्शन हीगेल के दर्शन का विकसित अंश है। अने हीगेल के दर्शन को रीपांसन का अंश कर दिया। कैरिगेल की भूमिका में मार्क्स ने लिखा था, कि मैंने हीगेल के दर्शन को सिर ( अस्तित्व या धारणा ) के बल खड़ा पाया, किन्तु मैंने उसे पैरों ( भूत या भीतिकता ) के बल खड़ा कर दिया।' मार्क्स के इस कथन का तात्पर्य यही है कि हीगेल का दर्शन अस्तित्व या और मार्क्स का सीधा। मार्क्स ने हीगेल के अंश दर्शन को सीधा कर दिया।

### द्वन्द्ववाद के नियम (Laws of Dialectic)

लेगिन की पुस्तक 'Notes on Hegel's logic' में इन्द्रवार के १६ सूत्रों का उल्लेख है किन्तु उसके ३ सूत्र ही प्रमुख हैं। हीगेल द्वारा निर्मित इन निम्न सिद्धि ३ सूत्रों को मार्क्स और एमिस्स ने बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लिया है—

(१) मात्रात्मक परिवर्तन से गुणात्मक परिवर्तन और गुणात्मक परिवर्तन से मात्रात्मक परिवर्तन (The law of Transformation of quantity and *quæ* *verba*) इस नियम के अनुसार किसी वस्तु में जो मात्रात्मक परिवर्तन हुआ

1 "I found the Hegelian dialectic standing on its head, I put it down on its feet" ( Karl Marx



करता है उसकी परिच्छति अपनी चरमावस्था पर पहुँचने पर पुनरात्मक परिवर्तन में ही जाती है। मार्क्सवादियों के अनुसार समाज में भी ऐसे ऐसे विस्तर परिवर्तन क्रमिक विकास के फलस्वरूप न होकर धाकस्मिक छद्मों में मार कर होते हैं। ये छद्मों से उनकी दृष्टि में अन्तिमी हैं।

( २ ) विरोधी-समागम ( The law of unity of opposites )— इससे अभिप्राय है कि संसार में कुछ एक स्वभाव में परस्पर विरोधी वस्तुओं का समागम पाया जाता है। उदाहरणार्थ "जो कर्म-सोर के लिए अणु है वही महाजन के लिए बन है।" विजयी बन ( Positive ) और अणु ( Negative ) के दो सोर पूरक-पूरक स्वर्तन पदार्थ नहीं हैं। मार्क्सवादी इस नियम को पूर्वीवादी समाज पर लागू करते हैं। उनके कथनानुसार पूर्वीवादि और अमिक परस्पर विरोधी होते हुए भी परस्पर सम्बद्ध हैं। इन दोनों का जीवन एक-दूसरे पर निर्भर करता है क्योंकि पूर्वीवादि अमिकों के अम के शोषण बिना नहीं रह सकता और अमिक भी अपने अम को बिना बेचे नहीं रह सकते। यही विरोधी समागम समाज को उन्मत्तियोग बनाता है। हेगेल ने इसे द्वन्द्ववाद के सार ( the salt of dialecticism ) की संज्ञा प्रदान की है।

( ३ ) प्रतिषेध का प्रतिषेध ( The law of negation of the negation )— इस नियम के अनुसार विकास की 'बाद' प्रतिषेध और 'संबाध' सम्बन्धी हैं। जब 'बाद' अपने अन्तर्विरोधों के कारण विनष्ट हो जाता है तो वह 'प्रतिषेध' की जन्म देता है। वह 'प्रतिषेध' जो 'बाद' का प्रतिषेध ( negation ) है, 'बाद' के अन्तर्विरोधों को दूर करने का प्रयास करता है। कुछ समय बाद वह 'प्रतिषेध' भी अपने अन्तर्विरोधों के कारण मीग होकर 'संबाध' के जन्म का कारण बनता है। 'संबाध' में 'बाद' और 'प्रतिषेध' की क्रिचित् प्रवृत्तियों का समावेश रहता है। अतः यह प्रतिषेध का प्रतिषेध ( negation of the negation ) है। उदाहरण के लिए, पूर्वीवाद सामन्तवाद का प्रतिषेध है और सामन्तवाद पूर्वीवाद का प्रतिषेध है। इसलिये सामन्तवाद को हम प्रतिषेध का प्रतिषेध कह सकते हैं। इस प्रकार मार्क्स के मत में, " द्वन्द्ववाद ध्यात्मिक विपत्तियों और बाध विरह के विकास के नियमों का विज्ञान है।" बेंगेल का

१. मार्क्सवाद परिवर्तन के पुनरात्मक परिवर्तन के लिए उदाहरण दें-  
द्वन्द्ववाद भीतिवाद की विरोधता के अन्तर्विरोध विन्दु तीन का।

कथन है कि "इन्द्रवाद के हाथ प्रत्येक बात के विकास, मान्योपन, जन्म और मृत्यु का अध्ययन किया जाता है।"

### ॐ इन्द्रात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ

( १ ) इन्द्रात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति ऐसे तत्वों का प्राकृतिक संग्रहण नहीं है जो एक-दूसरे से असम्बद्ध, प्रभावहीन तथा पूर्ण स्वतंत्र हों। वह किसी भी वस्तु को परम (absolute) धर्मीकार करने को तैयार नहीं, बरन् इन्द्रवाद के अनुसार प्रकृति उन समस्त वस्तुओं एवं दृश्यों से मिलकर निर्मित होती है जो परस्पर सम्बन्धित, निर्भर और प्रभावपूर्ण हैं। अतः किसी भी प्राकृतिक घटना को उसके चारों ओर के वातावरण से अलग करके देखा या समझा नहीं जा सकता।

( २ ) प्रकृति में अचिरान गति, प्रतिक्षण नवोन्मेष परिवर्तन और विकास है। उसमें गतिहीनता, स्थिरता, एवं अचल अड़ता नहीं है बल्कि एगोस्त ने कहा था, "सबु-से-सबु वस्तु से लेकर बिराम-से-बिराम वस्तु तक, सफ़ुतम भीष-कीप से लेकर मानव तक समस्त प्रकृति निरन्तर गतिमान् और परिवर्तनशील है, उसकी स्थिति रचना एवं ह्रास के सतत प्रवाह में है।" परिवर्तन अपरिपूर्ण होता है न कि प्रतिक्रियावादी। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि किसी पदार्थ का ह्रास नहीं होता। यह उत्पादन-मरण एक साथ वस्तु है। वस्तुतः प्रकृति की गति बाहे कभी रुतपामी अवका बीपी हो, किन्तु उसका मार्ग अवाच और अचिरान है। जिस वस्तु का उत्पादन और ह्रास जिस रूप में होता है उसी को ध्यान में रख कर प्रकृति का निर्णय किया जा सकता है। इन्द्रात्मक पद्धति वस्तुतः और उसके मोक्षर रूपों को एक-दूसरे से सम्बन्धित, गतिमान् एवं मृदुल ताबद्ध तथा अब उनमें से कुछ का निर्माण और कुछ का निर्माण हो रहा हो, अध्ययन करती है। इन्द्रात्मक भौतिकवाद किसी वस्तु के स्थायी और स्थिर होने तथा उसके मूलभूत कारणों को देवी बताने के सर्वथा विरहीत है।

( ३ ) इन्द्रात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति का विकास-रूप से-से-सीने न हीटर पेचकृत् की घट्टरियों की गति (grooves of a screw driver) देडा-मेडा अदरदार और सतत अर्धवृत्त रेखा के समान होता है। लेनिन के शब्दों में "प्रकृति और उत्पत्ति धरती पूर्व स्थिति को दोहराते हैं, किन्तु एक उच्च स्तर पर। इस उत्पादन की रीति सीपी न हीटर अदर देते हुए उत्तर की ओर

बढ़ती है। उन्मान में दुर्गता एवं बीमापन दोनों होता है, संकटापन्न स्थिति भी घाती है, कमिथियाँ भी होती हैं और वस्तुओं में पुष्पान्मक परिवर्तन भी होवे हैं। उन्मान आन्तरिक विरोधों के फलस्वरूप संघर्षोत्तरान्त किसी वस्तु, नियम या समान के अन्तर होता है। उन्मान प्रत्येक वस्तु या स्थिति के समस्त निजी सम्बन्धों और परस्पर आत्मनिर्मिता के कारण भी होता है। इतिहास पर दृष्टिपात करने से हमें इस प्रकार के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जब कि इन्हीं कारणोंसे नवीन वस्तुओं रथाओं एवं वातावरण में गूठन अंश के उपात्तर होते रहते हैं। इसी प्रकार नियमित रूप से संसार में प्रवृत्ति होती रहती है। विकास के सम्बन्ध में अनेक मत हैं, किन्तु इन्ध्यात्मक प्रवृत्ति के अनुसार विकास के नियमों का अध्ययन करने पर हमें इन्हीं तथ्यों की उपसक्ति होती है।" इन्ध्यात्मक भीतिक्रम के अनुसार, "विकास क्रम में हम अद्वय और अक्रियण परिमाण-सम्बन्धी परिवर्तनों से स्पष्ट और मौलिक गूठन-सम्बन्धी परिवर्तनों तक पहुँच जाते हैं। इस विकास-क्रम में गूठन सम्बन्धी परिवर्तन धीरे-धीरे न होकर इत्थाव, एक क्षणिक से दृष्टी मंत्रित तक अन्तर्गत मार कर शीघ्रता से होते हैं। पहले की गूठान्मक परिस्थिति से दृष्टी गूठान्मक परिस्थिति तक संक्रमण का नाम विकास है। इन्ध्यात्मक प्रवृत्ति की यह बड़ी महत्ता है कि मात्रा-परिवर्तन से उस वस्तु के गुण में परिवर्तन हो पाता है (quantitative accumulation leads to qualitative change)। उदाहरणार्थ जब पानी को गर्म करते हैं तो दिखाई देता है कि पानी के अन्तर तापमान की मात्रा बढ़ती रहती है और एक सीमा बिरोध तक उसमें उन्मान नहीं आता। किन्तु जब तापमान की मात्रा में पर्याप्त प्राधिक्य होने लगता है तो पुष्पान्मक परिवर्तन हो जाता है, पानी अबसने लगता है और वाप बननी शुरू हो जाती है। इसी प्रकार यदि पानी का तापमान अत्यन्त बढ़ता ही जसा वायु और उन्म ऐसी सीमा पर पहुँच जाय कि उसमें तापमान ही न रहे तो पानी बर्फ हो जायगा और पानी में शीतलता के अग्रधिक्य के कारण पुष्पान्मक परिवर्तन हो जायगा। एन्वेष से अनेक ऐसे उदाहरण मौलिक-शास्त्र बीक-शास्त्र और रसायन शस्त्र से दिये से।

(४) इन्ध्यात्मक भीतिक्रम के अनुसार प्रवृत्ति के समस्त बाध रूपों एवं पराधी में आन्तरिक असंगति या (inner contradiction) भी मौजूद हैं। "इन पराधी और रुतों के आन्ध-वत् और अन्ध-गन्ध दोनों हैं; उन्मा घटीव है, तो अन्ध-गन्ध भी, एक अन्ध मरणशील है तो दुर्गता विनाशोन्धुत है। इन दो

विरोधी शक्तों का संघर्ष पुरातन धीरे धीरे मरणशील धीरे विकासोन्मुख निर्वाह धीरे निर्माण का संघर्ष ही—विकास-जग की प्राकृतिक प्रक्रिया है। परिणाम मेर के गुण-में में परिवर्तन होते ही यही प्राकृतिक प्रक्रिया है। प्राकृतिक घसघसियाँ ही विकास या परिवर्तन की शक्त होती हैं। जब एक प्रणाली अपना कार्य कर लेती है तो उसी का अन्तर्द्वेष उसे समाप्त कर देता है धीरे इस प्रकार एक नवीन सामाजिक प्रणाली का जन्म हो जाता है। मानव-समाज की यह प्राकृतिक ही प्रकृतियों में शक्तिता धीरे विकसित करता रहा है। हिंसा पोका धीरे इसप्रयोग उसके आवश्यक तत्व हैं। सेलिग ने कहा था, 'विरोधी शक्तों के संघर्ष का नाम ही विकास है।' शिष्ट का जन्म माता की प्रसव-वेदना बिना नहीं होता। हिंसक शक्ति परिवर्तनको शिष्ट के जन्म की शक्ति समाजकी माँ की प्रसववेदना है। शक्ति साधारण समाज से शक्ति समाज की धीरे धीरे होने के लिए एक प्रतिघात होता है।

## ७. इतिहास की भौतिक व्याख्या

( Materialistic or Economic Interpretation of History )

इस प्रकार इतिहास की भौतिक व्याख्या के अनुसार विश्व के घट परिवर्तन होते हैं उसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएँ भी भौतिक कारणों द्वारा निर्धारित होती हैं। इतिहास की गतिविधियों का नियम करनेवाला वह हीन सा भौतिक तत्व है? मार्क्स की दृष्टि में, वह प्राकृतिक प्रभाव है जिसे अन्तर्-प्रणाली का प्रभाव है। क्या प्राकृतिक प्रभाव मात्र ही भौतिक शक्ति की 'बलुत' मार्क्स से पूर्व भी अनेक ऐसे विचारक हुए थे जिन्होंने इस पर प्रकाश डाला था। परन्तु वे सिद्धांत कि मनुष्यों के ऐसे उनके जीवन के तंत्रों को प्रभावित करते हैं। एपिक्यूरस ( Epicurus ) हारिंगटन ( Harrington ) डालरिंग ( Dalrymple ) मोसर ( Moser ) धीरे गार्नियर ( Garnier ) ने जो इनका विवेचन किया था। वेगट माइमन ने सा पौष्टिकी राज्य शक्ति की एक प्राकृतिक शक्ति की संज्ञा प्रदान की। उसके मन में यह एतन्मूर्ति शक्ति न थी। वृत्तियों ने इस विचार को साकार रखा प्रदान दिया। शिष्टु इन सभी चिन्तकों ने इन

१. मा० स्टालिन—इतिहास की भौतिक व्याख्या।

२. 'Development is the struggle' of opposites ( Lenin )

उठती है। उच्चाल में डूबता एवं भीमापन दोनों होता है, संकटापन्न स्थिति यी जाती है, अस्थिरता भी होती है और वस्तुओं में पुण्यात्मक परिवर्तन भी होते हैं। उच्चाल आन्तरिक विरोधों के फलस्वरूप संघर्षोपरान्त किसी वस्तु, नियम या समाज के अन्दर होता है। उच्चाल प्रत्येक वस्तु या स्थिति के समस्त निजी सम्बन्धों और परस्पर आत्मनिर्मिता के कारण भी होता है। इतिहास पर दृष्टि-पात करने से हमें इस प्रकार के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जब कि इन्हीं कारणों से नवीन वस्तुओं वशाओं एवं बाधाकरण में मूलतः तप के स्थाप्यर होते रहते हैं। इसी प्रकार नियमित रूप से संसार में प्रवृत्ति होती रहती है। विकास के सम्बन्ध में अनेक मत हैं, किन्तु इन्द्रात्मक पद्धति के अनुसार विकास के नियमों का अध्ययन करने पर हमें इन्हीं तथ्यों की उपलब्धि होती है।" इन्द्रात्मक नीतिक्रान्त के अनुसार "विकास क्रम में हम अदृश्य और अदृश्य परिमाण सम्बन्धी परिवर्तनों से स्पष्ट और मौखिक पुण्य-सम्बन्धी परिवर्तनों तक पहुँच जाते हैं। इस विकास क्रम में पुण्य-सम्बन्धी परिवर्तन धीरे-धीरे न होकर हठात्, एक क्षण से दूसरी क्षण तक अचानक मार कर शीघ्रता से होते हैं। "पहले भी पुण्यात्मक परिस्थिति से दूसरी पुण्यात्मक परिस्थिति तक संक्रमण का नाम विकास है। इन्द्रात्मक पद्धति की यह बड़ी महत्ता है कि मात्रा-परिवर्तन से उस वस्तु के पुण्य में परिवर्तन हो जाता है (quantitative accumulation leads to qualitative change)। उदाहरणार्थ जब पानी को धर्म करते हैं तो बिजारी होता है कि पानी के अन्दर तापमान की मात्रा बढ़ती रहती है और एक सीमा विरोध तक उसमें उबाल नहीं आता। किन्तु जब तापमान की मात्रा में पर्याप्त आधिक्य होने लगता है तो बुद्धात्मक परिवर्तन हो जाता है, पानी उबलने लगता है और भाप बननी शुरू हो जाती है। इसी प्रकार यदि पानी का तापमान बराबर रहता ही जमा जाय और उस ऐसी सीमा पर पहुँच जाय कि उसमें तापमान ही न रहे तो पानी बर्फ हो जायगा और पानी में शीतलता के आधिक्य के कारण पुण्यात्मक परिवर्तन हो जाएगा। एतिस्य से अनेक ऐसे उदाहरण मौखिक-शास्त्र नीति-शास्त्र और रसायन शास्त्र से मिले से।

(४) इन्द्रात्मक नीतिक्रान्त के अनुसार प्रकृति के समस्त बाह्य रूपों एवं वशाओं में आन्तरिक अंतर्घटि या (inner contradiction) भी मौजूद है। "एक वशाओं और रूपों के साथ-साथ और अभाव-वश दोनों हैं, उनका अतीत है, तो अभावतः भी एक अंश मध्यस्थीय है तो क्रमवत् विकासोन्मुख है। इन दो

विरोधी शक्तों का संघर्ष पुरातन घोर नवीन, मरणशील घोर विकासोन्मुख निर्माण घोर निर्माण का संघर्ष ही—विकास-क्रम की घान्तरिक प्रक्रिया है। परिणाम-मेव के सुख-भेद में परिवर्तन होने की यही घान्तरिक प्रक्रिया है।” घान्तरिक घसंघर्षियाँ ही विकास या परिवर्तन की भग्मराशी हैं। जब एक प्रणामी घपना कार्य कर सेती है तो उषी का घन्तविरोध उसे समाधिस्थ कर वेता है और इस प्रकार एक नवीन सामाजिक प्रणामी का जन्म हो जाता है। मानव-समाज को यह घन्तविरोध ही घनेक युगों में दृक्मता घोर विरुधित करता रहा है। हिंसा पीड़ा घोर बलप्रयोग उसके आवश्यक तत्व हैं। लेनिन ने कहा था, “विरोधी शक्तों के संघर्ष का नाम ही विकास है।” शिशु का जन्म माता की प्रसव-वेदना बिना नहीं होता। हिंस्र अस्थि परिवर्तनकी शिशु के जन्म की मूतन समाजकी माँ की प्रसववेदना है। अस्थि सभारण्य समाज से नबोदत समाज की घोर अघसर होने के लिए एक अनिवार्य सोपान है।

## ५. इतिहास की भौतिक व्याख्या

( Materialistic or Economic Interpretation of History )

जिस प्रकार इन्द्रायक भौतिकवाद के अनुसार विश्व के घग्य परिवर्तन होते हैं, घसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएँ भी भौतिक कारणों द्वारा निरिधत होती हैं। इतिहास की घतिविधियों का नियम करनेवासा यह कौन सा भौतिक तत्व है ? माकस की दृष्टि में, यह घादिक प्रभाव है किना ज्वादन-प्रणामी का प्रभाव है। क्या घादिक प्रभाव माकस की घपनी ही भौतिक शोत्र थी ? बलुत माकस से पूर्व भी घनेक घने विचारक हुए थे जिन्होंने इस पर प्रकाश डाला था। परल्लू ने निघा था कि मनुष्यों के घेरो उनके जीवन के डंशों को प्रभावित करते हैं। एपीकुरस ( Epicurus ), हरिण्टन ( Harrington ), डालरिप्ल ( Dalrymple ) मोसर ( Moser ) घोर गार्नियर ( Garnier ) ने भी इनका विवेकन किया था। सेण्ट साइमन ने तो काँसोसो राज्य-अस्थि को एक घादिक अस्थि की संता प्रदान की। उसके मन में यह घादनीतिक अस्थि न थी। फूरिये ने इस विचार की साकार का प्रदान दिया। किन्तु इन सभी विधकों ने इस

१ बा० स्थानिक—इन्द्रायक घोर ऐतिहासिक भौतिकवाद।

२ 'Development is the 'struggle' of opposites', ( Lenin )

सिद्धान्त का प्रयोग स्थिर रूप में किया। वे ऐतिहासिक प्रवृत्ति के प्रति पराङ्मुखी बने रहे। कार्ल मार्क्स ही ऐसा वैज्ञानिक विचारक था जिसने इस सिद्धान्त को कमरा विकसित नहीं किया, बल्कि इसे प्रगतिवादी परिप्रेक्ष्य से बेजा घीर घागी विस्तृतघात की आधार-पीठिका बनाया। अब इस सिद्धान्त की मौखिकता का श्रेय कार्ल मार्क्स को ही था।

मार्क्स ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'सर्वशास्त्र की विवेचना' (A Critique of Political Economy) में लिखा था "समाज में व्याप्त उत्पादन-व्यवस्था में लगे हुए मनुष्य निरवधारक सम्बन्धों में प्रवेश करते हैं, जो कि निर्धारित रहते हैं—घराने उनकी मानव-सामर्थ्य पर निर्भरता नहीं है—ऐसे उत्पादक सम्बन्ध जो कि उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास के एक निरवधारक साधन के समानांतर बनते हैं। इन्हीं उत्पादन सम्बन्धों के योग से सामाजिक-धार्मिक ढाँचा निर्मित होता है। यही वह वास्तविक आधार-भूमि है जिस पर वैज्ञानिक तथा राजनीतिक ढाँचे बने हुए हैं और सामाजिक वैश्व के निरवधारक-रूप बनते हैं। भौतिक जीवन में उत्पादन की प्रणाली जीवन की सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक प्रणालियों के सामर्थ्य-रूप की निश्चित करती है।" मार्क्स के इस उद्धरण में तीन बातें विशेषतः उल्लिखित हैं—प्रथम, समाज के राजनीतिक और कानूनी ढाँचे की आधार-भूमि उसका तरासीय धार्मिक ढाँचा होता है। यदि हम किसी युग विशेष की राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व्यवस्था से अवगत होना चाहते हैं तो हमें उसके सामर्थ्य-प्रतिष्ठित धार्मिक ढाँचे की समझना होना। धार्मिक ढाँचे की समझना कर हम जीवन के विविध रूपों को नहीं समझ सकते। द्वितीय, धार्मिक ढाँचा उत्पादन सम्बन्धों के योग से निर्मित होता है। तृतीय, उत्पादन-शक्तियों के विकास की स्थिति पर ही इन सम्बन्धों की निर्भरता है। जिस प्रकार धार्मिक ढाँचा धर्म जीवन के विविध क्षेत्रों—राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक की आधारभूमि है, उसी प्रकार उत्पादन-शक्तियों का विकास भी धार्मिक ढाँचे का आधार-रूप है। बिना उत्पादन शक्तियों के विकास को समझे हम धार्मिक ढाँचे को नहीं समझ सकते। मार्क्स ने एक स्थान पर लिखा था "समर्थ विकास की एक अवस्थाविशेष में समाज के अन्दर उत्पादन की भौतिक शक्तियों की, उत्पादन-सम्पत्ति के उन सम्बन्धों से निर्भरता ही उठती है जिनके भीतर रह कर उत्पादन-शक्तियाँ अब तक कार्यरत थीं। जहाँ वहिने वे सम्बन्ध उत्पादन-शक्तियों के विकास का काम नहीं कर रही उनके लिए शून्यता बन जाते हैं। सभी अन्तिम-कारण का उदय ही जाता है। धार्मिक जीवन से इस परिवर्तन के साथ-साथ

सुनाबिक का मैं समस्त ऊपरों बाँधा दुव्यति से परिवर्तित होता जाता है।" एंगेल्स का कथन था "समस्त सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक क्रान्तियों के अन्तिम कारण न तो मनुष्यों के मस्तिष्क में और न उनके चरम सत्य और ग्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान में पाये जाते हैं बल्कि वे उत्पत्ति तथा विनिमय के ढंगों में ही मिल सकते हैं।" इस प्रकार इतिहास की मौलिक व्याख्या के अनुसार, समाज में जो राजनीतिक या सामाजिक क्रान्तियाँ होती हैं, उनका मूल कारण उत्पादन या वितरण-प्रणाली में परिवर्तन होना है। ये क्रान्तियाँ किसी अमूर्त विचार या भावगत-इच्छा या किसी युवावस्था के कारण नहीं होतीं। इन क्रान्तियों के कारण तात्कालिक आर्थिक बहिर् में मिल सकते हैं। जैसे ही उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन होता है जैसे ही समाजगत राजनीतिक संस्थाएँ, दर्शन, कानून धर्म और कर्मों में परिवर्तन आ जाता है। समाज का समस्त बाँधा एक महीन कसेवर कारण कर लेता है।

किन्तु कुछ विचारक इतिहास को इस मौलिककारी व्याख्या पर आपत्ति करते हैं। प्रो० सेलिगमैन का कहना है कि इतिहास की केवल आर्थिक व्याख्या ही नहीं है अन्तिम एक नैतिक, सौन्दर्य-प्रधान, राजनीतिक आर्थिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या भी है। लाहरी ने भी आर्थिक आधार को ही पूर्ण व्याख्या नहीं मना था। कुछ समाजवादी और बाकर स्टीसन भी इससे सहमत नहीं हैं। सुधारवादी बर्नस्टीन और रैमंड मैकडानल्ड ने भी इसे ठर-सगत नहीं माना। किन्तु मार्क्सवाद द्वारा प्रतिपादित इतिहास की इस मौलिककारी व्याख्या से यह निष्कर्ष निकालना कि केवल आर्थिक तान ही सामाजिक जीवन के विविध रूपों को नियमित करता है और एक सत्ताधीन की भाँति निरम चाहता है मोड़ देता है, बहुत बड़ी भ्रान्ति है। मार्क्स ने विचारों की महत्ता को धंगीकार तो किया, किन्तु प्रयत्नता उसने आर्थिक तान को ही दी थी। एंगेल्स ने इस भ्रान्ति के निवारणार्थ सन् १८८० में अपने पत्रों में कहा था "मैं और कार्ल मार्क्स एशियाई रूप में इस बात के लिए उत्तरदायी हैं कि युवकमण कमी कमी आर्थिक कारणों पर ध्यानरयकता से अधिक जोर देते हैं। अपने विरोधियों के आशयों का सामना करने के लिए हमें यह ध्यानरयक था कि हम उनके द्वारा उपलब्ध किए गये मिश्रण पर विशेष और देते और हमकी इस बात का समय, स्थान तथा प्रसंग न मिला कि हम अन्य कारणों की ठीक-ठीक व्याख्या कर सकते हैं।" 'इतिहास के लिए अन्तिम निरम यथार्थ कारण आर्थिक जीवन बस्तुओं का उत्पादन और प्रजनन है। इससे अधिक पर न धिने जाय दिया है और न मार्क्स ने। लेकिन जब कोई इस कथन



की तीव्र-मोड़ करता है ; और कहता है कि सिर्फ धार्मिक बातें ही एकमात्र तत्व हैं, जो वह धर्म का धर्म करता है। धार्मिक परिस्थिति आधार है; किन्तु ऊपर इन्हीं की कितनी ही बातें धर्म-प्रतियोगिता के राजनीतिक रूप और उनके परिष्कार कानूनी सुधार, और इन वास्तविक प्रतियोगिताओं में भाग लेनेवालों के विचारों में होती प्रतिस्पर्धा—राजनीतिक, वैधानिक दार्शनिक सिद्धान्त, धार्मिक विचार ये सभी ऐतिहासिक संघर्ष पर प्रभाव डालती हैं, और कितनी बातों में भी उनके रूप को निश्चित करती हैं। इस प्रकार मार्क्स ने धार्मिक तत्व को केवल प्रधानता ही थी। जिस युग क्रिष्टोप में उत्पन्न प्रजासत्ता का जो रूप रहा है उसी के अनुरूप ही तत्कालिक सामाजिक इन्हीं का निर्माण हुआ है। वैसी ही संस्कृति, साम्यता, कानून, दर्शन धर्म रीति-रिवाज और रहन-सहन हो गई। जब धार्मिक इन्हीं में परिवर्तन हुआ और सामन्तवाद का स्थान पुँजीवाद ने लिया तो इस धार्मिक परिवर्तन के साथ-साथ यूरोप के सम्पूर्ण विचार-क्षेत्र में प्रबल वेग से परिवर्तन हो गया। राजनीतिक क्षेत्र में धर्मशास्त्रों की प्रभुता का अन्त हो गया, राजा के दैवी अधिकार (Divine Right of King) केवल काकाविक मात्र रह गये और जनवाद तथा उत्तुवार की भावनाओं का उदय हुआ। निस्सन्देह स्वीड-कानोन इतिहास रीति-रिवाज और संस्कारों का भी प्रभाव पड़ा है, किन्तु धार्मिक-मूल कारण उत्पन्न-प्रजासत्ता ही है जो पुनर्विरोध का निर्माण करती है।" मार्क्स ने 'दर्शन की बहिष्कार' में लिखा था 'सामाजिक सम्बन्ध उत्पन्न-शक्तियों से पुँजी हुए हैं। सभी उत्पन्न शक्तियों के धर्म में अनुप्य अपनी उत्पन्न-व्यक्ति बरत देते हैं। धरती उत्पन्न व्यति बरतने से, अपनी धार्मिकोपार्जन की प्रजासत्ता बरतने से वे अपने सामाजिक सम्बन्ध बरत देते हैं। हाथ की चक्की वह सामान्य बनाती है जिसमें प्रभुत्व सामन्त का होता है, भाप से चलनेवाली चक्की वह बनाती है जिसमें प्रभुत्व धार्मिकोपार्जन का होता है।" यह प्रकार उत्पन्न-प्रजासत्ता के प्रत्येक परिवर्तन के साथ-साथ समस्त सामाजिक तत्व उसके विभिन्न ढंगों तथा उनके परस्पर सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो जाता है। इतिहास ऐसे चार युगों से गुजर चुका है—( १ ) प्राथमिक सामन्तवादी युग (Primitive Communitic age) (२) दास-युग (The age of Slavery) (३) सामन्तवादी युग (The Feudal age) (४) पुँजीवादी युग (The Capitalistic age), (५) सर्वहारा के अधिनापत्य का युग (The age of Proletarian dictat'or

ship) और (१) साम्यवादी युग ( The Communist age ) । पाँचवें युग का प्रारम्भ इस दौर कीम में हो गया है । इसके उपरान्त मानव-समाज साम्यवादी युग में प्रवेश करेगा । यह साम्यवादी युग बर्ग एवं राज्य-विहीन होगा । इसमें न बर्ग-संघर्ष होगा और न राज्य का अस्तित्व एवं उसकी सत्ता ही । राज्य मुरझ कर गिर जायेगा ( The State will wither away ) और उत्पादन के समस्त साधनों पर समाज का एकाधिकार होगा ।

### ५. वर्ग-संघर्ष ( Class War )

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (Communist Manifesto) में मार्क्स ने लिखा था "मानव जाति का इतिहास भेरी-संघर्ष का इतिहास रहा है।" सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शोषक और शोषितों का, प्रभु और सेवक वर्गों का संघर्ष रहा है।" वस्तुतः यदि हम आदि-काल से अब तक के मानव इतिहास पर दृष्टिगत करें तो निरिक्तकर्म से हमें मानव-समाज प्रत्येक युग में दो विभिन्न वर्गों में विभाजित मिलेगा। ये वर्ग एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी तथा एक शोषक तो दूसरा शोषित रहा है। प्राचीनकाल में एक वर्ग स्वामियों का था दूसरा दासों का। मध्यकाल में एक वर्ग सामन्तों का था तो अन्य कृषकों (Serfs) का; किन्तु आधुनिक काल में, जब कि एक वर्ग पूँजीपतियों का है तो दूसरा मजदूरों का है। इस प्रकार प्रत्येक युग में एक वर्ग साधक-सम्पन्न (Haves) का तो दूसरा साधन विहीन (Have not) का रहा है। ये दोनों वर्ग प्रत्येक युग में संघर्षरत रहे हैं। अस्तु का अर्थ था, "संघर्ष सभी वर्गों की जगती है।" प्राचीन युग में जब प्लेटो और अरस्तु का युग था, दास अपने स्वामियों की सम्पत्ति से और उनका अर्थ-व्यवस्था इन स्वामियों की इच्छा पर निर्भर करता था। ये दास ही जीवन की समस्त जगतीय वस्तुओं को अपने भ्रम से पैदा करते थे। अरस्तु इन वर्ग-संघर्ष को समझ सकता था, किन्तु उसने भी स्वामि-वर्ग के इस विशेषधिकार का ही प्रीक्षण छिड़ दिया। मार्क्स ही ऐसा सर्वप्रथम विचारक था जिसने वर्ग संघर्ष के महत्त्व को समझ और दो वर्ग-संघर्ष को वर्गों की उत्पत्ति के साथ उचित होनेवाला और वर्गों के विनाश के साथ ही विलुप्त होने वाला मानता था। उसके मठ में समाज एक दिन फिर अपनी प्राथमिक साम्यवादी अवस्था पर, जो कि बर्ग-विहीन की पहुँच जायेगा। मने ही

1 'The history of all hitherto existing society is the history of class struggles' ( Karl Marx )

मैसूरिक संघर्ष बना रहे, किन्तु हम साम्यवादी दृष्टिकोण में वर्ग-संघर्ष नहीं रहेगा। वर्ग-संघर्ष मार्क्स की धरती बेग नहीं थी। १८४२ में उसने बेइमेयर को लिखा था, "धार्मिक समाज में वर्गों के अस्तित्व तथा वर्ग-संघर्ष की बीज का बीज मुझको नहीं है। मुझ से बहुत पूर्व यूरोपीय इतिहासकारों ने इस खोजी-पुछी वैतिहासिक विकास का वर्णन किया था और यूरोपीय अर्थशास्त्रियों ने वर्ग के आर्थिक इतिहास को बताया था। मेरी बहुत बुराई यह थी कि मैंने यह सिद्ध कर दिया कि वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विनाश क्रम की निश्चित ऐतिहासिक अवस्था से सम्बन्ध है, और वर्ग-संघर्ष निश्चित रूप से सर्वोच्च वर्ग की अभिनायकता में परिणत होता है, और वह अभिनायकता ही अस्थायी है और इसका अस्तित्व अभी तक है जब तक कि वर्ग-विहीन समाज की प्रतिष्ठा नहीं हो जाती। मार्क्स ने आगस्टिन बेरे (Augustin Thierry) को 'फ्रांसीसी ऐतिहासिक लेखों में वर्ग-संघर्ष का जनक' (The father of class struggle in French Historical Writings) माना था। फिर श्री वर्ग-संघर्ष के प्रकाशन एवं विकास का बीज मार्क्स को था। निस्सन्देह विरह राजनीति में वर्ग-संघर्ष की विरायता एवं महत्ता के स्थापन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान था। विरह के आर्थिक वर्ग में 'वर्ग-संघर्ष' की भावना को उत्पन्न करा कर उसी ने वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को प्राबल्य स्थिति प्रदान की। उसने वर्ग-संघर्ष का यह संज्ञान किया जिसमें मजदूरों को अनुप्राणित ही नहीं किया, बल्कि उन्हें एकात्मता के सूत्र में बाँध दिया। यूरोपीय के लिए मार्क्स की संस्कृत-स्तुतिक सिद्ध हुई। वर्ग-समन्वय मीठमी गुणवर्ती की इस स्तुतिक के सम्पूर्ण एक न पसी। वे वर्ग-संघर्ष का मूल्यांकन करने में सर्वथा असमर्थ रहे। वर्ग-संघर्ष सामाजिक प्रगति का जीवन तार है। आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में, "अब तक समाज में जो प्रगति हुई है, प्रगति की एक मंजिल से अन्तर जब-जब मानव तथा एक दूसरी ऊँची मंजिल पर पहुँचा है तब-तब यह कार्य वर्ग-संघर्ष के द्वारा ही सम्पादित हुआ है।" अर्थात् वर्ग-संघर्ष के लिए यह वर्ग संघर्ष उन दो परस्पर विरोधी वर्गों में अन्तर्गत रूप से बनता रहा है जिसमें से एक सर्वोच्च-समान्य अथवा सर्वोच्च वर्ग, अर्थात् जिसका उत्पादन के समस्त साधनों पर एकाधिकार बना रहा है और दूसरा वह बहुसंख्यक अथवा अल्प वर्ग है जो पूर्णतः शोषित-रहित रहा है, जिसे शोषो-शोषी की समस्या सर्वत्र प्रेरणी रहा है। यही वर्ग अन्तर्गत-वर्ग है, जो

कच्चे माल को तैयार माल में परिणत करता है। साधन-सम्पन्न वर्ग साधन बिहिन वर्ग का मुक्त कर शोषण करता रहा है। वह उसे केवल इतनी ही मजदूरी देता है जिससे कि वह वर्ग केवल जीवित रहे उसके भीर सबैव निर्निमेष नेत्रों से-इनकी ओर निहारता रह। इस प्रकार शोषक-वर्ग को उत्पादन के समस्त साधनों पर ही प्रभुता नहीं है, बल्कि धर्म राजनीति कानून और धर्मन्याय से सम्बन्धित संस्थाओं पर भी उसका एकाधिकार रहा है।

यह सत्ता का संपूर्ण समाज परिवर्तन का बन्धनशाला है। मार्क्स के ग्रन्थों में 'धार्मिक अनाधन से प्रत्येक ऐतिहासिक युग के समाज का डंका बनता है। वह डंका और धार्मिक उत्पादन शक्तों मिला कर उस युग के राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास का आधार बनते हैं। इसलिए प्रति प्राचीन भूमि-सम्बन्धी पचासवीं शताब्दी के मंग होना के काल से ही समय इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है, सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शोषक और शोषितों का, प्रभु और सबक वर्गों का संघर्ष रहा है। परन्तु यह संघर्ष जब इस दशा को पहुँच गया है कि शोषित और पीड़ित (सर्वहारा) वर्ग के धन शोषकों और पीड़कों (पूजायुक्तियों) से मुक्ति पाने के साथ साथ समाज भी शोषण पीड़न और वर्गसंघर्षों से मुक्त हो जायगा।"<sup>१</sup>

मार्क्स के उपर्युक्त उद्धरण में पंच तथ्यों का समावेश है — ( १ ) वर्ग वैदिक तथा वर्ग-संघर्ष समाज के धार्मिक जीवन का परिणाम है।

( २ ) जब से प्रारम्भिक साम्यवादी समाज भंग हुआ है तब से मानव-जाति वर्गों में विभक्त हो गई है, और उसका इतिहास वर्ग-युद्ध का इतिहास है।

( ३ ) प्रत्येक काल में शासक वर्ग का ही एकाधिकार रहा है और उता का द्रित साधन हुआ है।

( ४ ) समाज का विकास तब तक नहीं स्थिति या पहुँची है जिसमें वर्ग-संघर्ष पूर्णतः भीर सर्वहारा वर्ग में टापा।

( ५ ) सर्वहारा वर्ग धाना विमुक्ति के प्रयास में सभी वर्गों की धार्मिक शक्ति का दण्ड कर देगा और उनका समस्त मानव-समाज वर्ग-युद्ध से सर्वत्र के लिए छुड़ाया जायेगा।

१ अ. इ. ग. नि. — दुष्कालमय और ऐतिहासिक भौतिकवाद से उत्पन्न।

## मूल्य का श्रम सिद्धान्त और ध्रुति रिक्त मूल्य का सिद्धान्त

(Labour Theory of Value & Theory of Surplus Value)

मूल्य के सिद्धान्त ( Theory of Value ) का सर्वप्रथम प्रतिपादक जॉन लॉक ( ) Locke ) था। उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्पण इस आधार पर किया कि कोई व्यक्ति सम्पत्ति का अधिकारी तभी बन सकता है जब उसने श्रम के द्वारा उसके लिए मूल्य जुटाया हो। इस प्रकार श्रम वस्तु के मूल्य का आधार बन गया। रिकार्डो ( Ricardo ) ने इसी तथ्य को प्रकटित करते हुए कहा था, "किसी वस्तु का मूल्य श्रम की उस सापेक्ष मात्रा पर निर्भर करता है जो उस वस्तु के निर्माण में लगाया जाय।" प्रूडोन ( Proudhon ) का कथन था "यदि एक व्यक्ति मजदूरी की प्राप्ति के बाद भी, उस वस्तुओं पर अधिकार बना रहना चाहिए तब तो उसने अपने श्रम से बनाया है।" मार्क्स ने परम्परागत धर्मशास्त्रियों के मत को खरीदार करते हुए कहा था, "यदि किसी वस्तु का पूर्ण मूल्य उस श्रम पर निर्भर करता है जो उस वस्तु के उत्पादन पर लगा है तो फिर उसका श्रम मूल्य उस व्यक्तिओं की कर्मों नहीं मिलना चाहिए जिन्होंने अपना श्रम उस वस्तु के निर्माण में लगाया है।" मार्क्स का कहना था "समस्त उपयोगी वस्तुओं में श्रम पराधीनता का सम्मिश्रण है, जो कि सभी की साम्यवादी है। किसी पराधीनता का निर्माण प्रकृति एक व्यक्ति नहीं करता, बल्कि उसकी रचना में सम्पूर्ण समाज का श्रम समता है। जैसे, एक घड़े का निर्माण कुम्हार करता है, किन्तु उसका बनाने में वह सुझाव, बर्तन और महाराज धारि धारि के श्रम का ही सहयोग नहीं लेता, प्रतिगुण पीढ़ियों से उत्सवमन्त्री विषय के विनियम होते हुए अनुभव का भी उपयोग करता है। अतः समस्त उपयोगी वस्तुएँ सामाजिक श्रम का फल हैं। मार्क्स ने धारि कहा, "समस्त वस्तुओं का

1 "The Value of the Commodity depends on the relative quantity of labour necessary to its production" (Ricardo)

2 "The worker retains even after having received his wage a natural proprietary right over what he has produced"

( Proudhon )

3 Bestrend Russell—Freedom and organisation

सामान्य सामाजिक पराबर्ध धम है। एक वस्तु का मूल्य उसमें सम्मिश्रित सामाजिक धम के कारण है। वस्तु के मूल्य का बढ़पन या उथका सापेक्ष मूल्य (Relative Value) उसमें सम्मिश्रित उसी सामाजिक पराबर्ध (धम) की बढ़ी या कम मात्रा पर निर्भर है अर्थात् वस्तु के उत्पादन में बिठनी मात्रा में धम की आवश्यकता है। अतएव वस्तुओं का सापेक्ष मूल्य धम की इस मात्रा या परिणाम द्वारा निर्दिष्ट होता है जिसे कि उन वस्तुओं में कार्य करके, अनुभव करके भर दिया गया है।' ट्राटस्की ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एक निम्न दृष्टिकोण से किया था, "एक वस्तु में मूल्य केवल इस कारण है कि उनमें एक ही (Homogeneous) या सामान्य मानव-धम सम्मिश्रित है।"

मानव के मूल सिद्धान्त को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसके सामाजिक परिवेष्ट के महत्त्व को समझें। मार्क्स ने लिखा था, 'उन समाजों का बन, जिनमें-सत्पत्ति की पूर्वीवासी पद्धति प्रचलित है अनेक वस्तुओं के संघट्टीकरण में प्रकट होता है, और उसकी इकाई वस्तु है।' इस प्रकार वस्तु के रूप में धम का एकत्रीकरण केवल जमीन समाजों में हींठा है जहाँ पूर्वीवासी पद्धति की प्रविष्टा है। एक स्वामाजिक प्रश्न यह उठता है कि वस्तु है क्या? मार्क्स के अनुसार, वस्तु वह भौतिक पराबर्ध है जिसके द्वारा मनुष्यों की आवश्यकताओं की परिपुष्टि होती है। वस्तु की परिपुष्टि के गुण की भोग्य मूल्य (Use value) कहते हैं। किन्तु प्रत्येक भोग्य मूल्यवासे पराबर्ध का वस्तु होना जरूरी नहीं है। बहुत से पराबर्धों में भोग्यमूल्य होता है किन्तु वे वस्तु नहीं होते। जैसे धूब, वायु और प्रकारा आदि। इनमें भोग्यमूल्य तो है किन्तु वे विनिमय-साध्य (exchangeable) न होने के कारण वस्तु नहीं हैं। अतः मार्क्स के मत में, किसी वस्तु में भोग्यमूल्य और विनिमय मूल्य दोनों का सन्निहित होना आवश्यक है। धातुनिक युग में मुद्रा (Money) समस्त वस्तुओं की विनिमय मूल्य (exchange value) का माप-दंड बन गयी है। इस प्रकार एक वस्तु का मूल्य उससे विनिमय मूल्य से निर्दिष्ट होता है। किन्तु इस स्थान पर वस्तु के धाब-साब धम का धर्म और उसकी महत्ता का अन्ता भी परमावश्यक है। मार्क्स ने कहा था "धम से व्यक्ति की उस समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों से अभिप्राय है जिनका प्रयोग वह भोग्य मूल्य के पैदा करने में करता है।" प्रत्येक पराबर्ध में धम शामिल रहता है। संसार में जितने भी पराबर्ध वस्तु के रूप में विद्यमान हैं उनमें सामाजिक आवश्यक्रीय धम (Socially necessarily labour) समान रूप से रहता है। यह धम उस वस्तुविशेष के मूल्य को निर्दिष्ट करने का मूलपाद है।

क्या अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत मार्क्स की एक मौलिक देन थी? रोबर्ट्स के अनुसार, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत मूल्य के सम-सिद्धांत का विशेषतः एक परिष्कार या विस्तार विशेषतः रिवाजों और शाब्दिक अर्थशास्त्रियों ने पहिले ही किया था। प्राथमिक पूँजीवाद पद्धति का एकमात्र लक्ष्य 'साम' की उत्पत्ति करना है। उत्पादन के साधनों द्वारा सामीप्यजन करना है। उत्पादन के समस्त साधन पूँजीपति को सम्पत्ति हैं। पूँजीपति अपने सामाजिक अधिकारों की उत्पादन-शक्ति का लोभ लेता है और मजदूर, जिनमें उत्पादन के साधनों को छोड़ने की शक्ति नहीं है, विपदा होकर अपनी प्राचीनता के लिए अपनी सम-शक्ति को पूँजीपति को बेच देता है। पूँजीपति अधिकारों को केवल इतनी ही मजदूरी देता है जिससे कि वह अपने दिन काम करते कामक रह सकें। किन्तु मजदूर के भ्रम से जो उत्पादन होता है उसका मूल्य बहुत अधिक होता है। अधिक की मजदूरी घोर मूल्य में बड़ा अंतर होता है। जैसे जपान बनाने में मशीन, पत्रिका और भ्रम को लयाया जाता है। वहाँ पत्रिका बनाने मूल्य में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं करता, जो उसका मूल्य है वही रहता है। किन्तु सम-शक्ति प्रयोगित होने पर अपने मूल्य में अचरम वृद्धि करती है। माल बीजिए, एक पूँजीपति निरक्षित एवं निर्जन अधिकारों की सम-शक्ति को प्राकट्य प्रतिदिन के हिसाब से छोड़ देता है और मजदूरों को बाजार भाव के अनुसार मजदूरी दे देता है। वह सम-शक्ति उत्पादन-विद्या में भगा ही जाती है। अब मजदूरी चार बंदे काम कर चुके होते हैं तो वे अपना मूल्य पैदा कर लेते हैं जिससे कि उन्हें मजदूरी मिली है। यदि अधिकारों को इस समय अक्षरगत है दिया जाय तो कच्चे माल का मूल्य के अपनी मजदूरी के बराबर बड़ा होंगे और इस प्रकार पूँजीपति किसी प्रकार के साम या हानि से बचिष्ठ रह जायगा। किन्तु ऐसा नहीं होता। अधिकारों का और चार बंदे काम करना पड़ता है और अधिक मूल्य पैदा करना पड़ता है। इस प्रकार मजदूरी के बराबर मूल्य के उत्पादन से अतिरिक्त जो मूल्य पैदा किया जाता है, उसे ही अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) कहते हैं। अतिरिक्त मूल्य के स्पष्टीकरण के लिए एक अन्य उदाहरण दिया जाता है। एक अधिकार उत्पादन है जिसमें १००० अधिकार प्राकट्य १ ब० प्रतिदिन की मजदूरी के हिसाब से काम करते हैं और सम-शक्ति १००० ब० का कच्चा माल प्रतिदिन काम में लाया जाता है तथा २० ब० प्रतिदिन मशीन का मूल्य घट जाता है। इस प्रकार उत्पादित वस्तु में सम-शक्ति कच्चा माल और मशीन को बीजित सम्पत्ति है। इस उत्पादित वस्तु का मूल्य तीनों वस्तुओं के संयुक्त मूल्य

के बराबर है—अर्थात् २०२० रु० है, किन्तु उत्पादित वस्तु ४०२० रु० में विक्री है। अतः २००० रु० का मुनाफ़ा होता है, जो कि अतिरिक्त मूल्य है। और इस अतिरिक्त मूल्य पर पूँजीपति का एकधिकार है। इस अतिरिक्त मूल्य की उत्पत्ति मजदूरों के श्रम का ही फल है जिसे पूँजीपति हड़प लेता है। वस्तुतः अतिरिक्त मूल्य वह श्रम है जिसका पूँजीपति कोई मूल्य नहीं देता। पूँजीपति के इस काम में मजदूर भागीदार नहीं है। यही शापण है जिसके विरुद्ध मजदूर बग़ावत करता है। पूँजीपति का काम श्रमिक के श्रम द्वारा ही बना है न कि बाजार में उधार-बढ़ाव या माँग-पूर्ति के नियम द्वारा। पूँजीपति किसी वस्तु को बाजार में लायक मूल्य से कम में नहीं बेचता। पूँजीपति जो व्यापार करता है या उद्योग-वनों को खोलता है, उसके पीछे मुनाफ़ा की यही भावना काम करता है। उसका उद्देश्य अधिकतम मुनाफ़ा लेना है। अतः श्रमिक और पूँजीपति में कोई समझौता नहीं हो सकता क्योंकि दोनों के स्वार्थ परस्पर टकराते हैं। यदि पूँजीपति बेतन में कृति करता है तो वस्तु में जो लागत समी है उसमें कृति हो जायगी और फलतः पूँजीपति का मुनाफ़ा बट जायगा। इसीलिए पूँजीपति मजदूरों के श्रम बटाये रहते हैं। इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य ही बर्ग-संबन्ध का मूल कारण है। इसी अतिरिक्त मूल्य के कारण उत्तरोत्तर कुछ लोग समीर होते जायेंगे और कुछ पत-विहीन होते जायेंगे। किन्तु दोनों साथ-साथ सगठित एवं सुदृढ़ भी होते जायेंगे और अन्ततोपन्ता दोनों में संबन्ध भी अतिव्यापक होगा।

## ७ पूँजीवाद के विनाश की अनिवार्यता

( Inevitability of destruction of Capitalism )

माक्स ने कहा था कि समाज स्थिर ( Static ) नहीं है, किन्तु प्रगतिशील ( dynamic ) है। विश्व की अन्तिम भविष्य में पूँजीवाद का विनाश अवश्यमात्री है। पूँजीवाद का विनाश अनिवार्य है क्योंकि उसमें अन्तर्गत विरोध है। सर्वप्रथम, अतिरिक्त मूल्य को जमायित ही जिस पर कि पूँजीपति बर्ग जीवित रहता है, सर्वहारा बर्ग को जम देती है। समाज के केन्द्रीयकरण के कारण समस्त समाज पूँजीपति और सर्वहारा में विभक्त हो जायगा तथा मध्यमबर्ग का विलोप हो जायगा। मध्यम बर्ग में निम्नश्रेणी के व्यक्ति, छोटे-छोटे दुकानदार और कारीगर तथा कृषक आदि सभी सर्वहाराबर्ग में मिला जायेंगे। इस



प्रकार समाज में एक छोटा-सा पूँजीपतिवर्ग और एक बड़ा-सा सर्वहारावर्ग ही रह जायगा। यह सर्वहारावर्ग अपना संभ्रम इस प्रकार करेगा कि पूँजीवाद को इसका अन्तहाता है उसे मित्रित कर सके। द्वितीय अन्तर्विरोध है उत्पादन और वितरण-प्रणाली का सम्बन्धित न होना। नवीन आविष्कारों द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था की उत्पादन शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और बूझती धीरे वितरण प्रणाली संशोधन होने के कारण नव पूँजीपतियों के हाथों में एकत्र होता जाता है। इन नये-नये आविष्कारों के कारण कम धमिकों को भी आश्चर्यकता पड़ती है। बस्तुतः इस के भीकार ही धमिकों की रोटी-रोजी छेदने के सामन बलते हैं और उसके द्वारा निर्मित बस्तुएँ ही धमिक को वास्तव की श्रद्धालियों में बकड़ देती हैं। बड़े-बड़े उद्योगपति घरने पैसा की बनता की रूप शक्ति (Purchasing Power) को इतना घीरा कर देते हैं कि वह श्रद्धाली के श्रद्ध में फँस जाती है। मार्क्स ने कहा था, "पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली का नियम है धनों-धनों पूँजी-संचय की गति और परिमाण की मात्रा बढ़ती है एवं एवं नव-संस्था मयवा धनीवीनिक कोठस-सेना की संस्था साक्षेप बन से बढ़ जाती है। इस नियम के कारण नवभूत पूँजी के रूप में बरफन द्वारा प्रनीधियस की श्रद्धाल से बचने से भी ब्यादा निर्ममतापूर्वक कोष दिया जाता है। जैसे-जैसे पूँजी का संभय बढ़ता है जैसे-जैसे बनता की शीघ्रता बढ़ती है। समाज के एक छोर पर ही बन का डेर मन जाता है और दूसरे छोर पर श्रद्धाल, धन की संभया, वासता, अज्ञान, झूठा और मानसिक पतन का नया नाच हुआ है। इस दूसरे छोर पर उठ बर्ग का शिवास है जिसकी पैशावार पूँजी का रूप बाण्य करती है। इन प्रकार एक छोर प्रभुत मात्रा में उत्पादन का विस्तार और बूझती धीरे बनता की श्रद्धालि ना ह्रास तथा देरी बाजार में उत्पादन की श्रद्धाल का न होना धार्थिक संकट (Trade depression) पैदा कर देता है। सर्व-प्रथम ऐसा धार्थिक संकट १८२३ में आया था। उसके बाद लगभग प्रत्येक दसवें वर्ष ऐसा धार्थिक संकट उत्पादन शक्तियों में प्रवृत्ति और धार्थिक बन्धनों की अन्तर्वर्तनीयता के कारण आता है। इस संकट के कारण समस्त समाज का जीवन अन्धबन्धित ही जाता है। उत्पादन और वितरण में अन्ध-धम्यता आ जाती है। मात्र के धार्थिक के बाण्य बाजार बकड़ ही पति है। बाजार में न पैसा शीघ्रता है, न बिन्नी होती है और न ध्यानार मन पाता

१ पूँजी, भाग १ फ्रेडरिक एंगेल्स समाजवाद धार्थिक और वैज्ञानिक से उत्पन्न।

है। उद्योग-धर्म ठग हो जाते हैं। विवासे का क्रम बसता है। व्यक्तियों की सम्पत्तियों की बोलियाँ बोधी जाती हैं। यह क्रम बर्षों बसता है। किन्तु जब प्रचुर मात्रा में उत्पादित वस्तुएँ गृष्ट कर की जाती हैं तब नहीं बचा हुआ मास म्यूनार्थिक हानि के साथ निजाल दिया जाता है। उत्पादन धीरे धीरे विभिन्न का फिर धीरे-धीरे शुरू हो जाता है। उसी गति तीव्रतर हो जाती है धीरे धन्तरीयत्वा उद्योग व्यापार धीरे लेने-देने का बहक सृष्टेवासी की बुद्धदौड़ में बसने लगता है धीरे बहक फिर पूरवा-धरिता धीरे धरिता में मारता हुआ नये धार्थिक संकट के दसदस में फँस जाता है। इसी क्रम की पुनरावृत्ति होती रहती है। धार्थिक संकट के काल में बड़े-बड़े धीरे छोटे-छोटे पूँजीपतियों का व्यापार चौकट हो जाता है धीरे उनकी पूँजी कुछ पूँजीपतियों के हाथों में एकत्र हो जाती है। जब स्वदेश में मात खानत नहीं हो पाता तो पूँजीपति देश के बाहर बाजारों की खोज करते हैं धीरे बड़े-बड़े ट्रस्टों (Trusts) का निर्माण करते हैं। इस प्रकार साम्राज्यवाद का जन्म होता है। जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि होती जाती है जैसे-जैसे नये बाजारों के लिए प्रति प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है। निरन्तर देशों का शोषण धीरे अनुपेक्षित पूँजीवासी राष्ट्रों का एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। समस्त संसार कोड़े से साम्राज्यवादी देशों में विभक्त हो जाता है। लेनिन ने कहा था "साम्राज्यवाद पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था है।" साम्राज्यवाद में पूँजीवाद की समस्त धर्मपतियाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती हैं। साम्राज्यवाद की परिभाषा लेनिन के शब्दों में "पूँजीवाद के विकास की वह अवस्था है, जिसमें एकाधिकारों एवं विश्व पूँजी का धर्मपतिक प्रभाव बढ़ जाता है, पूँजी का निर्यात बढ़ा महत्वपूर्ण हो जाता है, धन्तरीय ट्रस्टों द्वारा संसार का विभाजन प्रारम्भ कर दिया जाता है धीरे महानतम पूँजी वाली राष्ट्र धारण में संसार के समस्त प्रदेशों का बँटवारा कर चुके होते हैं।" साम्राज्यवाद शोषित अनिच्छेय जनता को भी पूँजीवाद के विरुद्ध संगठित कर देता है। साम्राज्यवादी धार्थिक शोषण एक सर्वहारा वर्ग की उत्पत्ति करता है। जैसे-जैसे शोषण बढ़ता जाता है, जैसे-जैसे जनता में राष्ट्रीय जागृति भी धानी जाती है धीरे धन्तरीय राष्ट्रीय धन्तरीय राष्ट्रीय धर्मोत्थानों का रूप ले लेता है। इन राष्ट्रीय धर्मोत्थानों से सर्वहारा-वर्ग को बड़ी सहायता मिलती है धीरे इस प्रकार स्टालिन के शब्दों में "अनिच्छेय साम्राज्यवाद के सड़ (Reserves of Capitalism) होने की प्रवृत्ति सर्वहारावर्गीय धर्मोत्थान के सड़ बन जाते हैं।" जब

1 "Imperialism is the last stage of capitalism." (Lenin)

साम्राज्यवाद भी अपनी बरमावस्था पर पहुँच जाता है और साम्राज्य-विस्तार के लिए कोई अन्य विकल्प नहीं रह जाता तो साम्राज्यवादी देश परस्पर भाँझमक का रन से सेते हैं और फिर साम्राज्यवाद क्रिस-मुझ में परिणत हो जाता है। इस क्रिस-मुझ की उत्पत्ति का कारण धार्मिक होता है। पूँजीवाद अपने धार्मिक विरोधों के कारण अपने विनाश का मार्ग प्रकट करता है। मैक्स के शब्दों में, 'पूँजीवाद अपने कर से अपनी बुरा पीचता है।'

## सर्वहारा की क्रान्तिस

( Revolution of the proletariat )

मार्क्स ने कहा था कि सर्वहारा-वर्ग पूँजीवाद को उखाड़ पीचता है। इसका काम पूँजीवाद के हाथ होता है और उखी के विनाश के लिए यह सर्वपर्यप्त रहता है। केवल धार्मिक वर्ग ही स्वामी रूप से पूँजीवाद का विरोध कर सकता है क्योंकि वह धर्म, भरती और सम्पत्ति-विहीन होता है। उसका कोई ऐसा स्वार्थ नहीं है जो उसे अन्ति करने से रोक सके। केवल उसका भ्रम ही उसका एकमात्र सम्बन्ध है। समाज में अन्य वर्ग भी हैं जो पूँजीवाद का विरोध करते हैं, किन्तु उनमें वह अन्तिकारिता नहीं है जो धार्मिक वर्ग में है। उनका क्रिष्तीन-न-किसी बस्तु-विरोध से समाज रहता है। वे अन्तिकारी की अपेक्षा सुधारवादी धार्मिक हैं। अतः केवल धार्मिक वर्ग ही अन्ति करने में समर्थ है, यद्यपि लोग में जो अन्ति हुई वह सर्वहारा की अन्ति न होकर स्वयं की अन्ति थी। मार्क्सो-स्टे सुँग जो साय चीन के उत्पत्ति से, उनका बचन था कि चीनी अन्ति समाजवादी अन्ति न थी बल्कि पूँजीवादी अनन्तरीय अन्ति थी। इस अन्ति के हाथ सामन्तवाद समाप्तित्व हुआ, न कि पूँजीवाद। किन्तु फिर भी चीनी अन्ति मार्क्स की भविष्यवाणी के विपरीत हुई।

मार्क्स ने कहा था कि सर्वहारा अन्ति पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ पीचने में। यह अन्ति कोई अन्तर्गत अन्ति नहीं होगी। इतिहास में ऐसी अनेक अन्तियाँ हो चुकी हैं। वास्तविकता तो यह है कि अन्तर्गत वर्गों विपरीत अभी समाज में अन्तियाँ रही बह अन्तर्गत विरोध से ही निवृत्त हुआ, अन्तर्गत निर्माण उखी के हाथ हुआ था। उदाहरणार्थ सामन्तवाद में अन्तर्गत वर्गों को अन्त दिया उखी में पाणिपत का प्रहार एवं विस्तार कर सामन्तवाद को समाप्त कर दिया। किन्तु

सर्वहारा की शक्ति का अवेसाहृत अल्प अल्पियों के एक वैशिष्ट्य है। अन्ततः  
 त्रितीय अल्पियाँ हुईं वे एक शोषक-बर्ग के अन्तर्ग में अल्प शोषक-बर्ग के सम्मिलनार्थ  
 हुईं। उन्होंने एक बर्ग की उत्पत्ति करके दूसरे बर्ग का अन्त किया। परिणामतः  
 समाज और राज्य पर एक शोषक बर्ग के स्थान पर दूसरे शोषक-बर्ग का एक  
 विपक्ष बना रहा, और इस प्रकार शोषण की प्रक्रिया यथावत् बनी रही। किन्तु  
 सर्वहारा अल्पि द्वारा बर्गों का उन्मूलन हो जायगा। इसके द्वारा बर्ग-विहीन  
 समाज की प्रतिष्ठा होगी। इसमें न बर्ग होगा और न बर्ग-संबन्ध। यह पूर्वतः  
 शोषण विहीन समाज होगा।

किस प्रकार पूर्वीवाद का अन्त उसके अन्तर्विरोध द्वारा होगा? मार्क्स ने  
 कहा था कि एक और तो धार्मिक संकट पूर्वीवाद की शक्ति को नष्ट भ्रष्ट करके  
 उसे मरणासन्न स्थिति में पहुँचा देवे और दूसरी ओर सर्वहाराबर्ग की उच्चोत्तर  
 बढ़ती हुई निर्भङ्गता, साधना और बेबसी उसे संगठित करके शक्ति की ओर अग्र  
 सर करेगी और उनसे क्रियात्मक अल्पि करेगी। यद्यपि मार्क्स ने अशास्त्र  
 अल्पि पर अधिक बल दिया था किन्तु उसने देखा कि और परिस्थिति पर यह  
 छोड़ दिया था कि वहाँ किन साधनों का अवसरमयन किया जायगा। उसकी  
 पहिले तो क्रियात्मक साधनों में ही शक्ति थी, जिसे कि उसने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो  
 में लिखा था "साम्यवादी स्पष्टता कीपक्षा करते हैं कि उनकी मुख्य-प्राप्ति अन्त  
 प्रतिष्ठित होने को एकमात्र बनाएँ उदाहरण के से ही हो सकती है।" मार्क्स ने  
 स्वयं भी १८४८ की अल्पि में भाग लिया था। उसका १८७१ में पेरिस कम्यून  
 ( Paris Commune ) के विद्रोह में भी हाथ था। किन्तु बाद में मार्क्स ने  
 वैधानिक साधनों की उपयोगिता को भी समझ और सन् १८७२ में, एमस्टर्डम  
 में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संघ ( First International ) की बैठक में अपने भाषण  
 में कहा था, "हम इच्छापूर्वक नहीं करते कि साधन आवश्यक रूप से इस लक्ष्य  
 प्राप्ति ( धर्मियों के स्वार्थस्य ) के लिए सर्वत्र एक से ही प्रयुक्त दिये जायेंगे।  
 एवं यह जानना आवश्यक है कि हम विभिन्न देशों के संस्थान, रीति-रिवाज और  
 परम्पराओं पर विचार करें, जैसे अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन, और यदि मुझे आपके  
 संस्थानों का मनी प्रतिज्ञा है तो मैं शायद हासैण्ड को भी शामिल करता  
 हूँ—जहाँ यथिष्ठ अल्पि अल्पि की प्राप्ति शक्तिमय साधनों द्वारा करना  
 में समर्थ हूँ।" १८८५ में कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो की पुनर्प्राप्ति में लिखा

1 'We do not claim that the means necessary for bringing

या, 'श्रेणी बेतना-बिहोन जनता का नेतृत्व कर छोटे समुदायों द्वारा व्यक्ति का प्रथम समय निकल गया है। पिछले पचास वर्षों के इतिहास में इतना ही हमें सिखा दिया है। सर्वत्र सामान्य वोट का प्रयोग किया जा रहा है। यहाँ में प्रचार का भीमा काम और संसदीय कार्य पार्टी का प्रथम प्रयोग सम्भव जाता है। हम 'आन्दोलन' और 'राज्य के जनसंख्या' पैर-काजूनी, जग्यों की अपेक्षा काजूनी उपायों का आशय लेकर नहीं अधिक सम्भवता प्राप्त करते हैं।' मार्क्स को हिता में कोई पत्रा नहीं आता था। वह मार्क्सवाद का भीर विरोधी था। उसकी मजदूर वर्ग के लिए हानिकारक समझता था। मार्क्स कम्युनिस्ट लीग की भयंकर के बाद वह फिर कभी भी किसी पक्ष में सम्मिलित नहीं हुआ। उसका इह मत था कि इस प्रकार के कार्य तब होनी चाहिए जब देश आन्दित जाहना हो। यही कारण था कि प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना मार्क्स और एंसेस के इंग्लैण्ड वाले के उररन्त हुई थीर वह कोई आन्दोलन पार्टी न हाकर एक 'मास पार्टी' थी। इस प्रकार मार्क्स की 'मास पार्टी' 'आन्दोलन' और 'आन्दोलन' साधनों में भी पूर्ण निष्ठा थी। मार्क्स ने वह स्वीकार किया था, 'राजनीतिक उदा को हस्तगत करने के लिए साधन, विभिन्न राज्यों और विभिन्न देशों में, विभिन्न हो सकते हैं। यदि एक समय भीर स्थान में प्रथम आर्थिक कार्यवाही की पद्धति सम्भव हो सकती है तो दूसरे स्थान में एक आन्दोलन या कार्य तथा अन्य और जयह राजनीतिक प्रभाव की एक भीरी सिद्धि का उचित समझाया जा सकता है।'<sup>1</sup>

about this aim (the emancipation of labour) will be the same every where. We must know that we must take account of these institutions, customs and traditions of various countries, such as the United States and Great Britain and if I know your institutions better I should perhaps add Holland where the workers will be able to achieve their aims by peaceful means'

1 The means for securing political power might differ at different times and in different countries the method might be direct economic action at one time and place a revolution at another and a slow achievement of political predominance at another

बिन्दु साम्यवादी मार्क्स के सरल क्रांति के कथन पर ही विशेष बल देते हैं। वेनल ने तो क्रांति को ही साम्यवाद की प्रतिष्ठा का एकमात्र साधन माना था। साम्यवादियों का यह विश्वास है कि संसद द्वारा पूर्वीवादी विनाश सम्भव नहीं होगा। मजदूर-वर्ग आधुनिक पूर्वीवादी राज्य-व्यवस्था पर आसानी से एकाधिपत्य करके अपने अहंकारों को पूर्णतः नहीं दे सकेगा, क्योंकि राज्य का उदात्त क्रांतिकारी कार्यक्रम के लिए मूलतः अनुपयुक्त है। इसका कारण नीकर शाही का अधिस्वसगीय होना इसकी कार्य-प्रणाली का प्रभावहीन होना और इसकी प्रकृति में उन तत्वों का भी न होना है, जो केवल स्वामियों के परिवर्तन से ही परिवर्तित हो पायें। अतः पूर्वीवादी अपने अधिकारों का कभी भी परिष्कार नहीं करेगा। जैसे ही वैधानिक परिवर्तन का प्रश्न प्रायेण और पूर्वीवादी-वर्ग के स्वार्थों को धारातः पहुंचाना जैसे ही वह हिंसामय विरोध करेगा। इस लिए केवल सरल क्रांति द्वारा ही नये समाज का जन्म सम्भव है। अधिकारों को न केवल पूर्वीवादी वर्ग को विशेषाधिकार प्रदत्त करने के लिए ही, बल्कि उनके पुनः प्रतिष्ठान के लिए दिये जाने वाले क्रांतिविरोधी पक्षों को कुपन्न करने के लिए भी सरल-क्रांति के अस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। साम्यवादी मानते हैं कि सिद्ध करने के लिए मार्क्स के इन कथनों को उल्लिखित कल है कि प्रत्येक नये समाज का जन्म हिंसामय क्रांतिकाराण्य काय की सहायता से ही हो सकता है।

## ५॥ सर्वहारा का अधिनायकत्व

( Dictatorship of the proletariat )

शासन-मूत्र पर सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य हो जाने के उपरान्त साम्यवादी क्रांति सफल नहीं हो पाती। पूर्वीवादी वर्ग की परामृत्त करने के बाद भी इस बात का निरन्तर भय बना रहेगा कि कहीं क्रांति के बचे हुए शत्रु सर्वहारा के अधिनायकत्व को पनटने का प्रयास न करें। अतः मार्क्स के अनुसार क्रांति के बाद का समय दो भागों में विभाजित हो जायगा—प्रथम, क्रांतिकारी संक्रमण काल ( Revolutionary transitional period ) और दूसरा वर्ग-विहीन साम्यवादी समाज। क्रांतिकारी संक्रमण काल में कमिज-वर्ग का सकल क्रांति के शत्रुओं को समूह नष्ट करके अपनी सत्ता को निरन्तरायी एवं अखण्ड बनाना होगा। अक्स के कथनानुसार, जो पापी क्रांति में विद्रोही होंगे उसके लिए यह विधान्य धारणकर होगा कि वह अपने शासन को बनाए रखने के लिए प्रति-हिंसारी शक्तियों को सम्मन बन का अस्त्र दिखाने पर उन्हें अपने नियंत्रण में

में रखने के लिए विवश हो ।' सेमिन का भी ऐसा ही विचार था कि प्रत्येक मन्मीर क्रांति में शीपकर्ण शीर्ष कास तक पहुँचें एवं उग्र रूप से विरोध करता रहेगा, क्योंकि उसकी स्थित शोषित वर्ग की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहेगी । अतः शासक-वर्ग बिना अन्तिम वैज संघर्ष क्रिये बहुसंख्यक शोषित वर्ग के सम्मूह द्वारा समर्पण नहीं करेगा । इन परिस्थितियों में सर्वहारा-वर्ग अपने अविनाशकत्व (Dictatorship of the proletariat) की स्थापना कर लेगा । यह अविनाशकत्व जनवाद-बिहीन होगा । इसमें अन्ध वर्ग या दल की सत्ता एवं अधिकार का कोई स्थान नहीं होगा । सर्वहारा-वर्ग का प्रमुख उद्देश्य पूँजीवादी तर्कों को विनष्ट करना होगा, अतः इसकी कार्य प्रवृत्तियों कठोर एवं अन्यायक होंगी । राज्य का भी संकल्पण कास में प्रयोग किया जायगा । मार्क्स ने कहा था 'धर्मिक बुद्धिवादी वर्ग के विरोध को समाप्त करने के लिए राज्य को एक अल्पकालीन तथा अस्थायी रूप में प्रतिष्ठित रखते हैं । फलतः इस संक्रमणीय युग में राज्य अस्थायी, स्वेच्छावादी एवं अजन्तर्कीय रहेगा । राज्य का प्रयोग विनाशकारी तर्कों के अनुत्पत्ति के लिए जायगा । एंगेल्स ने कहा था, सर्वहारा वर्ग का राज्य की आवश्यकता स्वतंत्रता के लिए नहीं होती, अन्तु अपने विरोधियों के समक्ष होती है और जब स्वतंत्रता सम्भव होती तब राज्य का विलोप हो जायगा ।' इस प्रकार संक्रमण काल में राज्य की उपयोगिता यही है कि वह अन्तिम के विरोधियों का दमन करने के एक अर्द्ध-सत्तवादि सिद्ध होता और ऐसी अवस्था में जनवाद न तो अपेक्षित ही है और न सम्भव ही । सर्वहारा के अविनाशकत्व-काल में उत्पन्न पर राज्य का एकाधिकार होगा । उत्पन्न उपयोग के लिए हीया, न कि लाभ के लिए । उत्पन्न के सामर्थ्य पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं होगा । प्रत्येक व्यक्ति को काम करना अनिवार्य होगा । जो काम नहीं करेगा वह क्षमता भी नहीं । प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करेगा और काम के अनुसार जायेगा ।' मनुष्य में अधिक अन्तर नहीं रहेगा । देश के सभी वैयक्तिक उत्पन्नों को विकसित किया जायगा । उत्पन्न-बुद्धि के साथ-साथ व्यक्तिगत अन्तर्गत में भी बुद्धि होगी । कला, विज्ञान और शिक्षा आदि को प्रोत्साहन मिलेगा । मन की कोठी पर भी अज्ञानता कोई कार्य नहीं हीया । न शोषक होगा और न शोषित । उत्पन्न का अन्तः सामाजिक उपयोगिता हीया, अनाशक नहीं ।

1 "From each according to his ability, to each according to his work";

सन् १९१७ की ज्ञान्ति के बाद, जब कब में सर्वहारा की प्रतिनायकताही स्थापित हुई तो वहाँ बिना कर्मों का पूर्वोवादी वर्ष के साथ सम्बन्ध रहा उन्हें मताधिकार तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इनमें पूर्वोवादि, पारसी, पुस्तक विनाम के व्यक्ति समस्त सम्प्रदायों की पुस्तकानुसार श्रीर उद्योगपति सम्मिलित थे। ज्ञान्ति के विरोधियों की जीवन-सीमा समाप्त कर दी गई। यहाँ तक कि साम्यवादी इस के लोग जिन्होंने ज्ञान्ति का विरोध किया जैसे ट्राट्स्की और बुखारिन प्रभृति नेताओं की भी अपने जीवन से हटा दिया गया। संक्रमण काल में राजनीतिक स्वार्थम्य से जनजातारण वंचित रहा। मात्र कब में राजनीतिक स्वार्थम्य मन्त्रक बन कर रह गया है। साम्यवादी कब के अतिरिक्त अन्य कोई दल नहीं है श्रीर न किसी को भाषण प्रेस लेखन, मुद्रण तथा प्रकाशन की स्वतंत्रता है। वहाँ की साम्यवादी दृष्टि में ब्रह्मा जाता है। साम्यवादी विचारसरणी के अनुकूल ही वहाँ की शिक्षा भी जाती है। उपादन के साधनों पर सरकारी तंत्र का एकाधिकार है श्रीर पञ्चवर्षीय योजनाओं द्वारा देश का नक-निर्माण हो रहा है। निःसन्देह मात्र कब में बेचारी नहीं है, वैसी कि अन्य पूर्वोवादी देशों में व्याप्त है। उपादन-वृद्धि घटना बरमात्रस्या पर है। कब ने पूर्वोवादी राष्ट्रीय को वैज्ञानिक क्षेत्र में पछाड़ दिया है। दे हतन्त्र हो गये हैं। वहाँ धार्मिक जनतंत्र प्रतिष्ठित है किन्तु राजनीतिक जनतंत्र का घना सटपटा है। यह एक विनाशस्त प्ररत है। कब तक यह प्रतिनायकताही या एक दल की सत्ता बनेगी? स्टाकिन ने कहा था वहाँ कोई शोषण-वर्ष नहीं है, तो फिर प्रतिनायकत्व कबों स्थापित है? यह एक विचारणीय प्ररत है।

### पञ्चमः स्वर्ग विह्वलित स्वर्ग ( Classless Society )

यह संक्रमण-काल या सर्वहारा का प्रतिनायकत्व तक तक बाधे रहेगा जब तक कि पूर्वोवादी कर्मों का अनुभव नहीं हो जाता। जैसे ही शोषण-वर्ष का अन्त होता जैसे ही राज्य की भी कोई बसोपिना नहीं रहेगी। जब सर्वो एवं वर्षीय धारणा का अन्त हो जायगा तो फिर समाज में राज्य किसी दलनकारी संस्था को धारणकता नहीं रहेगी। उपादन के समस्त साधनों पर समाज का एकाधिकार होना। अथ के उपादन समाज की सन्धि होने श्रीर उपादन बन्धस्या ऐसी होगी कि उपादन स्वतन्त्रतापूर्वक समाजता के आधार पर परस्पर सहयोग करे। शासन व्यक्तियों पर न होकर वस्तुओं पर होने सपेया श्रीर शासन का कार्य उपादन विचारों का संभालन ही जस्यया। गाँव श्रीर नगर में कोई विभे नहीं रहेगा।



उत्पादन-बुद्धि द्वारा धन और नगर की बुरी ब्रमात हो जायगी। गति भी राष्ट्र की मोति अमल और सर्व-मुक्तिवाचक हो जायेंगे। योग्यता के अनुसार कार्य और कार्य के अनुसार वेतन का सिद्धान्त उत्पादन-बुद्धि के कारण "योग्यता के अनुसार कार्य और आवश्यकता के अनुसार वेतन" के सिद्धान्त में परिवर्तित हो जायगा। राष्ट्रीय और बौद्धिक कार्य में भी कोई अंतर नहीं रहेगा क्योंकि विज्ञान को प्रवृत्ति इस विवेक की मिटा देगी। विज्ञान राष्ट्रीय धन की सर्व-मुक्ति बना देगा। शैक्षणिक प्रवृत्ति के कारण नागरिक भी प्रशासन-सम्बन्धी कार्यों में निवृत्त हो जायेंगे और फिर शासन के लिए किसी विरोध की आवश्यकता नहीं रहेगी। राज्य का भी कोई विशेष कार्य नहीं रहे जायगा। इसके स्वार्थत्व को प्रतिष्ठा होगी। प्रवृत्ति इस वर्ग-रहित समाज का मूलमंत्र होगी। मानव स्वयं ही सामाजिक नियमों के वाचक के बराबर हो जायेंगे, ठीक वैसे वैसे जैसे हमें राज्य के वे अर्थ विनया कार्य वेकत निर्बल कराने और बहक देने का है निरर्थक हो जायेंगे। जब समाज अपने इस अरम रूप को प्राप्त कर लेगा तो राज्य 'भंग' नहीं होगा परन्तु 'विलुप्त' हो जायगा (The State will wither away) अर्थात् सेवा, धर्म और राज्य के कर्म चार्ज इनका कार्य निर्वन्ध-सम्बन्धी है, विलुप्त हो जायेंगे। यही साम्यवादी ध्येय होगा।

किन्तु कौनो साम्यवादी विचारक मार्क्स और एंगेल्स के राज्य विलुप्ति (The State will wither away) के मतमय का कुछ धर्म ही कार्य कराते हैं। उनका मत है कि मार्क्स और एंगेल्स का यह ठरसर्भ नहीं था कि संक्रमण काल के बाद वर्ग-रहित समाज की स्थापना होने पर राज्य का अंत हो जायगा। इसके अलावा प्राच्य राज्य के अर्थव्यवस्था का अंत होता मात्र था क्योंकि राज्य एक-वर्गव्यवस्था न रहे कर सब एक जन-संस्था में परिवर्तित हो जायगा। उसके अन्तर्गत जन की परिच्छिन्न बनबाह में हो जायगी जिसमें समस्त बलता का प्रतिनिधित्व समिद्धि होगा। सेना न बहा था 'हम अस्त्रधारि नहीं हैं'। हम सभी-भक्ति जानते हैं कि समाज दुष्ट, अत्याचारी और अराजकी लोगों से अथवा परिपूर्ण रहना और उनके निर्वन्ध के लिए सब राज्य की आवश्यकता पड़ती रहेगी। अतुल्य राज्य का अंत अन्ततः सम्भव नहीं है जबतक कि सम्पूर्ण राष्ट्र समाजवादी न हो जायें और वे भी वर्ग-रहित समाज की ओर अग्रसर न हों। चार्ज और पूँजीवादी वर्गों के अंत होने पर राज्य का विचार करना बौद्धिक विवृति का अंतक होगा

1 'Form each according to his ability, to each according to his needs'

धीरे धीरे धीरे पर कुम्हाड़ी मारना होना । वही कारण है कि रूस जो कि एक समाजवादी राष्ट्र है, राज्य की विभूति की धीरे धीरे प्रयत्नशील नहीं है । किन्तु रूस में वीर्यकास तक अभिनायकशाही का बना रहना भी मयाबह है । उसे प्राबिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए । यद्यपि पुनो-स्थापना में शान्ताशाही प्रवृत्त है, किन्तु वहाँ विकेन्द्रित समाज-रचना की धीरे प्रयास हमारी धारावाहिका को विपुलित कर देता है । काश ! रूस भी इस धीरे धीरे ही पूँजीवादी राष्ट्रों को वह राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रयत्नशील कर सके ।

## जनतंत्र ( Democracy )

जनतंत्र को लेकर साम्यवादियों की सर्वाधिक कटु आलोचना की गयी है । आज जनतंत्र बड़ा विवादास्पद प्रश्न हो गया है । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसी प्रश्न को लेकर संसार जो विभिन्न गुटों में बँट गया है । पूँजीवादी राष्ट्र प्रकाशक रूस से जनतंत्र के आचार पर रूस के अभिनायकत्व की आलोचना करते हैं । यह सिद्धांतिक मतभेद है । अतः 'जनतंत्र का प्रश्न विचारणीय है ।

मार्क्स उल्ट्राटि का जनवादी था । उसकी जो बर्न-विहीन समाज की कल्पना है उससे यह स्पष्ट है कि उसकी सोच में निष्ठा थी । आचार्य मरेम्बेन के शब्दों में, "कम्युनिज्म की जो चरम अवस्था है वह मार्क्स के अनुसार आत्म-निर्वाह सम्पन्न है । उनका सांस्कृतिक स्तर इतना ऊँचा हो गया है कि जनसाधारण स्वतः बिना किसी बाहरी नियंत्रण के या राज-दण्ड के भय के बिना ही सहयोग की भावना से प्रेरित हो समाज का संभालन करते हैं । जनतंत्र का यह चरम विकास है । जनतंत्र को प्रत्यक्ष कर समाजवाद की कल्पना ही नहीं सकती ।" किन्तु मार्क्स पूँजीवादी जनतंत्र को सभा जनतंत्र नहीं मानता था । गांधी जी भी पूँजीवादी जनतंत्र को सभा जनतंत्र नहीं कहते थे । मार्क्स ने पूँजीवादी जनतंत्र की आलोचना की थी । उसका मत था कि पूँजीवादी सोशलिज्म में जो हर पाँच-बर्षों में संसद के लिए निर्वाचन होता है, उसका अर्थ है कि धनिक वर्ग ने प्रतिनिधित्व के लिए किसी पूँजीवादी प्रवर्गी को, जिसे वह चाहता है, मत दे । साम्यवादी इसी आचार पर पूँजीवादी सोशलिज्म की आलोचना करते हैं । पूँजीवादी सोशलिज्म में राजनीतिक शक्ति का हाथ है । किन्तु यह राजनीतिक स्वातन्त्र्य नहीं है । एक तरफ़ कि पूँजी-पतियों के अधिकारों पर कुठाघात नहीं होता है । जैसे ही पूँजीपतियों के अधिकारों का अतिक्रमण होना, जनतंत्र का पुनीत रूप पुनिस राज्य में परिवर्तित हो जायगा । जनतंत्र का अर्थ आचार्य बहू जायगा धीरे धीरे समाज का नया धीरे

शुरू हो जायगा। अतः साम्यवादियों की दृष्टि में, पुँजीवादी जनतन्त्र एक बड़ा आश्चर्य और धोखा है। वे राज्यों का विभाजन पुँजीपति के अधिनायकत्व और सर्वहारा के अधिनायकत्व में करते हैं। लेनिन ने सर्वहारा के अधिनायकत्व का विप्लेपण किया था। उसका विस्वास उत्कण्ठी जनवादी दल में नहीं था। उसने इस सम्बन्ध में कौटस्की (Kautsky) की आलोचना की थी। उसने कहा था कि सर्वहारा के अधिनायकत्व का प्रत्यक्ष सर्वहारा के राज्य और पुँजीवादी राज्य के बीच तथा सर्वहारा का जनता और पुँजीवादी जनता के मध्य सम्बन्ध का प्रत्यक्ष है। अधिनायकत्व का आक्षेपक रूप में यह धर्म नहीं है कि जिस वर्ग के ह्रास में अन्य वर्ग के विच्छेद यह सत्ता है उसके लिए जनता को हटा दिया जाय किन्तु आक्षेपक का मैं इससे कह सकता हूँ कि उस वर्ग के लिए जनतन्त्र हटा दिया जाय जिसके विच्छेद अधिनायकत्व सत्ताहीन हुआ है। सर्वहारा का जनतन्त्र समीर की धरोहरा गरीब का जनतन्त्र है। पुँजीपति के लिए ऐसे जनतन्त्र में कोई स्थान नहीं है। ऐसे जनतन्त्र में उसे सभी अधिकारों से वंचित कर देता है। इस प्रकार पुँजीवादी जनतन्त्र में आत्मसम्बन्धक पुँजीपतियों की अधिकार-सत्ता या य समाज और जरायव के समस्त शक्तियों पर होती है और यह शक्ति प्रत्यक्षियों का बहुसंख्यक वर्ग पर होता है। किन्तु इस में बहुसंख्यक वर्ग का प्रत्यक्षिक (पुँजीपति)-वर्ग पर शासन है। अतः यही सत्ता जनतन्त्र है। लेनिन ने यह कहा था कि ऐसा जनतन्त्रीय राज्य पुँजीपति जनतन्त्र से हजारों गुना अधिक जनतन्त्रीय है। वेब द्वाारा<sup>१</sup> ने भी कहा था कि संसार में इस जैसा सर्वव्यापक एवं साम्यवादात्मक जनतन्त्र नहीं नहीं है। ब्रिटेन और अमेरिका के प्रायः चुनावों में लगभग १० प्रतिशत मतदाता भाग लेते हैं। जब इस में लगभग ८० प्रतिशत मतदाता निर्वाचन में भाग लेते हैं। पुँजीवादी राज्य में जो राजनीतिक स्वतंत्रता का बोध होता है, यह अधिक के लिए नाममात्र को है। आधिक स्वतंत्रता के अभाव में राजनीतिक स्वतंत्रता अर्थहीन है। ऐसी स्वतंत्रता का जब कि प्रत्यक्ष लोग गरीबी के शिकार हैं, कोई भीषण नहीं है। यह पुँजीपति की स्वतंत्रता है। पुँजीवादी वर्ग का जन-जीवन के समस्त शक्तियों पर एकाधिकार है। यह इन सबका उन्मूलन करता है। एक गरीब के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई धर्म नहीं होता सिवाय इसके कि वह अपने शीपण एवं उत्पीड़न के लिए

1 Sydney and Beatrice Webb-Social Communism

शापकों के हाथ की बठभुतकी बना रहे । तब तक जनता का अधिष्ठान मान सम्पत्तिहीन है तब तक ब्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करना निरर्थक है क्योंकि अधिका के पास अग्य कोई विकल्प नहीं है, सिवाय इसके कि वह अपनी धन-शक्ति को सबसे अधिक मूल्य देनेवाले की बेच दे । चाहे शासन जनवादी ही क्यों न हो किन्तु समाज में सत्ता सरकार की प्रवेक्षा उन्हीं के हाथों में रहेगी जिनका उदारान के सामनों पर एकाधिकार है । पठ धार्मिक साम्य के अभाव में राजनीतिक स्वतंत्रता अर्थहीन है । इस राजनीतिक स्वतंत्रता से शोषक-वर्ग ही सामानित होता है, न कि अधिका-वर्ग । इस प्रकार पूँजीवादी जनतंत्र सच्चा जनतंत्र नहीं है ।

## एंगेल्स (Engels)

( 1820-1895 )

एंगेल्स का नाम मार्स के साथ जुड़ा हुआ है । वह मार्स का अधिष्ठ मित्र और सहयोगी था । सन् 1844 में वेरिख में एंगेल्स मार्स के साक्षिष्य में आया और यह मित्रता मार्स मार्स के जीवनपर्यन्त बनी रही । एंगेल्स एक उद्योगरति का पुत्र था । और उसके पिता की एंगेल्स के उद्योगियों से कोई सहानुभुति नहीं थी । एंगेल्स ने अपना ब्यापारिक जीवन 17 वर्ष की अवस्था में ही प्रारम्भ किया । वह अपने पिता का एजेण्ट बन कर मैनचेस्टर गया । एंगेल्स की सन् 1844 में 'इंग्लैण्ड में अधिका वर्गों की शर्तएँ' ( The conditions of working classes in England ) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई । सन् 1848 में कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र ( Communist Manifesto ) मार्स और एंगेल्स दोनों के प्रयास से प्रकाशित हुआ । सन् 1848 की फ्रांस और जर्मनी की क्रांतिकारी गतिविधियों में मार्स और एंगेल्स ने भाग लिया और इस आन्दोलन की असफलता के कारण दोनों इंग्लैण्ड चले गये । एंगेल्स ने फिर एक बार अपने पिता के ब्यापार को संभाला । एंगेल्स ने मार्स की पर्याप्त आर्थिक सहायता की । यदि एंगेल्स अपनी सहायता नहीं करता तो सम्भवतः मार्स भूखों मर जाता । मार्स भीष्मभर और बरिठता में रहा । मार्स की अनेक रचनाओं में एंगेल्स का सहयोग था । एंगेल्स की अपनी रचनाएँ हैं—Socialism, Utopian and Scientific, Anti-Duhring, Origina of the Family, Private Property and the State । मार्स की मृत्यु के उपरान्त एंगेल्स ने उसके दास कैपिटल ( Das Capital ) के द्वितीय और तृतीय खण्ड का सम्पादन किया ।

## लेनिन् (Lenin)

( १८७०-१९२४ )

लेनिन् का असली नाम व्लादिमिर इलिच मुलिनोव ( Vladimir Ilyich Ulianov ) था। जब लेनिन् का निष्कासन हुआ तभी उसने अपना नाम लेनिन् रख लिया। लेनिन् का पिता एक स्कूल-निरीक्षक था। उसके पिता के ९ बच्चे थे, जिनमें लेनिन् दूसरा था। लेनिन् के सभी भाई व्यक्तिकारी थे। लेनिन् के बड़े भाई को एम्बरगेट्टर तुर्गिव के विद्वत् पर्येष में बोरी बटा कर गिरफ्तार कर सिखा गया और उसे फौजी की सेवा दे दी गई। लेनिन् ने १८८७ में कज़ान विश्व विद्यालय ( Kazan University ) में कानून पढ़ने के लिए प्रवेश लिया। किन्तु छात्र-आन्दोलन में भाग लेने के कारण उसे निरवधिप्राप्त से निष्कास दिया गया। लेनिन् ने प्राइवेट कमीन्डार की हैसियत से सन् १८९१ में सेण्ट पीटर्सबर्ग विश्व-विद्यालय से कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। लेनिन् अपनी व्यक्तिकारी कार्यवाहियों के कारण साइबेरिया में १ वर्ष के निष्कासन के लिए भेज दिया गया। १९०० में लेनिन् संभन बना गया और म्यूनिख में 'दि इस्त्रा' ( The Iskra ) नामक पत्र निकाला। लेनिन् की ट्राट्स्की ( Trotsky ) से संभन में भेंट हुई। लेनिन् के जीवन में सफल और पठन के दिन आये, किन्तु बहु-जुटान के समान प्रथम और प्रथिय रहा। उसने १९०० से १९१४ तक अपने विपारों के प्रचार करने में और इस की जन-शक्ति को संगठित करने में कामया। सन् १९१४ से सन् १९१७ तक लेनिन् चार ( Czar ) और उसकी सरकार के विद्वत् आन्दोलन करता रहा। १९१७ में फारसाही का अन्त हो गया और उसे इस-प्रवरा की राजा मिल गयी। किन्तु लेनिन् के विमन्त्र-ही आने के कारण शासन-बन्धा मन्शेविक्स ( Mensheviks ) के हाथों में आ गयी। फिर भी, नवम्बर १९१७ में यह धरने समर्थकों से हट मन्शेविक्स को सत्ताभ्युत्थन करने में सफल ही गया। सत्ता हस्तगत करने के बाद लेनिन् अभी बड़ी संकटाग्रस्त स्थिति में था। सब पर बिदेही सेनार्स आक्रमण कर रही थी और आर्थिक स्थिति शत्रुाशोक थी। आर्थिक संकट का मुझाबसा करने के लिए लेनिन् ने एक आर्थिक नीति का निर्धारण किया। उसकी आर्थिक नीति ने देश को मूल्य के संयुक्त से बना लिया और यह सफल ही और प्रचलन होन लगा। उसने देश के निपुनीकरण पर आर्थिक बल दिया, जिसके द्वारा कि इस प्रवृत्ति पर लड़ता था। लेनिन् की मृत्यु जनवरी १९२४ में हो गयी।

लेनिन् सचकीर्ति का प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। सम्भवतः इतिहास में

✓ क्रांतियुग की शुरुआत के समय न भय तक इतना प्रभावशाली व्यक्ति नहीं हुआ। वह एक प्रख्यात क्रांतिकारी सुन्दर संघर्षकर्ता उच्च क्रांति का शासक, विद्वान् भीरु सेनक था। उसने मार्क्सवाद को अपनी परिस्थितियों के अनुरूप बनाया। उसके विचारों का स्थापित ( Stalin ) ने 'लेनिनवाद' ( Leninism ) की उदाहरण प्रदान की थी। वह उस का संपादन, सत्यापक भीरु उदाहरण था। वह मार्क्सवाद का प्रवर्धन भीरु शोधित एवं स्वीकृत-वर्ष का मञ्जीहा था।

### मार्क्सवाद को लेनिन की देन

स्तालिन ने कहा था, 'मिया विचार है कि लेनिन ने मार्क्सवाद में कोई नये सिद्धान्त नहीं जोड़े न उन्होंने मार्क्सवाद के 'पुराने' सिद्धान्तों में सचिची को छोड़ा। वह मार्क्स और एंगेल्स के अनुयायी धार सिद्ध्यगत रूप में से से भीरु बने रह, परन्तु लेनिन ने मार्क्स और एंगेल्स के विचारों को कार्य-रूप में परिणत ही नहीं किया उन्होंने उन्हें विचारों की नयी परिस्थितियों के साथ पुनः वाद ने नये रूप के साथ, साम्राज्यवाद के साथ घाने बढ़ाया। इसका यह अर्थ है कि मार्क्स और एंगेल्स ने जो मूल्य निर्माण किया था भीरु पूर्वोक्त ने प्रान् साम्राज्यवादी युग में विचारों के निर्माण कर सकते थे उसे देखते हुए लेनिन ने वर्ष संपर्ष की नयी परिस्थितियों में मार्क्स के विचारों को घाने बढ़ाते हुए मार्क्सवाद की साधारण सिधि की नयी चीजें थीं। इनके अलावा मार्क्सवाद को लेनिन की देन का आधार पूर्ण रूप से मार्क्स और एंगेल्स का प्रतिष्ठित सिद्धान्त नहीं है। इस भाव से हम लेनिनवाद को साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग का मार्क्सवाद कह सकते हैं।'<sup>१</sup>

(१) साम्राज्यवाद पूर्वोक्त की अन्तिम अवस्था है ( Imperialism is the last stage of capitalism ) यह लेनिन की ऐतिहासिक उक्ति है। यही है। यह उसी मार्क्सवाद को महानुत्तम देन है। यद्यपि मार्क्स ने साधारण परिवर्तन कर ही था कि साम्राज्यवाद पूर्वोक्त की अन्तिम अवस्था होनी थीरु यह केवल कल्पना ही कर सकता था, क्योंकि उन दिनों साम्राज्यवाद अन्तः देशीकरण में ही था। किन्तु लेनिन ने उसने पूर्ण विद्विष्ट अवस्था की ही नये देना प्रस्तुत उसके द्वारा पूर्वोक्त को मरणाशय कर देता था। अतः लेनिन का एक विचार को पूर्ण विद्विष्ट करने में सफल हो गया कि स्थापित

१. कार्ल मार्क्स और उग्र सिद्धान्त— एंगेल्स लेनिन धार स्थापित।

## लेनिन् (Lenin)

( १८७०-१९२४ )

लेनिन् का असली नाम व्लादिमिर इलिच मुखिनोव ( Vladimir Ilyich Ullanov ) था। जब लेनिन् का जन्मा हुआ तभी उसने अपना नाम लेनिन् रख लिया। लेनिन् का पिता एक स्कूल-निरीक्षक था। उसके पिता के ६ बच्चे थे जिनमें सेलिन् दूसरा था। लेनिन् के सभी भाई अल्पिकारी थे। लेनिन् के बड़े भाई को एकेड्रेटर तुर्गन के विद्यार्थी पदार्थ में बीपी बटा कर गिरफ्तार कर लिया गया और उसे फौसी की सजा दे दी गई। लेनिन् ने १८८७ में कज़ान विश्व विद्यालय ( Kazan University ) में जापूज करने के लिए प्रवेश लिया। किन्तु छात्र-आन्दोलन में भाग लेने के कारण उसे निरवधिद्यालय से निकाल दिया गया। लेनिन् ने प्राइवेट सम्पीक्षार की शैक्षिक से सन् १८९१ में कैज़-वीटर्सबर्ग विश्व विद्यालय से कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। लेनिन् अपनी अल्पिकारी कार्यवाहियों के कारण साइबेरिया में ३ वर्ष के जन्मासुन के लिए भेज दिया गया। १९ में लेनिन् लंबन बसा गया और म्युनिक में 'दि इस्तरा ( The Iskra ) नामक पत्र निकाला। लेनिन् की ट्राट्स्की ( Trotsky ) से लंबन में भेंट हुई। लेनिन् के बीकन में जवान और पतन के दिन आये किन्तु यह स्टेटस के समान अक्स और अभिन रहा। उसने १९०० से १९१४ तक अपने विचारों के प्रचार करने में और इस की जन-शक्ति को संघठित करने में योग्यता। सन् १९१४ से सन् १९१७ तक लेनिन् जार ( Czar ) और उसकी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करता रहा। १९१७ में जारशाही का पतन हो गया और उसे इस-ब्रय की राजा मिल गयी। किन्तु लेनिन् के बिलम्ब-हो जाने के कारण शासन-बन्दा मन्शेविचस ( Mensheviks ) के हाथों में आ गयी। फिर भी, नवम्बर १९१७ में यह धरने समर्थकों उद्देश मन्शेविचों को सत्ताच्युत करने में सफल हो गया। सत्ता हस्तगत करने के बाद लेनिन् अभी बड़ी संघटनस्थ स्थिति में था। उस पर विदेशी सेनाएँ घातमण्य कर रही थी और आर्थिक स्थिति शान्तिहीन थी। आर्थिक संकट का मुनाबसा करने के लिए लेनिन् ने एक आर्थिक नीति का निर्धारण किया। उसकी आर्थिक नीति ने देश को मृत्यु के बंधुस से बचा लिया और देश अर्थिक की और अद्वय होम लदा। उसने देश के विद्युत्-शक्ति पर अधिक बल दिया, जिसके द्वारा हि इस प्रवृत्ति कर सक्षम था। लेनिन् की मृत्यु जनवरी १९२४ में हो गयी।

लेनिन् उपर्युक्त का प्रतिमा-सम्पन्न व्यक्ति था। सम्पन्न इच्छाओं में

बुसियस सीजर के समय से अब तक इतना प्रभावशाली व्यक्ति नहीं हुआ। वह एक प्रख्यात क्रांतिकारी सुन्दर संयत्नकर्ता, उच्च कोटि का शासक, विद्वान् धीर सेनक था। उसने मार्क्सवाद को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल बनाया। उसके विचारों को स्टालिन (Stalin) ने 'लेनिनवाद' (Leninism) की संज्ञा प्रदान की थी। वह रूस का राष्ट्रपिता, संस्थापक और उद्धारक था। वह मार्क्सवाद का प्रवर्तक और घोषित एवं उन्नीहित-वर्ग का मसीहा था।

### मार्क्सवाद को लेनिन की देन

स्टालिन ने कहा था, 'मिरा विचार है कि लेनिन ने मार्क्सवाद में कोई नये सिद्धान्त नहीं जोड़े न उन्होंने मार्क्सवाद के 'पूरन' सिद्धान्तों में से किसी को छोड़ा। वह मार्क्स और एंगेल्स के अनुयायी और सिद्ध्यसंगत रूप में से थे और बने रह, परन्तु लेनिन ने मार्क्स और एंगेल्स के विचारों को कार्य-रूप में परिणत ही नहीं किया, उन्होंने उन्हें विकास को नयी परिस्थितियों के साथ पूर्वी बाद के नये रूप के साथ साम्राज्यवाद के साथ प्राग बढ़ाया। इसका यह अर्थ है कि मार्क्स और एंगेल्स ने जो बुद्धि निर्मित किया था और पूर्वीवाद में प्रारम्भ साम्राज्यवादो युग में निरसना व निर्माण कर सकते थे उस बेसते हुए लेनिन ने वर्ग-संघर्ष को नयी परिस्थितियों में मार्क्स के विचारों को प्रागे बढ़ात हुए, मार्क्सवाद को सामारण निधि को नयी चीजें दीं। इनके असावा मार्क्सवाद को लेनिन की देन का आचार पूर्ण रूप से मार्क्स और एंगेल्स का प्रतिष्ठित सिद्धान्त नहीं है। इस भाव से हम लेनिनवाद को साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग का मार्क्सवाद कह सकते हैं।'<sup>१</sup>

(१) साम्राज्यवाद पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था है (Imperialism is the last stage of capitalism) यह लेनिन की ऐतिहासिक उक्ति हो गयी है। यह उसको मार्क्सवाद को महानतम देन है। यद्यपि मार्क्स ने यह परिदृश्यना कर ली थी कि साम्राज्यवाद पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था होगी और वह वैषम्य कल्पना ही कर सकता था क्योंकि उन दिनों साम्राज्यवाद अपनी शुरुआत में ही था। किन्तु लेनिन ने उसके पूर्ण विकसित स्वरूप की ही महा देना, प्रस्तुत उसके द्वारा पूंजीवाद का परमाणुन बर्त देना था। यतः लेनिन ही इस विचार को पूर्ण विकसित करने में सफल हो सका ऐसा कि स्टालिन ने

१ कार्ल मार्क्स और उसके सिद्धान्त— एंगेल्स लेनिन और स्टालिन ।



कहा था 'पूर्वी' में मार्क्स और एंगेल्स पूर्वीवाद के इस युग में दो बार पूर्वीवाद का समकाल विकास हो रहा था और घारे संसार में उसका शक्तिपूर्ण प्रसार हो रहा था। पूर्वीवाद का यह पुराना बीर पूरा हुआ ज़मींसकी सरी के मूल और बीसवीं सरी के प्रारम्भ में। तब मार्क्स और एंगेल्स का बेहान हो चुका था। यह स्पष्ट है कि पूर्वीवाद के पुनर्ने बीर के बाद जो नया बीर शुरू हुआ, उसके पूर्वीवाद के विकास की जो नयी परिस्थितियाँ विकसित हुईं उनका अनुमान ही मार्क्स और एंगेल्स के लिए सम्भव था। 'लेनिन ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया और फलतः उनकी जो देन थी वह यह है कि 'पूर्वी' में जिन मुख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, जहाँ के आधार पर उन्होंने साम्राज्यवाद का महत्वपूर्ण मार्कीव विश्लेषण किया कि वह पूर्वीवाद का अन्तिम रूप है। उन्होंने उसके फोर्कों को दिखाया और बताया कि जिन परिस्थितियों में उसका गारा होना। इस विश्लेषण के आधार पर ही लेनिन की यह प्रसिद्ध बाराखा निर्भर थी कि साम्राज्यवाद की परिस्थितियों से विकसित पूर्वीवादी दलों में समाजवाद की विजय होती है।' विस्तृत अध्ययन के लिए 'पूर्वीवाद के विनाश की अनिवार्यता' नामक शीर्षक की इसी प्रख्याप में देखिए।

(२) शक्ति की पद्धति—मार्क्स का शक्ति शक्ति के सम्बन्ध में बचन था कि यह उसी देश में सफलीयुक्त हो सकती है जहाँ शीघ्रोगीकरण अपनी चरमावस्था पर पहुँच चुका हो किन्तु वह जैसे सामन्तशाही देश में मार्क्स की धारा के विपरीत शक्ति शक्ति जैसे उठता है? लेनिन का ज्ञान था कि वह पूर्वीवाद की चरमावस्था का अनुभव नहीं कर रहा था, फिर भी उसने अप्रत्यक्ष रूप से पूर्वीवाद और उद्योगवाद की अनुभूति की थी और तब में शक्ति के सामन्त हेतु आधारभूत परिस्थितियों विद्यमान थीं। इन पूर्ण विरहात या कि मुठ होना और मुठ में वह पराजित होना मत उसके लिए एक देश बन का निर्माण करना, जो शक्ति को सफल बना सके, आधारभूत था। किन्तु मार्क्स कभी शक्तिशालियों को प्रतीकृत कर देता क्योंकि जमी सामाजिक और शक्तिशाली उन एक शक्ति को भी पूरी नहीं करता था, जिसे वह शक्ति की सफलता के लिए आधारभूत सम्बन्ध था। पीखानोव (Plekhanov) जैसे कभी मार्क्सवादी दल तब से जमी शक्ति अवगत थे। निरसन्देह लेनिन ने सिद्धान्तवादिता की दल-दल में न फँसकर व्यावहारिकता से कार्य किया और अपने सिद्धान्तों के शीघ्रिय की अपेक्षा अपनी इन नीति के वास्तविक में अधिक शक्तिशालि प्रदर्शित की।

(१) दसौय आन्दोलन—माक्स और एंगेल्स ने पार्टी स्थापना की आवश्यकता की थी। उनकी दृष्टि में, इस सर्वहारा-वर्ग का प्रमुख दस होना, जिसके द्वारा अंगीकृत सर्वहारावर्ग अपने कर्तव्यों से मुक्ति पा सकेगा। बिना दस के धर्मिक-वर्ग न ही शासन सत्ता पर एकाधिकार ही कर सकेगा और न वर्ग-बिहीन समाज की स्थापना ही सम्भव होगी। किन्तु इस विद्या में लेनिन की देन यह है कि माक्स द्वारा प्रतिपादित इस स्वरूपा को विकसित और स्पष्ट किया तथा सभी परिस्थितियों के अनुसार इसे प्रयुक्त किया। उसने यह निःसन्देह स्वीकार किया कि सर्वहारा के पास अपने शक्ति-सङ्कट में दसौय सङ्कट को छोड़कर अन्य कोई रास्ता नहीं है। दस सम्पूर्ण धर्मिक-आन्दोलनों का मध्य रहता है और वह मार्ग प्रदर्शन तथा नेतृत्व प्रदान करता है, जिसकी आवश्यकता ऐसे आन्दोलनों की होती है, किन्तु यह सर्वथा धर्मिक सङ्कट से विभेदित होता है। लेनिन ने बताया कि (१) सर्वहारा सङ्कट के समय क्यों (धर्मिक सङ्कट, सहकार-सङ्कट तथा राज्य के सङ्कट) की अपेक्षा पार्टी सर्वहारा के वर्ग-सङ्कट का एक उच्चतर रूप है। वह इन सङ्कटों के कार्य में साम्य-स्थापन तथा संघर्ष करे। (२) सर्वहारा का एकाधिकार सभी सम्भव है जब कि पार्टी की निर्देश शक्ति हो। (३) सर्वहारा वर्ग का एकाधिकार सभी पूर्ण हो सकता है जबकि उसका नेतृत्व एक ही पार्टी करती हो। (४) पार्टी में कठोर अनुशासन परम आवश्यक है और सभी शापकों का पक्षपात और वर्गीय समाज की वर्ग-बिहीन समाज में परिणति सम्भव है।

(५) सर्वहारा का अभिनामकरण एवं सर्वोपरिता—माक्स ने कहा था कि सर्वहारा की शक्ति के परभाव सर्वहारा वर्ग के अभिनामकरण की प्रतिष्ठा होती, उसका शासन-रूप पर एकाधिकार होना और जनतंत्र की प्रतिष्ठा होती, वैसा कि कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में उल्लिखित है।<sup>१</sup> सन् १८११ में एंगेल्स ने कहा था, "यदि कोई बात निरिक्त है तो यह है कि हमारा दस और धर्मिक वर्ग जनवादी गणतंत्रिय स्वरूप के अन्तर्गत ही बचस शक्ति में आ सकता है।"<sup>२</sup> एंगेल्स का यह संकेत १८७० के पेरिस कम्यून की और या जिसकी स्था

1 "The first step in the revolution by the working class is the raising of the proletariat to the position of ruling class and to establish democracy" (Karl Marx)

2 "If anything is certain, it is that our party and the working class can only come to power under the form of the democratic republic." (Engels)

बहावा 'पूर्वी में मानस और एगिप्ट पूर्वोत्तर के उस युग में ये सब पूर्वोत्तर का समतल विकास ही रहा था और सारे संसार में उसका शांतिपूर्ण प्रसार ही रहा था। पूर्वोत्तर का यह पुराना दौर पूरा हुआ जन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में। तब मानस और एगिप्ट का देहान्त हो चुका था। यह स्पष्ट है कि पूर्वोत्तर के पुराने दौर के बाद जो नया दौर शुरू हुआ, उसके पूर्वोत्तर के विकास की जो नवी परिस्थितियाँ विकसित हुईं उनका अनुमान ही मानस और एगिप्ट के लिए सम्भव था।' 'लेनिन ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया और पसत' उनकी जो बात थी, यह यह है कि 'पूर्वी' में जिन मुख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, उन्हीं के आधार पर उन्होंने साम्राज्यवाद का महत्वपूर्ण मार्क्सवादी विश्लेषण किया कि यह पूर्वोत्तर का अन्तिम रूप है। उन्होंने उसके फ्रेण्डों को सिखाया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका नाश होगा। इस विश्लेषण के आधार पर ही लेनिन की यह प्रसिद्ध धारणा निर्भर थी कि साम्राज्यवाद की परिस्थितियों से विभिन्न पूर्वोत्तरी देशों में समाजवाद की विजय होती है।' विस्तृत अध्ययन के लिए 'पूर्वोत्तर के विनाश की अनिवार्यता' नामक शीर्षक को इसी अध्याय में देखिए।

(१) अर्थ की पद्धति—मार्क्स का अर्थिक ज्ञानि के सम्बन्ध में बयान था कि यह सभी देशों में सफलतापूर्वक हो सकती है जहाँ औद्योगिकरण अपनी चरमावस्था पर पहुँच चुका हो, किन्तु उस जैसे सामन्तशाही देश में मार्क्स की धारा के विपरीत अर्थिक ज्ञानि कैसे सफल हुई? लेनिन का ज्ञान था कि यह पूर्वोत्तर की चरमावस्था का अनुभव नहीं कर सता था, फिर भी वहने प्रत्यक्षरूप से पूर्वोत्तर और उद्योगवाद की अनुभूति की थी और हम में अर्थिक के सामन्त हेतु आवश्यक परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। उस पूर्व विचार था कि कुछ हीवा और कुछ में एक पराजित होगा, अतः उसके लिए एक ऐसे दम का निर्माण करना जो अर्थिक को सफल बना सके, आवश्यक था। किन्तु मार्क्स कही अर्थिककारियों को अस्वीकृत कर देता क्योंकि कही सामन्तिक और आर्थिक डाला उस एक शर्त की भी पूरी नहीं करता था जिसे वह अर्थिक की सफलता के लिए आवश्यक समझता था। प्लेखानोव ( Plekhanov ) जैसे कही मार्क्सवादी इस तथ्य से असहमत प्रकृत थे। निरवच्छेद लेनिन ने सिद्धान्तकारिता की दम-दम में नई-नई व्यावहारिकता से कार्य किया और अपने सिद्धान्तों के औचित्य की अपेक्षा अपनी दम नीति के व्यावहारिकता में अधिक ध्यान दिया प्रकृत की।

(१) रूसीय आन्दोलन—माक्स धीर एंसेन्स ने पार्टी स्थापन की कल्पना की थी। उनको दृष्टि में, इस सर्वहारा-वर्ग का प्रमुख दस होया जिसके द्वारा उगीहित सर्वहारावर्ग अपने कर्णों से मुक्ति पा सकेगा। बिना इस के कमिन्स-वर्ग न तो शासन सत्ता पर एकाधिकार ही कर सकेगा और न वर्ग विहीन समाज की स्थापना ही सम्भव होगी। किन्तु इस दिशा में लेनिन की देन यह है कि माक्स द्वारा प्रतिपादित इस कल्पना को विशिष्ट धीर स्पष्ट क्रिया तथा नयी परिस्थितियों के अनुसार इसे प्रयुक्त किया। उसने यह निःसन्देह स्वीकार किया कि सर्वहारा के पास अपने शक्ति-सङ्ग्रहण में रूसीय सङ्गठन को छोड़कर अन्य कोई शक्य नहीं है। वह सम्पूर्ण कमिन्स-प्रान्दोलनों के मध्य रहता है और वह मार्ग प्रदर्शन तथा नेतृत्व प्रदान करता है, जिसकी आवश्यकता ऐसे प्रान्दोलनों को होती है, किन्तु यह सर्वथा कमिन्स सङ्गठन से विभक्त होता है। लेनिन ने बताया कि (१) सर्वहारा सङ्गठन के मध्य रूपों (कमिन्स सङ्घ, सहकार-सङ्घ तथा राज्य के सङ्गठन) की अपेक्षा पार्टी सर्वहारा के सर्व-सङ्गठन का एक उच्चतर रूप है। वह इन सङ्गठनों के कार्य में साम्य-स्थापन तथा संवाहन करे। (२) सर्वहारा का एकाधिकार तभी सम्भव है जब कि पार्टी को निर्येक शक्ति हो। (३) सर्वहारा वर्ग का एकाधिकार तभी पूर्ण हो सकता है जबकि उसका नेतृत्व एक ही पार्टी करती हो। (४) पार्टी में कठोर अनुशासन परम आवश्यक है और तभी शापकों का परबलन धीर वर्गीय समाज की वर्ग-विहीन समाज में परिणति सम्भव है।

(२) सर्वहारा का अधिनायकत्व एवं सर्वोपरित्वा—माक्स ने कहा था कि सर्वहारा को कमिन्स के परबल सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की प्रतिष्ठा होगी, उसका शासन-मूक पर एकाधिकार होया और जनतंत्र की प्रतिष्ठा होगी वैसा कि कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में उल्लिखित है।<sup>१</sup> सन् १८८१ में एंसेन्स ने कहा था, "यदि कोई बात निरिषय है तो यह है कि हमारा दस धीर कमिन्स वर्ग जनवादी मण्डलीय स्वकार के अन्तर्गत ही बचल शक्ति में आ सकता है।" एंसेन्स का यह संकेत १८७० के पेरिस कगून की धीर था, जिसकी स्था

1 "The first step in the revolution by the working class is the raising of the proletarian to the position of ruling class and to establish democracy" (Karl Marx)

2 "If anything is certain, it is that our party and the working class can only come to power under the form of the democratic republic. (Engels)

पना बरकरार मजदूरी के आचार पर हुई थी। किन्तु लेनिन का सर्वहारा के अधिकारों से प्रतिवाद एकदलीय राज्य के अधिकारों से था। लेनिन का मार्क्स के सिद्धान्त से यह स्पष्ट प्रयाण था। किन्तु ट्राट्स्की (Trotsky) ने यह धोखाकार किया था कि एक अल्पसंख्यक-वर्ग जनवादी राज्यों द्वारा सत्ता हस्तगत नहीं कर सकता। लेनिन ने मार्क्स के सिद्धान्त का प्रीक्षित किछु करके हुए कहा था कि सर्वहारा की शासन वर्ग में परिवर्तित जनवादी प्रतिक्रिया के समकक्ष है। "हम सभी जानते हैं कि उस समय राज्य का राजनीतिक स्वरूप (अन्तिम के उपरान्त) निरन्तर जनतंत्र है।" इस प्रकार लेनिन ने सर्वहारा राज्य की निरन्तरतम जनतंत्र कहा क्योंकि यह जनतंत्र एक राज्य में ही सम्भव है, किन्तु नहीं एक पूर्ण जनतंत्र का प्रारम्भ है यह सभी सम्भव है जब कि इस राज्य का विनाश ही पाव। "पूर्ण जनतंत्र" की अन्तिम केवल विस्तृति के लिए ही होती। राज्य के विनाश के बाद क्या जनतंत्र भी माना गिनाये जाय (well democracy itself begin to wither away)? यह उसके विचारों में विशेषाधिकार है, क्योंकि उसने पूर्व कहा था "जनतंत्र भी एक राज्य है और निरन्तरतम जनतंत्र भी किन्तु ही शायदा, जब राज्य का विनाश होता।"<sup>1</sup>

(५) मार्क्स का कथन था कि सर्वहारा अधिकारों का युग दीर्घकालीन होगा जो आन्तरिकी संघर्षों और युद्ध-युद्धों से परिपूर्ण होगा। उस समय नवीन समाजवादी समाज की स्थापना हेतु सर्वहारा वर्ग आन्तरिक संघर्षों को प्रयुक्त करेगा। पुरातन समाज की धोखा यह समाज वर्ग एवं राज्य विहीन होगा। स्टालिन के अनुसार लेनिन की इस श्रेण में हैन की '(१) सर्वहारा-आधिपत्य का देश कार्य और के पुँजीवादी राज्यों के बीच हस्तगत से न कुछ न बिना भाव, तो वहाँ पूर्ण सोसलिस्ट समाज का निर्माण सम्भव है; (२) अन्तिम आधिपत्य (नवीन आधिपत्य) का राज्य मार्ग निर्धारित किया गिनाये कि सर्वहारा-वर्ग आधिपत्य महान की चीजों (उद्योग-धर्म, भूमि, वातावरण) की

1 "We all know that the political form of the State at that time [ after the revolution ] is complete democracy"—  
(Lenin)

2 "Democracy is also a state" and that "Consequently democracy will also disappear when the state disappears"  
(Lenin)

धादि) पर प्रतिकारो होने से समाजवादी लघोप धर्मों से हृषि का सम्बन्ध ( लघोप-धर्मों और किसानों की खेती का सम्बन्ध ) स्थापित करता है, और इस प्रकार राष्ट्र की सम्पूर्ण प्राथिक व्यवस्था को समाजवाद की ओर ले चलता है। ( ३ ) उन्होंने स्पष्ट मार्ग बताने जिनसे किसानों का बहुभाग सहकार संस्थाओं द्वारा धीरे धीरे समाजवादी निर्माण के अनुकूल बन जाता है। ये सहकार संस्थाएँ सर्वहारा-एकाधिपत्य के हाथ में एक प्रकृत धरम बन जाती हैं, जिससे कि किसानों की दृष्टिपूर्विका प्राथिक व्यवस्था को बदला जा सकता है और किसानों के प्रमुख मार्ग को समाजवाद के अनुकूल पुनः स्थित किया जा सकता है। ”

( १ ) जातिवाद और उपनिवेश — मार्क्स और एंगेल्स ने सायरसैण्ड चीन, भारत, हंगरी और पोर्तुगल धादि देशों की तत्कालीन धर्मशास्त्रों का समुचित विरलेपय कर जातीय एवं उप निवेशीय धर्मों के मूलभूत विचारों को स्थिर किया था। स्टालिन के शब्दों में सेनिन का इस क्षेत्र में अनुयाय था ‘ ( १ ) उन्होंने साम्राज्यवाद के युग में जातीय और धर्मनिरपेक्ष धर्मियों के सम्बन्ध में मुख्य बलवत धारणाओं के रूप में इन विचारों का संकलन किया। ( २ ) उन्होंने साम्राज्यवाद के धर्म के प्रश्न के साथ जातीय और धर्मनिरपेक्ष धर्मों को जोड़ दिया। और ( ३ ) उन्होंने बताया कि जातीय और धर्मनिरपेक्ष धर्म अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा धर्म का प्रागुपेक्षिक प्रश्न है। ”

( ७ ) इन्द्रात्मक भौतिकवाद — सेनिन की मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इन्द्रात्मक भौतिकवाद में पूर्ण निष्ठा थी। उसकी दृष्टि में, इन्द्रात्मक भौतिकवाद से निरलन प्रतिक्रियात्मक था। मार्क्स ने कहा था कि इन्द्रात्मक प्रक्रिया समाज-शास्त्रों के अनुशीलन में एक विशिष्ट स्थान रखती है, क्योंकि इनकी विषय-वस्तु में विशास-त्वयता है। किन्तु इसके विपरीत भौतिक शास्त्रों की विषय-वस्तु पदार्थ है जहाँ अन्द्रात्मक भौतिकवाद ( Non-dialectical materialism ) से भी बाध हो जाता है। सेनिन ने मार्क्स के इस विचार को विरहित करते हुए कहा कि इन्द्रात्मक भौतिकवाद के विज्ञान प्रभुत्विक विज्ञानों के क्षेत्र में भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं। यह दोनों के विचारों का गूट अन्तर है। इस प्रकार इन्द्रात्मक भौतिकवाद ऐसा कि सेनिन ने इसकी करारना की थी, एक सार्वभौम प्रक्रिया हो गयी, जिसे विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में लागू किया जा सकता है और जिसके द्वारा विज्ञान के अद्वितीय

प्रश्नों को हल किया या सकता है। सचमुच इसकी परिच्छति एक अन्वस्तरीय ज्ञान और एक प्रकार के बर्न में हो गयी।<sup>१</sup>

(८) एक देश में समाजवाद—लेनिन ने मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप की एक राष्ट्रीय व्याख्या की। इसने 'एक देश में समाजवाद' (Socialism in one Country) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसने १९२७ की कच्ची क्रांति को कस तक ही परिमित किया। उसका विश्वास था कि कच्ची क्रांति सर्वहारा-बर्ग की अग्य क्रांतियों के लिए प्रकाश-दीप का कार्य करेगी। उसका यह दृढ़ मत था कि विश्व प्रकार पूँजीवाद का विकसित संसार के सभी देशों में एक समान नहीं रहा। उसी प्रकार समाजवाद का विस्तार भी सभी देशों में एक समान नहीं होगा। साम्यवाद की प्रकृति एक ही प्रयास में सर्वत्र समान नहीं होगी। लेनिन के बाद ट्राट्स्की और स्टालिन ने यही विचार विचार का कारण बना। स्टालिन ने लेनिन के इसी विचार का धीमे-धीमे सिद्ध किया और अन्ततः कस अग्य देशों की सर्वहारा-क्रांतियों के लिए प्रेरक सिद्ध हुआ।

### लेनिन की आलोचना और मूर्ख्यांकन

लेनिन का मार्क्सवाद से पलायन उसकी मार्क्सवादी व्याख्या से स्पष्ट है। लेनिन ने मार्क्स की जनवादी मान्यता का अन्त कर दिया। जनवाद विहीन सर्वहारा के अधिनायकत्व की प्रतिष्ठा तथा उसकी परिच्छति पार्टी की अधिनायकताही में थीर अन्तर्गम्यता एक व्यक्ति-विरोध की आनासाही में मार्क्सवाद की मूल विधि पर बडोर प्रहार है। मार्क्स का जनतात्मिक आहार बह जाता है। और उसकी मानव-हित-विचिन्तन-धारा सफ़िद हो जाती है। मार्क्स उबड़ोटी का नामरताकारी था। जो सिद्धान्त मानव का मूल्य धरता है, उसे वह अनाग्य था। पार्टी अथवा एक व्यक्ति विरोध की आनासाही मार्क्स को कैसे समझ होती? लेनिन द्वारा सर्वहारा की क्रांति भी मार्क्सवाद के सर्वथा विरुद्ध थी। सर्वहारा-क्रांति से पूर्व पूँजीवादी आचार्य प्रणाली की अग्य अमूर्तियों का प्रकटीकरण मान्य था और अमूर्तियों ही सर्वहारा की अग्यवादी होती है। लेनिन द्वारा 'एक देश में समाजवाद' का प्रतिपादन भी मार्क्सवादी अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का रसीयन था। फिर भी, समाजवाद के इतिहास में जो लेनिन की महत्त्वपूर्ण देन हैं, उनमें हम अज्ञान नहीं कर सकते। मार्क्सविरोध ही यह है कि लेनिन एक मात्र वैयक्तिक मूल-धर्मियों में ही अग्यना नहीं आता था। वह व्यावहारिक बुद्धि का मैत्री

पुत्र था। उसने मार्क्सवाद को मध्याह्न की कसौटी पर कसा और उस की परिस्थितियों के अनुकूल ढासा। उसने मार्क्सवाद को बहु परिधान पहनाया जो स्त्री शरीर पर फिट हो सकता था। माशीबाबम के अनुसार सेनिन की प्रभाव देन सिद्धान्त की बारीक व्याख्या में उतनी नहीं है, जिसकी सक्रिय एवं गतिशील नेतृत्व में है, जो उन्होंने अपने देश को इसके सज्जुट काम में दिया, जिसका एक लेखक ने लिखा है, "लेनिनवाद एक वैज्ञानिक की ध्येय एक भावनात्मक धातुमान प्रतिक है। यही कारण है कि उसके विचार इतिहास-नेताओं और उसके मार्क्सवादी साधियों को पलायनवादी और अशुद्ध-स मानुम पड़े। किन्तु यह लेनिन ही वा जिन्होंने स्टालिन के मार्ग को सरल और सुवम बना दिया।"<sup>१</sup>

### स्टालिन ( Joseph Vissarionovitch Stalin )

(१८७९-१९५३)

स्टालिन विभिन्न प्राप्त के एक श्रम में पैदा हुआ। उसका पिता पेट्रो से मोबी था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में स्टालिन शान्तिारियों के सम्पर्क में आया और तभी से वह मार्क्सवाद का अध्ययन करने लगा। १९०१ से १९१७ तक उसका जीवन एक शान्तिकारी वा रहा। १९०३ में वह सेनिन के साधिय्य में आया और जीवन-पथ सेनिन के प्रति भक्ति प्रदर्शित की। किन्तु सेनिन पानी मृत्यु से पूर्व स्टालिन को सम्येह की दृष्टि से देखने लगा था। वह उलझी शक्ति को देखकर भयभीत हो गया था। इस भय के कारण ही उसने स्टालिन को सार्वजनिक रूप से प्रस्ता में आसोचना की और अपनी मृत्यु के पोज़ा पहले उसने स्टालिन से अपने समस्त व्यक्तिगत सम्बन्धों को तोड़ दिया था।

सेनिन की मृत्यु के पश्चात् स्टालिन और ट्राट्स्की ( Leon Trotsky ) में शक्ति तथा पार्टी के नेतृत्व के प्रश्न पर गम्भीर विचार वैमिष्य रहा। इस वैचारिक मिश्रता वा प्रमुख कारण विरु-क्रान्ति का सिद्धान्त था। ट्राट्स्की विरु-क्रान्ति का समर्थक था। वह चाहता था कि समाजवाद वा प्रसार हो और

१ "It was Lenin indeed, who had made possible stalin's Russia. That stalin drove more recklessly and welcomed more joyfully the goal which was being more clearly revealed with every mile left behind, must not blind us to the fact that it was Lenin who had built the car and started it off on the road along which it has been driven ever since" ( C. L. Wayper )



यह अन्तिम स्तर तक ही सीमित नहीं रहे। इसके विपरीत स्टालिन का मत था कि स्तर विरक्त-अन्तिम का नेतृत्व करने में अभी अक्षम है, क्योंकि यह साम्यवादी दृष्टि से अभी निर्बल है। स्तर के सम्मुख अभी अपनी ही समतुल्य है। साम्यवाद का पूर्ण विकास पहले स्तर में आवश्यक है। अतः 'एक देश में समाजवाद' का भीषण स्टालिन ने सिद्ध किया। इस संघर्ष में ट्राट्स्की पराजित ही नहीं हुआ, बल्कि १९२८ में उसे देश से निष्कासित किया गया और १९४० में मेक्सिको में एक प्राकृतिकानु ने उसके विरुद्ध के टुकड़े कर उसकी जीवन-सीला समाप्त कर दी। १९०५ और १९१७ को कभी अन्तिमों में ट्राट्स्की का विशिष्ट योगदान था। *History of the Russian Revolution* और *Revolution betrayed* उसकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। किन्तु स्टालिन की मृत्यु के उपरान्त खुले तौर पर ट्राट्स्की की कभी शक्ति में यथोचित स्थान मिलाने और स्टालिन के व्यक्तित्व-पूजा (Personality Cult) सिद्धान्त के लक्षण में रत हैं।

### स्टालिन का मार्क्सवाद और लेनिनवाद को अनुदाय

एक देश में समाजवाद सिद्धान्त के प्रतिपादन लेनिन ने मार्क्स के अन्तर-द्वेषीय स्वरूप की भी राष्ट्रीय व्याख्या की, उसे ही स्टालिन ने महत्व प्रदान दिया। किन्तु यह सिद्धान्त इतना महत्व नहीं रखता जितना कि इसके निर्यात महत्वपूर्ण हैं। स्टालिन का मार्क्सवाद से यह प्रमाण नहीं था। उसने विरक्त-अन्तिम का परिवर्तन नहीं किया था। स्तर को उस समय सर्वाधिक आवश्यकता थी उत्पन्न करने की और उपरान्त ही अन्य देशों की अधिक-शक्तियों में सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। 'एक देश में समाजवाद' सिद्धान्त ने कभी प्रस्तावना को अन्तर्गत प्रमाणित किया। स्टालिन इसके द्वारा शक्ति की अभावस्था पर पहुँच गया। लेनिन ने देश के अधीनशीलकरण पर बल दिया था किन्तु स्टालिन ने अर्थिक और प्राकृतिक शक्तियों को अनुप्राप्त करने पर बल दिया। उसने 'एक देश में साम्यवाद' के साधन-रहित लेनिन के लोकतन्त्रवादी केन्द्रीयकरण (Democratic Centralism) के प्रति वैधान्त मौखिक सिद्धा ही प्रवृत्त की। लोकतन्त्र के रूप पर केन्द्रीयकरण की भावना को समुद्र किया। सर्वोच्च के प्रतिपादन को पार्टी के प्रतिपादन में परिवर्तित कर दिया और पार्टी के सदस्यों को साम्यवादी जनतन्त्र (Internal democracy) से भी वंचित कर दिया जिसका प्रतिपादन लेनिन ने किया था। स्टालिन ने साम्य के अस्तित्व का भीषण स्तर आधार पर सिद्ध किया कि पूर्वीपाशो राज्य और सर्वोच्च के राज्य में विशिष्ट

अन्तर है। सर्वहारा का राज्य सम्पूर्ण समाज का हितसाधन करता है। अन्त-राज्य की विलुप्ति का प्रश्न अभी उठता है जब कि राज्य शक्ति का विकास अपनी अस्मात्सत्ता को पहुँच जाय। "राज्य विलुप्ति की परिस्थितियों तैयार करने के लिए राज्य-शक्ति को निरन्तर विकसित करते रहना, यही मार्क्सवादी सिद्धान्त है।" स्टालिन की दृष्टि में, यह अन्तविरोध (Contradiction) है और मार्क्स के इन्द्रबाद की अनिवार्यता करता है। जिम्मे हामारे संस्कृति कास के इस अन्तविरोध को और ऐतिहासिक प्रक्रिया के इस इन्द्रबाद की महीँ समझ, बहु व्यक्ति मानसंबाद के लिए मृत है। स्टालिन साम्यवादो समाज में भी राज्य के बने रहने पर बल देता है, जब तक कि पूँजीवादी राष्ट्री से बहु विरा है।<sup>1</sup> इस प्रकार स्टालिन ने मार्क्स और एंक्स के विचारों में ही संशोधन नहीं किया बरन् सेनिन के विचारों में भी।

स्टालिन ने सेनिन द्वारा संस्थापित तृतीय अन्तरराष्ट्रीय को जिसे साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय (Communist International) भी कहते हैं, मंग कर दिया और क्रिष्टुय राष्ट्रीय मोठि की अग्रगत्या। यह उग्र स्त्री राष्ट्रबाद मानस' की सिता के सर्वपा विरुद्ध था। स्टालिन का तर्क था कि यदि रूस को मुझों में पराजय मिसी है तो उसका प्रमुख कारण उसका पिछड़ापन है। यह पिछड़ापन सभी क्षेत्रों में म्यात है। द्वितीय महासुय के समय में स्त्री नव-युवकों को आवाहन करने के लिए "आपकी मातृमूनि को आरबी आकरयवता है (your mother land needs you) वाक्य का प्रयोग किया गया था। यही महीँ, स्त्री प्राचीन महानात्माओं को जिनमें दिमिद्री डोंसोई (Dimitri Donskoi), पीटर महान् (Peter the Great), सवारोव (Suvarov) प्रभृति सल्जेवनीय हैं, जिनकी पुण्यगाथाओं को क्रिष्टेय महुरज प्रदान किया गया।

एक देश में समाजवाद' के सिद्धान्त के मार्ग में, सेनिन का सिद्धान्त कि सुश्री को निम्नतम समाज बेतन दिया जाय अन्वधान का कारण बना। इसके देश का घोषानोकरण तथा बैगानीकरण असम्भव था। स्टालिन यह मसीमोठि जानता था कि प्राथमिक व्यक्तियों को अधिक बेतन देना आवश्यक है सभी देश में समाजवादी सिद्धान्त आरार कर से सहेगा। अन्त 'अन्वैरु से समकी योग्यता के

1 "Will our state", he went on "remain in the period of communism also? yes, it will, unless the capitalist encirclement is liquidated and unless the danger of foreign military attack has disappeared"

अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार' (From each according to his ability, to each according to his needs) के स्थान पर 'प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसके कार्य के अनुसार' (From each according to his ability, to each according to his work) के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया गया। इस सिद्धान्त के चौधरीय में माओ के इस कथन को उद्धृत किया गया कि 'कर्मिकीय समाज में भी बहुत पहले आवश्यकताओं के अनुसार न होकर धन से अनुसार ही भिसेपा (That even in a classless society pay at first would be according to labour and not needs)। इस प्रकार साम्यवादीय के शब्दों में, 'बेनिनबाव स्टालिन के हाथों में आकर भ्रष्ट हो गया। किन्तु मार्क्सवाद को स्टालिन ने धारण किया उसे अपने शब्दों में मजदूरों और किसानों का नहीं कहा जा सकता।' 'बेनिन की, जो एक महापाण्डु प्रतिभा के व्यक्ति थे, तुलना में स्टालिन एक बस्य बुद्धि और मध्यम कोटि की योग्यता वाले व्यक्ति थे। उनके तरीके प्रायः परसंकुल (crude) और राजाशाही (dictatorial) होते थे।'

मिचिता सुरेश्वर के हाथों में जब से साम्यवादी राज की शक्ति बरपायी है, सांख्यिक रूप से नीति-परिवर्तन और महिमायुक्तवादी में शैवित्य के लक्षण दिखाई देते हैं। स्टालिन की व्यक्ति-पूजा (Personality cult) के स्थान पर साम्यवादी नेतृत्व (Collective leadership) के सिद्धान्त को अपनाया गया है। सह-अस्तित्व (Co-existence) के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है। इसके अनुसार साम्यवादी राष्ट्र निर्मित शक्तियों, सिद्धान्तों और प्रशासनिक ढाँचे के साथ-साथ साथ-साथ रह सकती हैं।

### माओ (Mao Tse-Tung)

माओ चीन के साम्यवादी व्यक्ति हैं। वह मार्क्सवाद की व्याख्याकार ही नहीं है, प्रखुर उच्चकोटि का नेता और राजनेता भी है। उसने चीनी जाति का नेतृत्व किया। जनतावाद की चीनी परिभाषिकाओं के अनुसार नया जाया पढ़ाया। नयी जनतावाद (New democracy) का शीर्षक दिया।

चीन में भी जाति हुई वह भी जाति की महिमावादी के सिद्धांत हैं। माओ का कथन था कि जाति सर्वद्वारा बर्द के द्वारा हीनी, किन्तु चीन में जाति दिवसों के द्वारा हुई। माओ का विचार है कि यह जाति साम्यवादी जाति न होकर पुँजीवादी जनतावादी जाति (Bourgeois democratic revolution)

है। इस कल्पित ङाय सामन्तवाद बचपानी हुआ न कि पूँजीवाद। सेमिन की मसिन्मवाली भी मसल्य सिद्ध हुई कि मसिकसिद्ध सामन्तवादी मसवा पूँजीवादी राष्ट्र में पूँजीवादी मसवादी कल्पित को समाजवादी कल्पित में परिवर्ण किया जा सकता है किन्तु चीन में ऐसा नहीं हुआ।

माघो ने मसकष घीर सेमिन के सिद्धान्तों को चीन की परिस्थिति के अनुकूप ही स्वकल्पित किया है। सामन्तवाद पूँजीवाद घीर साम्राज्यवाद पर प्रहारों का क्म प्रबलतम रहा है। चीन में कानून ङाय सोवियट क्म जैसी सामूहिक धर्म (Collective farms) व्यवस्था को लागू नहीं किया गया है। बर्दा बोले की भूमि पर किसानों को स्वामित्व दिया गया है। किसी भी व्यक्ति का भूमि पर एकाधिकार एक एक पर्वध है जब तक कि वह स्वयमेव भूमि को नहीं जोड़ता हो। परिवामत मध्यम बर्ग किशुस हो गया है। ग्रामीण घीर शहरी सर्वहारा का विभेद चीन में स्पष्ट है। यद्यपि मसिकसिद्ध विचारकों की पारणा है कि चीन का साम्यवाद ग्रामीण सर्वहारा-बर्ग का साम्यवाद है।

मघावि माघो ने अपने विरोधियों के अनुसमार्थ कठोर बमतकाठी नीति का पनसम्बन किया है, किन्तु उसका वैशिष्ट्य साम्यवाद के शत्रुओं के विनाश को पसेना बनने में मिसा लेने में रहा है। साम्यवादी दस में कृपकों तथा शहरी सर्वहाराबर्ग के प्रतिरिक्त राष्ट्र-सेवी घीर मध्यम बर्गीय व्यक्तियों को लेने में किबिबुनाल भी संशोक नहीं किया गया। यह बर्ग-सहयोग का अनुपम उदाहरण है। सर्वहारा-बर्ग के प्रकृतकगुणों विचार को बर्ग-सहयोग की दिशा में संशोभित करने का सप्यपन है।

माघो घननी भास्या हीपेल घीर मार्सल ङाय प्रतिपादित 'घन्तविरोध के सिद्धान्त में प्रकट करता है। उसका यह भी विरवास है कि विचार पदार्थ ङारा विरुद्धित होते हैं। वह यह भी मानता है कि समाजवादी घीर पूँजीवादी दोनों घाघन-पदविधों में घन्तविरोध (Inner contradiction) है घीर इन दोनों के घन्तविरोधों में एक मूलमूल घन्तर है। माघो के विचार में पूँजीवाद में जो घन्तविरोध है उसका घन्त तो केवल मुझ घीर द्विसक कल्पित ङाय ही हो सकता है, किन्तु समाजवादी व्यवस्था के घन्तविरोधों का शान्तिपूर्वक समास किया जा सकता है।

चीन में घनी पूँजीवाद जीवित है ननों कि पूँजीपतियों की सरकार उनकी पूँजी पर निपादित मूर देती है। बर्दा घनी चीनी कल्पित के शत्रुओं को भी मत्त



तब है वह बड़ ( matter ) है, न कि चेतन । मार्क्स प्रत्यक्षदर्शी था । उसके लिए प्रतिदिन के अनुभव का संसार ही सच्चा संसार है । आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन न होने के कारण उसका कोई महत्त्व नहीं है । आत्मा या मन अथवा अस्तित्व की उत्पत्ति भौतिक शरीर से हुई है । यह भौतिक पदार्थ ही अस्तित्व एवं सत्य है । अतः मार्क्स निरन्तर भौतिकवादी था । अपने जीवन के अध्यात्मपन की शर्षपा ज्येष्ठा कर बी । अध्यात्मवादी बपद के जो मूल में तब हैं वे उसे चेतन मानते हैं, न कि बड़ । पांथीमी भी उस मूलतत्त्व को चेतन मानते थे । उनकी दृष्टि में, यह बड़ छटि भी इसी चेतन्य का परिणाम है और उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । इस चेतन में प्रात्या रहे बिना जीवन का सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो सकता । जिनकी इसमें निष्ठा नहीं है वे समुद्र से अलग या पड़नेवासी उस बूँद के समान हैं जिसका बिनाग होकर ही पड़ता है । निःसन्देह हम जीवन को एकमात्र भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य से ही नहीं देख सकते । इसका आध्यात्मिक पहलू भी है । आध्यात्मिक पन की ज्येष्ठा कर जीवन का समुचित विकास नहीं हो सकता । किन्तु मार्क्स को हम समानतावादी नहीं कह सकते । वह उष्णकोटि का मानतावादी था । उसकी चिन्तनमार्ग का विषय मानव था । उसने इस साक्ष्य-विधि में और अधिक बड़ सहते हुए भी एक सण के लिए भी मानव समाज की सेवा के लक्ष्य की नहीं छोड़ा । उसकी साम इतनी मोटी नहीं थी कि वह मानव-समाज के कर्तों की ओर अपनी पीठ मोड़ देता । हुडेन ने मार्क्स के सम्बन्ध में कहा था कि उसका हृदय इतना विराम एवं सुकोमल था कि धर्मों की अनेका मानव-समाज के साक्षात्-ने-साधारण कट भी उसकी धर्मिक प्रभावित करती थे । बलुत मार्क्स ने सर्वहारावर्ग के लिए प्रतिदिन के मोहन की प्रवेष्ठा शीर्ष, आत्मविरहास स्वाभिमान और स्वातंत्र्य की नहीं अधिक आकरयकता पर बस दिया था । रोसा सन्देम्बर्ग ने अपने एक पत्र में फ्रेंच मूर्खियों को लिखा था कि समाजवाद केवल रीटी-अकनन का ही प्रत्य नहीं है किन्तु एक सांस्कृतिक आन्दोलन है । इस सांस्कृतिक आन्दोलन का धामर मानव है । आचार्य मरेण्डे के शब्दों में, "जो विज्ञान, वाद या विचार,—चाहे वह कोई धर्म हो या इत्येन या अर्थशास्त्र, मानव के उत्कर्ष को घटाता है, वह मार्क्स को मान्य नहीं है ।"

( २ ) आलोचकों का कथन है कि मार्क्स का इष्टात्मक भौतिकवाद या इतिहास की भौतिक व्याख्या अनुपुं है । उसने सैकड़ों—हजारों वर्षों के मानव इतिहास में से बस पांच-छहवोसो पन्नाओं को उद्धृत करके अपने विज्ञान का

तही किया गया है, क्योंकि चापमार्द सैफ का धर्म भी साहजिक पर एकाधिकार है और साम्यवादी नीति के लिए वह सिरबर्द बना हुआ है। कुछ भी हो, वह तब तक राज्याज नहीं किया जा सकता है कि नीति में पक्षधर्मों की योजनाओं द्वारा जो देश का विकसित किया है वह स्वरूप एवं प्रयत्नपूर्ण है। फिर भी नीति के सम्मुख धर्म की सर्वाधिक अतिरिक्त समस्या है वह मुझे नररंकासी का रोदन बनाना है। मामो इतका समाधान कर लेना, उस जैसे बुद्धिवादी नेता से ऐसी माता करना स्वाभाविक है। नीति का प्रविष्ट उद्देश्य है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। किन्तु उसकी प्रसारवादी नीति भी भारत धर्मों, निदान, पाकिस्तान और अन्य पड़ोसी राष्ट्रों के लिए सिर बर्द बनी है, नया अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति का दीक्षित सिद्ध करती है ? ऐसा प्रतिपत्ति होता है कि नीति क्रांति की दीक्षित का प्रयत्न सिद्ध बनाए रखना चाहता है। किन्तु भारत, धर्मों और संका, की समाजवाद की उह पर है, उन्हें पूर्णवादी और साम्राज्यवादी पीठित करना बौद्धिक विवादिपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नीति को इन नबोचित समाजवादी राष्ट्रों के साथ दीक्षित और साम्यवादी नीति का परिवर्तन कर मजुर सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। नीति का यह देश मुझे नहीं और न दूँगा। क्रांति को महरों से रहने छोड़ना ही है, उन्हें पक्षधर्मों से लेकर मुनामा, पठाना और दुनात है। इसके इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ इसकी पीठ-भासा है। कुछपति से योजनाओं के प्राणण में क्लिप्तकण्ठा यह भारत देश नीति के बुद्धि-विभ्रम का निवारण करने में पूर्णतः समर्थ है। नीति की यह पीठ-छोड़ उसके लिए अत्यन्त ही सिद्ध होगी।

### साम्यवाद की आलोचना

वैदिक-वैदिक मार्क्स के विचारों का प्रचार एवं प्रचार होता जाता है, जैसे-जैसे हो उसके धार्मिकों की संख्या बढ़ती जाती है। जैसे-जैसे यह धर्मिक-नीति बात चलती है, किन्तु बस्तुस्थिति नहीं है। साम्यवाद का भय धर्म पूर्णवादी राष्ट्रों की अनीतिवित्त लिए है और इसके बगैर का अतिक्रमण भाव धर्म साम्यवाद के प्रभाव-लेख का ही अतिरिक्त करने में व्यय होता है। किन्तु इनके प्रबलों के बावजूद साम्यवाद एक पूर्णतः निवारणारा हो गयी है। जिसकी सीमाएँ गिरावट हावी ही पारती हैं। मार्क्सवाद के इनके धार्मिक हैं कि उन सभी के विचारों को उल्लिखित करना भी सम्भव नहीं है। फिर भी, मार्क्सवाद को निम्नलिखित धार्मिकों पर आलोचना की जाती है —

(१) भारत पूर्णतः नीतिप्रचार का। उसके मत में जो बल के मूल के

तत्त्व है वह जड़ (matter) है, न कि चेतन। मानस प्रत्यक्षदर्शी था। उसके लिए प्रतिदिन के अनुभव का संसार ही सच्चा संसार है। आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन न होने के कारण उसका कोई महत्त्व नहीं है। आत्मा या मन बचवा मस्तिष्क की उत्पत्ति भौतिक शरीर से हुई है। यह भौतिक पदार्थ ही अन्तिम एवं सत्य है। प्रथम मानस गिज्ञान्त भौतिकवादी था। उसने जीवन के अध्यात्मपक्ष की सर्वथा उपेक्षा कर ली। अध्यात्मवादी जगत् के जो मूल में सत्य हैं वे उसे चेतन मानते हैं, न कि जड़। गांधीजी भी उस मूलतत्त्व को चेतन मानते थे। उनकी दृष्टि में, यह जड़ छष्टि भी इतनी चैतन्य का परिणाम है और उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इस चेतन में आत्मा रहे बिना जीवन का सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो सकता। जिनकी इसमें निष्ठा नहीं है वे समुद्र से बसण या पड़नेवासी उस बूँद के समान हैं जिसका बिना होकर ही रहता है। निःसन्देह हम जीवन को एकमात्र भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य से ही नहीं देख सकते। इसका आध्यात्मिक पहलू भी है। आध्यात्मिक पक्ष को उपेक्षा कर जीवन का समुचित विकास नहीं हो सकता। किन्तु मानस को हम अमानवतावादी नहीं कह सकते। वह उच्चकोटि का मानवतावादी था। उसकी चिन्त्यभारायें का विषय मानव था। उसने इस सामन-सिद्धि में और अधिक गूढ़ सहते हुए भी एक शख के लिए भी मानव समाज की सेवा के लक्ष्य को नहीं छोड़ा। उसकी लाम इतनी मोटी नहीं थी कि वह मानव-समाज के कर्तों की ओर अपनी पीठ मोड़ देता। इट्टेन ने मानस के सम्बन्ध में कहा था कि उसका हृदय इतना विशाल एवं सुदोमल था कि अर्थों की प्रवेष्टा मानव-समाज के छात्रालय-से-साधारण कूट भी उसको अधिक प्रभावित करते थे। वस्तुतः मानस ने सर्वहाण्डों के लिए प्रतिदिन के मोहन की अपेक्षा शीर्ष, आत्मचिरकास, स्वामिमान और स्वार्थ्य की कहीं अधिक आशय्यता पर बल दिया था। रोना सन्वेम्बर ने अपने एक पत्र में फ्रेंच महारिण को लिखा था कि समाजवाद केवल रोटी-मकान का ही प्रश्न नहीं है किन्तु एक सांस्कृतिक आन्दोलन है। इस सांस्कृतिक आन्दोलन का आधार मानव है। आचार्य नरेन्द्र के शब्दों में, "जो सिद्धान्त, वाद या विचार,—चाहे वह कोई धर्म हो या दर्शन या अर्थशास्त्र, मानव के उत्कर्ष को धटाटा है, वह मानस को मान्य नहीं है।"

(२) आलोचकों का कथन है कि मानस का इष्टात्मक भौतिकवाद या इतिहास की भौतिक व्याख्या अनर्गुण है। उनमें से कहीं—हजारों वर्षों के मानव इतिहास में से बस एक उदासीनी धर्मियों को उद्धृत करते करते सिद्धान्त का



प्रतिपादन किया था। मार्क्स ने अपने इन्टरनैक सिद्धान्त के विद्वेषण हेतु मानव-इतिहास को चार कालों में विभाजित कर दिया जो बाध्यता नहीं था। बसुत मार्क्स द्वारा उद्धृत बटनार्थ किसी सिद्धान्त के मौलिक्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। मार्क्स ने, इतिहास निर्माण में, जिन घन्य तत्वों में प्रयोज्य धार्मिक तत्व के भाग लिया है, उनकी पूर्णतः उपेक्षा कर दी। उसने मानव-व्यक्ति विधियों को प्रभावित करनेवाले घन्य तत्वों— जैसे, मानवीय मनोविकार एवं मान तथा धर्म आदि तत्वों को कोई महत्त्व नहीं दिया। बटनार्थ रसेल का कहना है, 'हमारे राजनीतिक जीवन में बड़ी पग्लार्थ यौतिक वशाओं एवं मानवीय मनो विकारों की मन्योत्पन्न क्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है।' मास्की ने भी कहा था कि एक धार्मिक आचार पर ही निर्भर करना समस्त व्यवस्था को मूलतः सिद्ध करना है। उसने यह भी कहा था कि हम बरकान उद्भव की धार्मिक आचार पर विवेचना नहीं कर सकते। लिगेडोर सायड के शब्दों में "इतिहास की मौलिकवादी व्याख्या राम का प्रव-पठन या हमारे आधुनिक विरह-युद्धों के प्रारम्भ को नहीं बताती।" इस प्रकार इतिहास में घन्य बहुत से ऐसे तत्व हैं जिन्होंने ऐतिहासिक प्रवृत्ति के मार्ग को प्रवृत्त किया है, जैसे मर और शक्ति की विपादा, जातीय परदास, धार्मिक महत्वाकांक्षाएँ, धीन सम्बन्ध, वैज्ञानिक उन्नतता धीर महत्त्व व्यक्तित्व आदि। निःसन्देह इतिहास की धारा को मोड़ने का येव केवल धार्मिक तत्व को ही नहीं है, बल्कि घन्य तत्वों को भी है। किन्तु मार्क्स ने विचारों के महत्त्व को मानने से इन्कार नहीं किया था। उसने प्रमाणता परव्य धार्मिक तत्व को ही थी। मौलिकवाद की व्याख्या में हम इन पर प्रकाश डाल चुके हैं।

( १ ) सम्भवतः मानस के बर्न-संपर्क सिद्धान्त की जिनगी प्रतीकना हुई है उसकी उसके किसी घन्य सिद्धान्त की नहीं हुई है। प्रतीकना का बचन है कि यह एक विपपूर्ण पूणाग्र एवं दिव्य सिद्धान्त है। यह बसुत, प्रम तथा सहानुभूति के स्वान पर बर्न-विशेष एवं पूणा को केनाता है। पित्रे मैग्नासक का बचन है कि मार्क्स जानता था कि यूरोप में सर्वहास-बर्न का कोई भी घन्यो-तन बिना किसी भावोत्प्रेन ( Passion ) के नहीं चलाया जा सकता था। व्यक्तियों को अपने उद्गु की अनुभूति करनी थी। उन्हें एक बर्न की भाति प्रयुक्त बनना था। बर्न-युद्ध का विचार जो समाजवाद को सन्नद्ध करनेवाली धीर प्रारम्भिक समाजवादी प्रवृत्तियों की बचनेवाली प्रमाण शक्तियों को व्यक्त नहीं करता है, तथा के विचार में, बर्न-संपर्क युक्तिपूर्ण ही नहीं, अन्तिम भयंकर है। यह एक युक्तिपूर्ण सिद्धान्त सब बड़ बड़ कर है, यह एक प्रकारण धीर पूणाग्र पुत्र की

पुकार है। यह उस दशा की ओर इंगित करता है जिसमें साम्यवादी कल्पित सिद्धान्त एक क्रियात्मक एवं क्रान्तिकारी राजनीति में परिणत हो जाता है।

भासोबकों का कहना है कि बर्न-संपर्प का सिद्धान्त तथ्यहीन है। जब यह सिद्धान्त मानव-इतिहास की वास्तविक धारा का विवेचन करता है तो यह निरर्थक हो जाता है। फिर यह बताना बड़ा कठिन है कि संसार में किसी भी देश के इतिहास के किसी भी काल में प्रमुख समय शक्ति-सम्पन्न एवं शक्ति विहीन वर्गों के बीच एक स्पष्ट विभाजन था। वस्तुतः वर्गों का इतिहास अपेक्षा-कृत विरसेपरणामक होने के संरसेपरणामक अधिक रहा है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बड़ा वर्ग अल्प अनेक छोटे-छोटे समूहों में भी विभक्त रहा है। भासो बकों का मत है कि समाज में वर्गीकरण तो है, किन्तु वह प्रापिक ही नहीं है। प्रापिक वर्गीकरण के साथ-साथ राजनीतिक, सामिक तथा भौगोलिक प्रापिक वर्गीकरण भी हैं, जिनके कारण शोषक एवं शोषित वर्गों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इसके अलावा वर्गों में स्थिरता और अपरिवर्तनीयता भी नहीं है। उनमें निरन्तर गतिशीलता है। एक वर्ग का बूझने में सतत विलोप होता रहता है।

किन्तु ये उपर्युक्त भासोबनार्प तर्कसंगत एवं तथ्यपूर्ण नहीं हैं। मार्क्स वर्ग विभेद का जन्मदाता नहीं था और न वह पूरा का प्रचारक ही था। उससे पूर्व, उसके समय में और उसके बाद समाज में शान्ति कायम नहीं थी। वह तो शान्ति का अक्षय्यतम प्रेमी था और जनवाद में उसकी पूर्ण निष्ठा थी। वह मानवतावादी था और मानव की शोषण की प्रक्रिया, जिसका वह शिकार है, उससे विमुक्त करना चाहता था। भाषार्प मरेन्ड्रेव ने कहा था, "बर्न-यूद्ध समाजवादियों का पैदा किया हुआ नहीं है। वह तो समाज में हमेशा चलता रहता है और सभी समय से चलता आया है जब से वर्गों की उत्पत्ति हुई। बर्न-संपर्प ही सामाजिक-प्रगति का आधार रहता है। समाजवादी लोग बर्न-संपर्प पैदा नहीं करते और न वे उसको पक्षधर ही करते हैं। उनका उद्देश्य तो ऐसा है कि इन कह चुके हैं, समाज का ऐसा संमटन करना है जिसमें परस्पर विरोधी वर्गों और उनमें निरन्तर चलनेवाले बर्न-संपर्प का अन्त हो जाय। "समाजवादियों को बाध्य होकर बर्न-संपर्प को अपना पड़ना है। बर्न-संपर्प के द्वारा ही समाज की उन्नति होती आयी है, समाज पारी इस कठोर सत्य को अज्ञा नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में जब कि समाज में बर्न-संपर्प चल रहा है तब तो हमारे लिए केवल यही रास्ता बच रहता है कि हम यह चुन लें कि हमें शोषक और शोषित इन दोनों वर्गों में से



मशीन, कोपता, भाप और संघटनारमक क्षमता भी पूर्वी पैदा करने में बड़ा महत्त्व रखते हैं। एडिंस ने भी कहा था, "मशीन की परिपूर्णता (perfecting) मानवीय धम-शक्ति को अनावरणक बना रही है।" मैक्स बीर (Max Beer) कहता है, 'इस विचार को अस्वीकार करना असम्भव है कि मार्क्स के मुख्य का सिद्धान्त एक मार्क्सिक धर्म की अपेक्षा एक राजनीतिक एवं सामाजिक नारे का अधिक महत्त्व रखता है।' इसके प्रतिरिक्त, 'जहाँ तक मार्क्सिक सिद्धान्त का प्रश्न है मार्क्स प्रबलतः एक आन्धोसन्तकारी है।

(२) मार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी कि पूर्वीवाह का उत्तरात्तर विकास पूँजीपति और सर्वहारा को दो विरोधी बलों में बाँट देगा और मध्यमवर्ग विस्तृत हो जायगा। किन्तु मार्क्स का यह विचार असत्य सिद्ध हुआ। आज पश्चिमी यूरोप में मध्यम वर्ग के निर्मूल होने की अपेक्षा उसका विस्तार हो रहा है। इसके असावा जो मैनैजर तथा निपुण प्रौद्योगिक परामर्शदाताओं के वर्ग का प्रादुर्भाव हो रहा है, मार्क्स ने इसकी कभी भव्यना भी नहीं की होगी। मार्क्स की प्रतिरिक्त मुख्य की धारणा भी मिथ्या सिद्ध हुई है। उसने कहा था कि धमिकों की बरा दिनों-दिन वपनीय होती जायगी किन्तु ऐसा नहीं हुआ। आज यूरोप में धमिकों की स्थिति में सुधार हो रहा है। मार्क्स ने यह भी घोषित किया था कि अस्तर्बिरोधों के कारण पूर्वीवाह में मार्क्सिक उत्साहन के संकट यथा-कथा आते रहेंगे, ये संकट अमर्या गम्भीरतम होते जायेंगे और पूर्वीवाह के पास इन संकटों से विमुक्ति पाने का अन्य कोई विकल्प नहीं रहेगा। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं हुआ। पूर्वीवाहियों ने इन संकटों से बचने के लिए अपने संघटन, टुलों और बुरदरीय योजनाओं का निर्माण कर तथा बाजारों का विस्तार एवं साधनों का आविष्कार कर उनके सम्भाव्य को छिपित कर दिया है।

विचारा साथ देना है।" इसके अतिरिक्त, "समाजवादी मजदूरों में जनसेवाही प्रतिस्पर्धा घोर घृणा को बुर करने का प्रयत्न करते हैं। बेकारी घोर मटीकी के इस युग में बुर मजदूर दूसरे की बीज का में (potentially) प्रतिस्पर्धी समझ कर उपरोक्त प्रस्ता करता है, जिन्हु समाजवादी मजदूरों को यह बतसाता है कि वे आपस में सहयोग करके घोर समकित होकर ही शोषण-रहित समाज की रचना कर सकते हैं।" बस एक मजदूर अपने आसिफ से मजदूरी के लिए कहता है तब यह उस घृणा की दृष्टि से वैधता है, लेकिन समाजवादी मजदूर को बतसाता है कि अगर मजदूर को उचित मजदूरी नहीं मिलती तो इसमें योग्य व्यक्तिगत रूप से आसिफ का नहीं है, बल्कि उस पूर्वीवादी प्रणाली का है, जिसने उत्पादन के साधनों की मुट्टी भर पूर्वीवादीयों के हाथ में दे दिया है।" इस प्रकार "व्यक्तिगत घृणा को बुर करने के लिए समाजवादीयों को योग्य शिक्षा चाहिए। समाज में प्रचलित शोषण-सम्बन्ध के प्रति समाजवादी बकर घृणा पैदा करता है घोर उसे यह उचित समझता है, क्योंकि वर्तमान दुर्दशा के प्रति प्रस्ता उत्पन्न करके ही हम व्यक्ति के मन में उस दुर्दशा के प्रति विद्रोह पैदा कर सकते हैं।"

(४) आलोचकों ने मार्क्स के मूल्य-सिद्धान्त एवं अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की भी कटु आलोचना की है। उनके मतानुसार मूल्य-सिद्धान्त में माँग के तथ्य की उपेक्षा की गई है। मूल्य एक मनोवैज्ञानिक घटना है जो कि एक बस्तु में न मिल कर अस्तित्व की आकांक्षा में मिलता है। यह कहना भी निरास्य भ्रान्ति है कि उत्पादन में केवल सक्रिय आस्वरूप तत्त्व कम ही है या व्यक्ति की मजदूरी ही एकमात्र उचित तत्त्व है जो कि उत्पादन की मापद को निर्धारित करता है। समय-शक्ति के अतिरिक्त एक बस्तु के मूल्य-निर्धारण में भूमि, पूर्वी और बंधन का भी हाथ होता है। सिमकोविच (Simckbovitch) का कथन है कि, "बहुत कम ऐसे सिद्धान्त हैं जिनका असीमाति परीक्षण हुआ है, जिनकी इतने पूरे डीप से सूखन परीक्षा हुई हो वा इतनी पूर्णता से अपने स्वयं के विभिन्न प्रमाणाँ के आधार पर खंडित हो नये हों जैसे कि मार्क्स का मूल्य-सिद्धान्त।" बस्तुतः एक बस्तु के उत्पादन में या मूल्य बनाने में पूर्वी और समय-शक्ति दोनों की ही आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक युग में समय-शक्ति ही एकमात्र ऐसा महत्वपूर्ण तत्त्व नहीं है, बल्कि उसके साथ बचता, सम्पन्नता, उद्योग, ज्ञान

मशीन, कोयला, नाप धीरे संयोजनात्मक समता भी पूर्वी पैदा करने में बड़ा महत्त्व रखते हैं। एमिस्स ने भी कहा था, 'मशीन की परिपूर्णता (perfecting) मानवीय धर्म-शक्ति को समावश्यक बना रही है। मेक्स बीर (Max Beer) कहता है, "इस बिचार को अस्वीकार करना असम्भव है कि मार्क्स के मूल्य का सिद्धान्त एक मार्क्सिय संरथ की प्रणाली एक राजनीतिक एवं सामाजिक मारे का शक्ति महत्त्व रखता है।" इसके प्रतिरिक्त, "जहाँ तक मार्क्सिय सिद्धान्त का प्रश्न है मार्क्स प्रबलतः एक मानवीयनकारी है।"

(३) मार्क्स ने यह मन्विप्यवाणी की थी कि पूर्वीवाद का उत्तरोत्तर विकास पूँजीपति धीरे सर्वहारा को दो विरोधी बर्गों में बाँट देगा धीरे मध्यमवर्ग विभुत हो जायगा। किन्तु मार्क्स का यह बिचार असत्य सिद्ध हुआ। आज परिषदी यूरोप में मध्यम बर्ग के निर्मूल होने की अपेक्षा उसका विस्तार हो रहा है। इसके असावा जो मनेजर तथा निपुण प्रोद्योगिक परामर्शदाताओं के बर्ग का प्राकुर्माण हो रहा है, मार्क्स ने इसकी कमी कल्पना भी नहीं की होगी। मार्क्स की प्रतिरिक्त मूल्य की धारणा भी सिध्दा सिद्ध हुई है। उसने कहा था कि अधिकाँकों की बरा दिनों-दिन बयनीय होती जायगी किन्तु ऐसा नहीं हुआ। आज यूरोप में अधिकाँकों की स्थिति में सुधार हो रहा है। मार्क्स ने यह भी धोपित किया था कि अन्तर्विरोधों के कारण पूर्वीवाद में मार्क्सिय उत्पादन के संकट यदा-कदा घाटे रहेंगे, ये संकट क्रमशः गम्भीरतम होते जायेंगे धीरे पूर्वीवाद के पास इन संकटों से विमुक्ति पाने का अय्य कोई बिबन्ध नहीं रहेगा। किन्तु बस्तुतः ऐसा नहीं हुआ। पूर्वीवादियों ने इन संकटों से बचने के लिए अनेक संयत्न, दूरियों धीरे दूरदर्शी योजनाओं का निर्माण कर तथा बाजारों का विस्तार एवं साधनों का आविष्कार कर उनके सम्भाव्य का शिपित कर दिया है।

## अराजकतावाद (Anarchism)

अराजकतावाद शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द अनार्किया (Anarchy) से हुई है जिसका अर्थ अराजकता होता है। अराजकतावाद का अर्थ वही है कि सर्वशासकत्व की दृष्टि में मारवाट, हत्याकाण्ड और नृणाट होता है वस्तुतः वैसा नहीं है। फ्राण्कलिन के मत में, अराजकतावाद का अर्थ अव्यवस्था नहीं है। सबसे अधिकतर राज्य और उसके द्वारा संभालित एवं पोषित विविध सामाजिक सम्बन्धों के प्रति शत्रुता से है। अराजकतावाद जीवन और मत्वरस का एक सिद्धान्त प्रयत्न करता है, जिसके अन्तर्गत राज्य विहीन समाज की कल्पना की जाती है। ऐसे समाज में सामंजस्य स्थापित किसी कानून के पालन या किसी सत्ता के प्रति आज्ञाकारिता से न होकर विविध प्राथमिक व व्यावसायिक समुदायों द्वारा स्वैच्छपूर्वक व स्वतन्त्र समझौतों द्वारा किया जायेगा जो कि स्वतन्त्रतापूर्वक निर्मित होंगे और जिन्हें वे समुदाय प्राथमिक उत्पन्न व उपभोग के लिए और साम्य मानव की विविध अन्तःस्थापकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किया करते। राजनीतिक सत्ता चाहे उसका जन एकरूपीय, बहुपक्षीय और समाजवादी ही क्यों न हो, अनासक्त और अनासक्त है। अराजकतावादी वैयक्तिक सम्पत्ति सत्ता तथा संगठित धार्मिक संस्था के भी विरोधी है। ऐसे समाज में प्रत्येक व्यक्ति को स्वैच्छानुसार किसी भी ऐच्छिक संघ अथवा संघटन में जो कि प्रायः स्वतन्त्रानुसार निर्मित होंगे, सम्मिलित होने एवं छोड़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। ऐसी व्यवस्था में सेना न्यायालय कायदा, धन और सत्ता के लिए कोई स्वातन्त्र्य नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति स्वैच्छ से सामाजिक नियमों का पालन करेगा।

### अराजकतावाद का इतिहास

अराजकतावादी चिन्तन की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—(१) व्यक्तिवाद और (२) समाजवादी। यद्यपि दोनों राज्य को समाप्त करना चाहते हैं, किन्तु समाज पर अधिकार के सम्बन्ध में मतभेद है। व्यक्तिवादी

सम्पत्ति को प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्गत रखना चाहते हैं जबकि समाजवादी ऐच्छिक संघों के अन्तर्गत रखने के पक्ष में हैं। साधन की दृष्टि से भी अराजकतावादी दो भागों में बंटी जा सकते हैं—( १ ) अन्तिवादी ( २ ) शान्तिवादी। प्रथम के अन्तर्गत हेगुलिन और हाय्टकिन आते हैं, जबकि द्वितीय में टान्स्टेडाय आदि। अराजकतावाद कोई बर्हीन सिद्धान्त नहीं है। प्राचीनकाल से ही सार्वभौमता के सामाजिक तथा नैतिक औचित्य के सम्बन्ध में संदिग्धता रही है। चीनी और यूनानी दार्शनिकों ने अराजकतावादी विचार प्रकट किये थे। च्वांगत्सु (Chuangtzu) का मत था कि एक व्यक्ति का धन्य सभी व्यक्तियों पर शासन मानव स्वभाव के प्रतिभूत है। उसी प्रकार यूनान के कुछ स्टोइकों ( Stoics ) ने सर्वोत्तम जीवन की प्राप्ति राज्य में न होकर एक एसी सामाजिक व्यवस्था में सम्भव बताया, जहाँ मानव धरती सामाजिक और न्यायिक प्राकृतिक प्रवृत्तियों के अनुकूल स्वच्छन्दता से कार्य कर सके। मध्ययुग में भी ईसाई धर्म की महत्ता पर बल दिया गया और राज्य के नियंत्रण का धर्मोचित्य सिद्ध किया गया। आधुनिक अराजकतावादी भी यूनान के स्टोइकों से प्रेरणा लेते हैं और राज्य की सफल मानव-जीवन के लिए कोई आवश्यकता नहीं समझते। वे बिना शक्ति प्रयोग के बर्हीन समाज का निर्माण करना चाहते हैं।

## विलियम गॉडविन ( William Godwin )

( १७२६-१८३६ )

आधुनिक अराजकतावाद का सर्वप्रथम प्रतिपादक गॉडविन था। यह एक पादरी का पुत्र था और उसने भी इसी परो का धरनाया। यह लण्डनकोटि का राजनीतिक विचारक ही नहीं बलितु एक सुन्दर लेखक भी था। यह उन्मत्त-कार, नाटककार तथा बाल-साहित्य पर अनेक कृषाओं का रचयिता था। सामाजिक सिद्धान्त के विभिन्न द्रव्यों की उसने रचना की। १७२३ में उसने 'राजनीतिक न्याय' नामक पुस्तक लिखी। इस ग्रन्थ में उसने स्वतंत्रता समता और बन्धुत्व पर यथैव प्रकाश डाला। गॉडविन सार्वभौमता का विरोधी होने के साथ-साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति का भी विरोधी था। उसका विश्वास था कि समाज में प्राथिक परिस्थितियों की अनुमानता ही व्यक्तियों को बेईमान और पथभ्रष्ट बनाती है। गॉडविन ने एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना की जो कि राज्य-रहित होगा और जिसमें व्यक्तियों को अल्प प्रकाश की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। बिन्तु गॉडविन कुछ बात ठीक राज्य की आवश्यकता अनुभव करता था। यद्यपि अराजकता



पूर्ण प्रजातन्त्रवादी नहीं था और न उसने इसे प्रजातन्त्रवाद को संज्ञा से ही विभूषित किया।

## पियरे जोज़ेफ़ प्रूधों (Pierre Joseph Proudhon)

( १८०६-१८६५ )

प्रूधों सर्वप्रथम विचारक था जिसने अपने को प्रजातन्त्रवादी घोषित किया। इसका पिता बड़ा निर्धन था और पीप बनाने का काम करता था। परंतु इसकी शिक्षा बड़ी कठिनाई से सम्पन्न हुई। कालेज की शिक्षा के उपरान्त प्रूधों पैरिस चला गया। वहाँ वह अनेक उच्च समाजकारियों के सम्पर्क में आया। सन् १८४८ की क्रांति के समय राजविद्रोहवादी साहित्य के प्रकाश के कारण प्रूधों को बंध की संज्ञाएँ भोगनी पड़ीं। उसकी सर्वप्रथम रचना थी— 'सम्पत्ति क्या है?' और उसी ने उत्तर दिया, 'बोरी'। यही पुस्तक थी जिसमें प्रूधों ने अपने को 'पूर्ण प्रथम प्रजातन्त्रवादी' कहा। उसने अपने सिद्धान्त को 'सुवर्ण नियम (Golden rule)' की संज्ञा प्रदान की। उसका राज्य के विच्छेद सबसे बड़ा बोधोदायक यह था कि वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रजाती के परिणामस्वरूप ही उसका विकास हुआ है। इसी प्रजाती के द्वारा राज्य ने सम्पत्ति का बोध एवं संरक्षण किया है। प्रूधों वैयक्तिक सम्पत्ति के विनाश का पक्षपाती नहीं था। वह उसके शोषणवादी स्वरूप का अन्त करना चाहता था जो कि व्याज और मुद्राभा के रूप में प्रचलित है। परंतु वह वास्तविक स्वतंत्र्य प्राप्ति के लिए ही क्रांतियों को आवश्यक समझता था—( १ ) प्राथमिक और ( २ ) राजनीतिक। प्रूधों ने 'जनता के बँक' की एक योजना बनाई। इस योजना ने सर्व को ही प्रभावित नहीं किया, किन्तु अमेरिका और रूस भी इसके प्रभाव का भ्रम में प्रभावित हुए।

## मिखैल बैकुनिन् ( Michol Bakunin )

( १८१४-१८७६ )

बैकुनिन् का जन्म के प्रमुख सम्प्रदाय कुल में जन्म हुआ। इसके पिता एक यूटोपियन थे। उसका पिता सेंट पीटर्सबर्ग और पारको के विरवचिन्तास्यों में हुआ। परंतु अल्प काल में ही वेनायिकाओं के पद को सुतोमित किया। इसी विषय एवं नागरिक प्रशासन की स्वेच्छावादिता तथा पार्लरवादी नीति ने इसे समाजवादी और अन्तर्व्यवस्था प्रजातन्त्रवादी बनाया। बैकुनिन् प्रूधों से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने १८४८ की फ्रांसीसी राजकीय में प्रमुखत्व से

भाग लिया। वह १२ वर्ष तक जेलों में रहा और वो बार उसे प्राय-दण्ड भी नापात हुआ। वह सर्वप्रथम अराजकतावादी विचारक था, जिसने हिंसा को बकासत की। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में अराजकतावादी आन्दोलन का वह अग्रदूत था। उसने अनेक पुस्तकों की रचना की। उसकी लेखन-शैली बड़ी प्रोबुद्ध एवं प्रभावोत्पादक थी। वह बड़ा साहसी सचमयी और अभ्यवसायी था। उसमें पुत्र पर्यवर्ती के निर्देशन की अपूर्व क्षमता थी। १८६४ में स्थापित प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय (First International) के कार्य-मासक, वैकुण्ठिन और एलेक्स एन्वकीटि के विचारक थे। चिन्तु वैकुण्ठिन का मासक के साथ मतभेद राज्य की अस्तित्व-सम्बन्धी धारणा के कारण हुआ और फरवरी १८७२ में वह अपने अनुयायियों सहित इससे अलग हो गया।

वैकुण्ठिन ने सार्वभौमता, व्यक्तिगत सम्पत्ति और धर्म की बहु-प्राप्ति का भी। इन संस्थाओं का निर्माण मानव विकास की आदिम अवस्था में हुआ। व्यक्तिगत सम्पत्ति मानव की भौतिक बलुओं के प्रति रक्षित करती है। राज्य व्यक्तिगत सम्पत्ति का पोषण करता है। धर्म व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं राज्य दोनों का संरक्षक है और व्यक्ति को भयभीत रखता है। वैकुण्ठिन ने जनतांत्रिक आधार पर निर्मित सभी राजनीतिक संस्थाओं को अस्वीकार किया। उसकी दृष्टि में राज्य भौतिक दृष्टि से शासक एवं शासित दोनों के लिए अन्यायी है, क्योंकि यह शक्ति का प्रयोग करता है। राजनीतिक सच्चा मानवीय भावनाओं को बिनष्ट करती है और धर्म-विभेद को जन्म देती है। शासनाधिकारी सर्वोपरिता की भावना से अभिभूत हो सद्भाव और आदर्श-भाव का विस्मरण कर पतनोन्मुख हो जाते हैं। वे जनसमुदाय के साथ दूरबाद करते हैं। एक ओर धर्म संस्था में क्रूर, हिंसक और अत्याचारी शासक हैं तथा दूसरी ओर बहुसंख्यक उपेक्षित जन-साधारण। इस प्रकार राज्य धर्म विभेद का जन्मदाता और पतनकारी है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति राज्य को चिररयासी बनाये हुए है। नाना प्रकार के दुर्गुणों की यह जननी है। धर्मस्य धर्मियों को आर्थिक दासत्व में डाले हुए है। उनमें अज्ञान, सामाजिक एवं प्राथमिक अज्ञान का संचार करती है। चिन्तु कुछ पूर्वजापतियों के वैभवपूर्ण जीवन का साधन बनते हुए हैं। यह आर्थिक विषमता का जन्मदाता है।

धर्म एक विच्छिन्न बुराई है। यह बहुपित एवं अष्ट संस्थाओं का समर्थक है। धर्म और राजनीतिक निरोधाधिकारों से सुसम्पन्न व्यक्ति अपनी धर्मसर्विक सर्वोच्चता तथा दृष्टी का दृष्टे द्वारा भीक्ष्य मित्र करते हैं। धर्म व्यक्ति को

मानवमत्त, क्यासु धीर कायनिक बनाता है। यह उसकी विवेक एवं तर्क-शक्ति को बड़का बना देता है।

किस प्रकार अराजकताकारी क्रान्ति का संयोजन होगा? इसके उत्तर में मैकुनिन का मत था कि किसी बड़े नगर या बड़ा राज्य में अराजकतावादियों के ऐच्छिक संघ होंगे जो कि प्रत्येक मुहूर्त्ने में स्थापित होंगे। नगर की एक परिपक्व होयी जिसका निर्माण इन ऐच्छिक समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा होगा। यह परिपक्व विभिन्न कार्यों के सम्पादन हेतु विभिन्न समितियों का निर्माण करेगी। इस परिपक्व के दो प्रकार के कार्य होंगे—(१) विध्वंसकारी कार्य और (२) प्रचार कार्य। प्रथम के अनुसार इसका कार्य सभी राजनीतिक पार्टियों एवं संस्थाओं का सम्मूहन करना और धीरोगिक एवं कृषि-सम्पत्ति का अधिक-समितियों में समुचित वितरण करना होगा। और एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना, जिसमें किसी भी प्रकार के दूसरे संयोजन को चाहे वह सर्वज्ञान कार्य का प्रतिफलफल ही क्यों न हो, स्थापित न होने देना होगा। द्वितीय के अनुसार जनता में प्रचार कार्य जिससे कि लोक क्रान्ति के महत्त्व को समझ सकें और उसमें सक्रिय रूप से भाग ले सकें। यह प्रचार-कार्य बड़ा विस्तार एवं व्यापक होगा।

राज्य और व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्मूहन के उपरान्त, मैकुनिन के कथनानुसार समाज बर्न एवं सत्ता विहीन होगा। ऐसी व्यवस्था में रंग, जाति और राष्ट्रीयता के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सभी को समान अवसर प्राप्त होंगे और प्रत्येक को अपने धर्म का समुचित पारिभूमिक मिलेगा। ऐसे समाज की धारा शिक्षा कानून और शक्ति की अपेक्षा समझौता और ऐच्छिक सहयोग हीवी और सहकारिता व्यक्तियों की स्वच्छा एवं आकरयकता पर निर्भर करेगी। समस्त उत्पादन के साधन और भूमि समाज के अन्तर्गत हीवी। जो व्यक्ति स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्धारित कार्य करके भूमि का उपयोग उत्पादन-हेतु करेगा ऐसे व्यक्तियों को भूमि पर आधिपत्य और अराजक वस्तु में से आकरयकतानुसार उपयोग करने की स्वतंत्रता होगी। इस प्रकार ये स्थानीय संस्थाएँ मिल कर आदेशिक संस्थाओं का निर्माण करेंगी। इस समय व्यक्तियों के स्वतंत्र सम्पत्ति (Cooperation), प्रायः राष्ट्र मूखीय संघ और अन्तराष्ट्रीय संघ होंगे। ये सभी संघ पूर्ण स्वतंत्र होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को इन संघों में सम्मिलन और सम्बन्ध-विश्लेषण की पूर्ण आजादी होगी।

## प्रिन्स क्रोप्टकिन ( Prince Kropotkin )

( १८४२-१९१६ )

क्रोप्टकिन का जन्म रूस के एक कुलीन परिवार में हुआ। सैन्य शिक्षा के उपरान्त उसकी सेनापिशापी के पद पर नियुक्ति हुई। क्रोप्टकिन वैज्ञानिक का शिष्य था। १८७२ में वह स्विटजरलैण्ड आया और वहीं अराजकतावादी हो गया। उसने अनेक ग्रन्थों की रचना की जो बड़े सजीव और स्पष्ट तथा वैज्ञानिक हैं। क्रोप्टकिन को मानव-सुशोभ और जीवन-विज्ञान का बड़ा विशद ज्ञान था। उसके मत में, मानव-जीवन के विकास का प्रमुख आधार सहकारिता है, न कि संघर्ष। जिन जीवों में प्रतिव्योपिता के गुणों का आबिन्न होता है, वे अन्ततः पराजित हो जाते हैं किन्तु जिनमें सहयोगी भावना का प्राबल्य और अपने को उत्तुङ्ग बाधाकरण में आसने की समता होती है, वे ही जीवित रहते हैं। इस प्रकार क्रोप्टकिन सामयिक विकास के नियम को मूलतः पारस्परिक सहयोग का नियम मानता था।

उसकी दृष्टि में राज्य का न तो कोई प्राकृतिक औचित्य है और न ऐतिहासिक ही। राज्य की उत्पत्ति का मूल कारण यह बताना कि व्यक्ति की असामाजिक एवं प्रतिव्योपितात्मक प्रवृत्तियाँ हैं और इसी कारण नियंत्रण और बंधन की आवश्यकता है जिससे कि समाज का अस्तित्व बना रहे, किन्तु अन्ततः अन्ततः सहयोग और सहकारिता ही है। अस्तुतः राज्य का विकास ऐतिहासिक दृष्टि से विरहात्मक था हुआ है। मनुष्य मुक्तों तक स्वच्छन्दता से रहा है। यह अस्वस्थ प्रतिबन्धन एवं सार्वभौमता-विहीन थी। समाज में ऐश्वर्य और पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन नैसर्गिक आदर्शों और रिवाजों के द्वारा होता था। उन दिनों ये रिवाज ही कानून थे। प्रचलित कानूनों की उत्पत्ति तब हुई जबकि समाज आर्थिक बेधम्य के कारण अर्थों में विभक्त हो गया। ये कानून या तो अनाचारक हैं या अहितकर। क्रोप्टकिन ने इन कानूनों को तीन भागों में विभक्त किया था—(१) सम्पत्ति की रक्षा के लिए, (२) व्यक्ति की रक्षा के लिए और (३) सरकार की रक्षा के लिए। सम्पत्ति-रक्षा के कानून व्यक्ति द्वारा उत्पादित वस्तुओं के उपयोग का अधिकार न देकर उन व्यक्तियों को उपहृण का अधिकार प्रदान करते हैं, जिन्होंने कोई काम नहीं किया। यह एक विधिहीन अर्थव्यवस्था है। इस अर्थव्यवस्था के पोषण हेतु सर्वस्य कानूनों, न्यायालयों और निकायों का निर्माण हुआ है। व्यक्ति-रक्षा के कानून भी निरर्थक हैं, क्योंकि जब निजो सम्पत्ति का ही सम्भरण हो जायेगा

अन्वयगत, क्यायु धीर काव्यनिक बनाता है । यह उच्चकी विवेक एवं तर्क-शक्ति को बकम् बना देता है ।

किस प्रकार अयवकतावादी अन्ति का संगठन होया ? इसके उत्तर में वैकुण्ठिन का मत वा कि किसी बड़े नगर अथवा राजधानी में अयवकतावादीयों के वैश्विक संघ होने को कि प्रत्येक मुहूर्त्ने में स्थापित होंगे । नगर की एक परिष्कृ हीवी विद्यका निर्माय इन वैश्विक समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा होया । यह परिष्कृ विभिन्न कायों के सम्पादन हेतु विभिन्न समितियों का निर्माण करेगी । इस परिष्कृ के दो प्रकार के कार्य होंगे—(१) विध्वंसकारक कार्य धीर (२) प्रचार कार्य । प्रथम के अनुसार इसका कार्य सभी राजनीतिक पार्टियों एवं संस्थाओं का अन्वयगत करना धीर धीरोगिक एवं इयि-सम्पत्ति का अयिक-समितियों में समुचित वितरण करना होया । धीर एक ऐसी अयवस्था की स्थापना, जिसमें किसी भी प्रकार के दूसरे संगठन को, चाहे वह सर्वहाय बर्ष का अयिनमकत्व ही क्यों न हो, स्थापित न होने देता होया । त्रितीय के अनुसार अयता में प्रचार कार्य, जिससे कि लोय अन्ति के महत्व को अयनक सबे धीर अयमें अयिक का से मान से बर्षे । यह प्रचार-कार्य बड़ा विद्यक एवं अयवक होया ।

अय्य धीर अयिकयत अयन्ति के अयुधन के अयवगत, वैकुण्ठिन के अयता अनुसार अयान बर्षे एवं अता विद्यिन होया । ऐसी अयवस्था में रंग अति धीर राष्ट्रीयता के लिए कोई अयान नहीं होया । सभी को अयान अयतर अयन्य होंगे धीर प्रत्येक को अयने अय का समुचित पारिअयिक विद्येण । ऐसे अयान की अयार-अयसा कायुन धीर अयिक की अयनेका अयन्यीता धीर वैश्विक अययोय होयो धीर अयकारिता अयिक्यों की अयनेका एवं अयारयकता पर निर्मर करेगी । अयन्य अयवगत के अयान धीर अयि अयान के अयन्यत होयी । अी अयिक अयनीय संस्थाओं द्वारा निर्धारित कार्य करके अयि का अययोग अयवगत-हेतु अयने, ऐसे अयिक्यों को अयि पर अयिअय्य धीर अयनारित अयु में से अयन-अयकतानुसार अययोग करने की अयन्यता होयी । इस प्रकार ये अयनीय संस्थाएं अयि कर प्रारैअिक संस्थाओं का निर्माण करेगी । अय अयय अयिक्यों के अयन्य अययुन ( Commande ), अयन्य, अयु अयुवीय अयध धीर अयन्यरअयुवीय अयध होंगे । ये सभी अयध अयुण अयन्यत होंगे । प्रत्येक अयिक को इन अयनों में अयन्यनन धीर अयन्यन-अयिकेय की अयुण अयनीय होयी ।

## प्रिन्स क्रोप्टकिन ( Prince Kropkin )

( १८४०-१९१६ )

क्रोप्टकिन का जन्म रूस के एक कुलीन परिवार में हुआ। सैन्य-शिक्षा के उपरान्त उसकी सेवाधिकारी के पद पर नियुक्ति हुई। क्रोप्टकिन बैकुलिन का शिष्य था। १८७२ में वह स्विटजरलैण्ड भाषा धीरे धीरे प्रजासत्तावादी हो गया। उसने अनेक ग्रन्थों की रचना की जो बड़े सजीव धीरे स्पष्ट तथा वैज्ञानिक हैं। क्रोप्टकिन को मानव भूयोत्पत्ति धीरे जीवन-विज्ञान का बड़ा विचार मान था। उसके मत में, मानव-जीवन के विकास का प्रमुख माध्यम सहकारिता है, न कि संघर्ष। जिन जीवों में प्रतियोगिता के गुणों का अधिकत्व होता है, वे अन्ततोगत्वा विनष्ट हो जाते हैं किन्तु जिनमें सहयोगी भावना का प्राबल्य धीरे अन्त को उत्कृष्टतम वातावरण में बसने की क्षमता होती है, वे ही जीवित रहते हैं। इस प्रकार क्रोप्टकिन साम्यवाद विकास के नियम को मूलतः पारम्परिक सृष्टियों का नियम मानता था।

उसकी दृष्टि में साम्य का न तो कोई प्राकृतिक औचित्य है धीरे न ऐतिहासिक ही। साम्य की उत्पत्ति का मूल कारण यह बताना कि व्यक्ति की सामाजिक एवं प्रतियोगितात्मक प्रवृत्तियाँ हैं धीरे इसी कारण नियंत्रण धीरे रक्षा की आवश्यकता है जिससे कि समाज का अस्तित्व बना रहे, निरान्त प्रलय धीरे तर्कहीन है। बलुठ साम्य का विकास ऐतिहासिक दृष्टि से विरहास बाद हुआ है। मनुष्य मुक्तों तक स्वच्छन्दता से रहा है। यह अस्मिता प्रतिबन्ध एवं सार्वभौमता-विहीन थी। समाज में ऐश्वर्य धीरे पारम्परिक सम्बन्धों का नियमन नैसर्गिक धारकों धीरे रिवाजों के द्वारा होता था। उन दिनों वे रिवाज ही कानून थे। प्रचलित कानूनों की उत्पत्ति तब हुई जबकि समाज धार्मिक बेधम्य के कारण पणों में विभक्त हो गया। ये कानून या तो अनावरणक हैं या हानिप्रद। क्रोप्टकिन ने इन कानूनों को तीन मार्गों में विभक्त किया था—(१) सम्पत्ति की रक्षा के लिए, (२) व्यक्ति की रक्षा के लिए धीरे (३) सरकार की रक्षा के लिए। सम्पत्ति-रक्षा के कानून व्यक्ति द्वारा उत्पादित बस्तुओं के उपयोग का अधिकार न देकर उन व्यक्तियों को उपहाराण का अधिकार प्रदान करते हैं, जिन्होंने कोई धन नहीं किया। यह एक विचित्र धर्म्याय है। इस धर्म्याय के पोषण हेतु सर्वस्य कानूनों, म्यासासयों धीरे मेटासों का निर्माण हुआ है। व्यक्ति-रक्षा के कानून भी निरर्थक हैं, क्योंकि जब नियम सम्पत्ति का ही उन्मूलन हो जायेगा

तो अपराध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर बहुराज्य भी अपराध रोक्ने में अक्षम नही हुआ है। जमीन-कमी राज्य ने अपराधी को अपराध की अपेक्षा अधिक डर बहुराज्य दिये हैं। सरकार के एतार्थ कानून भी पर्वहीन हैं, क्योंकि वे बिरोधाधिकार-सम्पन्न वर्ग के संरक्षक हैं। अत्यन्त शासन-प्रणाली चाहे उसका रूप राजतंत्रीय, संविधानतंत्रीय या गणतंत्रीय ही, जब बिरोधाधिकार-प्राप्त वर्ग की ही रक्षा करती है।

राज्य व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षक नहीं है। उसके द्वारा कभी किसी विधिगत सत्य की पूर्ति नहीं हुई। यह न तो व्यक्तों और व्यक्तियों की उनके शोषकों से रक्षा करने में और न समाज और बेकारी से प्रत्यक्ष लोगों की सहायता करने में समर्थ हुआ है। राज्य सुरक्षा तथा परमार्थ की दृष्टि से भी धावरयक नहीं है। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से परिपूर्ण है जबकि सामरिक सेनाओं ने राज्य की सेनाओं को पतनपूर्व किया है और जन-विरोध ने बाह्य पाठमण को असफल सिद्ध किया है। इस प्रकार जनता स्वयं धार्मिक एवं बाह्य संकटों से अपनी रक्षा कर सकती है। अष्टकित्तन मात्वापारी राज्य के स्थान पर व्यक्तिओं के स्वतंत्र संघों के पक्ष में जा। उसका मत जा कि राज्य एवं सम्पत्ति-रक्षित समाज में समाज विवेक, मनोवृत्ति और सत्यवासे व्यक्ति पारस्परिक सहयोग से भावय-अनुसार समुदायों का निर्माण करेंगे। ऐसे समुदायों का संकलन विविध कार्यों के आधार पर होना जैसे, पाठशाळाओं का संघालन गृह और बच्चों का निर्माण और भीमार बनाने आदि। ये छोटे समुदाय सामाजिक और धार्मिक क्लिष्टों के समु-सार बड़े संघों में मिश्र जायेंगे। ये छोटे संघ बड़े संघों की रचना करेंगे। व्यक्तिओं को इन संघों से अलग होने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। इस प्रकार समाज का राजनीतिक ढांचा प्रजातांत्रिक होगा। इन संघों के बीच जो फलें होंगी उनका निर्णय स्वैच्छपूर्वक स्थापित पंच-न्यायालयों द्वारा होगा। समाज बिरोधी कार्यों को नैतिक और सहायगुणितुल्य डंड से निबटारा जायेगा। अष्टकित्तन का यह हक मत जा कि आज सरकारी कार्य की अपेक्षा सङ्कारिता की भावना प्रबल होती जा रही है। स्वैच्छपूर्वक किये गये इकरालाये के आधार पर अधिकारित कर में व्ययार बलता है। अनेक ऐसे संघों का निर्माण किया जाता है।

अष्टकित्तन ने एक धार्मिक संकलन की योजना भी प्रस्तुत की थी। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की भोजन पत्र और गृह-प्राप्ति का पूर्ण अधिकार होगा। बेतन-प्रणाली समाप्त कर दी जायेगी, क्योंकि उत्पादन के आधार पर कुल-निर्वा-

रण नहीं हो सकता। अतः अप्टिकित 'प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार' वस्तुओं के मिलाने के पक्ष में था।

अप्टिकित ने सदन प्राप्ति के लिए शान्ति एवं विकासवादी उपायों के त्याग पर शान्ति की बकामत की। उसका कथन था कि सर्वप्रथम किसी एक देश की शान्ति समस्त युगों में फैल जायगी। इस विश्वसत्यक दृष्टि के द्वारा व्यावहारिक शासकों की परबन्धुत, किये धीरे करारों को समस्त तथा सहानुभूति एवं सहयोगी वातावरण को पैदा किया जायेगा। अन्तर्गत जनता का मुक्तोद्देश्य व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रपहरण करना होगा। व्यक्ति धीरे-धीरे कारखानों और भूमि पर, तथा बेपरवार व्यक्ति मकानों पर आधिपत्य कर सेंगे। इस प्रकार शोषण की प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी।

### टॉल्स्टाय ( Tolstoy )

टॉल्स्टाय धार्मिक धरातलवादी था। वह उच्चकोष्ठी का कभी विद्वान् एवं साहित्यकार था। उसके पिता रूस के सम्प्रान्त भूमिपति थे। किरक विद्यालय की शिक्षा के उपरान्त टॉल्स्टाय ने नैतिक जीवन को अपनाया। क्रिमिया के युद्ध में वह एक सेनाधिकारी के पक्ष पर था। उनके युद्धीय अनुभव उसकी पुस्तकों में साक्षर हो गये हैं।

टॉल्स्टाय का सिद्धान्त ईसाई-धरातलवादी के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि उसने ईसाई धर्म के अनेक विचारों से असहमति व्यक्त की, किन्तु अपने व्यवहार में वह पूर्णतया ईसाई था। उसने राज्य और व्यक्तिगत सम्पत्ति को ईसा-विरोधी बताया, क्योंकि राज्य की आधारशिला शक्ति है। शक्ति के द्वारा ही राज्य का प्रत्येक कार्य होता है। ईसा ने शक्ति के त्याग पर प्रेम पर बल दिया है। इसी प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति, जो कि धर्म-विरोध की जन्मदात्री है, ईसा के मानव बन्धुत्व के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। टॉल्स्टाय ने राज्य के साथ अहिंसामक असहयोग करने तथा नियम के त्याग पर प्रेम भाव धारण करने पर बल दिया। उसने सभी समाज को कोई कान-रेखा नहीं बताया, क्योंकि उसका निश्वास था कि सभी समाज का निमग्न धरातलीय अनुभव तथा परिस्थितियों के अनुकूल हो होगा।

### ( १ ) अराजकतावाद और राज्य

अराजकतावादी राज्य का अनुमन चाहते हैं। वे जानते कोई पारस्परिक अनुमन नहीं करते, क्योंकि उनके द्वारा कभी कोई सार्वजनिक हिंस नहीं हुआ। इसकी अन्तिम व्यक्तिगत सम्पत्ति के कारण हुई धीरे धीरे भी यह उसी का योग्य एवं संरक्षण है। यह एक सर्वोच्च संस्था है। धर्म-विरोध का ही इसके द्वारा



हित हुआ है। किसान मजदूरों का पर-दखल इसी की सनभ्याया में और इसी के द्वारा हुआ है। अतः यह बोर रोपण का प्रतीक है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसकी कोई उदात्तता नहीं है। इसकी परवर्ति के पूर्व सदियों तक व्यक्ति बिना राज्य के अपने समूहों में सलत्त और स्वतंत्र रहे हैं। अतः इसके बिना आज भी वे उसी प्रकार रह सकते हैं।

राज्य निरंकुशता का प्रतीक तथा स्वतंत्रता का अपहरणकर्ता है। अत्येक शासन प्रणाली में वैयक्तिक स्वतंत्रता पर दुठारापात होता है। स्वतंत्र में एक व्यक्ति, कुबीनतंत्र में कुछ व्यक्ति और प्रजातंत्र में बहु व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की स्वतंत्रता का अपहरण करते हैं।

मराजकतावादियों की दृष्टि में, सभी प्रकार के राज्य एक-से हैं, क्योंकि निरंकुशता सभी राज्यों से समिहित है। प्रजातंत्र भी एक बड़ा प्रपंच या ढोंग है। कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। एक डाक्टर विभिन्न पेटेवासे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है? उसमें वे पेट फिरे जाने वाले सभी प्रस्तावों के सम्बन्ध में उसकी समुचित जानकारी नहीं हो सकती। वह निवोधन शिक्षा, कानून, सफाई, व्यवसाय और प्रशासन आदि के सम्बन्ध में नीतिबिधा है। उसे अपने पेटों का बोध हो सकता है। इसी प्रकार एक बकीस बिक्रिष्ठा के सम्बन्ध में अनभिज्ञ है और व्यापारी मजदूर-समस्याओं के सम्बन्ध में। अतः प्रत्येक प्रतिनिधि केवल अपने ही व्यवसाय की मनीबन्धि समझ सकता है, अन्य व्यवहारों को नहीं। इस प्रकार बोर के बहनजुहार, "प्रातिनिधिक सरकार तो वह सरकार है जिसमें व्यक्ति केवल इतना ही जानते हैं कि सभी कार्य मसत रंग से पूरे हो सकें। उन्हें किसी भी वस्तु का इतना ज्ञान नहीं है कि वे उसे समुचित रंग से कर सकें।" वास्तविकता तो यह है कि प्रातिनिधिक प्रणाली पेटेवर राजनीतियों, बकीसों और पुरोहितों की जगमगी है। इन लोगों का पेटा मानव कमजोरियों को स्वाधी बनाये रखता है जिससे कि उनकी जीविका समुचित रूप से चल सके। यह पेटेवर-रंग जन-समस्याओं को बिना सोच-समझे मसत रंग से उनका समाधान करता है।

1 "Representative Government is a Government by men who know just enough about everything to enable them to do everything badly, and not enough about anything to enable them to do anything well" (C. E. M, Joad)

यह कहना कि प्रजातंत्र में जनता की 'सामान्य इच्छा' (General Will) का प्रतिनिधित्व होता है, नितांत भ्रान्ति है। एक प्रतिनिधि चुनाववासीय परिस्थिति के अनुसार पाँच वर्ष के लिए निर्वाचित होता है। यह परिस्थिति सर्वत्र एक-सी नहीं रहती। इसमें परिवर्तन होता रहता है। इस परिस्थिति के अनुसार ही जन सामान्य इच्छा भी परिवर्तित होती रहती है। किन्तु प्रतिनिधि 'सामान्य इच्छा' के अनुसार नहीं व्यवहृत। अतः वह पाँच वर्ष के लिए निर्वाचित प्रतिनिधि या संसद जनता की सामान्य-इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं करती। इसके अतिरिक्त संसद में प्रस्तुत विभिन्न प्रश्नों पर प्रतिनिधि किस प्रकार जनता की सामान्य-इच्छा को माधुम करे? उसके सम्मुख एक ही विकल्प रह जाता है सामान्य इच्छा को माधुम करने का कि वह जन-समाजों का आयोजन करे। किन्तु जब प्रत्येक प्रश्न पर 'सामान्य इच्छा' का निर्धारण जन-समाजों द्वारा होगा तो फिर निर्वाचित प्रतिनिधि की आवश्यकता ही क्या रह जाती है? इस प्रकार वास्तविकता यह है कि प्रतिनिधि प्रणाली या तो अनावश्यक है या इसका द्वारा किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व ही नहीं होता।

अव्यक्ततावादियों के अनुसार व्यक्ति अवाच्य है किन्तु सत्ता-प्राप्ति के बाद वह भ्रष्ट हो जाता है। शक्ति-प्रयोग के दो प्रमुख दोष हैं। प्रथम, जो शक्ति का प्रयोग करता है वह स्वयमेव भ्रष्ट हो जाता है। द्वितीय, जिन पर इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है, उन पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः जो स्वभाव से परोक्षवादी योग्य और शिष्ट हैं, वे स्वार्थी निर्दयी और बुरे हो जाते हैं। अतः व्यक्ति के अतिरिक्त हस्त का कारण राज्य ही है। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों पर शासन का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस अधिकार के द्वारा व्यक्ति के महान्त्व निर्देष्टु और पतित हो जाने की सम्भावना रहती है। वास्तविक कहना या "अमुक मन्त्री जो आज पूजा योग्य है यदि सत्ता-हस्तगत नहीं होता तो वह बड़ा शिष्ट मानव होता।" बलुच अन्तर्राष्ट्रीय मूढ एवं धार्मिक विप्लव का एकमात्र कारण शक्ति ही है, जितने मानव-समाज को विभिन्न भू-भागों में विभाजित कर दिया है। विभिन्न कहना है "सरकार से वास्तविक अधिकारशक्ति वृक्षता और विनाश से है जब कि अत्यन्ततावाद का अर्थ स्वतंत्रता, एतता और प्रेम है। सरकार अर्थिक और भय पर आधारित है, तो अत्यन्ततावाद वास्तव पर।"

1 "Thus or that despicable minister might have been an excellent man, if power had not been given to him." (Herbert)

राज्य एक धनावरणक बुधारे है। क्योंकि राज्य और सरकार दोनों ही व्यक्ति के सोपान के विविध भाग हैं। दोनों ही उनके अन्तर्गत में परस्परतः प्रयुक्त हैं। इनसे उसका पता होता है। यह धनावरणक ही नहीं, अपितु एक बेकार संस्था है। इसके कार्य परिमित हैं। व्यक्ति द्वारा ऐसे अनेक कार्य भिन्ने करते हैं जिनमें राज्य की कोई धनावरणकता ही नहीं होती—जैसे, खाना, सोना, सल्ला, बैठना, बुझना और पढ़ना आदि। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन ऐसे अनेक अनेक कार्य होते हैं, जिनका पालन राज्य के द्वारा हस्तक्षेप के द्वारा है। ये अनेक कार्य बड़े अत्यन्तपूर्ण होते हैं। ऐसे अनेक कार्य अनेक राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा किये जाते हैं। ऐसी संस्थाओं एवं संघों की संख्या अत्यन्त बड़ रही है। यदि राज्य का धन कर दिया जाये तो विभिन्न कार्यों का सम्पादन ये संस्थाएँ मसौमति कर सकती हैं। अतः धनावरणकतावाहियों की दृष्टि में, राज्य की कोई धनावरणकता नहीं है। राज्य की धनावरणकता पर बल विशेषतः तीन कारणों से दिया जाता है—(१) बाह्य धातुओं से देश की रक्षा करने (२) अन्तर्गतियों की रक्षा देने और (३) शान्त करने आदि।

प्रथम कारण का कारण करते हुए अन्तर्गतियोंवादी कहते हैं कि राज्य बाह्य धातुओं से देश की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। वैदिकों ने ऐतिहासिक कर्मों के आधार पर यह कहा कि अनेक बार राज्य की संस्थाओं को बन-सैनाओं के अन्तर्गत होना पड़ा है। (बलुत भीम इन्द्रा अन्तर्गत अन्तर्गत है)। इसी लिए देश-उद्योग राज्य की कोई धनावरणकता नहीं है और इसके इस कार्य को बन-सैनाएँ मसौमति कर सकती हैं। द्वितीय कारण के अन्तर्गत में धनावरणकतावाहियों का मत है कि अन्तर्गत मुक्तता को प्रकार के होते हैं—(१) सम्पत्ति के विच्छेद जैसे, बोरी और बाक्य आदि (२) व्यक्तियों के विच्छेद जैसे, बाल-शिशु, अन्तर्गत, इत्यादि आदि। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्तर्गत के बाह्य प्रथम प्रकार के अन्तर्गतों का प्रसन्न ही नहीं उठता। दूसरे प्रकार के अन्तर्गत व्यक्तियों की अन्तर्गत मसौमति के कारण होते हैं। व्यक्तियों की अन्तर्गत मसौमति में सुधार बरद देकर जैसा मसौमति से नहीं हो सकता। अन्तर्गत की दृष्टि में, अन्तर्गत बाह्य और अन्तर्गत के अन्तर्गत हैं। अन्तर्गत स्वयं अनेक बार जैसा वा बुका वा और ही अन्तर्गत पर पहुँचा कि जनों द्वारा अन्तर्गतियों की अन्तर्गतों में कोई सुधार नहीं होता। अन्तर्गत ऐसे अनेक व्यक्तियों को अन्तर्गत को कई बार अन्तर्गत वा बुके से और अन्तर्गत अन्तर्गतों में कोई अन्तर्गत नहीं पड़ा था। इस प्रकार अन्तर्गतियों को बरद देने की अन्तर्गत अन्तर्गत विदित्वा द्वारा

सुधार जाना चाहिए। तीसरे कारण के सम्बन्ध में पराजयवादिनों का उत्तर है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति के बाद मुझमें धारि नहीं रहेंगे और फिर इस प्रकार व्याय-व्ययन्या की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि कभी विचार-स्वयं प्रकृत उठेंगे तो संभावितों द्वारा उनका निराकरण हो जायेगा। इसी तरह शिक्षा के लिए भी राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है। यह कार्य ऐच्छिक शिक्षण संस्थाओं द्वारा समुचित ढंग से किया जा सकता है। वस्तुतः जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बिना राज्य के हस्तक्षेप के जो प्राणवीर्य उपलब्ध हुई है, उसका बेव ऐच्छिक संघों व संस्थाओं की ही है। वक्ता, साहित्य विज्ञान और व्यवसाय के क्षेत्र में इन संस्थाओं का भार योजना है।

## (२) पराजयवाद और आदर्श समाज

पराजयवादिनों ने भाषी आदर्श-समाज का विवेचन किया है। उनकी दृष्टि में मनुष्य सदाकारी है किन्तु राज्य ने उसे निहृत्तम बना दिया है। यदि राज्य का अन्त कर दिया जाय तो वह शिष्ट मानव बन जायेगा। इस प्रकार पराजयवादिनों का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य को तीन प्रकार से स्वतंत्र करना है— (१) नागरिक की हैसियत से राज्य से (२) उत्पादक की हैसियत से पूँजीवाद से और (३) मानव की हैसियत से बर्ष से। यह समाज पूर्णरूपेण साम्यवादी होगा जिसमें सहयोग स्वेच्छा और स्थानवाद का प्राबल्य होगा। व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता होगी। व्यक्ति के काम करने की अवस्था २४ से ४० या ३० वर्ष तक होगी। प्रतिदिन कार्य करने के घंटे ४ या ५ होंगे। बैठक प्रथा का, जो पूँजीवाद की देन है, अन्त कर दिया जायेगा। सभी पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होगा और सभी द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं में प्रत्येक उत्पादक का भाग होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा एवं शक्ति के अनुसार ही कार्य करेगा किन्तु उद्योग को बन्दूक उसके आवश्यकतानुसार उसे उपलब्ध होंगे। सार्वजनिक भावनात्मकों में जीवन और सार्वजनिक बकायतों में बन्ध धारि सभी वस्तुओं बिना किसी शर्त के सभी को प्राप्त हो सकेंगी, चाहे कोई कार्य अधिक करे अथवा कम। यहाँ एक सामाजिक प्रश्न उठता है कि जब बिना कार्य किये सभी वस्तुओं प्राप्त होंगे तो ऐसी दशा में कोई कार्य क्यों करेगा? और फिर बन्दूक उत्पन्न कैसे होंगी? पराजयवादिनों का उत्तर है कि व्यक्ति मर्त्यत्वमत् है। वह स्वयं ही प्राणवीर्य की धरिता बनेगी है। अधिक दिन बिना काम किये कोई नहीं रह सकता। छोटे शिशुओं पर दृष्टिगत करो वे भी कुप-न कुप बच्चे रहते हैं।

मनुष्य व्यक्ति और प्रयत्नपूर्ण कार्य से सृष्टा करता है। मनुष्य प्रयत्नकारी समाज में प्रत्येक व्यक्ति स्वच्छ से कार्य करेगा। जो व्यक्ति कार्य नहीं करेगा उसे आवश्यक वस्तुएं प्रकरय मिलेंगी किन्तु समाज में उसकी प्रति की सम्मान नहीं होगा। सभी कार्य सरल और संचिकर बना दिये जाएंगे। धरोकर कर्मों के करण में वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग किया जायेगा जैसे, सफाई करना या बर्तन साफ करना आदि। जो कार्य मशीनों से सम्भव नहीं होगा उसे व्यक्ति सामाजिक भावना से करेगा जैसे। ऐसे समाज में, समाज सेवियों के प्रति प्रारण भावना होगी। इस प्रकार सेवा-श्रुति व्यक्तियों की काम करने की और निरन्तर प्रेरित करती रहेगी।

समाजवादी उत्पादन के साधनों और उपयोग की वस्तुओं में अन्तर करते हैं। समाजवादी समाज में उत्पादन की वस्तुओं का राष्ट्रीयकरण होगा और उपयोग की वस्तुओं पर व्यक्ति का एकाधिकार जैसे गृह, मोटर, सार्वजनिक आदि। किन्तु धरोकरवादी ऐसा कोई विमोद नहीं करते। इनके मत में, उपयोग की वस्तुएं उत्पादित वस्तुएं हैं। मनुष्य सभी वस्तुएं प्रयत्नकारी सभी द्वारा वितरित की जायेगी। वितरण-प्रणाली का आधार यह होगा कि सर्वप्रथम बच्चे, बुढ़ और अर्पण लोगों को आवश्यकतानुसार वस्तुएं मिलें और उसके बाद मनुष्यों को। धारण की वस्तुओं की अपेक्षा बीवनीयबोवी बीवों का वितरण प्रथम किया जायेगा।

धरोकरवादी समाज में जो व्यक्ति सामाजिक हित करे, उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। इस प्रकार सामाजिक बहिष्कार या विलोपना द्वारा व्यक्तियों को सुधार जायेगा। ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति अपने सम्पत्तियों का अन्वेषण नहीं करेगा, क्योंकि सामाजिक प्रभाषी एवं सम्पत्तियों के परिपालन की ओर उसकी नैतिक प्रवृत्ति है। आधुनिक समाज पूर्णविकार के कारण क्षुब्ध हो गया है। मनुष्य पूर्णविकारी व्यवस्था के समाप्त होते ही व्यक्ति भी पूर्णविकार-रम्य दुर्गुणों से विमुक्त हो जायेगा।

रम्य की समाप्ति के उपरान्त समाज के संयुक्त का आधार मनुष्य की अपेक्षा श्रेयोनी भावना होगी। विविध कार्यों के लिए विभिन्न ऐच्छिक संघ होंगे, जो कि स्व-साधित होंगे। ये प्रत्येक विषय के छोटे-बड़े संघ होंगे। इनका प्रबन्ध जनतंत्रीय आधार पर होगा। स्वानुभव सभी से जनतंत्रीय और इनसे प्रांतीय तथा सभी प्रकार प्रविष्ट देशीय और अन्तराष्ट्रीय संघों का निर्माण होगा। ये सभी संघ समस्याही होंगे। एक समस्या के पैदा होने पर उसकी पूर्ति हेतु एक संघ का निर्माण

होया, धीर जैसे ही उसकी पूर्ति हुई तो उस सब का समूह हो जायेगा । अराजकता-वादियों ने नीचिनुए प्रतिनिधियों की अपेक्षा विरोधक प्रतिनिधियों पर बल दिया है ।

राज्य के अभाव में इन ऐच्छिक सर्षों में सामंजस्य और पारस्परिक सम्बन्धों का संवाहन किस प्रकार होगा ? इसके उत्तर में अराजकतावादियों का कथन है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन के बाद प्रतियोगिता का स्थान सहयोगी भावना ले लेवी धीर सहयोगी भावना एवं पारस्परिक सम्पत्ति के द्वारा सर्षों में स्वतः सामंजस्य पैदा हो जायेगा । फोरियर का कथन है, "कुछ ककड़ियाँ लेकर उन्हें एक डिब्बे में डालो धीर उन्हें हिलाओ तो देखोगे कि वे अपने आप ही आपस में उसकी अपेक्षा सुन्दर समुचित स्थान ग्रहण कर लेपी बोकि किसी एक व्यक्ति को यह कार्य देने पर कठिनाई से प्राप्त हो सकता था ।"<sup>1</sup>

### ( ३ ) अराजकतावादी कार्य-पद्धति

अराजकतावादी विचारक आदर्श समाज का ही चित्रण करते हैं किन्तु दिन उपायों द्वारा इसे मूर्तक्य प्रदान किया जायेगा, प्रकाश नहीं आसते । कार्य-पद्धति का विचार बस्तुतः वे साम्यवादियों तथा अन्य कान्तिकारियों पर छोड़ देते हैं । फिर भी कुछ अराजकतावादी विचारकों ने सामाजिक परिवर्तन के साधनों पर अपने विचार प्रकट किये हैं । इन्हें हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

( १ ) शान्तिपूर्ण अराजकतावादी धीर ( २ ) कान्तिकारी अराजकतावादी । प्रथम के अन्तर्गत टॉम्सटॉप धीर महात्मा गान्धी जैसे अराजकतावादी आते हैं । टॉम्सटॉप का विचार था कि यदि व्यक्ति ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का हृदय से पालन करे धीर राज्य से अरना सम्बन्ध-विच्छेद कर ले तो निःसन्देह राज्य अपने आप ही गट हो जायेगा । इस प्रकार शान्तिपूर्ण अराजकतावादी हिंसामक साधनों की उपयोगिता में विरोध नहीं करते ।<sup>1</sup> द्वितीय के अन्तर्गत, बेनुनिन धीर कान्टिन प्रभृति आते हैं । वे पूर्णरूपेण कान्तिकारी अराजकतावादी हैं । वे अपने सच्य की पूर्ति के लिए हिंसामक साधनों को अपनाते हैं । किन्तु बेनुनिन धीर कान्टिन ने 'हय्याकाएड या आर्तबवाद' की बजासत नहीं की । बेनुनिन ने ऐसे बानों की अर्चना को भी धीर उन्हें मूर्खतापूर्ण बतसाया था । उसकी दृष्टि में

1 ' Take pebbles, put them into a box and shake them, and they will arrange themselves into a mosaic that you could never get by entrusting to any one the work of arranging them harmoniously ( Fourier )

'इस प्रकार के घातकवाद से एक सच्चे परराज्यतावादी के उद्य एवं पवित्र लक्ष्य दूषित हो जाते हैं। उसका कहना था, "हमें व्यक्तिगत सम्पत्ति, राज्य तथा धर्म का विनाश करना है, न कि सम्पत्ति के स्वामियों राजनीतियों और धर्माचार्यों का।'"

**अराजकतावाद और साम्यवाद**

परराज्यतावाद और साम्यवाद दोनों में परस्पर बहिष्कृत सम्बन्ध है। यहाँ तक कि प्रिंस ह्युन्किंग के सिद्धान्त को 'परराज्यतावादी साम्यवाद' की संज्ञा प्रदान की गई है। दोनों का सन्ध भी एक है—वर्ग एवं राज्य-विहीन समाज की स्थापना करना। अधिकतर परराज्यतावादी साम्यवादी साधनों को धर्मीकार करते हैं जब कि बहुत से साम्यवादी भी परराज्यतावादियों द्वारा बहिष्कृत समाज-रचना में अपनी निष्ठा प्रदर्शित करते हैं। ट्रिगु दोनों विचारधाराओं में इतना साम्य होये हुए भी विच्छिन्न भन्तर है जो कि निम्नलिखित है—( १ ) साम्यवादियों के लिए सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व परमाधरयक है और वे उसका परिष्कार नहीं कर सकते, जब कि परराज्यतावादी इसे अनुपपुक्त ही नहीं, अपितु बर्णकारी समझते हैं और इसके द्वारा स्वतंत्र एवं ऐच्छित बहुपक्षीय के सिद्धान्त पर आधारित आदर्श-समाज की स्थापना नितांत असम्भव होती।

( २ ) परराज्यतावादी राज्य की एक विकार मानते हैं। उनका कथन है कि पूर्वीवाद की समाप्ति पर राज्य का भी अन्त हो जायेगा। किन्तु साम्यवादी उसे अन्ति के बाद भी रखना चाहते हैं, क्योंकि सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व के समय में भी उसकी आवश्यकता पड़ेगी। लेनिन ने कहा था "हमारा परराज्यतावादियों से प्रतिशम समय के कर में राज्य के विनाश के प्रश्न पर कोई भी मतभेद नहीं है" किन्तु मार्क्सवाद परराज्यतावाद से इस बात में भिन्न है कि वह साम्यवाद: अन्ति-काल में राज्य तथा राज्यशक्ति की आवश्यकता मानता है।" राज्य की आवश्यकता का कारण यह दिया जाता है कि अधिकारभ्रुत पूर्वीवादि सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व को नष्ट करने के लिए भरसक प्रयास करेगा और ऐसी दशा में राज्य इस अधिनायकत्व की रक्षा करेगा।

( ३ ) सभी परराज्यतावादी हिंसामय साधनों में विरक्त नहीं करते। ट.सुडाय नेने शक्तिपूर्व परराज्यतावादी की हिंसामय साधनों में कोई निष्ठा नहीं है, जब कि साम्यवाद हिंसामय साधनों को पूर्णकोश प्रयत्नता है।

( ४ ) परराज्यतावादी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को एक उच्च प्रदान करते हैं। वे व्यक्ति की प्रत्येक प्रकार की स्वतंत्रता देना चाहते हैं किन्तु साम्यवादी नहीं। मात्र क्ल में राजनीतिक स्वतंत्रता का अपहरण होता है।

( ५ ) अराजकतावाद ने जीवन के अनेक पक्षों की उपेक्षा की है किन्तु साम्यवाद जीवन का एक सांगोपांग दर्शन है और जीवन के प्रत्येक पक्ष पर उसके निरिक्त विचार हैं ।

( ६ ) अराजकतावाद पूर्ण विध्वन्नीयकरण में विश्वास करता है, जबकि साम्यवाद केन्द्रीयकरण में । प्रकृत माता में उद्घावन केवल केन्द्रीयकरण में ही सम्भव है ।

## अराजकतावाद की आलोचना

१ अराजकतावादी विचारकों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं—(१) टॉल्स्टोय का दर्शन 'ईसाई अराजकतावाद' कहा जाता है । यह दर्शन बल-नाशवादी समता है । (२) गॉडविन और प्रूथी प्रभृति अराजकतावादी विचारक ऐसे हैं जो अहिंसावादी और व्यक्तिवादी थे । अतः इसके दर्शन को व्यक्तिवादी अराजकतावाद (Individualistic anarchism) को सजा प्रदान की जा सकती है । (३) बैबुनिन और कस्टडिन जैसे अराजकतावादी विचारक हैं जिनकी मित्रता हिंसालोक साधनों में थी । ये हिंसालोक साधनों द्वारा राज्य का विनाश कर साम्यवादी समाज की प्रतिष्ठा करना चाहते थे । अतः इनके विचारों को 'साम्यवादी अराजकतावाद' (Communist anarchism) कहा जा सकता है । ये सभी विचारक व्यक्ति को राज्य से विमुक्त करना चाहते हैं और राज्य को अनादर्यक और हानिप्रद समझते हैं । अतः राज्य का अन्तर्गमन करना ही इनका परम ध्येय है । ये व्यक्ति को सदुत्तुल-सम्पन्न समझते हैं जो एक बड़ी प्राप्ति है ।<sup>१</sup> वास्तविकता यह है कि समाज में सभी व्यक्ति एक ही स्वभाव के नहीं हैं । समाज में अराजकी, पागल और दुष्ट व्यक्ति भी रहते हैं, जिनसे सामाजिक व्यवस्था के अस्त-व्यस्त होने का निरन्तर भय लगा रहता है । अतः समाज-सुरणों के लिए राज्य आवश्यक होगी । उनका यह भी तर्क कि राज्य और व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्त

1 "The anarchists bound to assume explicitly or implicitly, that man is more or less flawless, and wholly reasonable. It is not always an easy task living with our fellows under any circumstances. A Society where all restraint is removed, where each does what is right in his own eyes, insisiently demands, that all passions be spent and that human benevolence and mutual tolerance should reach heights hitherto undreamed of" (A.Gray)



होती ही मनुष्य की स्वार्थी भावनाओं का अन्त हो बायना, सर्व-सर्व नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य न तो पुरुषोत्तम स्वार्थी है और न मिःस्वार्थी है। उसमें दोनों भावनाओं का समावेश है। अतः उसकी स्वार्थी एवं साम्प्रदायिक भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए राज्य की परम आवश्यकता है।

२ अराजकतावादी विचारकों के इस कथन में कि राज्य शक्ति पर आधारित है, अर्थात् बहुत कम है। राज्य अनेक ऐसे भी कार्य करता है जिनमें बल-प्रयोग का सर्वथा समावेश रहता है। उसके द्वारा सांस्कृतिक, सामाजिक कसारमक और साहित्यिक धारि ऐसे अनेक कार्य होते हैं जिनमें बल प्रयोग कदापि ही होता ही। राज्य द्वारा अस्पृश्यता और शिष्टाचार-संस्थाओं का संस्थापन होता है और रेल, डाक, तार और टेलीफोन आदि विविध विभागों की व्यवस्था होती है। प्रायः अनेक राज्य नियोजन-कार्यों में संलग्न हैं। इन सार्वजनिक-हित के कार्यों में राज्य द्वारा शक्ति-प्रदर्शन कहाँ होता है? भाव तो 'सौकर-व्यवस्थावादी राज्य की स्थापना' एक ध्येय हो गया है। इसमें कोई संशय नहीं कि धार्मिक शक्ति का प्रयोग करने और अज्ञान-शक्तियों से बचने की रक्षा करने में राज्य शक्ति का प्रयोग करना है। इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है, क्योंकि ऐसा करना सार्वजनिक हित की दृष्टि से अपेक्षित है। वस्तुतः राज्य के सार्वजनिक हित के कार्यों में उसके अस्तित्व के धीमे-धीमे को सिद्ध कर दिया है। उसके द्वारा मानव समाज मानव स्वभाव सुसंस्कृत एवं सम्म हो सका है। उसने कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और सांस्कृतिक उत्थान में पूर्ण सहयोग दिया है।

(१) अराजकतावादी युद्धों के लिए राज्य की शक्ति ठहराते हैं जो कि उचित नहीं है। वस्तुतः युद्धों का कारण राज्य का अस्तित्व न हीनकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में अज्ञान अराजकता है। इन युद्धों को नियंत्रित करनेवाली कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं है जो कि इसकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता को रोक सके। यदि राज्यों का अन्त कर दिया जाये तो मात्र हम विश्व अराजकता के अन्त अन्तर्राष्ट्रीय ईमानदारी पर करते हैं वही सर्वत्र दृष्टिगोचर होती। प्रत्येक देश की सुन्दर सामाजिक व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो जायगी और जीवन भयपूर्ण, संघर्षमय एवं प्रतिद्वन्द्वितात्मक हो जायगा। अतः राज्य में चाहे कितने भी दोष विद्यमान हों फिर भी हम इसकी उपयोगिता से पराङ्मुख नहीं हो सकते। अन्तः समाज के लिए इसकी आवश्यकता बनी रहेगी।<sup>१</sup>

( 1 ) "The state in some form, whatever may be said in

(४) मराजकृष्णादिदियों ने जिस धारणी समाज का चित्रण किया है उसमें विभिन्न कार्यों के लिए अलग अलग संघ होंगे । नागरिकों को इन अनेक संघों के विभिन्न कार्यों के निरीक्षण एवं नियन्त्रण पर ध्यान देना होगा तथा गतिविधियों के प्रति सचेत रहना होगा । यह कार्य सर्वसाधारण के लिए सुकर होगा और समय भी अधिक लगेगा । किन्तु आज केवल एक राज्य के कार्य-कसार्णों पर ही दृष्टिपाठ करना पड़ता है और समय का भी दुर्बपयोग नहीं होता ।



criticism of its mistakes, its inefficiency, its abuse of power is and always will be an absolute necessity among civilised men ' ( Bertrand Russell )

## संघवाद (Syndicalism)

संघवाद का संघ की विद्युत् रोश है। १९ वीं शती के अन्तिम भाग में इस नवीन सामाजिक सिद्धान्त की उत्पत्ति फ्रांसीसी श्रमिक-आन्दोलन के कारण हुई। यह संघवाद निर्माता का सिद्धान्त धीरे-धीरे कार्य-नीति की योजना है। सिद्धान्तिक दृष्टि से उत्पादन के साधनों पर उत्पादकों के अधिकार का प्रथम समर्थक है धीरे-धीरे कार्य-नीति की पद्धति की दृष्टि से मार्क्सवादी प्रतिपादित वर्ग संघर्ष उसकी भाषाशैली है। उसने मार्क्सवाद धीरे-धीरे धारण-हस्तांतरण दोनों के कुछ सिद्धान्तों को प्रयुक्तता धीरे-धीरे उन्हें नवीन रूप प्रदान किया। यह समष्टिवाद की प्रतिनिध्या के रूप में विकसित हुआ। इसका प्रचार मुख्यतः फ्रांस स्पेन इटली धीरे-धीरे अमेरिका तक ही परिमित रहा। यह बर्तन ईकनोमिस्ट धीरे-धीरे अन्तर्-सम्बन्धित अन्तर्-देशों की प्रभावित नहीं कर सका।

संघवाद (Syndicalism) शब्द की उत्पत्ति फ्रांस शब्द 'सिन्डिकेट' (Syndicate) से हुई है। इसका अर्थ श्रमिक संघ (Labour union) है। १९ वीं शती के अन्त में, श्रमिक संघटना बहुरी विरोधी विचारधाराओं में विकसित हो गया तो दोनों नीतियों के लिए क्रान्तिकारी संघवाद (Revolutionary Syndicalism) तथा सुधारवादी संघवाद (Reformist Syndicalism) शब्दों का प्रयोग होने लगा। किन्तु अब पूर्णरूपेण क्रान्तिकारी संघवाद का श्रमिक संघटना पर प्राधान्य ही म्या तो उसकी नीति 'संघवाद' (Syndicalism) के नाम से विख्यात हुई।

### फ्रांसीसी संघवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस बर्तन का जन्म फ्रांस की विरोधी परिस्थितियों में हुआ था। १७८९ की फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति ने फ्रांसीसी जनता में राजनीतिक जागृति पैदा की। श्रमिक-वर्ग अपने अधिकारों के प्रति संवेद्य हो गया था जिसके फलस्वरूप १८१०-१८४० धीरे-धीरे १८६९ में अत्यन्त श्रमिक क्रान्तियाँ हुईं। इन क्रान्तियों के फलस्वरूप मजदूर

बर्न प्रकथनीय प्रत्याचारों का विचार हो गया। उनके संघ प्रवेश घोषित कर दिये गये और हड़ताल की आयोजना पर भी अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। ऐसी स्थिति में फ्रेञ्च श्रमिकों को यह अनुभूति हुई कि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित कार्यक्रम के अनुकूल भी कार्य करना असम्भव है। १९ वीं शताब्दी के अन्त में कुछ ऐसी वृद्धित राजनीतिक घटनाएँ घटित हुईं—जैसे बोनेजर घटना (Boulangier Episode), ड्रेफुस मामिलोग (Dreyfus case) और पनामा प्रसंग (Panama Scandal), आदि, जिनके कारण मजदूरों में राजनीति के प्रति अविश्वास पैदा हो गया। वे राज्य को इलाका की दृष्टि से देखने लगे। अन्तिक-नीताओं ने भी अपने व्यवहार से मजदूरों में बार असह्योप पैदा किया। उनकी विवादिन विकास संस्था और राजनीतिक दल से आस्था हूँ गई। उन्होंने व्यापार संघ (Trade Unionism) और सफ्टिवाड (State socialism) वालों को अस्वीकार कर उम एन सीके उपायों की अपलाया।

ऐसी स्थिति में, जब कि शासक-बर्ग अन्तिक-मान्दोलन को कुचलने में प्रयत्न चीस था और प्रकट रूप से कार्य करता मजदूरों के लिए असम्भव था, उन्हें इस एवं अन्वेषात्मिक उपायों का सहाय सेवा पड़ा। उन्होंने मानवतावादी संस्थाओं की स्थापना की, जिन्हें प्रवेश घोषित करना हुमर था। जिन संस्थाओं की ओर से अन्वेषाधी संवृष्टाव के विचारों का प्रचार एवं प्रचार हुआ वे संघ (Syndical) में होकर 'बोर्ड' (Bourses du Travail) थीं। सर्वप्रथम बोर्ड पेरिस में १८८७ में स्थापित हुआ था। इसके सफलतापूर्वक होने पर अन्य नगरों में भी ऐसे बोर्ड स्थापित किये गये। १८९३ में इन बोर्डों (Bourses du Travail) का एक राष्ट्रीय संघ (Federation du Bourses du Travail) भी स्थापित किया गया, जो कि मजदूरों का प्रमुख केन्द्र हो गया। प्रारम्भ में इनकी स्थापना श्रमिकों के लिए व्यवसाय की खोज करने और व्यवसाय प्रदान करने के लिये ही हुई थी। बोर्ड एक बर्नघाता की मति था, जहाँ एक अन्तिक मुसादिर इयमें इत सक्ता था और उसे वहाँ नीकरी-अम्बन्धी बातें मासूम हो सक्ती थीं। इन संघ के मंत्री एफ पेलोते (Ferdinand Pelloutier) ने बोर्ड के चार अर्थक्य बतलाये हैं—

(१) सम्पर्क एवं सहयोग—बोर्ड एक बर्नघाता के सहाय था। यहाँ अन्तिक मानी निरास करता था। उसे यहाँ रोडमार्ड, नीकरी धानि सम्बन्धी अनेक मूचनाएँ अलास्य हासो थीं। इस प्रकार बोर्ड आन्तिक एवं सहयोग का अनुभव केन्द्र था, जहाँ एक अन्तिक अन्तिक श्रमिकों के सम्पर्क में आता था।

( २ ) शिक्षा—बोर्ड में एक पुस्तकालय का भी प्रबन्ध था। यहाँ धार्मिक भाषी को राजनीतिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदत्त करने की सुविधा मिलती थी।

( ३ ) प्रचार केन्द्र—ये बोर्ड संघर्ष एवं वर्ग-संघर्ष के प्रचार के प्रमुख केन्द्र थे। यहाँ विचार विनिमय एवं अध्ययन हाट धर्मियों की संघर्ष तथा वर्ग-संघर्ष प्राक्-प्राधि विभिन्न विचारों के प्रबन्ध कठमा जाता था।

( ४ ) प्रतिरोधी भावना—यह एक प्रकार से राजनीतिक कठिनाियों का केन्द्र हो गया था, जहाँ मजदूरों को शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरणा दिये जाते थे। उनमें प्रतिरोधी भावनाएँ पैदा की जाती थीं।

इस प्रकार बोर्ड एक प्रकार से सामाजिक क्लब ( Social Club ) के रूप में थे, जहाँ रोबियों, बेकारों और धार्मिक भाषियों को साहाय्य ही प्राप्त नहीं होता था बल्कि पारस्परिक सहायता शिक्षा अभिनों को प्राथमिक संघर्ष के लिए संबन्धित तथा हड़तालों के समय नैतिक एवं व्यावहारिक सहायता भी प्रदान की जाती थी। अतएव यह बोर्ड ही संघर्षियों के भावी संघर्ष का आधार बना, क्योंकि उनकी दृष्टि में अस्तित्व के उदात्त राज्य-विहीन समाज में बोर्ड कैसी संस्था ही स्वामीय संस्थाओं की पूर्ति कर सकती।

१८९१ में मजदूरों की एक वर्गीय संस्था की जन्म दिया गया। उसका नाम सी० जी० टी० ( Confederation General du Travail ) रखा गया। १९०२ में Federation du Bourses du Travail सी० जी० टी० से संघटन ही गया। इस प्रकार सी० जी० टी० एक बोर्डों का जो कि स्वामीय थे, और दूसरे एक व्यावसायिक संघों का प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था हो गई। इस संघटन का उद्देश्य वैसी ही है। उसके अस्तित्व के प्रभाव के कारण ही इस संस्था ने संघर्ष की नीति को अपनाया। यह न केवल संघर्षी आन्दोलन की राष्ट्रीय संस्था ही थी बल्कि प्रचलित भाषी समाज की केन्द्रीय संस्था भी थी।

### संघर्षीय विचारक

संघर्ष के प्रचार एवं प्रसार में वैसीय और जार्ज सोरेल ( George Sorel ) ने प्रमुख भूमिका ली। वैसी संघर्ष की मार्क्स की धारणा पूर्ण ( Proudhon ) ने धार्मिक प्रभावित किया। पूर्ण के एसोसिएटिव कम्युनिज्म ( Associative Communism ) के सिद्धान्त से संघर्षीय विचारकों ने प्रेरणा ली। एसोसिएटिव धार्मिक आन्दोलन भी पूर्ण के विचारों से प्रभावित रूप में प्रभावित हुआ। पाठी

( Pataud ) और पीर ( Pouget ) का स्थानीय बर्षवाद प्रूषों के दर्शन से मिलता-जाता है ।

## फर्नान्व पैलौले ( Fernand Pelloutier )

( १८६७-१९०१ )

इसका जन्म एक सम्पन्न वृद्धिपति के परिवार में हुआ । प्रारम्भ में उसकी मातृका उच्च मण्डलबर्षा में थी, किन्तु बाद में वह बैरुनिन के विचारों से प्रभावित हुआ । वह वैज्ञानिक पद्धति का घोर विरोधी था । वह मजदूरों के राजनीति में भाग लेने के पक्ष में नहीं था क्योंकि इससे उनकी अतिशयोक्ति भावना नष्ट हो जाती है । १८९४ में वह राष्ट्रीय संघ का मंत्री बना और इस पद पर वह सात वर्ष तक रहा । बोर्डाँ को जो प्रजासत्ता में आराध्य सत्त्वना मिली इसका श्रेय उसी को है । उसमें समुत्पुर्ण संमठन-शक्ति थी । वह सर्वप्रथम व्यक्ति था जिसने यह विचार व्यक्त किया कि फ्रेञ्च श्रमिकों को अपनी अहोप-पूर्ति हेतु समस्त फ्रेञ्च राष्ट्र से अलग होकर प्रवास करना चाहिए । वह अपने सिद्धान्तों का कार्यान्वयन संघ के संमठन में करता था । संघ का कोई सम्पत्त नहीं था । मजराज के लिए कमी अक्सर ही नहीं पाया ।

## जार्ज सोरेल

वह संघवाद का शार्मनिक था । सुत्रोक्तिनी के अनुसार वह वैविष्टवार का जन्मदाता था । वह बुद्धिवाद का विरोधी था और समाज तथा प्रकृति में बुद्धि की अनेका अन्व-विरास की मात्रा अधिक समझता था । जिस समय वैसोले व्यक्ति आन्दोलन को प्रभावित कर रहा था, उस समय सोरेल ने श्रमिक-द्विर्ती के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये । उसने 'श्रमिक संघों का समाजवादी श्रमिक' नामक अनेक लेख में कहा कि, "समाजवाद का सम्पूर्ण श्रमिक श्रमिकों के संघों के स्वतन्त्र विचार में है ।" उसने प्रूषों और बैरुनिन के विचारों को अनायास और इस तरह का अहान किया कि मानव-समाज की प्रकृति प्रगति करता है ।

सोरेल का सिद्धान्त राजनीति और दर्शन का विभिन्न सम्मिश्रण है । अपने अन्वयवादी दर्शन का प्रयोग सामाजिक समस्याओं पर किया । उसके दर्शन में मार्क्स और बर्षोण ( Bergson ) के विचार सम्मिश्रित हैं । लेबोन का कथन है कि उसके सिद्धान्त का प्रारम्भ मार्क्स से होता है और अन्त बर्षोण पर । सोरेल

1 "Thus M. Sorel, having started out with Marx, ends up with Bergson"—( Levine )

की दृष्टि में, मार्क्सवाद सर्वथा ही अपेक्षा प्रधानतः इतिहास का दर्शन है।  
 ✓ वस्तुतः वर्ग-संघर्ष ही मार्क्सवाद है। सोरेल ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष को वर्गों के प्रेरणा-सिद्धान्त (Theory of intitation) से संयुक्त किया। वर्गों का प्रेरणा-सिद्धान्त का दार्शनिक भा। वह अपने विचारों के कारण १२ वीं सदी के अन्त और २० वीं सदी के प्रारम्भ में बड़ा लोकप्रिय हो गया था। उसका अर्थ था कि हमारे कार्यों के उद्देश्य हमारे लिए तर्क की अपेक्षा प्रेरणा द्वारा निर्धारित होते हैं। हमें क्या करना चाहिए? यह प्रेरणा निर्दिष्ट करती है, जब कि विवेक समुक्त कार्य के करने की दिशा को इंगित करता है। व्यक्ति में हड़ताल करने की भावना का उदय उसकी प्रेरणा से ही होता है और उसकी यह भावना जो उसे अपनी शक्तियों को अपनी अन्तरात्मा के इच्छानुसार व्यक्त करने की ओर प्रेरित करती है, प्रेरणा द्वारा ही बाधित होती है। सोरेल ने वर्गों के इस सिद्धान्त को संघ-वादी सार्वभौम हड़ताल (General Strike) पर लागू किया। उसने सार्वभौम हड़ताल को सामाजिक धर्मपन्था (Social myth) का एक प्रधान किया। व्यक्तियों के लिए सार्वभौम हड़ताल एक धर्म-पन्था है। जिस प्रकार प्राग्भिक ईसाइयों को ईसा के पुनर्जन्म की धर्मपन्था ने समकालीनों के विरोध के लिए प्रेरित किया था, उसी प्रकार व्यक्तियों के लिए यह धर्म-पन्था वही ही एक भावना है जो उन्हें प्रेरित करती है। अतः व्यक्तियों में सार्वभौम हड़ताल के प्रति प्रेरणा प्राकृत करनी चाहिए। किन्तु सोरेल के विचार में व्यक्तियों को यह नहीं बताना चाहिए, कि सार्वभौम हड़ताल क्यों हो रही है और इसके द्वारा जैसे समाज का निर्माण होगा? इस विषय में तर्क करना व्यर्थ है। सार्वभौम हड़ताल के उद्देश्य का मूल्यांकन और बाद विचार के समस्त साधनों का जो कि राजनीतिकों और समाज शास्त्रियों के बीच प्रचलित है, परित्याग कर देना चाहिए; क्योंकि वर्गों के अनुसार मालिक के कार्य प्रेरणा द्वारा ही निर्दिष्ट होते हैं। अतः सार्वभौम हड़ताल को एक धर्मपन्था के रूप में रचना चाहिए। इस प्रकार सोरेल ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष को वर्गों के प्रेरणा सिद्धान्त को पूर्य था। सोरेल का विरयम् तोड़-फोड़ या विध्वंसक कार्यों में नहीं था। वह ऐसे कार्यों की समर्थन  
 १ संघवादीयों ने उसके इस विचार को नहीं माना।

अन्त

कथन है जो यह बतलाता है कि ट्रेड यूनियन ही मूल्य  
 समाज की रक्षा की का  
 है। यह दुः

धर्म के साथ-साथ पूँजीवादी सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का भी विरोध करता है। यह सिद्धान्त राज्य, राष्ट्र-प्रेम, सख्त राजनीतिक दल, धर्मवाद, मध्यमवर्ग और रूस का विरोधी है। समावादी विचारकों की दृष्टि में केवल यही एक विशुद्ध धार्मिक सिद्धान्त है। यह दर्शन इस दृष्टि से स्पष्ट समाजवादी दर्शन है, क्योंकि यह भी सामान्यतः समाजवादियों की भाँति पूँजी को खोरी समझता है और बर्न-सुपर्य में धारणा रखता है। यह उत्पादन के साधनों की व्यक्तिगत सम्पत्ति का अनुमन कर, उस पर समाज का स्वाभिव्यक्त स्थापित करना चाहता है। किन्तु यह सामाजिक धर्म के साथ-साथ समाजवाद में भी शान्ति करना चाहता है। इसी कारण इसके अनुयायी इसे एक नवीन समाजवादी सिद्धान्त कहते हैं।

### संपवाद और समष्टिवाद में अन्तर

संपवाद और समष्टिवाद में प्रमुख भेद यह है कि संपवाद उत्पादकों के नियंत्रण एवं अधिकारों पर अधिक बल देता है। उसके विचार में धार्मिक मूल्य का निर्माण करते हैं, अथवा समाज का नियंत्रण भी उन्हीं के हाथ में रहना चाहिए। इस प्रकार संपवादियों के मत में, धार्मिक उत्पादक की हैसियत से धार्मिक या धोखापित क्षेत्र में ही अधिकार सम्पन्न न होकर राजनीतिक क्षेत्र में भी होना चाहिए। और राज्य को भी अस्तित्व-विहीन कर उसके समस्त कार्य उत्पादक-समुदायों को, जिनका निर्माण ध्यानधार्मिक आधार पर हुआ है, हस्तान्तरित कर देने चाहिए।

संपवाद समाज की उत्पादकों के संघर्ष के रूप में स्वीकार करता है, जब कि समष्टिवाद उपभोक्ता के ही रूप में मानता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार 'उत्पादकों के' नियंत्रण को अधिक महत्त्व देता है। पैसोते के शब्दों में "हमारी कृति का सत्य केवल समस्त शक्ति-नियंत्रण से ही मानवता को स्वतंत्र करना महा है किन्तु उन समस्त संस्थाओं से विमुक्त करना है जिनका उद्देश्य उत्पादकों की उत्पत्ति करना नहीं है।"

### संपवाद और मार्क्सवाद

समानता—(१) दोनों की बर्न-सुपर्य में निष्ठा है और दोनों ही पूँजीवादी समाज के लिए प्रत्येक प्रकार की हिमा को उचित समझते हैं।



( २ ) मार्क्सवाद की भाँति संघवादी भी पूँजी को बोरो समझते हैं और वैयक्तिक सम्पत्ति, प्रतिद्वन्द्विता तथा शोषण की प्रक्रिया को समाप्त कर पूँजीवाद का अन्त करना चाहते हैं। उनका सख्त राष्ट्र की सम्पत्ति पर समाज का स्वामित्व स्थापित करना है।

( १ ) संघवाद और मार्क्स द्वारा प्रतिपादित 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त' ( Theory of Surplus Value ) में विरवास करता है। वस्तुतः मार्क्स का यह सिद्धान्त अमिर्कों को शोषण के विरुद्ध संघठित होने को ज्वलत करता है।

असमानता—संघवाद और मार्क्सवाद में जो विरिष्ट विरोध है, वह यह है कि मार्क्स वैश्व, काल और परिस्थिति के अनुसार वैज्ञानिक उपान्यों में ही विरवास करता था तथा साम्यवादी समाज की प्रसिद्धा वर्ग-हारा-वर्ग के आन्दोलन द्वारा करना चाहता था, जब कि संघवादी 'हड़ताल' द्वारा अपनी लक्ष्य-पूर्ति चाहते हैं।

राज्य-विरोधी—संघवाद अयत्नकृताचार की भाँति ही राज्य-उत्ता के अन्त का पक्षपाती है। संघवाद राज्य का विरोध निम्नलिखित तर्कों के आधार पर करता है—

सैद्धान्तिक दृष्टि से राज्य की कोई उपयोगिता नहीं है। वह एक व्यर्थ संस्था है। उसका यह कहना कि वह एकता का प्रतीक है और वर्ग-समन्वय, समाज तथा सामान्य हक्य का प्रतिनिधित्व करता है, व्यर्थहीन है, क्योंकि समाज बहुलवादी ( Pluralistic ) है। राज्य में वर्ग-समन्वय, एकता एवं सामान्य-हक्य का कार्यान्वयन निम्न प्रकार सम्भव हो सकता है जब कि समाज शोषक शोषित, शासक शासित और अजन व्यक्तियों से परिपूर्ण है। इस प्रकार संघवादी दृष्टि में राज्य वैसी अद्वैतवादी संस्था का कोई महत्त्व नहीं है, केवल बहुलवादी प्रणाली ही सञ्जयीभूत और उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

राज्य पूँजीपतियों और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों की संस्था है। राज्य पूँजीपतियों के शोषण का एक विपुल साधन है और अधिक में भी वह अपने स्वयं के राज्य मध्यमवर्गीय संस्था बनने लक्ष्मी। इस मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व बुद्धिजीवी लोग करते हैं जिनमें अमिर्क समस्वार्थों की समझने की न तो समता है और न जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अमिर्कों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने की और है। राज्य नीकरशाही का प्रतीक है। राज्य का कार्य नीकरशाही के द्वारा होता है। नीकरशाही का दृष्टिकोण सजीर्ण होता है और वह अनिश्चितता, केन्द्रीयकरण तथा दीर्घनृपता में विरवास करती है।

बेते प्राथमिक राज्य अनर्जनीय हैं, किन्तु साम्यविक्रम इसके विनष्ट है, क्योंकि विधि-निर्माण कठिन व्यक्तियों द्वारा ही होता है, जो कि येन वेन प्रकारेण निर्वाचित हो जाते हैं। विधि निर्माण जनता द्वारा ही होना चाहिए, किन्तु यह तमो सम्भव है जब कि समस्त दृष्टि से धार्मिक जीवन का संश्लेषण धर्मिक-धर्म के हाथों में हो। वे धर्म संघों द्वारा धार्मिक व्यवस्था के साथ-साथ विधि-निर्माण भी करें। ऐसी व्यवस्था में राज्य जैसी निरङ्कुश एवं बमनकारी सत्ता की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

२. राष्ट्र भक्ति विरोधी—संपत्तियों की मासुं के इस कथन में "मजदूरों की कोई मातृभूमि नहीं होती", पूर्ण निष्ठा है। अतः वे 'हमारा देश', 'हमारा राष्ट्र' के धार्मिक गार्तों की भर्त्सना करते हैं, क्योंकि यह पुँजीपतियों का माया जाल है। उनका यह धारण प्रबन्ध शोषण की प्रक्रिया को विरस्तायी बनाये रखने के लिए है। भूखे भये और उत्तोड़ित मजदूरों के लिए स्वयं की पुनीत भावना एक मृगतुण्डा है। सत्तार के सनी धर्मिक एक हैं, उनकी सम न समस्यार्थ हैं। उनमें परस्पर विरोध कैसा ? नहीं उनकी मातृभूमि है जहाँ भ्रष्ट मोक्ष निहित जाता है। अंत में १९०२ में अन्ति एक पन्ना ने उनकी इस भावना को धीरे धीरे बतवती बना दिया, जब कि धर्मिक हड़ताल को अंतोधी धीरे धर्मन धर्मों द्वारा परन्तित किया गया। अतः राष्ट्र-प्रेम भी एकवर्षीय स्वार्थ-युक्ति का प्रबन्ध अन्त है, जिसमें कि धर्मिकों का विचार सम्मिलित है। अतः संपत्तियों को राष्ट्र के देश प्रेम से पूछा हो गई।

३. सैनिकवाद विरोधी—अधिकांश अर्थनिरीकरण की शक्ति के समर्थक हैं। उनको विरस्तान्ति में अडूट निष्ठा है; क्योंकि शक्ति के सामुद्राज्य में ही धर्मिकों धर्मिकों को मुक्तकर मिलता है। अतः वे सैनिकवाद के विरोधी हैं। इनके अतिरिक्त सेनाओं द्वारा उनके अन्ति नामा प्रकार के मन्दाचारों ने जब कभी भी धर्मिक हड़ताल हुई है, उनके इस विचार को धीरे धर्मिक सबल बना दिया है। संपत्तियों ने सैनिकों को अन्ति बार सम्बोधन करते हुए, जब उन्होंने धर्मिक हड़तालों पर गानियाँ बसाईं ता, कहा कि वे धर्मिकों की सन्तान हैं। केवल फेरो के कारण उनका धर्मिक-धर्मिक धर्मिक की है। अतः तुम्हें अपने मासुं पर धीरे नहीं बनानी चाहिए। पुँजीपतियों के स्वार्थ के लिए तुम्हें अपने धर्म का विरोध नहीं करना चाहिए। फिर कुछ पुँजीपतियों के संस्थापक हैं। वह उन्हें ही सबल बनाता है। अतः संपत्तियों न तो कुछ में विरस्तान्ति करते हैं धीरे न अन्ति में।

४ राजनीतिक दल विरोधी—संपत्तार राजनीतिक दल का विरोधी है।

उसके मत में राजनीतिक बलों का निर्माण बर्ष-विरोध के हितों की दृष्टि से नहीं होता। वह तो सभी बलों का जमना है। किसी भी राजनीतिक दल पर दृष्टि-पात्र करिये, उसमें विभिन्न स्वार्थी एवं बर्षों वाले व्यक्ति मिल जायेंगे। भारत के समाजवादी दल को लीजिए, उन्में वृद्धीपति, रिटायर, इन्फ, बकील खेतियार, मजदूर आदि विभिन्न फेरोवाने व्यक्ति हैं। यही बरा मध्य राजनीतिक बलों की भी है। विभिन्न बर्षों के सदस्यों से मिलित ये राजनीतिक दल व्यक्तियों का हित-साधन नहीं कर पाते। व्यक्तियों का हित केवल धार्मिक-संघर्षों द्वारा ही हो सकता है। अतः उन्हें किसी राजनीतिक दल के सदस्य बनने की आवश्यकता नहीं है। जब व्यक्तिक-बर्ष के व्यक्ति किसी राजनीतिक दल के सदस्य हो जाते हैं तो उनकी बर्षीय-चेतना (Class-Consciousness) का ह्रास होने लगता है; जैसे कि धार्मिक-नेता मिलरान (Millerand), ब्रियान (Briand) और बिबियानी (Viviani) की बर्षीय चेतना लीख हो गई थी। ये ज़रूरी ही धार्मिक-नेता राजनीति में मात्र लेकर कमिन्धारी की धरिता सुधारवादी हो गये थे। इस प्रकार संघर्षवादी राजनीति को धम-कण्ट पूर्व समझे हैं और उनके विचार में "सभी राजनीतिज्ञ सोलेशान होते हैं।"

५. संसद-विरोधी—संघर्षवादियों की धारणा है कि संसद एक वृद्धीवादी संस्था है। वह धार्मिकस्य और समझीते की नीति का अनुसरण करती है। संसदीय सदस्यता व्यक्तियों के कार्य क्षम में एक अवर्धित धरौध है। यह पदार्थों का मध्य प्राधार है। बोलेम्बर धम्मा<sup>१</sup> और पनामा पदार्थ<sup>२</sup> जैसे दूषित कार्य इसकी ही धेन हैं। संसदीय प्रणाली स्वार्थी एवं पदलोत्पुन राजनीतियों की धननी है। धार्मिक-नेता वृद्धीपतियों के मायाजाब, धनकी स्वार्थपरता, विचारधारा और प्रलोभन में धँस कर भ्रष्ट हो जाते हैं। धनमें बर्ष-चेतना विधुत हो जाती है।

१ बोलेम्बर धम्मा (Boulangier Episode)—बोलेम्बर एक धनरत और संसदीय सदस्य था। वह धनसेवी था, किन्तु धनेक बार धानागाह बनने का प्रयास किया, किन्तु सफल रहा।

२ पनामा पदार्थ (Panama Scandal)—एक कम्पनी की स्थापना हुई, जिसका लक्ष्य धनमाय नहर बनाना था। इसके हितसे धरौधे धने किन्तु धार में कम्पनी को दिवालिभा धोपित कर दिया गया। धनरत किन्हुने धित्ते धरौधे धे धनकी वृद्धी हृदय कर सी गई। इस पदार्थ की धोजन में कुध मंत्री धना धनेक संसद-सदस्य थे।

अनेक धर्मिक-मता जैसे प्रस में नितरा, त्रिपा और त्रिबिपार्ता, संसद-सदस्य बनने से पूर्व उनमें कान्तिकारी भावना थी, बर्मे-भेदना थी किन्तु संसदीय राजनीति में उन्हें सुधारवादी, प्रतिक्रियावादी और समझौतावादी बना दिया। इमपैरु में हमने मैकडाल्फ ने नौ धर्मिक-दम के साथ इसी प्रकार विश्वासपात किया। इस प्रकार मजदूरों का राजनीति में भाग लेने से साथ नहीं होता, परितु वे अपने कान्तिकारी नेताओं का धीर का बैठे हैं। इसके प्रतिरुद्ध जैसे प्रकट रूप में संसद बहुसंख्यक-बर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु बलुत्पिष्टि इसके विरुद्ध है, क्योंकि मन्वसंख्यक पूर्वीराति-बर्ग का ही इस पर प्रभावित होना है। अतः संसदीय जनतंत्र पूर्वीवाद का प्रतीक है। संसद धर्मिक-हितकारी नियमों का भी निषारण नहीं करती। बाध्य होकर बिल छोटी-मोटी सुविधाओं प्रमवा सुधार-उम्बन्धी नियमों को पारित करती है अतः धर्मिकों में असन्तोष की तीव्रता या कान्तिकारी भावना को उदडा कम हो जाती है। अतः संसदियों के लिए संसद सर्वथा व्याप्य है।

६ मध्यम बर्ग-विरोधी—संपवाद न केवल मध्यम-बर्ग का ही विरोध करता है, परितु मध्यम बर्गीय समाजवाद का भी विरोधी है। संपवाद ही एक ऐसा समाजवादी बर्ग है जो पूर्णरूपेण धर्मिकों के मस्तिष्क की उरज है, जब कि मन्व समाजवादी सिद्धान्त मध्यमबर्गीय लोगों की उरज है।

संपवाद मध्यमबर्ग को नाशका समझता है। उसके मठ में मध्यम श्रेणी के व्यक्ति पूर्वीवाद-विरोधी असन्तोषों का कमी सन्ने हृदय से स्वागत नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी मनोवृत्ति भी पूर्वीवादी है और पूर्वीवादी से उनका धर्मिक सम्बन्ध होता है। वे स्वयं पूर्वीराति बर्गों के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनमें सिद्धान्तिरु बहूला नहीं होती। उनका राजनीति से शीकिया सबाब है। पर लोचुरता, स्वार्थरता और लोचुरियता को मूस उन्हें राजनीति में ले जाती है। वे धर्मिक-सर्वों के सदस्य होकर भी अपनी कान्तिकारी भावना का परिचय नहीं दे पाते। अतः धर्मिकों का मता वेनस विरुद्ध धर्मिकों से ही हो सकता है, मध्यम बर्ग शू म्हा।

---

1 The Syndicalist claims to be the "only school of socialist doctrine which is the product of workers themselves, all other forms of socialism have emanated from the brain of clever middle class-theorists"

७ स्वयं विरोधी—संघर्ष कहीं व्यवस्था न। संघर्ष नहीं करता। यह यह मानता है कि कहीं राज्य पुँजीवादी राज्यों की संघर्षा भिन्न है, किन्तु यह भी शक्ति का शोचक है, क्योंकि वहाँ राज्य की प्रतिष्ठा है। चाहे यह राज्य मजदूरों का ही हो, किन्तु है तो राज्य ही। वहाँ राजनीतिक प्रजातंत्र का समान है। साम्यवादी व्यवस्था में जनता राजनीतिक स्वतंत्रता का उपयोग नहीं कर पाती। वहाँ मानवता है और एक राजनीतिक दल है, जो संघर्षा व्यवस्था के अनुकूल नहीं है। वहाँ को तो स्वयं में सर्वद्वारा-रव्य का प्रतिनायकत्व है, किन्तु यहाँ में एक राजनीतिक दल की ही वहाँ के जीवन पर प्रभुता है और वही समस्त गतिविधियों का केन्द्र है।

### संघर्षादी कार्यक्रम

संघर्षादी वैधानिक तथा प्रजातंत्रिक कार्यक्रम में विश्वास नहीं करते। वे विरुद्ध धर्मिक-संघर्ष के पक्षधारी हैं। सी एम. मोर का कथन है कि संघर्षा इस बात का दावा करता है कि वही एक ऐसा समाजवादी सिद्धान्त है जो पूर्णतः धर्मिकों के मस्तिष्क की उपज है।

संघर्षादी निरन्तर युद्ध-रत रहना चाहते थे, जिससे कि शोषाधिकारी पुँजीवादी प्रणाली का उन्मूलन हो सके। अतः उनके मत में पुँजीवाद का विरोध सर्वत्र और सर्वत्र हुआ चाहिए। जॉर्ज सोरेल का भी वही विश्वास था कि पुँजीपति को सर्वत्र मयाजुत रचना चाहिए। सभी धर्मिकों को उनके द्वारा सुविचार्य उपकरण हो सकेंगी। अतः संघर्षादियों ने राजनीतिक कार्यक्रम का परिष्कार कर धार्मिक तथा प्रत्यक्ष आन्दोलन (Direct Action) को अपनाया। उन्होंने सन १९१० में सम्पत्ति-विनाश और बहिष्कार नीति (Boycott) को स्वीकार किया। यद्यपि कुछ सिद्धान्तवादिनी ने इसका विरोध किया, किन्तु सोरेल और अन्य ध्यानातिक नेताओं ने इसका समर्थन किया। सोरेल का विश्वास था कि शारीरिक हिंसा में उन लोगों का समावेश है जो मनुष्य को डगल करते हैं, जिनमें बीरता, साहस और धारम-हम्यान की भावना पैदा करते हैं।

प्रत्यक्ष आन्दोलन के दो प्रमुख साधन हैं—(१) सबस (Sabotage) और हड़ताल (Strike)। सबस (Sabotage) शब्द फ्रेंच शब्द Sabot (Wooden Shoe) से निरता है इसका अर्थ है लोड़ लोड़ या नष्ट करना। १८३० के बाद

1 'The term "Sabotage" indicates a policy of injuring an employer's property or business through aluggish, bung-

के बर्णों में इंसैएड के एक प्रौद्योगिक सम द्वारा कार्यान्वित के-केनी (Car-Carry Go Slow) की नीति से लिया गया है। प्रथम पक्ष से अभिप्राय है ऐसे कार्य या उपाय, जिनके द्वारा श्रमिक-वर्ग जान-बूझ कर उग्रगर्भ को सति पहुँचाने बितसे कि पूर्वीपक्षों का कम साम हो। किन्तु उपरोक्त ऐसी पक्षगतक नीति के समर्थक नहीं थे बितसे जनसाधारण की कोई हानि हो। उनका एकमात्र सक्ष्य पूर्वीपक्ष-वर्ग को हानि पहुँचाना था। पक्ष या तोड़-फोड़ के अनेक र्वम हैं, जैसे—

( १ ) श्रमिकों को पूर्वीपक्षों की वस्तुओं को तोड़-फोड़ देना या बिगाड़ देना बाहिर। एक मशीन को तोड़-फोड़ देने या बिगाड़ देने के लिए बड़ी सी धूल या कँचकी ही पर्याप्त है। यह कार्य बड़ी सरलता से हो सकता है। एक बर्मी एक मूट को बड़ी माझामी से चलाकर चकटा है। इसी प्रकार एक नौकर बन्नाज की दुकान पर है, चुपके से घान के बीज में तैयार छिड़क सकता है।

( २ ) मास तैयार करते समय कुछ छपकी कर देना, जैसे कपड़े के बान को बुनते समय छपका कुछ भाग बिना बुने छोड़ देना।

( ३ ) बाहर मेजी जाने वाली वस्तुओं के पार्सस पर अशुद्ध पते लिख देना बितसे वहाँ जाना है बर्ही नहीं जा सके। उदाहरणार्थ, किसी पार्सस को देखना जाता है किन्तु देखती के स्थान पर अहमदाबाद लिख देना।

( ४ ) किसी वस्तु को इतना अशुद्ध तैयार करना कि उसकी कमी पड़ बाम धीर मुख्य भी बड़ जाय।

( ५ ) 'जैसा नतन बिसा काम। यदि नतन कम बिसता है तो काम भी छपक करना। इसे 'के-केनी' नीति के नाम से पुकारते हैं।

( ७ ) पूर्वीपक्ष को पुकान पर जाकर बाहर को चुपके से बीज की अक्षतों सामत को बताना धीर उसके शेषों को भी अकट कर देना।

संपकारी धरनी इस पक्षगतक नीति को धरनामार युद्ध (Gorilla warfare) की संज्ञा देते हैं। उनका निरवाच है कि एक सैनिक युद्ध में जो महत्ता धरनामार युद्ध की है बर्ही महत्त्व श्रमिकों के कार्यक्रम में पक्षगतक नीति का भी है।

हड़ताल—संपकारी हड़ताल को बड़ा महत्त्व देते हैं। हड़ताल से अभिप्राय है श्रमिकों का सगठित कर से बाम बन्द कर देना। संपकारीयों का बिचार या

ling, wasteful, or positively damaging acts-done either while the worker remains on th job or in connection with strikes' (Coker)

कि प्रत्येक हड़ताल विभ्रण तथा घुसुटासन की एक पद्धति है और वर्गीय एकता की भावना को जागृत करती है। इससे अमिह-आन्दोलन सृष्टक होता है। वे वर्ग संघर्ष के लिए कठिबद्ध हो जाते हैं। यदि हड़ताल में पराजय मिबती है उस भी यह सामग्रह है; क्योंकि धान की पराजय भागी विजय की सूचक है और उन शोषों की, जिनके कारण बिचसता मिली है, भागी शोषों में पुनरावृत्ति नहीं हो पाती। संघबादी भावस के इस विचार से सहमत हैं कि आधिक शक्ति धन्य शक्तियों की कुबि है। वे राजनीतिक कार्यक्रम को व्यक्तित्वादी, किन्तु हड़ताल को समष्टिबादी समझते हैं। मजदूर एक ही विचार के नहीं होते। राजनीतिक विषयों में उनकी विभिन्न विचारधाराएँ हो सकती हैं। किन्तु वहीं तक आधिक शक्तियों का प्रस्न है, वे सभी के समान हैं। अतः हड़ताल अमिहों की एकल भावना को अमि व्यक्त करती है जब कि राजनीति में इसका प्रभाव है। वे एक साथ हड़ताल कर सकते हैं किन्तु एक साथ मतदान नहीं। 'एक राजनीतिक दल बहुत ही कमजोर प्रस्न हो सकता है। दल की बैठकें भी स्थिर होती हैं। व्यक्ति विभक्त भी हो जाते हैं। मिसल नी कम हो पाता है। इसके द्वारा सामान्य इच्छा की अमि व्यक्ति नहीं हो सकती। अतः हड़ताल एक प्रमुख साधन है जो अमिहों को एकसूत्र में बाँधता है। यह वर्ग-युद्ध का एक मोर्चा भी है, जिसमें सफलता मिलने पर अन्तिम सफलता अधिक होती जाती है। इन छोटी-मोटी हड़तालों का प्रभाव धीरे-धीरे एक दिन सार्वभौम हड़ताल (General Strike) के रूप में परिणत हो जायेगा।

हड़ताल बड़ा ही प्रभावकारी एवं उपयोधी साधन है। इसके द्वारा विभिन्न देशों में आराधीत सफलताएँ मिली हैं, जैसे १८६३ में बेल्जियम में हड़ताल द्वारा मयभीत होकर बर्दा की सरकार ने प्रजासत्तािक-मताधिकार-सम्बाधी विधि बनाई, १९०२ में स्वीडेन में मताधिकार का विस्तार हुआ, १९०५ में रूस में आर ने विधानिक संस्थाधी की स्थापना के लिए आन्दोलन दिया, १९२० में बालकॉप (Voo hupp) के अविनायकत्व को पक्षपक्ष कर जनार्तन को सफलभूत बनाया, १९२० में इंग्लैंड के अमिह-वर्ग ने रूस में शक्ति हस्ताने को रोका का।

सार्वभौम हड़ताल—सार्वभौम हड़ताल का विचार संघवासियों का कोई अपना मौलिक विचार नहीं था। १९वीं शदी के अन्त में 'स्वतंत्र समाजवादी' शिष्यों ने इसका समर्थन किया और अन्ततः १८९० में पीब और पिरोल के अरक्षक अवास के अलखक अमिहों के राष्ट्रीय संघ ने इसे अगीकार किया। सार्वभौम हड़ताल से अविभाय 'सहानुभूतिपूर्ण हड़ताल' या 'राजनीतिक हड़ताल'

से नहीं है। इन दोनों प्रकार की हड़ताओं का सद्य केवल संशोधनियों का ध्यान धारकित करना या राजनीतिक परिवर्तन की माँग करना या कुछ सुविधाओं की उपस्थिति के लिए धमकी देना मात्र है। सार्वभौम हड़ताएँ तो सामान्य आर्थिक एवं सामाजिक क्रांति के लिए प्रयत्न आन्दोलन का एक साधन हैं। यह एक ऐसा अद्वितीय शस्त्र है जिसके द्वारा पूर्वोपनिषि और शासक दोनों शक्तियों के सम्मुख नतमस्तक होत हैं। संघकारियों का विश्वास था कि एक दिन ऐसा होगा जब कि जागरूक शक्ति-बर्ग सार्वभौम हड़ताएँ करेंगे। यह सार्वभौम हड़ताएँ सफल होगी और पूर्वोपनिषि का अन्त होगा तथा शोषण-रहित समाज की स्थापना होगी।

सारेस न सार्वभौम हड़ताएँ के अग्र-पट्टा-सम्बन्धी मूल्य पर बस दिया था। उसने कहा था कि सार्वभौम हड़ताएँ आवश्यक रूप में मासुंबादी है। मार्क्स का कथन था कि सभी विगत क्रांतियाँ अलग-अलग-अलग के द्वारा हुई थीं और मार्क्स-क्रान्ति भी इनकी के द्वारा होगी। संघकारियों का मार्क्स के इस कथन में विश्वास था और वे सार्वभौम हड़ताएँ को क्रांति समझते थे।

सार्वभौम हड़ताएँ के सम्बन्ध में कुछ संशोधन भी हुए थे। पुराने संघकारियों की आशा थी कि शक्तियों को केवल काम बंद कर देने से ही सार्वभौम हड़ताएँ सफल हो जायेगी और हिसारमक कार्यों को नहीं धरना पड़ेगा। नवीन संघकारियों ने इसके असहमति प्रकट की। वे इतने कार्य का ही पर्याप्त नहीं समझते थे। उनका हड़ मत था कि सार्वभौम हड़ताएँ करने से पूर्व मजदूरों को कुछ आवश्यक कार्य करने होंगे, जैसे—(१) शक्तियों को बाजार सूट लेने चाहिए, जिससे कि वे मुझे नहीं मरे और हड़ताएँ सुचारु रूप से चल सकें। ( ) हड़ताएँ करने से पूर्व मशीनों को मट्ट घट्ट कर देना चाहिए, जिससे कि नये मजदूर उनके स्थान पर न रहें जा सकें। यदि मजदूरों के अत्युक्त शक्तियों में सरकार बाधक बतती है तो उन्हें शक्ति का प्रदर्शन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सार्वभौम हड़ताएँ के सम्बन्ध में एक और भी संशोधन हुआ कि सभी उद्योगों के मजदूरों को हड़ताएँ में भाग नहीं लेना चाहिए। वे बस मुख्य उद्योग (key Industries) जैसे कोयले की खानें, बिजली के कारखाने और रेल आदि के शक्ति ही इसमें सम्मिलित होने चाहिए, क्योंकि छोटे उद्योगों का जीवन मुख्य उद्योगों पर निर्भर करता है। मुख्य उद्योगों का कार्य बन्द होने पर छोटे उद्योग चलने मान ही बन्द हो जायेंगे। इस प्रकार पाके ही शक्तियों द्वारा पूर्वोपनिषि अन्त का अन्त हो सकता है।



## भावी समाज

अधिकार संघर्षों का अर्थ भावी समाज का विफल करना व्यर्थ एवं असमर्थिक समझते थे। सोरेल का कथन था, यदि भावी समाज की व्यवस्था का विफल किया गया तो उच्च कल्पना एवं अन्तर्गत की समाप्ति ही बानगी, जो संघर्ष-रुद्धि का अर्थ होता है। इस प्रकार संघर्षियों के पास क्रान्तिकारी कार्यक्रम या भावी समाज की रूप रेखा नहीं। भावी समाज की रूप-रेखा अराजकतावादियों के पास थी, जब कि उनके पास कोई क्रान्तिकारी कार्यक्रम नहीं था। संघर्ष और अराजकतावाद के उद्देश्य में कोई विग्रह नहीं थी। दोनों ही पूर्णतया और राज्य का विनाश चाहते थे। उससे दोनों विचार-वादाओं के समर्थकों ने एक साथ मिल कर अमिक मान्यता में कार्य किया। भावी समाज का विफल केवल उन्हीं संघर्षियों ने किया था जो पहले अराजकतावादी थे, किन्तु बाद में सब बारी हो गये थे। यद्यपि पैसोले ने भी भावी संघर्ष की रूप-रेखा पर अपने विचार व्यक्त किये थे, किन्तु पीत तथा पीन द्वारा लिखित पुस्तक 'हम अन्ति किस प्रकार करेंगे' (How we shall bring about the Rev. lution), इस सम्बन्ध में काफी प्रकार असती है।

संघर्षियों ने भावी समाज की रूप-रेखा बोर्ड तथा सी बी टी के आधार पर बनाई। बोर्ड एक स्थानीय संस्था थी और सी बी टी एक राष्ट्रीय संस्था। बोर्ड जैसे स्थानीय संघ ही सभी स्थानीय विषयों का संचालन करेंगे। उनके अन्तर्गत कारखानों की इमारतें मशीनें आदि होंगी। वे उत्पादन का संचालन करेंगे और क्रिये मामलों के लिए नियमों का कार्यान्वयन भी। राष्ट्रीय कार्य ही सी टी बी टी राष्ट्रीय संस्था के हाथों में रहे — जैसे डाक, तार और रेल आदि स्थानीय संघों को पूर्ण स्वतंत्रता होगी। राष्ट्रीय संस्था द्वारा समस्त उद्योगों में एककता करने का प्रयास किया जावेगा, जैसे बच्चों शैक्षिक और बुद्धि की देखभाल, कार्य के लिए अल्पतम और अधिकतम धन का निर्धारण तथा काम के घण्टे और मजदूरी की निर्धारित रकम। राष्ट्रीय संघ से उच्चतर या निर्भरकारी धन कोई संस्था नहीं होगी। इस प्रकार सामाजिक संघर्ष अराजकतावादी भी होगा और बहुलतावादी भी। ऐसे समाज में अन्तर्घ अत्यन्त रूप में होगा। प्रथम विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व विभिन्न व्यावसायिक संघों द्वारा होगा। संघर्षी समाज में राज्य और सरकार के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सार्वभौम राज्य का स्थान स्वतंत्र संघ ले लेंगे, जिसकी व्यवस्था उनमें काम करनेवाले अमनीवी उत्पादकों

हाथ हामी। इसी कारण संघवादी सिद्धान्त उत्पादकों की सत्ता (Producers Control) का दर्शन कहा गया है।

ऐसे समाज में धनुराधन-सम्बन्धी दण्ड-व्यवस्था भी होगी। मुनाफाकार समाज से बहिष्कृत कर दिये जायेंगे और पासबी तथा वे व्यक्ति जो उस नवीन सामाजिक व्यवस्था का विरोध करने निर्वासित कर दिये जायेंगे। स्थानीय संघ अपने सदस्य के 'मानव-विरोधी कार्यों' के लिए नैतिक दण्ड देने को बहिष्कार के रूप में होगा। गुन्मीर धनुराधनों के लिए निर्वासन का दण्ड भी निर्धारित होगा। धनीत का भी अधिकार होगा। बन्धीपुह और व्यापारियों का अनुसन्धन कर दिया जायेगा।

संघवाहियों के अनुसार किसी राष्ट्रीय सेना की आवश्यकता नहीं होगी। न सैनिक पाठशाळाएँ होंगी, न सैनिक धिरकें और न विनाशकारी शस्त्रों की व्यवस्था ही। प्रत्येक मजदूर सभ में स्वयंसेवक-सेना होगी, जिसका काम अपने क्षेत्र में आवश्यक शान्ति या व्यवस्था बनाने रखना होगा।

### संघवाद की विशेषताएँ

- ( १ ) संघवाद पूर्णवादी राज्य का विरोधी है। यह राज्य को धनुराधन संस्था समझता है, जो शोषण तथा धन्याय का प्रतीक है।
- ( २ ) यह एक ऐसा दर्शन है जो पूर्णतः धर्मिकों के मन्तिकर्ष की उत्पत्ति है।
- ( ३ ) यह धार्मिक क्षेत्र में उपाधियों के नियंत्रण का पक्षनाती है।
- ( ४ ) संघवाद के पास समष्टिवाद की भाँति कोई धादरों वाली समाज की कल्पना नहीं है।
- ( ५ ) संघवादी राजनीतिक कार्यक्रम में विरवाह नहीं करते। वे धनुराधन धनुराधन बहिष्कार, सेबिस छोड़-छोड़ और हड़ताल में विरवास करते हैं।
- ( ६ ) यह राज्य के स्थान पर स्थानीय एवं राष्ट्रीय संघों की प्रतिष्ठित कल्पना कायता है।
- ( ७ ) यह राष्ट्र प्रेम, सैनिकवाद ससद राजनीतिक दल, मध्यमधर्म और स्व विरोधी दर्शन है।

### संघवाद का आलोचना

- ( १ ) यह दर्शन उत्तारकों के हितों का रक्षक है, पर धि समीक्षकों के हितों की बनेगा करता है। सभी संघों के नीति-निर्धारण में उत्तारकों का ही

हाथ खोना और समझौता इस अधिकार से अधिक होने। ऐसी स्थिति में यह सन्देह होता है कि कहीं उत्पादक स्वेच्छापूर्वक जगता से बस्तुओं के बाम बस्तु न करने समें। उनकी इस स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए कोई भी उपाय उपाय नहीं है। इसके प्रतिरुद्ध उत्पादक और समझौता दोनों के हितों में विरोध है, क्योंकि प्रथम अपने कम कम अधिकतम मूल्य चलेगा, जब कि द्वितीय कम से-कम बाम पर बस्तु करीबने का प्रयत्न करेगा। संघकारियों के पास कोई ऐसी समन्वयकारी संस्था (Co-ordinating body) नहीं है जो इस द्वि-विरोध को रोक सके।

( १ ) यह भी सम्भावना हो सकती है कि जिन व्यवसायों में अधिक साम हो वहाँ कुनवाररस्ती पतपने चये। ऐसे संघों के सदस्य केवल अपने ही निकट वर्तों व्यक्तियों की स्वान हैं और अन्य व्यक्तियों को उसमें सम्मिलित नहीं होने दें और अपना एकाधिकार स्थापित कर लें।

( २ ) संघकार के अनुसार प्राथिक उत्पादन पर केवल उत्पादकों का ही एकाधिकार होना, जो कि दोषपूर्ण है। अमरीकी-वर्ग नये प्राधिकारों या सुधारों की सीखने का प्रयास नहीं करेगा। अधिक काम करने की पुरानी पद्धति से ही निपटा रहना पसन्द करेगा, क्योंकि एक ठी से पुरानी पद्धति में निष्ठात हैं और दूसरे उन्हें बेरोजगारी का मम होया। किसी भी नवीन प्राधिकार का यह फल होता है कि कम-से-कम मजदूरों की आवश्यकता पड़े। अतः अधिक-वर्ग नवीन प्राधिकारों का स्वागत नहीं करता। इस प्रकार उद्योग-संघों में नवीन प्राधिकारों का प्रयोग नहीं हो सकेगा।

( ४ ) संघकार राज्य का विरोधी है। ऐसी दशा में जब राज्य नहीं होता तो विभिन्न संघों के पारस्परिक मतभेद तथा विवादास्पद प्रश्नों का निर्णय कौन करेगा? जब कोई सन्तुलनकारी संस्था नहीं होती तो प्राकृतिक व्यवस्था किसने की धारणा रहेगा।

( ५ ) संघकारी भावी समाज की कल्पना क्या होगी इस विषय में एकमात्र मीन उनके शीर्षस्थ का योशु है।<sup>१</sup> अतः यह दर्शन असत्य है।

( ६ ) संघकारी अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सर्वसाधारण साधनों की व्यव-

1 "It (Syndicalism) offered, therefore, a policy primarily of revolution, not of administration. Most syndicalists held that it was not necessary or reasonably possible to plan constructively for the future organisation of society" (Coker)

नाते हैं जो कि तर्कसंगत नहीं है। यदि व्यक्तियों को हड़ताल से पुनः बाजारों को खुल कर घोर मशीनों को खोल कर संकलित मिस भी गयी तो उनके हाथ क्या सवेना ? किस प्रकार वे नष्ट-भ्रष्ट उद्योगों को बामू करे ? इसके प्रतिरिक्त उनके टोड़-फोड़ के कार्यों से पूंजीपतियों को ही हानि नहीं होती, परितु राष्ट्रीय सम्पत्ति की सति होती है जो कि एक अशैतिक कृत्य है। पुरुषार्थ हिंसात्मक उद्योगों की प्रवेसा व्यक्तियों को वैधानिक साधनों को प्रयत्नाने की घोर प्रेरित करना चाहिए। वैधानिक साधनों द्वारा भी जन्हीं पत्तों की प्राप्ति की जा सकती है जो कि हिंसात्मक साधनों द्वारा होती। इसके प्रतिरिक्त एक जनवादी सरकार में, एक आम हड़ताल प्रभावशाली है, क्योंकि एक आम जुगाब सदा सन्निकट ही होता है।<sup>1</sup> फिर समाज की उत्पादक शक्ति न तो इन हिंसात्मक साधनों द्वारा अभिव्यक्त ही होती है घोर न सुख है।<sup>1-1</sup>



1 "A general strike is unnecessary because a general election is never far off"

2 "The Creative Vitality of Society is neither expressed nor strengthened by sabotage, nor destruction of industrial Capital or any one of the other minor Violences of the syndicalist programme" (Ramay Macdonald)

3 "Pure syndicalism, however, is not very likely to achieve wide popularity in Great Britain. Its spirit is too revolutionary and anarchic for our temperament" (Bertrand Russell)

## श्रेणी समाजवाद ( Guild-Socialism )

५ जिस प्रकार 'संघवाद' फ्रांस की रीत है, उसी प्रकार 'श्रेणी-समाजवाद' ब्रिटेन की रीत है। यही सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी में प्रादुर्भूत एवं विरचित हुआ इसका श्रेय ए० जी० पेण्टी ( A G Peaty ) को है। श्रेणी-समाजवाद विचारकों को संघवाद के सम्य विरोधी विचार ने प्रेरित किया था। इस रीति के अनुसार पृथिवीपतिवों की प्रभुता का धरुड कर धार्मिक जीवन का संघात्ता उत्साहकों व धर्मिकों द्वारा होना चाहिए। उद्योगों के प्रबन्ध हेतु धर्मिकों के श्रेणी ( Guild ) होनी चाहिए, जिसके सदस्य वे सभी व्यक्ति होंगे जो उस उद्योग में काम करते हैं। उत्पादन के साधनों पर धर्मिकों का एकाधिकार होना। वे ही व्यवस्थापक होंगे। इस प्रकार उद्योग स्व-शासित प्रणाली का प्रावर्तित होना। श्रेणी समाजवाद कान्ति की प्रेरणा देव एवं शान्तिमय उपायों से विरहाव करता है और सामाजिक व्यवस्था में कोई मूसलतु परिवर्तन नहीं चाहता।

### श्रेणी-समाजवाद का विकास

श्रेणी ( Guild ) मध्य युग की एक महत्वपूर्ण औद्योगिक संस्था थी। पृथिवी-वाद के उदय से पूर्व व्यवस्था का संघात्ता श्रेणियों द्वारा होता था। प्रत्येक उद्योग का एक संघठन होता था, जिसे श्रेणी कहते थे। यूरोप के धार्मिक जीवन में उनकी प्रबलता थी। बीडकालीन भारत में भी वे स्थापित थीं और इनका सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में विरिष्ट स्थान था। श्रेणियों में उस व्यवस्था के सदस्य धर्मिक सम्मिलित रहते थे। यह धरने सदस्यों की रक्षा एवं सहायता भी करती थी। श्रेणी द्वारा मजदूरी की दर, वस्तुओं का मूल्य, धार्यात निर्वात वस्तु की उत्कृष्टता और धर्म-सम्बन्धी धर्म्य बार्ते निर्वाचित होती थीं। उत्पादन के साधनों पर मजदूरों का धर्मिकवत अधिकार था। उन्हें धर्म्य कता की प्रदर्शित करने के प्रबन्ध भी उपलब्ध होते थे। उत्पादन धर्मिक ही प्रबन्धक थे। वे ही उत्पादन के स्वरुप और मात्रा की निरिचत करते थे। इनका कोई बास स्वामी नहीं था जिसके आदेशों का वे पालन करते। इस प्रकार श्रेणी स्व-शासित संस्था

( Self governing body ) को । चिन्तन-पूरीय व्यवसायिक व्यवस्था में इस प्रथा का अन्त कर दिया । आज की प्राथमिक व्यवस्था में अमजोबी-वर्ग स्वतंत्र नहीं है । उसे पूर्ण अधिकारों के आदेशानुसार काम करना पड़ता है । उसे उदरपूर्ति हेतु जोड़ी-सी मजदूरी मिल जाती है और अपनी श्रम-शक्ति के प्रयोग की कोई सुविधा नहीं मिलती । इसमें धर्मिक के व्यक्तित्व का कोई मूल्य नहीं है । बेतन प्रथा वास्तव की परिचायक है । इस प्रकार अनेकों समाजवादों मध्ययुगीन धार्मिक प्रथा को, जिसकी आधार-मिति अनेकी थी, कुछ शरोबनों के साथ पुनर्जीवित करना चाहते हैं ।

उत्पत्ति की दृष्टि से अनेकों समाजवाद विरुद्ध अनेक एक श्रांति बरतें हैं । सर्वप्रथम १९०६ में ए. पी. वेगटी की पुस्तक 'रेस्टोरेशन ऑफ दि गिल्ड सिस्टम ( Restoration of the Guild system ) ने लोगों का ध्यान इस धारणा की ओर आकर्षित किया । वेगटी एक शिल्पकार था । वह अनेकी-समाजवादी होने से पूर्व फेबियन सोसाइटी ( Fabian Society ) तथा इन्डिपेंडेंट लेबर पार्टी ( Independent Labour party ) का सदस्य था । किन्तु उसने इन संस्थाओं से अलग सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया क्योंकि वे अत्यंत केंद्रीकृत राजनीतिक समाजवाद ( Centralised Political Socialism ) पर विशेष बल देती थी । पचास वर्ष पूर्व समाजवादी आन्दोलन के सम्बन्ध में मोरिस ( William Morris ) के भी यही विचार थे । मोरिस बहिः प्रौर सेवक ही नहीं था किन्तु सक्रिय समाजवादी कार्यकर्ता भी था । वह सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन ( Social Democratic Federation ) का प्रमुख सदस्य था । मार्क्स का विश्वास था कि कला का मानव-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए । यही विचार उसके समाजवादी बनने में सहायक हुआ । मोरिस की भांति वेगटी भी यही सोचता था कि बुजुर्गों ने प्रत्येक प्रकार के कलात्मक या रचनात्मक कार्य को अस्मरणा किया है । आज कला कलाकार के लिए कला बरतें न होकर बीजक-निर्वाह का प्रयोजन हो गई है । वेगटी का समाजवाद की ओर आकर्षित होने का प्रमुख कारण यही था कि वह धार्मिक उद्योगवाद पर प्रहार कर रहा था । किन्तु उसने मोरिस की भांति ही समाजवादियों से निराश होना पड़ा । उसके रम्य निराश होने की एक चेष्टा कहानी भी है । फेबियन समूह लंडन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स ( London School of Economics ) के संस्थापक थे । एक दिन वेगटी को यह मान्यता प्राप्त हुई कि वह स्कूल का भवन-निर्माण का रेखा उस व्यक्ति को दिया गया है जो फेबियनों के उद्योगवाद भवन का निर्माण करे । इस पत्रा से

पार्टी के मानस को बड़ी चोट पहुँची। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि समाजवाद में धर्मियों को कक्षा-प्रदर्शन की स्वतन्त्रता उपलब्ध नहीं है। उसके पास कक्षा-प्रदर्शन के लिए कोई ठोस हथियार नहीं है। समाजवाद केवल धर्मिक के धार्मिक नाम पर किये गए बातों के प्रतिरिक्त नैसर्गिक रचनात्मक प्रकृति के पुनर्जीवन की कोई योजना नहीं रखता। अतः वेगनी ने उद्योगों में मध्यकालीन युग की भाँति श्रेणियों के आधार पर उद्योगों में स्वशासन की प्रथा का प्रतिपादन किया।

धेरी समाजवाद के धर्म विचारकों में ए. आर. ओरेज (A. R. Orage), एन. जी. होम्सन (S. G. Hobson) और जी. डी. एच. कोले (G. D. H. Cole) प्रमुख हैं। ये सभी केम्ब्रिज सोसाइटी के सदस्य थे। ओरेज और होम्सन दोनों ने 'न्यू एज (New Age) पत्र द्वारा, जिसकी स्थापना १९०० में केम्ब्रिज सोसाइटी के द्वारा हुई थी, पूर्वीयता पर कहरस्त प्रहार किया और केन्द्रीययुक्त समाजवाद की धारणा की। उन्होंने अपने लेखों में उद्योग क्षेत्र में स्वशासन के सिद्धान्त के प्रयोग पर बल दिया। उनका मत था कि कारखानों का प्रबन्ध एवं संचालन धर्मियों की श्रेणियों द्वारा हीना चाहिए। उन्होंने मध्यकालीन श्रेणियों के पुनर्जागरण हेतु राष्ट्रीय श्रेणियों की एक व्यापक योजना भी बनाई। धेरी-समाजवाद के प्रचार एवं प्रसार हेतु १९१५ ई० में नेशनल गिल्ड लीग (National Guild League) की स्थापना की गई। इंस्टीट्यूट का धर्मिक-धार्मिक भी धेरी-समाजवादी विचारों से प्रभावित हुआ और अनेक नवग्रन्थ इसके सदस्य हो गये। कोले, जिसका धेरी-समाजवादी विचारों में विशिष्ट स्थान था अपनी रचनाओं द्वारा बड़ा लोकप्रिय हो गया। वह धेरी-समाजवादियों में सर्वप्रमुख था। उसने प्रथम महाग्रन्थ के बीच सेल्फ गवर्नमेंट इन इण्डस्ट्री (Self Government in Industry) तथा १९२० ई० में किंग सोशलिज्म रेस्टेटेड (Guild Socialism Restated) और सोशल थ्योरी (Social Theory) नामक पुस्तकें लिखीं। उसने अपने धेरी-समाजवाद के धारणात्मक एवं रचनात्मक विचारों की विस्तार रूप में विवेचना की है। ये धेरी-समाजवाद की धारणात्मक पुस्तकें हैं। विन्तु १९२३ ई० में नेशनल गिल्ड लीग का अन्त हो गया और यह वर्तन भी विभूत हो गया। कोले इस वर्तन का प्रमुख विचारक थी, धेरी समाजवादी धार्मिकता की समाप्ति के अन्त, समष्टिवाद का समर्थक हो गया।

## श्रेणी-समाजवाद, संघवाद और समष्टिवाद की तुलना

श्रेणी-समाजवाद संघवाद और समष्टिवाद के बीच का दरान है। रोको (Rockow) ने ठीक ही कहा है, "श्रेणी-समाजवाद अंग्रेजी फेबियनवाद तथा प्रसिद्धी संघवाद का बौद्धिक मिश्रण है।"<sup>1</sup>

फेबियनवाद अंग्रेजी जनता को अपने विचारों की धीरे धीरे प्रकट करने में सफ़सीमूत नहीं हो सका। क्योंकि वह पूर्व-समाजवाद के दोषों को दूर करने में असमर्थ रहा। उसमें धर्मियों को अपने कला-प्रदर्शन एवं अपने धर्म की शक्तें निर्धारित करने की शक्ति की स्वतंत्रता नहीं थी। संघवाद भी धीरे धीरे जनता को धर्मियों के अनुकूल नहीं था क्योंकि वह अधिक क्रांतिकारी था और उसका भ्रष्टाचार प्रचलन समाजवाद की धीरे धीरे। वह राज्य-बिहीन समाज की स्थापना करना चाहता था। जनतंत्र अंग्रेजी जनता के लिए जीवन उत्कृष्ट है। उसमें उसकी प्रगाढ़ मिट्टा है अतः अंग्रेज बुद्धिजीवियों ने समष्टिवाद या फेबियनवाद तथा संघवाद के मध्यम मार्ग को अपनाया। श्रेणी-समाजवाद संघवाद की प्रमुख विशेषताओं को धीरे धीरे करता है। अतः उसने एक के दोषों को दूर कर अन्य के गुणों को अपनाया। निम्नलिखित बिन्दु उसकी स्थिति पर प्रकाश डालता है—

१ श्रेणी समाजवाद संघवादियों की भांति धार्मिक जीवन का संघात्मक उत्साहकों व धर्मियों के अस्तित्व रक्षक चाहता है। किन्तु संघवादियों से उसका मतभेद उपरोक्तों की स्थिति पर है। श्रेणी-समाजवाद धार्मिक जीवन के संघात्मक एवं नियंत्रण में उत्साहकों के साथ-साथ उपरोक्तों को भी संबोधित स्थान देना चाहता है, जब कि संघवाद केवल उत्साहकों व धर्मियों का ही एकाधिकार चाहता है। अतः श्रेणी-समाजवाद उपरोक्तों का भी एक रूप संघवाद चाहता है। वह उत्साहकों को मनमानी करने का अवसर प्रदान नहीं करता, क्योंकि इससे धर्म अधिक द्रिष्ट होना सम्भव नहीं होगा।

२ समष्टिवाद राज्य को एक आवश्यक संस्था समझता है। अतः वह अपने कार्य क्षेत्र के विस्तार पर बल देता है। इसके विरुद्ध संघवाद राज्य को एक अनावश्यक बुराई समझता है और उसका उन्मूलन चाहता है। वह धार्मिक एवं राजनीतिक विषयों को अलग-अलग संघों में विभाजित कर देना चाहता है।

1 Guild Socialism is, "the intellectual child of English Fabianism and French Syndicalism." (Rockow)



येथी-समाजवाद इन दोनों सिद्धान्तों के मध्य-मार्ग को प्रपचाता है। येथी-समाजवाद की भाँति यह नहीं चाहता कि राष्ट्र के अधोम-स्तरों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण रहे और न संघवाद की तरह उसका पूर्णतः अन्त ही चाहता है। यह राज्य के अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है, किन्तु उसे इतने कार्य नहीं देना चाहता जितने कि समष्टिवाद देता है। येथी-समाजवाद राज्य के कार्य-क्षेत्र को धार्मिक भी अपेक्षा राजनीतिक क्षेत्र तक ही परिमित करना चाहता है। यह धार्मिक क्षेत्र में उसका हस्तक्षेप नहीं चाहता।

इ विषय प्रकार राज्य के सम्बन्ध में अभी प्रकार साधनों के सम्बन्ध में भी येथी-समाजवाद समष्टिवाद और संघवाद के बीच का मार्ग प्रपचाता है। येथी समाजवाद की धारणा विकसतवाद में है, अन्ति में नहीं। यह समष्टिवाद की भाँति न ही संघवीर्य साधनों में और न संघवाद की तरह हिंसारमक एवं विध्वंस साधन (Sabotage) साधनों में ही विश्वास करता है। येथी-समाजवाद 'शून्य-शक्ति बन्धन नियंत्रण (Encroaching Control) की नीति तथा सामूहिक टैके (Collective contract) की प्रणाली को प्रपचाता है। यह हकठाल को उचित समझता है, किन्तु संपत्ति विहीन को व्यर्थ मानता है।

### येथी-समाजवाद का दर्शन

पूँजीवादी समाज—येथी समाजवादी पूँजीवादी समाज की धारणा का मध्य परम्परागत समाजवादियों की धारणा ही करते हैं। वे कार्ल मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त (The Theory of Surplus Value) से पूर्णतः तथा सहज हैं। इनका विश्वास है कि वस्तुओं का मूल्य धन द्वारा ही निर्दिष्ट होता है। अधिक ही मूल्य को पैदा करता है। मजदूर के वेतन को छोड़ कर शेष भाग, जो कि मूल्य का अतिरिक्त भाग है, जिसे वह उत्पन्न करता है, पूँजीपतियों की जेबों में जाता जाता है। इस प्रकार यह पूँजीवादी व्यवस्था अत्यन्त कुल एवं दुःखित है। इस व्यवस्था में धार्मिक-कार्य का अतिरिक्त नहीं हो सकता क्योंकि यह शीघ्र पर आश्रित है। अधिक इसमें दास के समान है। कोल का कहना है "वस्तुता एक रोम है और नियंत्रणता एक रोम का लक्षण। यदि रोम का आचार हो जाय तो वस्तुता अपने आप ही विनष्ट हो जायेगा। किन्तु इस दासता का प्रमुख कारण मजदूरी की प्रथा है, जिसका अन्तन ही आगम चाहिए। इस व्यवस्था में उत्पन्न की भी प्रोत्साहन नहीं मिलता, क्योंकि धार्मिक-धर्म अपनी शीघ्र-हीन बना है किमुक्ति पत्नी के लिए विनष्ट होकर हकठाल करता

है। हड़ताल के कारण उत्पादन बटता है। इसके प्रतिरिक्त मजदूर उत्पादन बुद्धि में कोई विरोध प्रतिक्रिया नहीं करता, क्योंकि वह निश्चित वेतन पाता है। अधिक कार्य करने का अर्थ होगा प्रतिरिक्त मूल्य में बुद्धि करना, जिस पर उसका एकाधिकार न होकर पूर्णव्यक्ति का होगा। क्रोस के मत में, 'अधिक सोचना है कि पूर्णव्यक्ति के लिए अधिक धीरे-धीरे काम करने का प्रयत्न है और जो धीरे में सह्यता प्रदान करना।' अतः अधिक उत्पादन-बुद्धि में कोई विरोध नहीं करता। फिर पूर्णव्यक्ति के लिए असाध्य केवल एक सट्टा है। उसके उत्पादन का आधार सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावना न होकर व्यक्तिगत स्वार्थपरता है। समाज और राष्ट्र को किन वस्तुओं की आवश्यकता है, वह इस दृष्टिकोण से उत्पादन नहीं करता। अतः केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिसे उसे अधिक लाभ हो सके।

येही-समाजवादी पुरुषोत्तम अर्थ-व्यवस्था की आलोचना केवल विरुद्ध प्राथमिक दृष्टिकोण से ही नहीं करते, बल्कि नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी करते हैं। प्रॉफ. एच. टानी (R H Tawney), बर्ट्रैंड रसेल (Bertrand Russell) और प्रॉफ. डी. डे मेत्रू (R De Maetia) ने सामाजिक अधिकार के व्यावसायिक आधार के विनाश का प्रतिपादन किया है। उनकी दृष्टि में सम्पत्ति का नैतिक औचित्य तभी सम्भव है और उसे तभी तब तक सामाजिक सुरक्षा का उचित अधिकार है, जहाँ तक उसका सम्बन्ध सामाजिक सेवा से है। अतः के समाज के प्राथमिक जीवन का समस्त संगठन कार्य-सम्पादन के विनाश की प्रेरणा सम्पत्ति-प्राप्ति के विनाश पर आधारित है, जो सर्वथा अनुचित है। मेत्रू का कथन था कि अधिकार प्राकृतिक तथा सामयिक नहीं होते, बल्कि नियम से होते हैं। उनका सम्बन्ध बायो से होता है। बिना कार्य के कोई अधिकार नहीं होता। अतः पूर्णव्यक्ति की उद्योग में जो भी स्थान नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि उत्पादन में उसका कोई भाग नहीं होता।

इसके प्रतिरिक्त येही-समाजवादियों के अनुसार पुरुषोत्तम उत्पादन में सर्वस्व एवं नतिशता का हास होता है। क्योंकि अम-निर्माण के कारण मजदूर निरन्तर एक-से ही कार्य करने में अपना जीवन बिताता है। उसे उस उत्पादित मूल्य में अपनी कमाई के वरान नहीं होते। ऐसा पूर्णव्यक्ति चाहता है वह ऐसा ही काम तैयार करता है। वह एक मर्दानगी की भाँति है। उसे अपने कार्य में कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं होती, क्योंकि उसे अपने कमाई-प्रदर्शन का कोई अन्तर ही उत्पन्न नहीं होता। अतः मजदूर का अर्थ-व्यवस्था पर अपनी कमाई

व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा उसका समन करणा है। मध्यकालीन प्रथा में व्यक्ति को अपने कला-प्रदर्शन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वह एक वस्तु का साधुन्याय निर्माता था। उसे अपने कला-प्रदर्शन में सुखानुभूति होती थी। वह शौचान्वित होता था। मरुः बंशुी-समाजवादी ऐसी प्रस्थापी की प्रतिष्ठा करता जाइते हैं जिसमें कि व्यक्ति को अपने कालुर्ष के विकास का सुभवसर मिले। वह अपने कार्य में धारम-वीर्य एवं धारम-शौच का अनुभव करे तथा बसकी प्रतिक्रिया बनीपार्जन के साथ-साथ ज्वालन के रूप धीर उत्कृष्टता में भी हो।

## उप्याय साधुनिक उन्मूलन

(Functional Democracy)

शेखी-समाजवादी साधुनिक समर्थन की भी मातोभवा करते हैं। वे उसे पाषण्ड्यपूर्ण समझते हैं। उनकी दृष्टि में, साधुनिक समाज राजनीतिक एवं साधुनिक दोनों ही दृष्टियों से प्रमुल है। उनका कथन है कि जो प्रतिनिधित्व-प्रस्थापी धार जन उन्मोय वेदों में प्रतिष्ठित है वह भी राजनीतिक क्षेत्र तक ही परिमित है और जन वाली नहीं है। इस प्रस्थापी के अनुहार संसद का निर्वाचन ३ या २ वर्ष के लिए होता है। निर्वाचित प्रतिनिधि के यह धारणा की जाती है कि वह सभी द्वितों का प्रतिनिधित्व बनीवाति करता है। यह एक भाव जाण्डा है। शेखी-समाजवादियों का विश्वास है कि एक व्यक्ति के मनेक द्वित होते हैं। वह साधुनिक होने के साथ उन्पारक धीर उपनोच्छा भी है। मरुः एक व्यक्ति मन्व व्यक्तिबों के सभी द्वितों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। कौम का यह कथना समेपा उन्मुक्त ही है कि "मुझसे यह अनुपेक्ष करना कि मैं किसी व्यक्ति को अपनी सम्पूर्ण उपस्थापी का प्रतिनिधि बनाऊँ, मेरी बुद्धि को उपबाधित करना है।" एक व्यक्ति मन्व व्यक्तिबों का प्रतिनिधित्व कर ही सकता है, किन्तु केवल उन्ही वरुा में जब कि उनके द्वित ब्याप हैं। वे एक ही पैरी से सम्बन्धित हैं—जैसे, एक इन्दीव पकीलों का प्रतिनिधित्व कर सकता है, उन्ही प्रकार एक पीवी बौबियों का धीर बनीं बजियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। किन्तु एक बनीं बकीलों या बौबियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, क्योंकि उनके द्वित बरतर विरोधी हैं। इस प्रकार शेखी-समाजवादियों के मतानुसार प्रतिनिधित्व का साधार मौनोतिक होने की अपेक्षा ध्यान साधुनिक होना चाहिए। कौम का कथन है, "समाज में पुबडू का मैं निर्वाचित प्रतिनिधियों के उठने ही संघ होने चाहिए किलने कि करने धौम व्यवस्थाओं के स्पष्ट धीर साधुनिक बर्न हैं। व्यक्ति को उठने ही मिल एवं पुबडू बयोग होने धौम

मत देने का अधिकार होना चाहिए जिन्हें भी उसके सामाजिक चरित्र पर अपना हित है ।" इस प्रकार एक व्यवसाय के व्यक्तियों को अपने में से उसी व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि चुनना चाहिए जिसे उनके हितों की पूरी जानकारी हो । ऐसी स्थिति में विभिन्न व्यवसायों द्वारा जो विभिन्न प्रतिनिधि चुने जायेंगे वे ही सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकेंगे और ऐसी सामाजिक व्यवस्था पूर्णतः जनताधिक होगी ।

किन्तु व्यक्तियों के कुछ हित समान भी होते हैं जिनका सम्बन्ध व्यवसाय या पेशे से नहीं होता । एक ही देश में रहने के कारण कुछ हित ऐसे हैं जो सभी नागरिकों के लिए सामान्य होते हैं, जैसे, देश-रक्षा, वैदेशिक नीति, साधारण के साधन, कर, न्यायव्यवस्था, कानून और कुछ सीमा तक शिक्षा आदि ऐसे राष्ट्रीय हित हैं जिनका सम्बन्ध सभी नागरिकों से एक समान होता है । राज्य ही इन कामों के करने के लिए उपयोगी संस्था है । अतः इनका निमन्त्रण एवं संभासन प्राथमिक संसदीय पद्धति के अनुसार ही होना चाहिए । इसके अतिरिक्त कुछ हित ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध स्थानीय शासन से होता है । इनके अन्तर्गत विद्युत्, पानी, पुच्छ, बिजिरक्षा, पुसिस आदि आते हैं । इन हितों का भी सम्बन्ध किसी पेशे से न होकर सभी व्यक्तियों के लिए समान होता है । अतः इनका प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओं, जैसे नगरपालिका से होना चाहिए ।

इसी प्रकार प्रायिक उद्धारण की समस्याएँ भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं । इन विविध समस्याओं के लिए एक सर्वथा नवीन ढंग के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है । उद्धारण-सम्बन्धी समस्याओं का समाधान बंधों में काम करलेवाले व्यक्तियों द्वारा निमित्त भेरी द्वारा होना चाहिए । काम करने के घंटे, कितना माल उधार हो, उनकी भाषा कितनी हो, अधिकों की मजदूरी आदि समस्याओं का निर्णय पूर्णतः या सरकार की अथवा व्यक्तियों की भेरी द्वारा होना चाहिए । किन्तु कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध उत्पादकों से ही न होकर उपभोक्तियों से भी है, जैसे उद्धारण की प्रकृति उसकी मात्रा और मूल्य का निर्धारण । अतः ऐसे प्रश्नों का हल उपभोक्ता एवं उत्पादक-समितियों की संयुक्त बैठकों में होना चाहिए । इस प्रकार भेरी-समाजवादी व्यावसायिक जनतंत्र के आधार पर निमित्त संसदीय राज्य-व्यवस्था को स्थापना करना चाहते हैं । उनकी मांगों के इस रूप में पूर्ण प्राप्ति की प्रायिक शक्ति राजनीतिक शक्ति की आधार शिला है । प्रायिक जनतंत्र के अन्तर्गत राजनीतिक जनतंत्र अर्थात् ही है । अतः निमित्त जनतंत्र की प्रतिष्ठा के उद्देश्य सामाजिक जनतंत्र का संयोजन स्वयं ही हो जायेगा ।

## श्रेष्ठी-समाज

श्रेष्ठी-समाजवादियों का विरवाह था कि समाज को पूर्णतया जनतंत्रीय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यावसायिक आधारे पर संभठित हो। प्रत्येक व्यवसाय की एक श्रेष्ठी होनी चाहिए। श्रेष्ठी में उन समस्त व्यक्तियों को पाइए उनके विभिन्न कार्य क्यों न हों, सम्मिलित होना चाहिए, जो उस व्यवसाय में भाग लेते हैं। यह श्रेष्ठी एक स्व-शासित संस्था होगी। किन्तु अधिकारों श्रेष्ठी-समाजवादी मध्यकालीन श्रेष्ठी-व्यवस्था की पुनःस्थापना की सम्भव्य मानते थे। उनका कथन था कि मध्यकालीन श्रेष्ठी-व्यवस्था की भावना के पुनरुत्थार हेतु अधिक मात्रा में स्थानीय स्व-शासन की तो आवश्यकता पड़ेगी, किन्तु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रीय संघटन का होना भी जरूरी है। भाव विरासत स्तर पर होनेवाले उत्पादन के अनुकर ही श्रेष्ठी के संघटन को बनाना होगा।

हाम्बन तथा कोल ने भावी श्रेष्ठी-समाज की विभिन्न योजनाएँ प्रस्तुत की थीं। दोनों के मत में उत्पादन का संभालन श्रेष्ठी द्वारा होगा और उसके संघटन का आधार जनतंत्रीय होगा। वह अपने बाह्य तथा आन्तरिक मामलों में श्रेष्ठ व्यवस्था की शक्तों को निर्धारित करने, कर्मचारियों के चुनाव करने और विभिन्न कार्यालयों को काम देने में जनतंत्रीय होगी। प्रत्येक श्रेष्ठी इस प्रकार संघटित की जायेगी कि राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन का सम्भव्य तथा निरन्तर अगहों और उद्योगों में जो विभेद हों उनकी रक्षा हो सके, साम-साध व्यक्तियों की नैतिक रचनात्मक शक्ति को प्रोत्साहन मिल सके। जिन अधिकारियों का कार्य संभालन एवं पत्र प्रदर्शन का होगा उनकी शक्ति प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा श्रेष्ठी के सदस्यों द्वारा होगी और उन्हें व्यवस्था करने का अधिकार भी होगा। जिन अधिकारियों का कार्य औद्योगिक होगा, उनकी शक्ति चुनी हुई समितियों द्वारा होगी। किन्तु हाम्बन ने राज्य के अस्तित्व को बनाये रखना उचित समझा। इसके अनुसार राज्य द्वारा श्रेष्ठीयों का सम्भव्य किया जायेगा। उपभोक्ता-सम्बन्धी कार्य की दृष्टि से वह सर्वोच्च प्रतिनिधि-संस्था होगी। नागरिकों का प्रतिनिधित्व भी वह करेगा। इस प्रकार राज्य का कार्य न केवल प्रशासन, सैन्य और न्याय-सम्बन्धी कार्यों का ही संभालन होगा, किन्तु वह उत्पादन और वितरण का भी कार्य करेगा। राज्य का परम ध्येय सहाय-सेवा होगा। इसके विपरीत कोल के अनुसार राज्य का कार्य बड़ा परिमित हो जायेगा और उसका स्थान श्रृंखला (Coöperative) में लेना। संघ ही

उसके समस्त कार्यों को सम्पादित करेगा। जब राज्य का कार्य-क्षेत्र उत्तरोत्तर सीमित होता जायेगा तो अन्ततोगत्वा वह विस्तृत हो जायेगा। कोष उपभोग का कार्य राज्य की अपेक्षा सहकारी-समितियों को प्रदान करता है और समन्वय सम्बन्धी कार्य संघ को देता है। स्थानीय श्रेणियों की भाँति स्थानीय उपभोक्ता-समिति भी होगी, जिसके सरस्य वे सभी व्यक्ति होंगे जिनसे उस उपभोग का सम्बन्ध होगा। संघ का निर्माण स्थानीय श्रेणी तथा उपभोक्ता-समिति द्वारा निर्वाचित सरस्यों द्वारा होगा। इसी प्रकार स्थानीय श्रेणियों, समितियों तथा संघों से निर्वाचित सरस्य प्रादेशिक और राष्ट्रीय श्रेणियों, समितियों और संघों के सरस्य होंगे। स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय संस्थाएँ क्रमशः स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय विषयों का संभालन करेंगी। स्थानीय उत्पादन-सम्बन्धी कार्य होंगे बर्तमान की मुहाफि, मुनाफि और स्वास्थ्य धारि। स्थानीय उपभोग सम्बन्धी कार्य होंगे—खाद्य सामग्री, कपड़ा, कपड़े, और बूटा धारि। प्रादेशिक उत्पादन-सम्बन्धी कार्य होंगे—कपड़े, बूटे, जूत, सड़क और बिजली धारि। प्रादेशिक उपभोग के विषय होंगे—प्रकार, शिक्षा और सड़क धारि। राष्ट्रीय उत्पादन के कार्य होंगे—टीमाय सोहा और जहाज धारि। राष्ट्रीय उपभोक्ता सम्बन्धी कार्य होंगे—यातायात और शिक्षा धारि। जिन विषयों का सम्बन्ध सभी क्षेत्रों से होगा उनकी व्यवस्था संबंधित श्रेणियों के समन्वय द्वारा होगी। श्रेणियों और समितियों के समन्वय द्वारा उत्पादन और वितरण सम्बन्धी नीति एवं विषयों का निर्धारण होगा। संघ का कार्य समन्वयकारी होगा। संघ का प्रथम कार्य वित्त-सम्बन्धी होगा। मूल्य का नियंत्रण भी इसके अन्तर्गत आता है। इसके द्वारा विभिन्न व्यवसायों तथा सेवाओं में वित्तीय सीतों का अनुचित विभाजन भी होगा। कर निर्धारण और ऋण पर नियंत्रण भी इसके क्षेत्राधिकार में होंगे। द्वितीय, औद्योगिक संस्थाओं के मध्य ऐसे नीति-सम्बन्धी प्रश्न जिनका हल करने में श्रेणियों-परिषदों या श्रेणी परिषद समर्थ होंगी वे संघ द्वारा निर्णीत होंगे। राष्ट्रीय विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं के बीच शक्ति-विभाजन का कार्य भी इसी के द्वारा होगा। तीसरे मूठ और शक्ति-व्यवस्था, प्रादेशिक सम्बन्धों का नियंत्रण शोभाओं का निर्धारण और व्यक्तिगत मामलों तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसे प्रश्नों का नियंत्रण धारि इसी के क्षेत्राधिकार में होंगे। इसके अतिरिक्त संघ व्यक्तियों और औद्योगिक संस्थाओं से घटने वाले प्रश्नों का पालन करने के लिए शक्ति-उत्पादन भी होगा।

हाम्लन तथा कोस दोनों ने सार्वजनिक स्वामित्व के प्रश्न पर भी विचार किया था। वे उत्पादन एवं वितरण के प्रमुख साधनों का सामंजस्यपूर्ण या राष्ट्रीकरण करना चाहते थे, किन्तु वे विभिन्न श्रेणियों से सम्बन्धित वर्गवारियों को ही इनका व्यवस्थापक बनाया चाहते थे। उन्होंने अन्य क्षेत्रों में पूर्वी के व्यक्तिगत स्वामित्व को भी धीमीकार किया था किन्तु पूर्वीपंथ को व्यापक क्षेत्र के प्रतिरिक्त मुनाफा और व्यवसाय पर एकाधिकार का अधिकार नहीं दिया। दोनों ने मजदूर के पारिभाषिक-सम्बन्धी प्रश्न के निर्णय का एकाधिकार श्रेणी को ही दिया। केवल श्रेणी द्वारा निर्णय संघ या राज्य के पुनर्विचार से प्रतिबन्धित थे। उद्योगी का यह परम कर्तव्य था कि वे अपने मजदूरों की बेकारी के समय सहायता करें।

## राज्य का स्थान

राज्य के क्षेत्र और स्थिति के सम्बन्ध में श्रेणी-समाजवादी एकमत नहीं थे। कुछ विचारकों के मत में राज्य राजनीतिक एवं उपभोक्ता सम्बन्धी समस्याओं के सम्बन्ध में एक सर्वोच्च संस्था रहेगी। यह इस विषयों का प्रतिनिधित्व करेगा। हाम्लन के कल्पानुसार श्रेणी-समाज में राज्य सम्पूर्ण समाज की प्रतिनिधि संस्था होगी। यह राज्य संस्थाओं से भिन्न होगी। उसका कार्य-क्षेत्र सीमित होने पर भी उसकी सत्ता में किसी प्रकार की कमी नहीं आयेगी। यह सत्ता सत्ताहीन रहेगी। राज्य सत्ता का प्रादिक क्षेत्र और सर्वोच्च ग्यान्तलय होगा। यह श्रेणी-कारिण को धरीस पर और अन्य सार्वजनिक मामलों पर प्राना निर्लभ देगा। बीवानी और कौमवादी कानूनों का निर्माण और कार्यान्वयन इसी के द्वारा होगा। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भी नियंत्रण करेगा। राज्य नागरिकता का प्रतिनिधित्व करेगा और इस प्रकार यह एक लोक-सेवक संस्था होगी।

किन्तु कोस ने राज्य के सम्बन्ध में एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया था। उसने प्राची सामाजिक व्यवस्था में राज्य को एक निम्न स्तान प्रदान किया था। उसके श्रेणी-समाज में संघ राज्य का स्थान ग्रहण करेगा। यह भी अन्य मानसंपन्धियों की भांति राज्य को एक सर्वोच्च तथा अनन्यता संस्था समझता था। इस दृष्टिकोण से यह बहुलकारी था और राज्य की केवल संघों का संघ समझता था। यहका मत था कि राज्य भी अन्य संस्थाओं के समान ही सत्ताहीन है। उदा। सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और सर्वनिम्नता प्रादिक होता जब सत्ता महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है क्योंकि ऐसी संस्था प्रादिक सामाजिक स्थिति के अनुकूल नहीं है। उसने राज्य को उपभोक्ता का प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया और न

घपने माजी समाज में धार्मिक और नागरिक सेवाओं के निमन्त्रण का अधिकार ही दिया। उसने हाम्पटन के इस कथन का कि "राज्य का सर्वोपरि दृश्य समाज की धारणाविव्यक्ति करना एवं समाज के विभिन्न वर्गों के कर्तव्यों का निर्देशन और उनमें पारस्परिक सम्बन्ध कायम करना है", बखरान दिया है। उसने समष्टि कानिनों की राज्य द्वारा समाजवाद की प्रतिष्ठा के विचार की भी धारणाविव्यक्ति की। उसने कहा कि समाजवादी राज्य में अधिक उपलब्धीयत बचा में नहीं रहेंगे क्योंकि का विभाग मात्र राज्य के अन्तर्गत है। उनमें मजदूरों की दशा सन्तोषजनक नहीं है। यद्यपि उसने एक ऐतिहासिक घोषणा की कि मानव ने राज्य की रचना की है, वह उसका व्यवसाय भी कर सकता है। वह उससे भी एक उच्चतर संस्था का निर्माण कर सकता है, जो कि प्रभुसत्ता का समुचित रूप प्रतियोगिता कर सकती। यह संस्था संघ (Commonwealth) होगी जिसका संघटन राज्य के संघटन से भिन्न होगा और अन्य संस्थाओं की प्रतिनिधि संस्था होगी।

### साधन

येछो-समाजवाद साधन के सम्बन्ध में समष्टिवाद और संघवाद के बीच का मार्ग प्रयत्नाता है। येछो-समाजवादी प्रारम्भ में पब्लिसनकारी थे। जब उन्होंने पब्लिसन वाद से सम्बन्ध-विच्छेद किया तो वे उसका पूर्णतया परित्याग नहीं कर पाये। उन पर उसके 'रुने-रुने वाद' का प्रभाव बना रहा। अन्तुत 'रुने रुने वाद' उनके कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग हो गया। येछो समाजवादी शक्तिमय उपायों के पक्षपाती थे। उनकी धारणा विकासवाद में थी, न कि क्रांति में। वे समष्टिवाद की भाँति न ही सशरीर वाचक में ही विश्वास करते थे और न सशवाद की तरफ। उन्होंने हिंसक एवं विध्वंसक मार्ग को ही प्रयत्नाता। उनको दृष्टि में संघीय कार्यक्रम ध्येय-सा था, क्योंकि इसके द्वारा येछो-समाजवाद की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। संघीय प्रयत्नाती वर्गीय भावना को आपृत नहीं करती और न पूर्वीपति वैधानिक रूप से अपने विरोधाधिकार एवं सत्ता का ही परित्याग करेगा। यद्यपि उनका विश्वास संघर्ष की अपेक्षा धार्मिक कार्यक्रम में था। उनका कथन था कि आध्यात्मिक धार्मिक परिवर्तन केवल धार्मिक साधनों द्वारा ही सम्भव है। किन्तु यह परिवर्तन केवल धार्मिक-रूप आध्यात्मिक द्वारा ही हो सकता है। इसके लिए

1 "State socialism is no remedy for economic servitude on the contrary, it reveals the chains a little more secretly" (A Gray)



अधिक संघों के हाथ में परिवर्तन करना होगा। छिस्प-संघों का स्वान व्यावसायिक संघों को ले लेना चाहिए, क्योंकि ये संघ पुँजीपति के विरुद्ध एक सुरङ्ग मोर्चा बनाने में अधिक सफल हो सँगे। थेली-समाजवादियों का मत था कि एक संघोप में एक ही व्यावसायिक संघ होना चाहिए। इस संघ के सभी कर्मचारियों को जो इस व्यवसाय में काम करते हैं चाहे उनका कार्य शारीरिक धक्का भीड़िक कुछ भी हो, सबस्य होना चाहिए। इस प्रकार की थेली आधुनिक अमिक-समाधी (Trade Union) से कहीं अधिक उपयुधी एवं प्रभावपूर्ण होती, क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यवसाय के समस्त कर्मचारियों को मान्य होने। अनन्तर इसकी आचार-निति होया। ऐसी दशा में पुँजीपति अमिकरण में कू नहीं आस सकेया और सबकी हकलास बरतत होयी। वह उनकी माँगों को स्वीकार करने के लिए विवरा होया।

थेला-समाजवादी पुँजीवादी प्रणाली पर एकाधिपत्य पीरे-पीरे करने के पक्षरालो थे। उनका कथन था कि अमिकों को अपने संघजन को सुरङ्ग एवं पुँज बनाने के लिए शक्ति-शक्ति बढ़ते हुए नियन्त्रण (Encroaching Control) की नीति को अपमाना चाहिए। इस नीति के द्वारा अमिकों को पीरे पीरे पुँजीपति वर्ग से उस आधिक शक्ति को जिस पर उसका एकधिकार है, प्राप्त करना है। पीरे-पीरे उनके द्वारा अन्वहित कार्य और अधिकारों की हस्तगत करना है। उनकी माँग छोटी बातों से धारम्भ होकर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायेगी। उदाहरणार्थ, उनकी सर्वप्रथम माँग यह होयी कि कार्य निरीक्षकों की नियुक्ति में उनसे भी परामर्श किया जाये। तदनन्तर वे अपनी दूसरी माँग रखेये कि निरीक्षकों का निर्वाचन अमिकों द्वारा हो। इस प्रकार क्रमशः उनकी माँग, अपने प्रतिनिधि का चुनाव करने, अनुसूचन-सम्बन्धी नियम-निर्माण करने, मजदूरी को नीचरी हिसाल और उन्हें परभूत करने प्रादि की बढ़ती ही जायेगी, जब तक कि उन्हें संवासन और व्यवस्था सम्बन्धी सभी अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते और थेली स्व शासित संस्था नहीं बन जाती। इसके साथ-साथ अमिक सामूहिक ठेके (Collective Contract) की पद्धति को प्रतिष्ठित करने के लिए भी प्रयत्नशील रहेंगे। वे अपने मातिकों से वैदिक मजदूरी पर कार्य करने की प्रोज्ञा देना ले लेंगे कि इतने रूपों पर इतने समय के भीतर इतनी मात्रा में मास तैयार कर दिया जायेगा। इस प्रकार देना वे देने के उपरान्त मातिकों का व्यवस्था एवं निरीक्षण से कोई सम्बन्ध नहीं रखेया। अमिक कार्य-विभाजन के आचार पर कार्य पूरा करके उस प्रबल जनपति को प्राप्त में बटि लेंगे।

इस प्रकार की खेती प्रयोगी केवल व्यक्तिगत व्यवसायों तक ही सीमित नहीं रहेगी, बल्कि इसका प्रयोग सार्वजनिक व्यवसायों एवं उद्योगों में भी होगा। अधिक पूर्वीयता के पुनर्जागरण में अपने उद्योग भी स्थापित करेंगे। खेती-समाजवादी राष्ट्रीयकरण को अपने सफल की पूर्ति के लिए उद्योगी नहीं समझते थे और न उनके मत में यह ऐसा सामन या त्रिस पर पूर्णरूपेण निर्भर रहा जा सके। उनकी दृष्टि में क्रमशः और शान्तिमय उद्योगों से एक व्यावहारिक सामन या। इन सामनों के अन्तर्गत से अधिक एक पूर्वीयता दोनों ही वर्ग वर्ग के उद्योग और रूपांतर से बच जायेंगे।

खेती-समाजवादियों का विश्वास था कि कभी एवं भी सरकार या संसद है जब कि धर्मियों की हितसम्बन्ध उपायों का सहारा लेना पड़े। जब पूर्वीयता वर्ग खेती समाजवादी व्यवस्था के स्थापन में प्रतिरोध करेगा तो उन्हें बहादुर सनकी अधिकार-सत्ता से बिहीन करना आवश्यक होगा। ऐसी स्थिति में राज्य की शक्ति का प्रयोग भी सम्भव होगा, किन्तु खेती-समाजवादी संसक्ति विरोध और प्रत्यक्ष मान्यता ( Direct Action ) को उचित नहीं समझते थे।

### प्रमुख विशेषताएँ

- ( १ ) खेती-समाजवाद धर्मिक-वर्ग का मान्यता नहीं था, बल्कि बुद्धि कीदियों द्वारा संचालित मान्यता था।
- ( २ ) खेती समाजवादी प्रत्यक्ष उद्योग में काम करनेवाले उद्योगियों की एक खेती बनाना चाहते हैं। यह खेती स्वशासित संस्था होगी।
- ( ३ ) यह समाज का निर्माण व्यावहारिक जनतंत्र के माध्यम पर करना चाहता है, जिसमें सत्ता विरेन्द्रित हो।
- ( ४ ) इस सिद्धान्त के अनुसार उद्योगों की वास्तविक जनतंत्रीय रूप प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि जनता संसद नौके से हो।
- ( ५ ) खेती-समाजवाद उद्योगियों की खेती-संस्था नहीं है, बल्कि अधिकार नहीं प्रदान करता, बल्कि उनसे उनके निर्दुष्ट हो जाने का मय है। सत्ता उद्योगी समिति राज्य या संघ ( Central ) भी प्राचीन समाज में होंगी।
- ( ६ ) यह वर्तमान राज्य का पूर्ण विरोधी नहीं है। यह उद्योगियों के हितों के उपाय इनके अस्तित्व को आवश्यक समझता है।

(७) शासन की दृष्टि से श्रेणी-समाजवाद समष्टिवाद और संवहार के बीच का पार्य प्रपत्ता है। यह न तो सार्वत्रिक कार्य-क्रम में ही विरवात करता है और न विम्वंसारिक या प्रत्यक्ष साम्योक्तन को ही उचित समझता है।

**आलोचना**

(१) श्रेणी-समाजवादी परस्पर विरोधी विचार रखते हैं। सभी समाज और राज्य की स्थिति के सम्बन्ध में वे बिलकुल एकमत नहीं हैं। विचारों की एकता के अभाव के कारण ही वे किसी खासो एव सुदृढ़ संस्था के निर्माण में सफलता प्राप्त नहीं हो सके।

(२) यह बर्तन मस्यष्ट है क्योंकि यह राज्य की प्रभु सत्ता की अनुपस्थिति में उत्पादक और अरमोक्त समितियों के अनुत्पन्न होने पर उनके परस्परिक मन्त्रों को किस प्रकार सुलभता पायेगा, इस पर कोई संश्लेष प्रकाश नहीं दाखता।

(३) यह धार्मिक और राजनीतिक सम्बन्धों को एक-दूसरे से पूर्णतया अलग कर देता है जो कि अत्यन्तक दृष्टि से अस्मभव है। शास की स्थिति में कोई भी राज्य एक एक सुधारकन के कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उसका धार्मिक जीवन पर एकाधिकार नहीं हो।

(४) श्रेणी-समाजवाद इस पर कोई प्रकाश नहीं डालता कि विभिन्न श्रेणियों के प्रतिनिधि किस माध्यम पर चुने जायेंगे और विभिन्न श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्यों में संघर्ष के अन्तर् किन प्रकार दृष्ट्या स्थापित होगी। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक सौकरत्रमीय प्रणाली के प्रतिष्ठित होने पर वर्गीय श्रेणियों का प्राबल्य होगा, न कि राष्ट्रीय श्रेणियों का।

(५) व्यावसायिक क्षेत्र में उत्पादकों के निर्मूलन के कारण अनेक दोष पैदा हो जायेंगे। उत्पादकों को ही उद्योगों में एकाधिकार मिलने से कोई अनुशासन नहीं रहेगा। फिर उत्पादन समाज-हित की दृष्टि से हीना, यह भी संदिग्ध है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सर्वप्रथम अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को पूरा करना चाहता है। उत्पादन में शैथिल्य, कार्यदमता और असाध्य वा अभाव तथा वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि आदि अनेक दोषों के व्याप्त होने की सम्भावना है।

I "It may be that the motive of Social service which admittedly exists would not prove strong enough in practice to overcome the incentive to private gain .. If this be the

( १ ) गेहूँ-समाजवाद के अनुसार गेहूँयाँ निरंकुश एवं स्वच्छाकारी हो जायेंगी, क्योंकि पशुओं पर उनका एकाधिपत्य होगा ।




---

case, then Guild socialism would break down resolving itself into an anarchy of exploiting Guilds whose opportunities of fleecing the community would exceed those of the capitalist employer in proportion as they would have a more complete monopoly of production," ( C. E. H. Joad )

Socialist Bureau) ब्रूकेल्स में स्थापित हुआ। इस अन्तर्राष्ट्रीय में सम्मिलित विचारकों की मार्क्स के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, किन्तु उसके विचारों की व्याख्याओं के सम्बन्ध में उनमें परस्पर मतभेद था। इस कारण ये विचारक दो दलों में विभक्त हो गये थे। इनमें से प्रथम जो "कट्टर" (Orthodox) कहा जाता मार्क्स के सिद्धान्तों के अग्रगण्य पक्ष पर अधिक बल देता था। द्वितीय दल, जो 'सुधारवादी समाजवादी' (Revisionists) की संज्ञा से प्रसिद्ध हुआ उसके समाजवादी विकास के विज्ञान और वर्तमान रचनात्मक कार्यकर्मी की प्रधानता देता था। किन्तु इस द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ का जो विघटन हुआ उसका प्रमुख कारण यह था कि समाजवादिनों की दृष्टि में भ्रम सेना बाह्य या नहीं। विरह-युद्ध प्रारम्भ हो जाने के उपरान्त प्रत्येक समाजवादी दल में युद्ध-विरोधी और युद्ध-समर्थक छोटे-छोटे गुट पैदा हो गये। इस राष्ट्रीयता की उच्च भावना के बलीभूत होकर युद्ध-रत देशों के समाजवादिनों ने अपनी-अपनी सरकारों की युद्ध-नीति का समर्थन ही नहीं किया, अपितु एक-दूसरे के विरुद्ध सहयोग भी दिया।

युद्धोपरान्त समाजवादिनों ने समाजवादी आन्दोलन को पुनर्विद्यमान करने का प्रयास किया। यह ऐसा समय था जब कि समाजवादी कहकर तीन मुख्य भागों में बल रही थी। प्रथम भाग के अन्तर्गत जो समाजवादी पाते हैं, उन्होंने द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ के पुनरुद्धार हेतु बुधवार १२२० में जनेवा में एक अधिवेशन बुलाया। इसका मुख्य विचारक मजदूर-दल के नेताओं ने किया। इस अधिवेशन में एक मत है 'हिंसा तथा अविनायकत्व का अद्वयन किया गया प्रजासत्त में अपनी प्राप्ति प्रकट की गई समाजीकरण की प्रक्रिया की 'अनिवार्य अनिवार्यता पर बल दिया गया, समाजीकरण के लिए सम्पत्ति की कमी को अस्वीकार किया गया तथा अमनीषी की परिभाषा निम्नलिखित की गई।' दूसरी विचारवादी जो अपनाते-जाने कट्टर मार्क्सवादी थे जिनका सुधारवाद में कोई विरह नहीं था और जिन्होंने १९१९ में 'तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय' (Third International) संघ की स्थापना की। उपर्युक्त दोनों विचारवादी से विरोध ऐसे भी समाजवादी थे जिनका विरासत न 'द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय मंच' के सिद्धान्तों में था और न साम्यवादियों की विरोधार्थक नीति एवं अविनायकवादी पद्धति में। अतः इन मध्यममार्गी समाजवादिनों ने परन्तु १९२१ में बिना में 'अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी दलों का कार्यकारी संघ' (International working union of Socialist parties) का निर्माण किया। किन्तु के मध्यममार्गी समाजवादी इन

तीन धाराओं के सामंजस्य के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। यद्यपि इन्होंने इन तीनों के समन्वय में सफलता नहीं मिली, किन्तु फिर भी सन् १९२३ में 'यमिक एव समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय संघ' (Labour and Socialist International) की स्थापना में सफलतापूर्वक हुए। तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ से सम्बन्धित साम्यवादी इससे अलग रहे।

(१) फ्रांस में यमिक संस्थाएँ—फ्रांस में समाजवादी, धाराजघ्तावादी, धारावादी और साम्यवादी आदि यमिक संस्थाएँ थीं। १९१९ में समाजवादी संघ के अस्तित्व के बाद १९२२ में १२९ थे। किन्तु फासिस्टवाद के विरोध स्वयं १९३४ में समाजवादी और साम्यवादियों के सहयोग से एक "बलमोर्चे" का निर्माण हुआ। बाद में उदारवादी तथा प्रजातन्त्रवादी भी सम्मिलित हो गये। ४ जून १९३६ को समाजवादी नेता ब्लूम के मार्ग-दर्शन में 'जनमोर्चे' की सरकार भी बनी। द्वितीय महायुद्ध में भी फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध समाजवादियों ने पुनः अन्तर्वेत्तनों में प्रमुख भाग लिया।

(२) जर्मनी में सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टी—इस पार्टी का नेता इबर्ट (Ibert) था, जो कि १९१९-२३ तक राष्ट्रपति रहा। १९२८ में इस वक्त में संयुक्त मन्त्रिमण्डल में भाग लिया, किन्तु हिटलर के अविनायकता होने पर सन् १९३३ में सभी राजनीतिक दलों को अन्तर्गत कर प्रमुख नेताओं को फाँसी दे दी गई या बिराद होकर वे मृत्युमुख पर पहुँच गये। द्वितीय महायुद्ध के बाद साम्यवादी दल जर्मनी के पूर्वी भाग तथा पश्चिमी भाग में सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी (Social Democratic Party) ने पुनः अपनी हस्तक्षेप प्रारम्भ कर दी।

(३) बेल्जियम में लेबर पार्टी—इसने सन् १९१९, २३, ३३, ३९ में संयुक्त मन्त्रिमण्डल में भाग लिया। इसका बहुमत न होने के कारण कभी अपनी सरकार न बना सकी। परन्तु यह बेजल संयुक्त सरकारों में ही भाग लेती रही। इंग्लैंड की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी की अतिरिक्ति भी सम्बोधित नहीं रही। इसने जन-जीवन को पर्याप्त प्रभावित किया और १९३९ में इसने पहली बार संयुक्त मन्त्रिमण्डल में भाग लिया। अपनी सोशलिज्म के कारण द्वितीय महायुद्ध अन्तर्गत ही अपनी सरकार बनाने का भी प्रयत्न किया।

(४) हंगरी, पोल्यांड आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया तथा स्विट्जरलैंड की समाजवादी पार्टियाँ—हंगरी, पोल्यांड और आस्ट्रिया की समाजवादी पार्टियों ने अपने-अपने देशों के अविनायक राष्ट्रीय शासन का पुनः विरोध

किया। कैबोन्सोनाक्रिया तथा स्विटजरलैण्ड में भी समाजवादी शक्तियाँ प्रबलतम सिद्ध हुईं।

(२) नार्वे, डेनमार्क और स्वीडन में समाजवादी पार्टियाँ—नार्वे में समाजवादी दाम्पत्यन पत्रिकात्मक रूप में प्रकृत हुआ। इसने १९२९ और १९३२ में अपनी सरकार बनाई। डेनमार्क में भी समाजवादी प्रवृत्ति रही, किन्तु स्वीडन की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी द्वितीय महायुद्ध के पूर्व पाँच बार अपनी सरकार बनाने में सफल हुई। बस्तुतः इसने अपने शासन-काल में अनेक जन हित सम्बन्धी कार्य किए और यह भी समाजवादी दलों के लिए एक-प्रदर्शक तथा प्रेरक बनी।

(३) ब्रिटिश लेबर पार्टी—इसकी स्थापना सन् १९०० में हुई और इसका सम्बन्ध द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ से १९४४ में हुआ। बस्तुतः इसका द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ में प्रमुख स्थान था। ब्रिटिश लेबर पार्टी विभिन्न विचारवादाओं की संयमस्वनी थी। इसमें मार्क्सवादी, समानतावादी उदारवादी, धार्मिक समाजवादी और जनतान्त्रिक समाजवादी भाँति विभिन्न धाराओं के प्रवेश थे। एटली का कथन है कि धार्मिक संघ, सङ्घर्षी दाम्पत्यन, चाइल्ट दाम्पत्यन, दाम्पत्यन का स्वातन्त्र्य-दाम्पत्यन और मार्क्सवादी तथा धार्मिक समाजवादी विचारों ने ब्रिटिश लेबर पार्टी को सुसंगठित एवं प्रगति-युक्त पर प्रभाव किया है। यद्यपि इसने अपनी स्पष्ट रूप से 'समाजवाद' शब्द का उल्लेख नहीं किया, किन्तु सन् १९९८ की योजना में समाजवादी भक्तक विद्यती है। विर्गो-रिज इसकी शक्ति बढ़ती गई और सन् १९९९ में इसने रेजे मैकडोनेल्ड के प्रधानमन्त्रित्व में अपनी सरकार बनाई। १९४० में यह वर्षभर के नेतृत्व में संयुक्त सरकार में सम्मिलित हुई। १९४२-४९ तक क्लोमेण्ट एटली के प्रधान मन्त्रित्व में इसकी अपनी सरकार बनी जिसने अनेक लोक-व्यवस्थाकारी कार्य किये। इलाय भारत देश भी इसी के शासन काल में स्वतन्त्र हुआ जिसका श्रेय इसी की है।

### समष्टिवादी विचारधारा का आधार

समष्टिवाद के प्रमुख आधार दो हैं—कैबिज्मवाद और संयोजनवाद। कैबिज्मवाद क्रिस्टन की देन है और ब्रिटिश लेबर पार्टी भी यह धारा-दिशा है। संयोजनवाद मार्क्सवाद का अर्थ है और इसके द्वारा समाजवादी विचारधारा पर्याप्त रूप में प्रभावित हुई।

फैबियनवाद—इंग्लैण्ड में समाजवादी विचारों के प्रसार एवं प्रचार का कार्य सर्वप्रथम सोशल-डेमोक्रेटिक फेडरेशन ( Social Democratic Federation ) के द्वारा हुआ, जिसकी स्थापना सन् १८८१ में हुई। इसके सदस्यों में प्रमुख, एच० एम० ह्यूडसन विलियम मारिस, हेब्रोन टैमर, बेनफोर्ड बेंस, इलियागोर मास एब्सिम ( नामम की सबसे छोटी लड़की ) और उसका पति एडवर्ड एब्सिम आदि थे। इसका मध्य समाजवाद था, किन्तु साधत 'बर्ग युद्ध' था। यह संनम ही किशुद्ध मानसवादी ही था और न राज्य-समाजवादी ही। अतः इसमें भी दक्षिण एवं वामपंथी थे। इसके बाद सन् १८८४ में सोशलिस्ट लीग ( Socialist League ) की स्थापना हुई। इसका भय मारिस बेंस और एब्सिम को था। ये सभी सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन के सदस्य थे, किन्तु ईशान्तिम मतधर्मों के कारण इससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। सोशलिस्ट लीग में भी कुछ संघर्षीय कार्य में अभिरुचि रखते थे ही कुछ इसके विरोधी भी थे। मारिस मराजकतानाद और मुपारवाद दोनों का विरोधी था। मतधर्मों के कारण यह सोशलिस्ट लीग शीघ्र ही समाप्त हो गई। सन् १८९३ में सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन और सोशलिस्ट लीग के सदस्यों के सहयोग से इण्डेपेंडेण्ट लेबरपार्टी ( Independent Labour Party ) की स्थापना हुई। इसके सदस्यों में जीयर हार्डी ब्रुस ग्रेसिंवर, टाय मेन, रेयने मैकडोनाल्ड और थिंथिप स्लोडन आदि। जब सन् १९०० में ब्रिटिश लेबरपार्टी की स्थापना हुई तो इसी दल का प्रमुख हाय था।

फैबियन सोसाइटी ( Fabian Society ) की स्थापना ४ जनवरी १८८४ में हुई। यह उच्चकोटि के प्रतिभासम्पन्न विचारकों का, जिन्हें राजनीतिक कार्य शान्त भूमि-पर निर्धारण और समाजवाद का प्राथमिक ज्ञान था संयोज था। यहां सामाजिक नीतिसाधन की प्राथमिक समस्याओं पर विचार विनिमय एवं शोधार्थ हुआ करता था। इसके प्रमुख सदस्यों में जार्ज बर्नार्ड शॉ (George Bernard Shaw), सिडनी वेब (Sidney Webb), श्रीमती वेब, ग्राहम वॉलस ( Graham Wallas ), वेल्स ( H G Wells ), एना बेसेंट ( Annie Besant ) विलियम क्लार्क (William Clarke) सिडनी ओलिवर ( Sidney Oliver ) मैकडोनाल्ड ( J R Macdonald ), सास्की, फीस और एल्सी ( C. Atlee ) आदि थे। इस सोसाइटी का 'फैबियन नाम पढ़ने का कारण यह था कि फैबियस (Fabius) ने, जो कि प्राचीन रोम का एक सेनापति था, हिनसात से बूढ़ करते समय प्रतीक्षा एवं शान्त-शक्ति बढ़ने की नीति



को अपनाया जा ।<sup>1</sup> यद्यपि उच्चरी इस नीति की निन्दा हुई थी किन्तु बलुतः यह बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई । फ्रेडियन सोसाइटी ने भी "क्रमशः आने बढ़ने की अनिवार्यता" (Inevitableness of gradualness) में भासा प्रकट की थीर प्रथमी सोसाइटी का नाम 'फ्रेडियन' रखा । इस सोसाइटी की शानार्द विरव विचारधर्मों में भी सुवीं, जो आज तक बल रही हैं ।

बनौईं रा ने फ्रेडियन सोसाइटी का बोधसाधन बिबा है जो कि सन् १८८५ में प्रकाशित हुआ । इसमें समाजवाद को लक्ष्य घोषित किया गया है और इस बात पर बल दिया गया है कि "भूमि का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए और राज्य को प्रत्येक उदात्त विभाग में प्रतियोगिता करनी चाहिए ।" फ्रेडियनवादी ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, जिसमें बलता का नीतिक एवं नीतिक उत्पादन हो सके । सिङ्गी फोसिबर का कहना है कि समाजवाद व्यक्तिवाद के प्रतिकूल होने की प्रपेसा सझका ही किम्बु है । यह मानव के पूर्ण विकास एवं धार्योत्थान की एक धार्यक स्थिति है । प्रत्याय और प्रसमानता का मूल कारण व्यक्तिगत स्वामित्व-बद्धति है, जो बर्ष-बुद्ध को धोरवाहन देती है और मानव को बार्थिक दृष्टि से बूमित बनाती है । इसलिये यह प्रनीतिक है । किन्तु समाजवाद के द्वारा नीतिकता सवल एवं सुदृढ़ होती है । इसका प्रभार सहयोग और साम्य तापना है । व्यक्ति समाजवादी व्यवस्था में नीतिक धार्यकताओं से विमुक्त रह कर प्रथमी नीतिकीर्ति में रत रहता है । एडवर्ड पीज (Edward Pease) जो फ्रेडियन सोसाइटी का प्रनेक बर्षों तक र्मधी रहा, सतवा कबल है, कि हमारा स्रैस्य समाजवादी बनाने की प्रपेसा समाजवाद बनाना है और समाजवाद को सम्माननीय रूप प्रदान करना है । ऐसा समाजवाद बनाना है जिसरी सधस्यता प्रत्येक सम्भ्रान्त संज्ञेय मिःसंकीय स्वीकार कर सके ।

फ्रेडियनवादी विचारकों ने समाजवाद की लधीन करेना रकी है जो कि मात्रसंवाद से बर्षबा बिल है । इन्हीं मार्स के बय-सिझान्त से प्रसहित प्रकट की है । इनका बिस्वास है कि बलुधर्मों का मूल्य अधिक कुट होने की प्रपेसा

L. 'For the right moment you must wait, as Fabius did most patiently when warring against Hannibal though many censured his delays but when the time comes you must strive hard as Fabius did or your waiting will be invain and fruitless.'

समाजवाद है। इनके विचारों पर रिकार्डों के 'सुनि-कर सिद्धान्त' और जर्बोन (Jevon) के उपयोपिता सिद्धान्त का पर्यति प्रभाव पड़ा है। हेनरी जार्ज (Henry George) के विचारों ने भी फेबियनवादियों को बड़ा प्रभावित किया है। बर्नार्ड शा ने सिखा है कि हेनरी जार्ज के एक कर सिद्धान्त में विद्विष्ट समाजवादियों को "पूर्ण औद्योगिक पुनर्निर्माण का समर्पक बना दिया।" और इन्हें जर्मोहाथी प्रया पर राज्य के निर्दयता की प्रेरणा भी उसी से मिली है। फोकर का कहना है कि, "उन पर क्रिपेट- हेनरी जार्ज के सिद्धान्त, मार्क्स के सिद्धान्तों की विविध ब्रिटिश व्याख्याओं, और, जॉन स्टुमर्ट मिस के व्यक्तिवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत विकसित होनेवाले समष्टिवाद का प्रभाव पड़ा था।" सेक्रेन बार्डर की धारणा है कि मार्क्स की अपेक्षा मिस ही फेबियनों का प्रादि प्रेरक है। इन्होंने मार्क्सवाद के प्रसार को रोकना और 'जर्म संघर्ष', 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' तथा अन्तिकारी पद्धति की धारणा की है। फेबियन समाजवाद की प्रतिष्ठा सुधारों द्वारा करना चाहते हैं। इसी कारण इन्होंने 'शने-शने' नीति को अपनाया है। इसी राज्य में अटूट पड़ा है। इनका मत है कि राज्य 'जनता का प्रतिनिधि और संरक्षक' है तथा 'अभिप्राय और प्रबन्धकर्ता' है। फेबियनवादियों ने यमिकों को नागरिक तथा धार्मिक उन्नति हेतु तथा पूँजीगतियों को शोषण की प्रक्रिया को रोकने के लिए अनेक व्यावहारिक योजनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन्होंने समाजवाद को जनवादी आधार देकर इंग्लैण्ड के जन जीवन में उसे सम्मानित एवं अग्रसर बना दिया है। फलतः इंग्लैण्ड में समाजवादी होना एक फैशन ही गया। फेबियनवाद ने यमिक वस को क्रिपेट- प्रभावित किया है। इंग्लैण्ड में जो बड़ा-बड़ा बिधि निर्माण हुए उन पर भी जनता विरोध प्रभाव पड़ा है। ग्रे (Gray) का कथन है कि फेबियनवादियों का समाजवाद स अभिप्राय राज्य के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करने में ही है, इसमें अधिक और कुछ नहीं है। किन्तु सिद्धान्तिक क्षेत्र की धारणा फेबियनवादियों का व्यावहारिक क्षेत्र में अधिक योगदान पड़ा है।

1 'In this respect their Socialism is the Socialism of the Simple-minded, Signifying as it does, nothing more the indefinite extension of State activity So that the hawk's licence becomes a proof of the progress of Socialism, and the existence of a policeman demonstrates that already we are living in a Communistic State Gray -The Socialist Tradition

## सशोधनवाद

कार्ल मार्क्स के विचारों की आलोचना को सशोधनवाद (Revisionism) की संज्ञा प्रदान की गई है। इसका प्रमुख प्रवर्तक मार्क्स का शिष्या हीर्नस्टीन (Bernstein) था। इसका जन्म १८१० में हुआ। इसने अपने जीवन में उत्थान-पतन के दिन देखे। इसने जर्मनी को छोड़कर अपने जीवन का अधिकांश भाग अंग्ल में बिताया। यह एंसेस का मित्र था और एंसेस को सोसाइटी का प्रस्ताव सबसे भी रहा। सन् १९०० में यह जर्मनी चला गया और सशोधनवादी विचारकों में इसका प्रमुख स्थान रहा है। हीर्नस्टीन को मार्क्स से अनेक बातों में मतभेद है। इस मतभेद का अन्वेष (Die Neue Zeit) नामक जर्मन पत्र में 'समाजवाद की समस्याएँ' के शीर्षक में किया गया है, जो कि सन् १८९६-९८ में प्रकाशित हुआ। हीर्नस्टीन ने १८९१ में Vorwärtzeitung des Sozialismus नामक पत्र की रचना की जिसमें 'असले मार्क्स' के मुख्य-सिद्धान्त और इतिहास की भीतिक व्याख्या का अंशल किया है।

(१) मार्क्स ने कहा था कि पूँजीवादी प्रपत्ति के कारण मध्यमवर्ग (Middle Class) विभूत हो जायगा और केवल थोड़े से पूँजीपतियों के अतिरिक्त बहु संख्यक बचता श्रमिक हो जायगी। हीर्नस्टीन ने आंकड़े देकर यह सिद्ध किया है कि मार्क्स की यह भविष्यवाणी असत्य सिद्ध हुई है। उसके मत में आज परिचामी यूरोप में मध्यवर्ग के क्लिप्त होने की अपेक्षा उसका विस्तार हो रहा है।

(२) मार्क्स का कथन था कि अन्तर्विरोधों के कारण पूँजीवाद में आर्थिक अन्तःकरण के संकट बरा बरा आते रहेंगे और ये संकट अन्तःकरण हीन आर्यने। पूँजीपतियों के पास इन संकटों से विमुक्ति पाने के लिए कोई हत नहीं होगा। हीर्नस्टीन ने इस विचार के विरुद्ध यह बतसाया है कि पूँजीपतियों ने अपने संगठन एवं दूरदर्शी योजनाओं द्वारा इन आर्थिक संकटों के प्रभाव को धीरे धीरे के अन्तःकरण निवारण लिये हैं। इसके अतिरिक्त संसार के राज्यों में

1 'The number of members of the possessing classes is today not smaller but larger The enormous increase of social wealth is not accompanied by a decreasing number of a large Capitalists, but by an increasing number of Capitalists of all degrees. The middle classes change their character but they do not disappear from the Social Scale' —Bernstein

विस्तार और उन्मादन के नवीन साधनों न ऐसे संकटों की सम्भावना को कम कर दिया है।

(३) मार्क्स ने जिस बर्न-संघर्ष की परिकल्पना की थी वह भी साकार नहीं हो सकी और न पूंजीवादी देशों में मार्क्स द्वारा भाषित स्थितियाँ ही हुईं। ज्ञानि यहि हुईं भी ता उन देशों में जहाँ मार्क्स कल्पना की नहीं कर सकता था कि इन देशों में ज्ञानि होगी, जैसे, रूस और चीन में। बर्नस्टोन का कहना है पूंजीवादी देशों में बर्नसंघर्ष तीव्रतर होने की अपेक्षा स्थिति पड़ रहा है, क्योंकि पूंजीवादी देशों में कानून द्वारा व्यक्तियों की दशा में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। इसके असावा, जनता को मताधिकार प्राप्त होने से समाजवादी लानामित हो रहे हैं। पात्र यूरोप और बिरोपत जर्मनी में समाजवादी मतवादाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। अतः एक दिन संभव में समाजवादी बहुमत बनने पर सरकार का निर्माण होना सम्भव हो सकेगा। उसका यह हक मत है कि, "किना कुछ प्रजातान्त्रिक परम्पराओं एवं संस्थाओं के अात्र का समाजवादी सिद्धान्त वास्तव में सम्भव नहीं होगा।" भारत के केरल राज्य में साम्यवादियों की सरकार बनने से बर्नस्टोन के इस कथन का सर्वथा प्राथिम्य सिद्ध होता है।

(४) बर्नस्टोन ने मार्क्स की इतिहास की भौतिक व्याख्या और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की भी आलोचना की है। इतिहास की भौतिक व्याख्या के सम्बन्ध में उसका कहना है कि ऐतिहासिक यति का निर्धारण उन्मादन प्रणाली द्वारा ही नहीं हाता, अपितु उसके निर्धारण में अात्र तत्त्वों का भी अात्र होता है— जैसे कानून ऐतिहासिक एवं सामिक रीतिरिवाज भौतिक विचार, मूल्य और अन्य प्राकृतिक परिस्थितियों। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि मार्क्स ने उन्मादन प्रणाली की केवल प्रयत्नता ही की। उसने अन्य तत्त्वों की नजरअन्दा नहीं किया था। अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त बर्नस्टोन के मत में एक आबसूत्र (abstract) कारण है। उसका कहना है कि, 'केवल यह तथ्य वैज्ञानिक

1 It is to be shown most clearly that the labour value is nothing more than a key, an abstract image like the philosophical atom endowed with a Soul a key which employed by the master hand of Marx, has led to the exposure and presentation of the mechanics of Capitalist economy as thus and not been hitherto treated not so forcibly, Logically and clearly

## संशोधनवाद

कार्ल मार्क्स के विचारों की आलोचना को संशोधनवाद (Revisionism) की संज्ञा प्रदान की गई है। इसका प्रमुख प्रवर्तक मार्क्स का देशवासी बर्नस्टीन (Bernstein) था। इसका जन्म १८२० में हुआ। इसने अपनी जीवन में उन्मत्त-पतन के दिन देखे। इसने जर्मनी की छोड़कर अपनी जीवन का अधिकांश भाग लन्दन में बिताया। यह एंगेल्स का मित्र था और फ्रियर सोसायटी का ब्रह्माण्ड सदस्य भी रहा। सन् १९०० में यह जर्मनी चला गया और संशोधनवादी विचारकों में इसका प्रमुख स्थान रहा है। बर्नस्टीन का मार्क्स से घने घातों में मतभेद है। इस मतभेद का उल्लेख (Die Neue Zeit) नामक जर्मन पत्र में 'समाजवाद की समस्याएँ' के शीर्षक में किया गया है, जो कि सन् १८९६-९८ में प्रकाशित हुआ। बर्नस्टीन ने १८९९ में Vorwärtet zungen des Sozialismus नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें उसने मार्क्स के मूल्य-सिद्धान्त और इतिहास की मौलिक व्याख्या का खंडन किया है।

(१) मार्क्स ने कहा था कि पूर्वीवासी प्रवृत्ति के कारण मध्यवर्गी (Middle Class) विमुक्त हो जायगा और केवल बोह्रे से पूर्वीवर्तियों के प्रतिष्ठित बहु संस्पर्क जनता अधिक हो जायगी। बर्नस्टीन ने धाँकड़े देकर यह सिद्ध किया है कि मार्क्स की यह भविष्यवाणी असत्य सिद्ध हुई है। उसके मत में धार्य पश्चिमी यूरोप में मध्यवर्ग के विमुक्त होने की अपेक्षा उसका विस्तार हो रहा है।

(२) मार्क्स का कथन था कि अन्तर्विरोधों के कारण पूर्वीवाह में धार्मिक उत्थारण के संकट यदा-यदा घाते रहेंगे और ये संकट कमरा' पम्प्रीरठम होते जायेंगे। पूर्वीवर्तियों के पास इन संकटों से विमुक्ति पाने के लिए कोई हत नहीं होगा। बर्नस्टीन ने इस विचार के विरुद्ध यह बतसाया है कि पूर्वीवर्तियों ने अपने संकटन एवं कुरबरीयों मोचनार्यों द्वारा इन धार्मिक संकटों के प्रभाव को छोड़ करने के उपाय विचार लिये हैं। इसके प्रतिष्ठित संसार के बाजारों में

1 The number of members of the possessing classes is today not smaller but larger The enormous increase of social wealth is not accompanied by a decreasing number of a large Capitalists, but by an increasing number of Capitalists of all degrees. The middle classes change their character but they do not disappear from the Social Scale"—Bernstein

स्वित्जरलैंड और अनादन क नवेल सभनो म एउ संकटो का सन्नाहना को बन कर रिया है ।

(१) मास्त्र ने दिस बदे-संघर्ष की परिकल्पना का जो बहू नी सकार बहो हा सरी और न पूजावादी देतो में मास्त्र द्वारा मन्दित्र बन्दिना हो हू । बन्दि मरि हूई भी तो उन देतो में बहो मास्त्र कपना भी नहो कर सक्ता का कि एउ देतो में बन्दि होतो, जैसे कस और चीन में । बर्नस्टोन का कहना है पूजावादी देतो में बर्नस्टोन सीकर हुंते की प्रशा सिमित पड़ रहा है, क्योंकि पूजावादी देतो में कपल द्वारा मन्दित्रो की बसा में सतरोपर मुकार हो रहा है । इसके अनावा, अनावा को मन्दित्रार प्रान हुंते से अनावादी सानन्दित्र हो रहे हैं । अना दूरोर और सिरोर बर्नो में अनावादी मन्दित्रादी की संसा में बन्दि हो रही है । अना एउ दिन संघर्ष में अनावादी बहुमत बनने पर अनावा का निर्मात्र हुंदा सम्भव हो सकेगा । उक्ता यह हूइ मत है कि "बिना हुंदा प्रबन्धिना परन्तुपरी पूर्व मन्दित्रो क अना का अनावादी सिद्धांत मास्त्र में सम्भव नहो हुंदा ।" अना के 'केरल' राज्य में सम्भवानो का अकार बनने से बर्नस्टोन के हुंदा कपल का सर्वना अन्वित्र सिद्ध हुंदा है ।

(५) बर्नस्टोन ने मास्त्र की इतिहास की नीतिक अन्वित्रा और अन्दित्र मूय के सिद्धांत की मी अनावादी की है । इतिहास का नीतिक अन्वित्रा के अन्वित्र में उक्ता उक्त है कि एउतिहासिक मन्दि का निधारण अनावादी-मन्दि की द्वारा ही नहो हुंदा अन्दि उक्ते निधारण में अना अना की हुंदा हुंदा है—  
जैसे अना दैतिहासिक एवं अन्दि एउतिहासिक नीतिक विचार, मूय और अन्य प्राकृतिक परिधिना। यहाँ यह बना देना अन्वित्रा है कि मास्त्र ने अनावादी-मन्दि का अन्वित्र प्रबन्धिना की मो । अन्दि अन्दि उक्तो को अनावादी नहो किया का । अन्दित्र मूय का सिद्धांत बर्नस्टोन क मत में एक अनावादी (abstract) अन्वित्रा है । उक्ता कहता है कि 'बिना यह उक्ते अन्वित्रा

1 It would have been shown most clearly that the I book value is nothing more than a key, an abstract image like the philosophical atom endowed with a Soul—a key which employed by the master hand of Marx has led to the exposure and presentation of the mechanics of Capitalist economy as this and not been hitherto treated, not so forcibly, Logically and clearly

समाजवाद या साम्यवाद का आधार नहीं हो सकता कि बैठन-प्राप्त व्यक्ति को अपने श्रम का पूरा मूल्य उपलब्ध नहीं होता है।”

(५) मार्क्स ने कहा था कि समाजवादी क्रांति के कारण पूर्वीवाद का अन्त हो जायगा, और सर्वहारा-वर्ग की अधिनायक शक्ति की प्रतिष्ठा होगी। बर्नस्टीन का कथन है कि अधिनायकशक्ति प्राचीन सम्पत्ता की प्रतीक है। अतः महा विचार के द्वारा समाजवाद की प्रतिष्ठा हो सकती है और अरस्तु व्यक्ति के बन्धीर परिणामों से बचा जा सकता है।<sup>1</sup>

बर्नस्टीन के इन विचारों का बोरेस ने भी समर्थन दिया है। बर्नस्टीन का मत है कि, ‘प्रजातंत्र और समाजवाद में परस्पर अन्तर्विरोध नहीं है, प्रजातंत्र समाजवाद की शर्त है।’ “प्रजातंत्र समाजवाद का केवल अर्थ ही नहीं अभिप्राय अर्थ का सार तत्व भी है।” इस प्रकार बर्नस्टीन ने प्रजातंत्रिक समाजवाद की प्रतिष्ठा के लिए एक योजना प्रस्तुत की है।

सन् १८८५ में प्योत्र की मृत्यु के उपरान्त कार्ल कौटस्की मार्क्सवादी समाजवाद का सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार था। वह जर्मनी का प्रमुख व्यक्ति तथा दार्शनिक एवं अर्थशास्त्री का लेखक था। उन्होंने बर्नस्टीन के संशोधनवाद की दार्शनिक आलोचना की है। कौटस्की ने १९१० की रूसी क्रांति का भी दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन किया है। जार्ज प्लेखानोव (George Plekhanov) मार्क्सवादी बर्नस्टीन का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् एवं विचारक समझा जाता है। उन्होंने भी १९१० की रूसी क्रांति की दार्शनिक दृष्टिविन्दु से आलोचना की है। कौटस्की और प्लेखानोव दोनों ही विचारक संशोधनवादी विचारकों की श्रेणी में आते हैं।

अस्तु संशोधनवादी समाजवादी मध्यम-मार्ग को अपनाते हैं। उनका यह विश्वास है कि न ही बर्नस्टीन का ऊन्मुख अर्थ राजनीतिक अन्तर्ग में ही सम्भव है और न समाजवाद की प्रतिष्ठा ही एकमात्र बर्नस्टीन से ही सकती है। अतः इनकी दृष्टि में अन्धता एवं समझौते का मध्यम-मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार अन्धता की मौखिक शक्ति अविश्वास और संशोधनवाद है।

But this key refuses service over and above a certain point, and therefore, it has become disastrous to nearly every disciple of Marx.

1 Universal franchise is the alternative to violent revolution—Bernstein

समष्टिवाधियों ने इनसे प्रेरणा लेकर विनासवादी एवं सुधारवादी पक्ष को ही अपनाया है।

### समष्टिवाद की कार्य-पद्धति

समष्टिवादी कार्य-पद्धति पूर्णतः जनतंत्रीय एवं वैज्ञानिक है। समष्टिवादी विचारकों की जनतंत्र धीर विचारवाद में पूर्ण निष्ठा है। उनकी दृष्टि में जनतंत्र समाजवाद का मध्यम ही नहीं अपितु उच्चतम सार तत्त्व भी है। अतः समष्टिवादी कार्य-मार्ग के 'सद्वृत्त ज्ञान्ति' के मार्ग का परिष्कार कर प्रजातंत्रीय पद्धति को अपनाते हैं। वे कासमाज्य द्वारा प्रतिपादित 'बर्ग-संघर्ष' को ही सामान्य घोषित करते हैं। 'बर्ग-संघर्ष' के स्थान पर 'बर्ग-समन्वय' (Class Collaboration) का अपना धारण करते हैं। वैज्ञानिकवाधियों का यह दृढ़ मत है कि 'बर्ग संघर्ष' की अपेक्षा 'बर्ग-समन्वय' अधिक प्रभावकारी है। 'बर्ग समन्वय' से भी व्यक्तियों के कार्य प्रभावित होते हैं। 'बर्ग-समन्वय' समाज की आधार-भित्ति है। ब्रिटिश लेबर पार्टी के प्रमुख नेता एटली ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए कहा है कि लेबर पार्टी 'बर्ग-संघर्ष' में विश्वास तो करती है, किन्तु समाज की उच्च आधाररिक्ता नहीं मानती। भारत में समाजवादी नेता आचार्य जेठूदेव और डॉक्टर रामनरहर लोहिया बर्ग संघर्ष के कट्टर समर्थक हैं। आचार्य जेठूदेव के शब्दों में, 'बर्ग-संघर्ष ही सामाजिक प्रगति का आधार रहा है।' 'बर्ग-संघर्ष के द्वारा ही समाज की प्रगति होती आयी है समाजवादी हम कठोर सत्य की खोज नहीं कर सकते।' जयप्रकाश नारायण भी बर्ग-संघर्ष में विश्वास करते हैं, किन्तु आज कम से 'बर्ग-समन्वय' के प्रयोग में रत हैं। इस प्रकार समष्टिवाधियों ने बर्ग-संघर्ष और 'सद्वृत्त ज्ञान्ति' के स्थान में 'बर्ग-समन्वय' और 'वैज्ञानिक तरीकों' को बहाल की है। जर्मन-समाजवादी-जनतंत्रीय पार्टी के नेता हर्बर्ट (F. Ibert) तो ज्ञान्ति को महापान समझता है। वैज्ञानिकवादी भी 'सद्वृत्त' ज्ञान्ति के स्थान पर 'शिक्षा-मार्ग' को महत्त्व देते हैं। वे पूर्णतः विचारवादी हैं। बर्नार्ड टा का अटूट विश्वास है कि शिक्षा द्वारा अंधेरी जनता को समाजवाद में दीक्षित किया जा सकता है और इस प्रकार ब्रिटिश संसद में समाजवाधियों का बहुमत हो सकता है। द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सत्र के २६ जनवरी १९१९ के बर्न सम्मेलन का वैश्विक प्रस्ताव समाजवादी समाज के स्थापित के लिए जनतंत्र एवं स्वतंत्रता की आवश्यकता के बल पर दृष्टे प्रकाश डालता है। इस प्रकार समष्टिवादी विचारकों का जनतंत्रीय व्यवस्था में निरहित



नवा के मीलिक अधिकार, विभिन्न संघटनों के निर्माण की स्वतंत्रता, बचक अधिकार, राज्य-संभाजन में जन-सहयोग और उत्तरदायी शासन आदि में पूर्ण विश्वास है। उनके मठ में अर्थतंत्र और समाजवाद प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

समष्टिवादिनों की धारणा संघर्ष में है। संघर्ष प्रवर्तन का मूर्तका है और समाज एक विशिष्ट सामग्री है। संघर्ष में बहुमत प्राप्त करने के लिए राजनीतिक शक्तों के निर्माण की आवश्यकता होती है। ये एक जनता को अपने कार्यक्रम से परिचित कराने के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों को प्रयोजित हैं। इस प्रकार जनमत बनता है और संघर्ष में बहुमत होने पर सरकार का निर्माण होता है। समाजवादी सरकार निर्मित होने पर एक भूमि, उद्योग और उत्पादन के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण कर पूंजीवाद का सम्मूलन कर देना। राज्य का प्राथमिक ध्यान पर एकाधिकार होगा। प्रत्येक कार्य राज्य द्वारा जन-हित की दृष्टि से होना और उद्योग का अस्त हो जाना। इस प्रकार समाजवादी समाज की स्थापना होगी। किन्तु समाजवादी समाज की स्थापना बसाव न होकर क्रमशः और शक्ति-शक्ति होगी। सभी उद्योग धर्मों का एक साथ राष्ट्रीयकरण नहीं होगा। ऐसा करने से राष्ट्र-हित होने की सम्भावना ही सचली है। अतः राष्ट्रीयकरण क्रमशः होगा। इसके अतिरिक्त सभी उद्योग धर्मों का राष्ट्रीयकरण के लिए उद्योग भी ही होंगे। व्यवसाय तीन प्रकार के होते हैं—(१) पूर्ण परिवहन व्यवसाय जैसे आहारसूत उद्योग (Key industries) कहते हैं, जैसे बैक मोहो, जेवला खान, विद्युत् और अन्त्यायत आदि का राष्ट्रीयकरण शीघ्र आवश्यक है। (२) ऐसे व्यवसाय जो सभी राष्ट्रीयकरण के लिए उद्योग नहीं हैं जैसे कायम आगुन विपासनाई, तेल, बत्त आदि और (३) वे उद्योग जो समाज विकसित और व्यक्तिगत अधिकार में हैं जैसे, बड़ई, बर्नी धीरी, होटल आदि। ब्रिटेन की लबर पार्टी ने अपने शासनकाल में बैक, खान, पूंजीवाद के कारखाने और विनिर्माण आदि का संसदीय नीति द्वारा शक्ति-शक्ति राष्ट्रीयकरण किया था। धीरे-धीरे राष्ट्रीयकरण करने से व्यवसाय सुसंरक्षित हो जायेगा। कर्मचारियों को अनुभव होगा और यह अनुभव धर्म उद्योगों के राष्ट्रीयकरण में साधकारी होगा।

समाजवादी किसी व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण बिना मुपावजा किये नहीं करेगा। बर्नी शक्ति का कथन है कि मुपावजा न होकर प्राथमिक संघटनों को पैदा करना होगा। ब्रिटिश लबर पार्टी मुपावजा देने के पक्ष में है। एटली ने सन् 1948 में ऐसे ही विचार प्रकट किये थे। किन्तु भारतीय समाजवादी एक मुपावजा देने का पूर्ण विरोधी है। जब उत्तर प्रदेश में जमींदारी का सम्मूलन

हुषा तो ज्यने मुभाबबा बेने का बिरोध किया था। प्रठ सभी समाजबाबी मुभाबबा के प्रस्न पर एकमत नहीं हैं।

समष्टिबाबी वैधानिक जनतंत्रीय नीति के उगासक हैं। सुधार और विकास उनकी कार्य-प्रणाली का एक प्रमुख भाग है। समाजबाद की स्थापना वैधानिक ढाँची से हो सकती है, इसमें उनका मद्दत बिरबास है। जहाँ जनतंत्रीय प्रणाली प्रतिष्ठित है और मठाबिकार सभी को उपसम्ब्य है तो रक्षपाठ की क्या भाबर कता है? युक्त पद्वर्धनों एवं रक्षपाठ की भाबरयकता नहीं होती है जहाँ प्रकारय कर से कार्य करना असम्भव होता है। ब्रिटेन, अमरीका और भारत जैसे देशों में समाजबाद की स्थापना वैधानिक जनतंत्रोप तरीकों से की जा सकती है। प्रठ समष्टिबाबी वैधानिक जनबाद को समाजबाद की प्रतिष्ठा के लिए एक विशिष्ट साधन समझते हैं। वे उन्हीं कार्यों को करते हैं जो वैधानिक दृष्टि से उचित हैं।

## सामाजिक व्यवस्था

समष्टिबाबी राजनैतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीयकरण में बिरबास करते हैं। प्रठ समाजबाबी व्यवस्था में बिन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो जायेगा उनमें से जो अखिल देशीय होंगे वे केन्द्र के अन्तर्गत रहेंगे, अन्य सब स्थानीय संस्थाओं द्वारा संशासित होंगे। जो इन उद्योगों में काम करेंगे उनके अधिकार सुरक्षित होंगे और उनका निम्नतम वेतन निर्धारित कर दिया जायगा। यह निर्धारित वेतन कम-से-कम इतना आवश्यक होना जिससे समुचित जीवन मापन करना सम्भव हो सके। राष्ट्रीयकरण सभी उद्योगों का नहीं होगा। केवल उन्हीं व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण होगा जो कि आचारसूत उद्योग भाबना उत्पादन के प्रमुख साधन हैं। फलतः समष्टिबाबी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तिगत उद्योग एवं सम्पत्ति भी रहेगी। व्यक्तियों की धामबली में बिरोध अन्तर नहीं रहेगा। आर्थिक साम्य जाने के लिए वृत्तीपतियों पर कर भार अधिक रहेगा। उन पर धान्य कर और सम्पत्ति पर मृत्यु-कर सभाकर आर्थिक बैपम्य को दूर किया जायगा। इस व्यवस्था में राष्ट्रीयकृत व्यवसायों का लक्ष्य साम की अपेक्षा जन-हित होना। जिस वस्तु की समाज को भाबरयकता ज्ञानी ज्ठी का उत्पादन होना। वस्तुओं के मूस्य का निर्धारण भी सामाजिक भाबरयकता के दृष्टि बिम्बु से होना। सर्व साधारण के उन्मोच को वस्तुओं का मूस्य जागत से कम भी हो सकता है।

राज्य का यह प्रश्न कतव्य हीमा कि यह बेरोजगारों को काम दे, जब तक उन्हें कोई काम नहीं मिलता है तब तक उनके भरण-पोषण के लिए इति (Dole) देना आवश्यक होगा। समाजवादी समाज में यदि कोई भ्रष्टाचार रहता है, तो इससे अधिक और कोई सम्भावना बात नहीं हो सकती। अतः यह राज्य का पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि कुछ, अपाहिण और ऐसे लोगों की, जो शारीरिक दृष्टि से काम करने में अयोग्य हैं, उनकी जीविका की व्यवस्था करे। यह राज्य का कर्तव्य ही नहीं अपितु उसका उत्तरदायित्व है।

समाजवादी व्यवस्था में एक निश्चित अवस्था तक बच्चों की स्कूल जाता अनिवार्य होगा। यह आयु १६ वा १७ वर्ष तक हो सकती है। शिक्षण-काल में छात्रों से अन्य कोई काम नहीं लिया जायेगा। निष्पक्ष शिक्षा के साथ-साथ विद्यार्थियों को और अन्य सुविधाएँ भी उपलब्ध होंगी। उन्हें पुस्तकें और बाल्यालय उपलब्ध मिलेगा।

## राज्य और स्वतंत्रता

समष्टिवादियों की दृष्टि में राज्य न एक 'बर्बाद संस्था' है और न 'बर्ष-संबर्ष' ही समाज की धाराधरिता है। राज्य या समाज आवश्यक के समान हैं। बिना प्रकार आवश्यक और उसके अर्थों में पारस्परिक धर्मित सम्बन्ध होता है और वे सम्बन्धित होते हैं, उसी प्रकार समाज और व्यक्ति भी एक-दूसरे से सम्बन्धित और सम्बन्धित होते हैं। व्यक्ति का नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास राज्य या समाज द्वारा ही सम्भव है। समाज की प्रगति भी व्यक्ति पर निर्भर करती है। इस प्रकार व्यक्ति-हित और राज्य हित अन्वयित्व में अतः राज्य एक सर्व-सहयोगी संस्था है। यद्यपि पूँजीपति और व्यक्ति दोनों वर्गों में वर्ग-विरोध है, किन्तु समाज-अवस्था है, जहाँ पारस्परिक सहयोग परम आवश्यक है। यह पारस्परिक सहयोग तभी सम्भव होगा जबकि पूँजीपति द्वारा शोषण बन्द हो। यह शोषण की प्रवृत्ति राज्य द्वारा ही बन्द हो सकती है। अतः राज्य का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर एकाधिकार हीमा चाहिए।

समष्टिवादी, व्यक्तिवादियों की भाँति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मानव प्रगति के लिए आवश्यक समझते हैं। किन्तु व्यक्तिवादी नवराज्य स्वतंत्रता के पराधीन हैं, जबकि समष्टिवादी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास एवं स्वतंत्रता की कारणी राज्य में ही सम्भव समझते हैं। समाजवादियों की धारणा है कि बिना राज्य के हस्तगत के व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। व्यक्तिवादियों

की स्वतंत्रता में केवल योग्यतम ही जीवित रह सकेगा, किन्तु समाजवादी स्वतंत्रता में सभी को व्यक्तिगत-विकास के समान बराबर उपसम्ब होंगे और राज्य के हस्त-लेप से अयोग्यतम भी योग्यतम बन सकेगा। अतः राज्य का अस्तित्व एवं उसका हस्तलेप मानव के व्यक्तिगत विकास के लिए परमावश्यक है। विरक्तानीत शोषण एवं ब्याप्त से विमुक्ति पाकर मानव स्वच्छा से विचारप्रतिष्ठा कर सकेगा। ऐसे वातावरण में ही उसका विकास सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार राज्य का आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में हस्तलेप करना नितास्त आवश्यक है।

### समष्टिवाद की विशेषताएँ

( १ ) समष्टिवाद विस्तारमय या अल्पिकायी उपायों की अपेक्षा शान्तिमय वैधानिक एवं विकासवादी उपायों में अपनी निष्ठा प्रकटित करता है।

( २ ) समष्टिवादी कार्य माकस के अदृष्ट-अनुवाची नहीं हैं। वे अल्प समाजवादी विचारकों की विचारधाराओं को अस्वीकार करते हैं। उनकी धारणा है कि माकस के विचारों में देश, कास और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

( ३ ) समष्टिवाद का अन्तर्गत और व्यक्ति-स्वतंत्रता में पूर्ण विश्वास है। यह समाजवादी समाज की प्रतिष्ठा एवं संवत्सन अन्तर्तीय प्रणाली द्वारा ही करना चाहता है। अन्तर्गत में, विभिन्न वर्गों का निर्माण, मूख अविचार, मापण-लेखन की स्वतंत्रता, बयस्क मताधिकार आदि निहित हैं। इसमें अविनम्यकृत्य को कोई स्थान नहीं है।

( ४ ) समष्टिवाद 'बर्ग संघर्ष' की अपेक्षा 'बर्ग-समन्वय' में अपनी धारणा प्रकट करता है। 'बर्ग-संघर्ष' को सिद्धान्ततः यह अक्षय मानता है किन्तु यह समाज की आचारप्रतिष्ठा नहीं है।

( ५ ) समाजवादी व्यवस्था में राज्य का अग्रुह एवं विधिभूत स्थान है। अराजक के साधनों पर उसका एकाधिकार होगा और उसी के द्वारा वे अन्वित होंगे। किन्तु यह कार्य शान्ति-शान्ति होना। अतः प्रयोग को वे अनुचित समझते हैं। ऐसी स्थिति में राज्य का कार्य अधिक बढ़ जायेगा।

( ६ ) समष्टिवाद में व्यक्तिगत अयोग एवं अन्वति भी रहेगी किन्तु वे शोषण के सामन नहीं बनने पाएँगे।

( ७ ) समष्टिवादी व्यवस्था में अराजक साम ही अपेक्षा अयोग्य एवं अक्षयता की दृष्टि से होना।

## समष्टिवाद और साम्यवाद

(१) मार्क्स का दर्शन साम्यवाद की आधारभूत है। यद्यपि परिस्थिति यथात् साम्यवाद में धनिक संशोधन हुए हैं, किन्तु साम्यवादियों का यदि प्रेरक मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही है। साम्यवाद का आधार भौतिक इन्द्रियवाद, इतिहास की भौतिक व्याख्या, वर्ग-संघर्ष, भय एवं अतिरिक्त मूल का सिद्धान्त और सर्वहारा का अधिनायकत्व है। किन्तु समष्टिवाद के प्रेरणा-स्रोत मार्क्सवाद, फेबियनवाद और संशोधनवाद हैं। यद्यपि समष्टिवादी मार्क्सवाद के धनिक विचारों से सहमत नहीं हैं, किन्तु वे उसका पूर्ण परिमाण नहीं करते।

(२) साम्यवाद सर्वहारा के अधिनायकत्व में विश्वास करता है। उसकी धारणा परम्परागत सांसदिक जनतंत्र में नहीं है। साम्यवादियों के मतानुसार सर्वहारा की अधिनायक-राष्ट्री में राजनीतिक जनतंत्र न राष्ट्रीय है और न व्यावहारिक ही। फिर साम्यवादियों ने जनतंत्र की परिभाषा भी नहीं की है। किन्तु समष्टिवादी परम्परागत संसदीय जनतंत्र में विश्वास करते हैं। वे इन जनवादी ढाँचे को और अधिक विवक्षित एवं जनवादी बनाना चाहते हैं। उनका यह घट्ट विरकास है कि इस सांसदिक जनतंत्र के द्वारा समष्टिवाद की प्रतिष्ठा की जा सकती है।

(३) साम्यवाद और समष्टिवाद में जो प्रमुख विवेक है वह कार्य-प्रणाली का है। सी. एम. ओ. और अन्य विचारक इसी बाण्डा के हैं। साम्यवाद अपनी मजदूरी-प्राप्ति के लिए हिंस्रानक साधनों को मानता है। उसके मत में संयत्न शक्ति द्वारा ही साम्यवाद की प्रतिष्ठा हो सकती है। पूँजीवाद का अन्त वैश्व पूँजीवादियों को आतंकित करके ही किया जा सकता है। पूँजीवादी-वर्ग इतना आतंक है कि उसे शान्तिमय एवं वैश्व जनताओं द्वारा अधीनत्व नहीं किया जा सकता। इस प्रकार साम्यवाद एक शान्तिकारी दर्शन है। किन्तु समष्टिवाद इस कार्य-प्रणाली का समर्थक नहीं है। वह वैश्वानिक साधनों में विश्वास करता है। शान्ति-शान्ति नीति ही उसकी कार्य-प्रणाली का प्रमुख आधार है। वह पूँजीवाद का अन्त संयत्न शक्ति की अथवा वैश्वानिक शान्तिमय एवं जनवादी साधनों द्वारा करना चाहता है। एकेम्बलिन (Eckstein) इस अन्तर के विषय में कहता है कि, साम्यवादी एकमात्र शान्तिकारी कार्य एवं गृह-युद्ध द्वारा पूँजीवाद का अन्त करना चाहते हैं, किन्तु समाजवादी हमके निरपेक्ष इस वैश्वानिक साधनों को मानते हैं। वे पोटो की अथवा मत्र द्वारा अन्त इत्यन्त करते हैं और वे मानते हैं कि इस अन्त

का उपनीग चिरकाल तक नहीं करना है। वे प्रथमे चुनाव में मत द्वारा पदभूत किये जा सकते हैं।<sup>1</sup> इस प्रकार समष्टिवाद विकासवादी एवं सुधारवादी है।

(४) साम्यवाद वर्तमान घोर संयुक्त के एकल पर बल देता है। साम्यवादी वर्गों में अन्तरिक जनवाद (inner democracy) प्रतिष्ठित है। प्रत्येक सदस्य इस के अन्तर् किन्हीं भी प्रस्तुत प्रस्ताव पर अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट कर सकता है, किन्तु पूर्ण वाद-विवाद हो चुकने के उपरान्त घोर एक निश्चित निर्णय ले लेने के बाद, कोई भी सदस्य उस निर्णय की अक्षेपता या आलोचना या विरोध नहीं कर सकता। इस प्रथा को जनवादी केंद्रीयकरण (democratic centralism) की संज्ञा प्रदान की गयी है। प्रत्येक सदस्य के लिए यह अनिवार्य है कि उसका राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि-बिन्दु मार्क्स के वर्तन के अनुकूल ही हो। इस प्रकार साम्यवाद में वैचारिक एकता परम आवश्यक है। किन्तु समष्टिवाद केवल संयुक्त की एकता पर बल देता है न कि वर्तन की एकता पर। समष्टिवादी बल की आवश्यकता प्राप्त करने के लिए केवल सुधारवादी समाजवाद में निष्ठा होना ही पर्याप्त है। चाहे किसी सदस्य के विचारों की वृद्धमूर्ति कुछ भी हो उसकी एकमात्र आस्था सुधारवादी समाजवाद में हो, यही आवश्यक है। ब्रिटिश लेबर पार्टी में मार्क्सवादी प्रामार्क्सवादी, उदारवादी और स्टाई समाजवादी आदि विभिन्न विचारों के सदस्य रहे हैं। 'लार्को' मार्क्सवादी था। कैटलिन (Cattlin) और दर्बिन (Darbin) आदि विचारक घोर प्रामार्क्सवादी थे। लीजस्मिथ (Less Smith) उदारवादी या घोर सर स्टाफर्ड क्रिप्स (Sir Stafford Cripps) धार्मिक समाजवादी था।

(५) साम्यवाद राज्य को अन्त में समाप्त कर देने के पक्ष में है। मार्क्स के कल्पानुसार पूर्णवादी वर्गों को समुच्च नष्ट करने के लिए राज्य की आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु राज्य का अस्तित्व केवल संक्रमण काल तक ही बना रहेगा। साम्यवादी अक्षेपता में अन्तर्दीकता राज्य मुरम्भ कर फिर जायदा (Will

1 'First, communist seek to bring about the end of capitalism by a single act of revolutionary upheaval and civil war. Socialist, on the other hand adhere to strict constitutional Procedures: they seek power by ballots rather than bullets, and once in office, they know they are not in for ages, but are subject to be voted out in the next election.'

withdrew away)। किन्तु समष्टिवाद में राज्य के मुरम्ब कर मिलने का प्रसन्न ही नहीं चठगा। वे राज्य की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। वे उसके विकास पर बल देते हैं। समष्टिवादी व्यवस्था में राज्य की सत्ता अपरिमित होवी और कार्य क्षेत्र में असीमित वृद्धि होवी।

(१) साम्यवादी समाज में—“प्रत्येक व्यक्ति योग्यतानुसार कार्य करेगा और उसे आवश्यकतानुसार वस्तुएँ मिलेंगी।” किन्तु समष्टिवादी व्यवस्था में “प्रत्येक व्यक्ति योग्यतानुसार कार्य करेगा, किन्तु उसे धन के अनुसार भेगत मिलेगा।”

## समष्टिवाद की आलोचना

(१) समष्टिवाद शासन-व्यवस्था की व्यक्तिवारियों ने बहुत आलोचना की है। उनका कथन है कि समष्टिवादी शासन में निरंकुशवाद तथा लोकरशाही की प्रधानता रहेगी। राज्य के कार्य बढ़ने से राजकीय कर्मचारी अट्ट एवं पठित हो जायेंगे। उद्योग धर्मों का प्रबन्ध, कर्मचारियों की नियुक्ति और ठीके देने आदि का एकाधिकार उन्हें उलझ होगा। अतः पछाछ दिग्भ्रम और भ्रमकाररस्ती की प्रोत्साहन मिलेगा। अतः ऐसी बरा में समाज में अक्षयिकता बढ़ेगी। इसके उत्तर में समाजवादीयों का कथन है कि राज्य एक ऐसी संस्था है जिसका निर्माण बन इच्छा से हुआ है और उसकी आकाशों का पालन करना मनुष्य अपना परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं। जनमत के इच्छानुसार ही शासन-संभल जसेगा। इसके अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों में अट्टाचार का प्रमुख कारण पूर्णपति ही ही है। अतः जब पूर्णपति का अन्त हो जायेगा तो अट्टाचार का कोई प्रसन्न ही नहीं रहेगा।

(२) दूसरे उद्योगों का समाजीकरण कर देने से व्यक्ति की कार्य-मुक्तता नष्ट हो जायेगी। कार्य-मुक्तता एवं योग्य व्यक्ति उत्पादन में कोई विशेष अक्षयिक नहीं जेंगे क्योंकि उनके सम्मुख कोई प्रलोभन नहीं रहेगा। आर्थिक समाजवादी प्रतिष्ठा के कारण बन इच्छा करना सम्भव नहीं होगा। इतका उत्तर यह दिया जाता है कि व्यक्ति फिर भी, अधिक धामनी के लिए प्रयत्नशील रहेंगे जिससे कि उनका जीवन-स्तर उच्चतर हो सके।

(३) तीसरे, मिल स्लैस्टर तथा अन्य आलोचकों का मत है कि समाजवादी शासन-व्यवस्था में राज्य की अक्षयिक शक्तिशाली बना देने से मनुष्य दास-गुत्व हो

बाधेगा।<sup>1</sup> व्यक्तिगत स्वतंत्रता भंग हो जायेगी और मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य के लिए राज्य पर निर्भर करेगा। इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि राज्य के कार्यों और व्यक्ति-स्वातंत्र्य में कोई मौलिक विरोध नहीं है। राज्य द्वारा प्रकृत प्राथमिक स्वतंत्रता अन्य स्वतंत्रताओं को मूर्त रूप प्रदान करती है। बिना प्राथमिक स्वातंत्र्य के अन्य स्वतंत्रताओं का कोई औचित्य नहीं है। प्रत्येक समाजवाधियों का सबसे अधिकतम सुविधा प्रदान करके अधिकतम स्वतंत्रता प्रदान करना है, और यही स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है।

(४) बीचे, उद्ये समाजवादी इसके प्रजातंत्रीय कार्यक्रम को धम्यावहारिक बताते हैं। उनका कथन है कि प्रजातंत्रीय कार्यक्रम एवं सुधारों द्वारा पूर्वीवाध का अन्त नहीं किया जा सकता। पूर्वीवाधी छोटे-छोटे सुधारों में तो हस्तक्षेप नहीं करेंगे, किन्तु जैसे ही बड़े सुधारों द्वारा उनके हितों पर कठोर चोट होगी, वे उनका खट कर विरोध करेंगे। ऐसी स्थिति में बिना हिंसा व सशस्त्र क्रान्ति के कोई बड़ा सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं होगा। प्रत्येक प्रजातंत्रीय कार्यक्रम द्वारा पूर्वीवाध का अन्त नहीं हो सकता।

(५) पाँचवें प्रजातंत्रीय कार्यक्रम द्वारा धमिक-नेता पक्ष भंग हो जाते हैं। वे राजनीतिक भोक्त्रियता और पक्ष-सौमुरता के शिकार हो जाते हैं। उनका एकमात्र मध्य स्वार्थरता हो जाता है। धमिक-समस्याओं में उनकी कोई धमिक-रुधि नहीं रह जाती। बलुत ये जन-नेता राजनीतिक भाषाभास में फँसकर धमिक-भाष्योक्तनों का बड़ा प्रहित करते हैं।

(६) छठे, समष्टिवाधी व्यवस्था में धमिकों के जीवन में कोई विशिष्ट परिवर्तन नहीं होता। मिस्त्रनेह ऐसी व्यवस्था में उन्हें कुछ विरोध सुविधाय्य प्रपवा अधिकार उपलब्ध हो जायेंगे किन्तु रूँमे फिर भी वे धमिक ही। वे कोई मौलिक कार्य नहीं कर सकेंगे, क्योंकि उन्हें दूसरों के आदेशों पर वसता होया। उनकी रचनात्मक शक्ति विकसित नहीं हो पायेगी। वस्तुतः वे स्वयमेव स्वामी न होकर दास ही रूँगे। केवल स्वात्मिक का परिवर्तन होया। एक की दासता का परिष्कार कर दूसरे की दासता को प्रहृत करना होया।

1 "Individuals shall become the slaves of the state and collectivism would introduce the servile state" (Hilaire Belloc)



धीरे धीरे का विषय हो गया। 'सुख' का स्थान 'उपयोगितावाद' राज्य ने ग्रहण किया। यद्यपि 'हार्म' धीरे 'नार्क' दोनों अनुकूल्यवादी हैं, किन्तु राज्य की रचना के पीछे जो धारणा है, वह 'उपयोगितावाद' की परिष्कार करती है। यद्यपि आधुनिक धीरे प्राचीन सुखवाद में निष्ठा है किन्तु दोनों सुख की निश्चिन्तक रूप अस्वभाव मानते हैं। प्रारम्भिक सुखवाद का जो रूप या वह व्यक्तित्ववादी या किन्तु आधुनिक सुखवाद का स्वरूप परदेसकारी है। इसे 'विरमवादी सुखवाद' भी कहते हैं।

उपयोगितावादी राजधर्म के क्षेत्र में विचार करने वाले धार्मिकों में सर्व प्रथम अंग्रेज धार्मिक ह्यूम (David Hume) का नाम आता है। उसका यह छद्म मत था कि अनुकूल्य से राज्य का धर्म स्वीकरण न होकर उपयोगिता से ही होना सम्भव है। किन्तु आधुनिक उपयोगितावाद के प्रविणावक रिचर्ड कन्वेल्लैण्ड थे। इस विचारक ने एक निम्नलिखित सिद्धा, विषयों यह लिखे। किया कि धार्मिक कल्याण ही सर्वोत्तम पुण्य है। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फ्रांस में अनेक उपयोगितावादी नेता हुए, जिनमें हेल्वियस (Helvetius), भौतिक धर्मशास्त्री (Physiocrats) हॉलबाच (Holbach) धार्मिक प्रख्यात हैं। उनका कथन था कि अनुकूल्य के जीवन में दो प्रेरक शक्तियाँ हैं—आनन्द (Pleasure) धीरे पीड़ा (Pain)। इन दो शक्तियों के बलीभूत होकर ही अनुकूल्य कार्य कठिन है। किन्तु जीवन-सा कार्य सामाजिक दृष्टि से अहित धीरे अनुहित है, इसका उत्तर हेल्वियस ने दिया। उसका उत्तर था—'हित कार्य में अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित होता ही (Greatest good of the greatest number) वह धर्म है धीरे इसके विपरीत सुख।' इसकी दृष्टि में, 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' ही धर्म-निर्माण धीरे धारणा का एक माप-दण्ड होना चाहिए। फ्रांस के भौतिक धर्म-शास्त्रियों ने इस सिद्धान्त का प्रयोग धर्मशास्त्र में किया।

'वेल्थ' इन अंग्रेजी विचारकों धीरे विद्येयक प्रीस्टले (Priestley) से धार्मिक प्रभावित हुआ। वह इन विचारों को ईंग्लैण्ड में आया। वेल्थ ने 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' के सिद्धान्त के आधार पर अनेक सुन्दर सामाजिक योजनाएँ प्रस्तुत कीं; जिनका प्रभाव ईंग्लैण्ड के १८ वीं शताब्दी के सुधारों पर पर्यन्त कर के पड़ा। वेल्थ के अनुयायियों में जेम्स मिल (James Mill) जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill) धीरे जॉन आस्टिन (John Austin) धार्मिक प्रमुख हैं।

## उपयोगितावाद की विशेषताएँ

(१) उपयोगितावादी विचारवादी विकासवादी है। यह ऐसा सिद्धान्त नहीं है कि एक विचारक द्वारा प्रतिपादन करने के पश्चात् पथावत रहा हो। वास्तविकता तो यह है कि इसका इतिक विकास होता रहा है। धारम्भ में यह संकीर्ण प्रकरण था किन्तु उत्तरोत्तर यह स्पष्ट, व्यापक और विकसित होता रहा। वेगम के उपयोगितावाद को जॉन स्टुमर्ट मिश्र ने संशोधित कर उसे पथार्थ रूप प्रदान किया। इसके विचारक रुडिबार्गिटा से सजप रहे तथा सतत प्रयत्नशील रहे कि यह सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल विकसित होता रहे।

(२) उपयोगितावाद की द्वितीय विशिष्टता इसकी व्यावहारिकता है। उपयोगितावादी विचारकों के सिद्धान्त की प्राचार्यिता 'पथार्थवाद' है, न कि 'कल्पनावाद'। वस्तुतः यह एक मानवीय और व्यावहारिक दर्शन है। 'राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करके इसका उद्देश्य अपने भाषकी राज्य के व्यवस्थापन में प्रतिभूत करना होता है।' कल्पनावादियों की निष्कारणक (deductive) अध्ययन-प्रणाली के विरुद्ध उपयोगितावादियों ने व्याप्ति एवं अनुभूतिपुञ्ज (inductive and empiric) दृष्टि का प्रयोग किया। उपयोगितावाद का सक्रिय मान्दोत्तर्णों और व्यक्तियों की अभिवृत्तियों के साथ यथिष्ट सम्बन्ध रहा। हीन बुद्धियों के प्रति 'उनकी निरन्तर सक्रिय सहायुत्पत्ति और मानव-कल्याण के प्रति उनका उत्साह' उनके व्यावहारिक तथा वास्तविक चिन्तन का द्योतक है।

(३) तृतीय विशेषता उपयोगितावाद की मनोवैज्ञानिकता है। मनुष्य की समस्त गतिविधियों का उद्देश्य सुख प्राप्ति ही है। वह भ्रमण को प्राप्त करना चाहता है और दुःख का परित्याग करना चाहता है। किन्तु सुख-प्राप्ति व्यक्ति केवल अपने तक ही परिमित नहीं करना चाहता अपितु समाज के प्रत्येक मायिक की सुख-प्राप्ति की वह मनोकामना करता है। उसके सुख में समस्त नागरिकों का सुख समिहित है। अतः राज्य को ऐसे ही कार्य करने चाहिए जिनके द्वारा 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' हो सके।

(४) उपयोगितावादी प्राचार-शास्त्र को अधिक महत्त्व देते हैं। राजनीति में भी प्राचार-शास्त्र सिहित है। प्रत्येक राजनीतिक कृत्य को उपादेयता समी हे जब कि वह अधिकतम व्यक्तियों को सामान्यित करता हा। सार्वजनिक हित होता ही। इसी प्रकार राज्य की विधि की उपयोगिता भी इसी पर निर्भर करती है कि उससे अधिकतम व्यक्तियों का हित साधन होता हो। उपयोगितावादी विधि के

की बस मानते हैं ( १ ) निवेदात्मक और ( २ ) स्वनात्मक । निवेदात्मक से अभिप्राय कल्पित वातावरण का किनासा होना है और स्वनात्मक से निराण कार्य का होना है । इस प्रकार राज्य का प्रत्येक कृत्य मुक्त-मुक्त पर आधारित होना चाहिए । उसके कार्यों की कसौटी नागरिकों का मुक्त-मुक्त ही होना चाहिए ।

### जेम्स ( Jeremy Bentham )

( १७४८—१८३२ )

उद्योगितावाद का सर्वप्रथम संस्थापक जेम्स था । इसका जन्म १५ फरवरी १७४८ को लंदन में हुआ । यह परिवार मध्यम-वर्गीय था । इसके पिता बकील थे । जेम्स की भी कानून की शिक्षा ही पढ़ी थी । इसके पिता की यह बलापत्नी इच्छा थी कि जेम्स ग्याय-विभाय का कोई उच्च पदाधिकारी बने किन्तु जेम्स की प्रतिभक्ति कानून में नहीं थी । कावेज के सहाय्यी इसे शारीरिक कहा करते थे । जेम्स प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी था । इसने सोमह बर्ष की अवस्था में ही बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की । कानून विद्या के उपरान्त जेम्स ने बलापत्त करना प्रारम्भ किया । किन्तु बलापत्त करने की अपेक्षा जेम्स ने विधियों और धार्मिक-निर्णयों के अध्ययन एवं संशोधन का कार्य करना प्रारम्भ किया । उसने घनेक मुबारकाबी योजनाएँ प्रस्तुत कीं । इनको घनेक योजनाएँ को राज्य ने मुर्तकम प्रदान किया । उसीसही शताब्दी में जिले की मुधार हुए हैं, उनका जेव जेम्स को है । इनको जेन ( Henry Maine ) के कल्पानुसार इंग्लैण्ड में शाब्द ही कोई ऐसा मुबार है जिस पर जेम्स का प्रभाव न पड़ा हो ।

जेम्स स्वभाव से ही बड़ा परिष्करी और कुत्साय बुद्धिवाला था । उसने स्वयं अपने ही प्रयास से कोई भाषाएँ सीखीं, वह ब्यापी बर्ष तक काष्ठ रहा । यह छटना पम्पबसायी था कि लयमय पचास बर्ष तक १६ हुड प्रति दिन लिखता रहा । अंग्रेजी भाषा की गूढतम ( Minims ) धर्मिकतम ( Maxims ) संविहाकरण ( Codification ) उद्योगितावादी ( Utilitarian ) धार्मिक शब्दों की जेन जेम्स की ही है । लार्ड बिमिमय बरिण्डू ( Lord William Bentinck ) को उनसे प्रभावित हुआ और उनके भारतीय मुबारों में इसी स्पष्ट अटक रिमाई देती है ।

जेम्स की निम्नलिखित रचनाएँ हैं :

- (1) Fragment on Government (1776)
- (2) Introduction to the principles of morals and legislation (1789)

- (३) Constitutional code (1830)  
 (४) Papers on Codification and Public Instruction (1817)  
 (५) A theory of Punishment and Reward (1811)

### बेन्थम का उपयोगितावाद

बेन्थम को प्रीस्टले के लेखों में उल्लिखित 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' नामक उक्ति से प्रेरणा मिली। राज्य के परम सख्य के सम्बन्ध में फ्रांसिस (Francis) और ह्यूचसन (Hutchison) ने भी इसी पर बत दिया था। बेन्थम को इसे पूर्णरूप प्रदान करने में सुखवादी मनोविज्ञान (Hedonistic Psychology) से सहायता मिली। उसने 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' नामक उक्ति को अपने सुख-दुःख के सिद्धान्त से विमुक्ति किया। बेन्थम की मूल्य रचना Introduction to Principle of morals and legislation का प्रथम वाक्य है—'प्रकृति ने मानव जाति को दो प्रमुख सम्पन्न स्वामियों—सुख और दुःख के अधीन बनाया है।' वस्तुतः बेन्थम के सिद्धान्त का यह केन्द्र-बिन्दु है। मनुष्य के कार्य सुख-दुःख पर निर्भर हैं। यही जीवन का सार है। 'हम जो कुछ भी करते हैं, जो कुछ भी कहते हैं, जो कुछ भी सोचते हैं, अपनी अभीष्टता पूर करने के लिए जो कुछ भी करते हैं सभी से इस तथ्य की पुष्टि होती है। इसी वा प्रमायु निमित्त है।' उसका कहना है कि उपयोगिता का सिद्धान्त इसी अभीष्टता को स्वीकार करता है। बेन्थम के शब्दों में 'उपयोगिता के सिद्धान्त से हमारा उत्तर्य उसी सिद्धान्त से है, जिससे सम्बन्धित व्यक्ति की प्रसन्नता में वृद्धि या ह्रास होता है और जिसके प्राचार पर वह प्रत्येक कार्य को या तो उचित ठहरता है या अनुचित। इससे शब्दों में जिससे सुखानुभूति होती है या मुक्त समाप्त होता है। मैं यह बात प्रत्येक कार्य के लिए कहता हूँ और इसीलिए मेरी यह बात किसी एक व्यक्ति पर नहीं, अपितु प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य के सम्बन्ध में लागू होती है।' याने बतकर बेन्थम इस सिद्धान्त को 'सर्वोच्च सुख-सिद्धान्त (The greatest happiness principle) कह कर पुकारता है। जब सार्वजनिक क्षेत्र में इसे लागू किया जाता है तो 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों का मूल्यांकन अपने सुख-दुःख के मापदण्ड से करता है। किन्तु

1 "Nature has put mankind under the governance of two Sovereign masters—Pleasure and pain" (J Bentham)

य धीर समान में इसका मापदण्ड 'सबिष्ठतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' होता है। इस प्रकार समुक्त कार्य की नितिकता या अनैतिकता व्यक्ति के सुख से प्रकट होती है। इस प्रकार इस धर्म की कसौटी सामूहिक की अपेक्षा है, जोकि राजनीति-दर्शन की बेल्बम की एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है।

बेल्बम के अनुसार उपयोगितावाद कोई धारणा या प्रवचन की वस्तु न होकर अंततया व्यावहारिक है। इसका आधार अनुभव है। अनुभव ही उसकी कसौटी धीर परिणाम ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। यह कहना धीर धर्म मानना का विरोधी है। इसके अनुसार अनुभव ही नीच का एकमात्र साध है।

विभिन्न कार्यों के करने से कुछ धीर मुक्त की तुलना एवं माप किस प्रकार की है ? बिना किसी माप के हम निर्णय पर पहुँचना कि समुक्त कार्य के करने से अधिक की सम्भावना है का कम, असम्भव है। इस प्रकार की मत् के द्विप यह परमात्मक है कि सभी मुक्त एक ही प्रकार के हों। उनमें केवल 'मात्र-विषयक अंतर' (difference of quantity) ही धीर मुख्यविषयक अंतर (difference of quality) न ही। बेल्बम का यह दृष्ट मत्व है कि कुछ या अल्प में केवल मात्र-विषयक ही अंतर है। उसका ऐतिहासिक सूत्र Pushpin poetry इसका धीरित्व सिद्ध करता है। पुरितन ईंग्लैण्ड के तिसुर्वी का एक श्लोक है। बेल्बम का कथन है कि कुछ प्रवचन उपयोगिता के दृष्टिकोण से पुरितन धीर कविता के अध्ययन में कोई मूल्यिक विवेक नहीं है। इन दोनों से समानता का मुक्त मिश्रण है (quantity of pleasure being equal, pushpin is as good as poetry)।

बेल्बम के अनुसार मुक्त-कुछ की मात्रा की परत सात विशिष्टताओं के द्वारा की जाती है—(१) तीव्रता (intensity) (२) समक-प्रकार (duration), (३) निश्चय (certainty or uncertainty), (४) समीपता (propinquity or remoteness), (५) जनकत्व (fecundity), (६) शुद्धता (purity), (७) विस्तार (extent)।

बेल्बम का कथन है कि उपरोक्त कारकों के आधार पर ही हम समस्त बातों की तुलना करते हैं। ये ही सातों कारण हमारे राजनीतिक नैतिक, भाषिक धार्मिक धीर धार्मिक मिश्रणों के माप हैं। इन्हीं के आधार पर वस्तु की उपयोगिता निर्धारित होती है। बेल्बम ने मुख्य धीर कुछ के दो प्रकार बतलाये हैं—(१) सामान्य या जलन धीर (२) अतिशय। सामान्य या जलन प्रकार के १४ मुक्त होते हैं धीर १९ कुछ। मूल रूप प्रकार हैं—(१) इंग्लिश मुक्त, (२) जलन धीर

सम्पत्ति सुख (१) निपुणता का सुख, (४) मित्रता या सद्भावना का सुख, (२) यश का सुख, (६) शक्ति या सत्ता का सुख (७) धार्मिक सुख, (८) दया का सुख, (९) निर्दयता का सुख (१०) स्मृति का सुख (११) कल्पना का सुख, (१२) प्राणा का सुख, (१३) सम्पर्क या मिसम का सुख, धीर (१४) सहस्रता का सुख । पुस्तक—(१) खरिजता (२) भावना, (३) परेशान्ति या किष्किन्नाहट, (४) शक्तता, (५) प्रपयश (६) धार्मिकता, (७) दया, (८) निर्दयता या दुर्भिन्या (९) स्मृति (१०) कल्पना (११) प्राणा धीर (१२) सम्पर्क । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सुख धीर पुस्तक भी होते हैं । मनुष्यों की सुख-दुःखानुभूति शक्ति (Sensibility) भी शारीरिक कठम, खरिज, शिला, वाति धीर सिद्ध भेद धारि ३२ सञ्चयों के अनुसार विभिन्न होती है । इस प्रकार सुख दुःख की मात्रा इन सबको दृष्टि में रख कर करनी पड़ती है ।

### उपयोगितावाद और राज्य

‘अधिकतम लोगों का अधिकतम हित’ ही समाज या राज्य की बसोटी है, अतः व्यवस्थापक को इसी आधार पर कार्य करना चाहिए । ऐसे नियमों का निर्माण होना चाहिए जिनसे व्यक्तियों के सुख में वृद्धि धीर दुःख का निवारण हो । कानून की उपयोगिता तीन प्रकार से मासूम होती है: (१) प्रथम, इससे राज्य के प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा उपलब्ध होती है अथवा नहीं (२) द्वितीय, इससे व्यक्तियों को आवश्यकता की सामग्रियाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगती हैं या नहीं, धीर (३) तृतीय इसके द्वारा प्रत्येक नागरिक साम्यभावना की अनुभूति करता है या नहीं । इस प्रकार वेचम में कानून की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनेक बातें बताने हैं । वेचम में विधियों का वर्गीकरण भी किया है: (१) अन्तर्राष्ट्रीय विधियाँ, (२) संवैधानिक विधियाँ (३) राजकीय या नागरिक विधियाँ धीर (४) वैय्य विधियाँ ।

वेचम में व्यक्तियों के व्यवहार के नियमन हेतु धीर उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए दृष्ट-व्यवस्था की है, जो चार प्रकार की है (१) प्राकृतिक, (२) राजनीतिक (३) नैतिक या सामाजिक धीर, (४) धार्मिक । समाज-विद्वान् कार्य करने पर, राज्य केवल राजनीतिक दृष्ट मय का ही प्रयोग कर सकता है ।

### उपयोगिता और व्यक्तिवाद

व्यक्ति-स्वातंत्र्य का वेचम के लिए बड़ा महत्व है । वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य धीर समानता को अमूर्त धारिधार मानता है । अतः उसकी दृष्टि में प्रत्येक

व्यक्ति को अपने व्यक्ति-विकास के लिए सर्व-मुक्त अवसर मिलने चाहिए। किन्तु समाज में पूर्ण स्वतंत्रता पारस्परिक संबंध और पराभङ्गता का मार्ग प्रशस्त करता है। इसलिए नियंत्रण भी आवश्यक है जो कि राज्य द्वारा ही सम्भव है। केवल भी अन्य व्यक्तियों की भाँति, राज्य को एक आवश्यक विकार समझना है, और राज्य-नियम जो कि व्यक्ति-स्वतंत्रता में बाधक हैं, विदार तुल्य हैं। किन्तु अन्य विकल्प भी क्या है? अतः केवल ने राज्य के नियंत्रण में कमी की बकालत को है। नियंत्रण विधियों द्वारा होता है, इसीलिए कानूनों की संख्या कम होनी चाहिए। राज्य का पुनीत कर्तव्य है कि वह कम विधियों की रचना करे क्योंकि अधिक विधियाँ हाथिप्रद हैं, जिस प्रकार कि अधिक शीपव। अधिक शीपव सेना से स्वास्थ्य खराब हो जाता है, उसी प्रकार अधिक कानूनों से समाज-विकास रुक जाता है। किन्तु अस्वत्व होने पर शीपव आवश्यक है, उसी प्रकार सामाजिक असुविधा होने पर राज्य-नियमों की भी आवश्यकता है, जोकि शीपव का कार्य करते हैं। निस्सन्देह राज्य-नियम आवश्यक तो आवश्यक हैं, किन्तु आवश्यक भी हैं। किन्तु राज्य को चाहिए कि व्यक्ति के उत्थान हेतु उसे अधिकतम स्वतंत्रता प्रदान करे। यही राज्य की उपयोगिता का भी परिचायक है। अत्यधिक विधि-निर्माण से पूर्व राज्य के लिए दो बातें आवश्यक हैं—पथन, जिस विधि का निर्माण ही पड़ा है, उसका सम्यक् समाज में व्याप्त किसी सामान्य दुर्घटि को रोकना है, जैसे—चोरी। द्वितीय विधि निवृत्त निर्माण हो गया है उसकी अवहेलना पर व्यक्ति को बा बंध मिलता है वह अधिक और बड़ी दुर्घटि तो नहीं है, अपेक्षाकृत उसके धनदाय के।

केवल की स्वतंत्रता की वर्यता निवेदात्मक है। उसकी दृष्टि में स्वतंत्रता वा अभाव ही वास्तविक स्वतंत्रता है। उक्त व्यक्तिवारी राज्य और परमात्म्य तोति (Laissez Faire) को उपयोगितावाद की धारण व्यवस्था कहा है और राज्य के हस्तगत को तभी त्यागोचित बताया है जबकि उससे उपयोगिता की वृद्धि होनी हो। अतः राज्य को केवल शक्ति स्थापन के लिए विधि-निर्माण करना चाहिए और इसी दृष्टिकोण न हस्तगत भी। किन्तु फिर भी विधि-निर्माण की कहीटी उपयोगिता ही होनी चाहिए।

### जेम्स मिल (James Mill)

( १७७३-१८३६ )

जेम्स मिल का जन्म ३ अप्रैल १७७३ ई. को इंग्लैण्ड के एक ग्राम में हुआ था। उसका पिता मोन्सी था किन्तु उन्होंने जेम्स को उच्च शिक्षा दिलाई। वह एडि

नया विरचविद्यालय का स्नातक था। अठारहवीं शताब्दी तक उसने पादरी का पद संभाला। उसने विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन किया। सन्तान में बहु बेन्यम से परिचित हुआ। अन्य उपयोगिताकारियों के भी सम्पर्क में आया और उपयोगितावादी विचारवाय का समर्थक बन गया। सन् १८१८ में उसने नारथ का इतिहास लिखा। इस रचना की लोक-प्रियता ने उसे इण्डिया-भाषित में स्वाग दिला दिया।

मिस पर बेन्यम का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने बेन्यम के उपयोगितावाद का समर्थन किया। वह "बेन्यम के सभी सिद्धों में सर्वाधिक अध्ययनार्थी सम्भवतः सबसे अधिक समर्थ और सबसे अधिक दुराग्रही था। "जम्स मिल का मत है कि कार्यो की मैतिलता और प्रतिक्रिया उसको उपयोगिता पर निर्भर करती है। जो कार्य बिलकुल अधिक उपयोगी है उसे उतना ही अधिक सर्वोत्तम समझना चाहिए। यही कसौटी विधि के सम्बन्ध में भी है कि जिन विधियों से अधिकतम लाभ हो के उतनी ही श्रेष्ठ हैं अन्यथा नहीं। जेम्स मिल के मत में, राज्य का यह पुरोच कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक हित की दृष्टि से मनुष्यों के कार्यो को मर्यादित करे, जिससे किसी की स्वतंत्रता का हानन न हो। डैविडसन (Davidson) का कथन है कि जम्स मिल 'बेन्यम के उत्तरागत प्रतिभाषी उपयोगितावाद का नेता था और इस राजनीतिक सम्प्रदाय के व्यावहारिक मुद्दों को मूर्च्छक होने में सर्वोच्च सक्रिय शक्ति था।"

## जॉन् स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill)

( १८६-१८७३ )

मिल का जन्म सन् १८०६ में हुआ था। इसका पिता जम्स मिल और बेन्यम बनिष्ठ मिल थे। दोनों ने स्टुअर्ट मिल को उपयोगितावाद का उष्णकोटि का विचारक एवं प्रचारक बनाने का संकल्प लिया। प्रथम मिल की शिक्षा गृह विधि एवं कानून। आठ वर्ष का उम्र में ही मिल को लैंगे का 'डायलॉग' ( Dialogue ) कथाप्र कथ दिया गया। उसका पाठ्यक्रम उसका पिता ही तैयार करता था। विश्व समय स्टुअर्ट मिल सत्रह वर्ष का हुआ, वह विभिन्न विषयों में निपुणता हो गया था और उस अपने पिता के सहायक के रूप में इण्डिया-भाषित में लीकरी मिल गई। उसकी प्रतिभा ने उसे अपने पिता के स्वाग पर पहुँचा दिया। १८३१ ई० में अपने पिता के विरोध पर भीमती टेसर से विवाह कर लिया। भीमती टेसर की दूरदर्शिता बौद्धिक प्रतिभा और सम्प्राप्तता का मिल पर बड़ा प्रभाव पड़ा।



इसने अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता' (On Liberty) १८५९ ई० में लिखी। इस पुस्तक का इतना महत्त्व है कि मनुष्य जाति के इतिहास में इसकी तुलना जेम्स मिल्टन (Milton) की 'एरोपगिटिका' (Areopagitica) से ही की जा सकती है। यह पुस्तक मिस ने अपनी पत्नी टैबर को समर्पित की। मिस अपने अन्तिम दिनों में बकिंगहम पार्स में अपनी पत्नी की कब्र के पास मकान बनवा कर रहने लगे। सन् १८६५-६६ तक वह ब्रिटिश संसद का सदस्य रहा। संसद में इसके भाषण आकर्षण के बेटे थे। उसने संसदीय व्यवस्था काब में—(१) धर्म-वर्ग-हित, (२) गरीब मताधिकार, और (३) आयरलैंड के भूमि-सुधार पर अधिक बल दिया। व्यक्ति-स्वातंत्र्य और अर्मायम् नीति (Laissez Faire) को व्यापकता बता कर उसने राजनीति दर्शन की अनुपम देव दी।

### मिस का उपयोगितावाद

मिस ने 'उपयोगितावाद' नामक पुस्तक में अपने विचार प्रकट किये हैं। उसने वेल्थ के उपयोगितावादी सिद्धान्त की नींव बिना प्रदान की है। उसका उपयोगितावाद वेल्थ का संशोधनवाद है। 'उन्होंने वेल्थ की कठोर नैतिक मान्यताओं को नष्ट बना दिया है और ऐसा करके उन्होंने उपयोगितावाद को अधिक मानवीय पर, साथ ही कम स्थिर और कम दृढ़ बना दिया।'<sup>1</sup>

वेल्थ ने जेम्स मान्वा का ही मुँहों में मेद माना था, गुण या प्रकार (quality or kind) का नहीं। मिस को वेल्थ की ऐतिहासिक सक्ति—Quantity of pleasure being equal, pushpin is as good as poetry, व्यापकता नहीं मान्नुम पड़ी। उसने मुँहों में उखर और निम्नतर का विवेक किया। मुँहों में गुणानुसंग अन्तर होता है, यह उसकी महत्त्व देन है। मिस ने कहा है, 'एक असुष्ट शूकर होने की अपेक्षा एक असुष्ट मनुष्य होना अधिक अच्छा है। एक असुष्ट मूढ़ बने रहने की अपेक्षा असुष्ट मुकपाठ या मनीषी होना अधिक अच्छा है। और यदि उस मूर्ख या शूकर का मत इससे विपरीत है, तो यह इसलिये है कि वह प्रश्न के क्षेत्र अपनी एक पक्ष को ही समझता है। तुलना का अर्थ पर दोनों पक्षों को समझता है।'<sup>2</sup> मिस के संशोधन से वेल्थ का उपयोगितावाद

1 "It is better to be a human being dissatisfied than a pig satisfied, better Socrates dissatisfied than a fool satisfied. And if the fool, or the pig, is of different opinion, it is because they only know their own side of the question. The other party to the comparison knows both sides."

प्रस्तुत हो गया। वस्तुतः वह उपयोगितावाद ही नहीं रहा क्योंकि उपयोगितावाद का मूल्यांकन सुख के प्राप्ति पर होता है और केवल वस्तु की उपयोगिता ही मान नहीं रख जाती। व्यक्ति के व्यक्तित्व का भी उसमें समावेश है। इस प्रकार गुणवत्क बिन्धु से उपयोगिता का मापदण्ड व्यक्ति भी होता है। बेन्थम का उपयोगितावाद पदार्थ विषयक है, जबकि मिस का व्यक्ति-विषयक। इसके अतिरिक्त मिस ने व्यक्तिगत सुख और सार्वजनिक सुख के अंतर को छिपित किया है जो कि बेन्थम से मिस है। उसका कथन है, 'व्यक्ति का अधिकतम सुख उपयोगितावाद का मापदण्ड नहीं है, अपितु सामाजिक रूप में अधिकतम सुख ही उसका मापदण्ड है। "अपने और अन्य के सुख से शीघ्र, उपयोगितावाद के अनुसार इतना अधिक निपटल होना चाहिये कि एक निरपेक्ष और उदार बर्तक होता है।"

बेन्थम ने सामाजिक कल्याण हेतु केवल बाह्य दण्डों (external sanctions) को ही माना था, किन्तु मिस ने बाह्य एवं आन्तरिक दोनों दण्डों को मापदण्ड प्रदान की है। इन मुद्दों के कारण प्रस्तावकों का कथन है कि मिस बेन्थम के उपयोगितावाद से अलग हो गया है एक अन्तः प्रारणा है। उसने उसमें संशय न आस्य किये हैं, किन्तु रूप अनिश्चित ही रहा है।

### आलोचना

(१) कल्याणवादी विचारक उपयोगितावाद को नैतिकता की संज्ञा प्रदान करते हैं। इन विचारकों का कथन है कि सबसे व्यक्ति का स्तर निम्न होता है और अनुपपन्न भी क्षिप्त हो जाता है। प्रार० एच० मुरे (R. H. Murray) के शब्दों में 'यदि हम बेन्थम की नैतिक व्यक्ति से उसकी आत्मा को छीन लेते हैं तो नैतिकता या अनैतिकतापूर्ण कार्य किसी भी वस्तु नहीं रह जाती, यद्यपि ऐसे कार्य होय रह जाते हैं जो सर्वसाधारण के लिए सामर्थ्य हैं या न हों। विस प्रकार बेन्थम की दृष्टि में, व्यक्ति की आत्मा नहीं है, उसी प्रकार समाज की भी आत्मा नहीं है। अन्तर्भी समाज द्वारा किये गये दण्ड की अनुभव नहीं करता।"

1 "The utilitarian standard is not the agent's own greatest happiness but the greatest amount of happiness altogether"

2 "If we take away conscience, as Bentham does" (then only then) "there is no such thing as a moral or an

(२) मनोवैज्ञानिक और नैतिक आचारों पर भी उपयोगितावाद स्पष्टतया नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यक्ति स्वार्थी होता है, किन्तु स्वार्थ ही उसकी एकमात्र विधिपत्ता नहीं होती। वह अपनी भी और साथ-साथ दूसरों की भी उत्पत्ति चाहता है। हेनरी ड्रमण्ड (Henry Drummond) के मत में, 'व्यक्ति के अन्दर न केवल अपनी सत्ता है, अपितु दूसरों के अस्तित्व के लिए भी संघर्ष बना करता है। अतः मनुष्य-स्वभाव के लिए केवल एक पक्ष के आचार पर, बिना दूसरे पक्ष का ध्यान दिये, कोई मनोवैज्ञानिक या नैतिक सिद्धान्त बनाना सम्भवीर होय है।'<sup>१</sup>

(३) आत्म-जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य नहीं हो सकता। बहुधा हम देखते हैं कि व्यक्ति अपने नैतिक आचारों की पूर्ति हेतु सुख-दुःख का विचार नहीं करता और न समी कार्य सुख को इच्छा से ही प्रेरित होते हैं। मनुष्य में नीम एवं त्याग दोनों प्रकृतियों का समावेश है। कभी-कभी वह अपने आत्म-जन्म कार्यों को छोड़ परोपकारी कार्य करता है। यदि आत्म-जीवन का लक्ष्य हो तो समाज-सेवा एवं प्रेम और नीचे-लिखित कार्यों का कोई स्थान ही नहीं रहे। अतः जीवन का लक्ष्य केवल सुख ही न हो कर परोपकार या विपुल भावनाएँ भी हैं।

(४) वेदम में उपयोगितावादी सुखों में मात्रात्मक मूल्य माना है, गुणात्मक नहीं। उसको ऐतिहासिक उक्ति 'पुष्पिन पौष्टी' (Pushpin poetry) इसका स्पष्टीकरण करती है। यह न तो बुद्धिमत् है और न व्यावहारिक। यदि मूल्य के गुणात्मक मूल्य भी ही मान लें, तो विभिन्न प्रकार के सुखों को मात्र करके उनकी सत्य उपयोगिता (Relative utility) निर्धारित करना कठिन है। फिर गुणात्मक मूल्य से उपयोगिता का मापदण्ड व्यक्ति भी होता है एकमात्र बल ही नहीं। वेदम बल ही मापदण्ड मानता था।

immoral action, though there may remain acts that are generally useful or the reverse. As there is no individual conscience, so there is no collective conscience. The culprit does not feel the censure of the community.'

1 "There is in man a struggle not only for one's own existence but also for the existence of others. Therefore, to build a psychological and ethical theory on one aspect of human nature to the exclusion of others is seriously defective."

इसी कारण 'टांसस कारसायल' ने बेन्सम के दर्शन को मुझ दर्शन (my philosophy) की संज्ञा प्रदान की।

( ५ ) 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' में अनेक गम्भीर दोष हैं। प्रथम, यह मात्रात्मक (Quantitative) है और सुखों के अनुसार अन्तर नहीं करता। फलतः इसका प्रयोग जहाँ केवल समान हित वाले और एक प्रकार के हों वहाँ हो सकता है, अन्यत्र विपरीत स्थिति में सम्यक् नहीं। द्वितीय, सुखों का योग अन्वय बिसाई नहीं देता, क्योंकि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हितों का योग केवल शून्य ही होता है। जैसे पूर्वापत्ति का हित शोषण में है और सर्वहारा का इस शोषण के विरुद्ध विरोध करने में। दोनों के हितों में पारस्परिक प्रतिशुद्धि है, अतः योगफल शून्य पाता है। तृतीय 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' भी व्यावहारिक नहीं है। उदाहरणार्थ किसी बिबि-निर्माण से उत्तर-प्रदेश के १० बीनो फैक्टरी-मासिकों में से प्रत्येक को १००० रु० का लाभ होता है, तो कुछ लाभ २०, ० ४० हुआ। किन्तु इसी बिबि से ६० मजदूरों की मजदूरी में प्रत्येक को १०० की कटौती होती है तो इस प्रकार कुल ६०० ४० की हानि हो जाती है। इस प्रकार फैक्टरी-मासिकों का २००० ४० भी कि अधिकतम लाभ है, मजदूरों की ६०० ४० की हानि से ज्यादा है, अतः बिबि निर्माण नो आकरवक है। किन्तु जहाँ तक 'अधिकतम व्यक्तियों का प्रसन्न' है, इससे केवल १० व्यक्तियों का लाभ और ६०० ४० की हानि होती है। ऐसी वस्तु में बिबि निर्माण नहीं होना चाहिए। इस प्रकार 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित' निरान्वय अथवा अर्थ अभावहारिक है। 'जे०मेकन' का यह कथन सर्वथा तर्कहीन ही है कि संकल्पित राजनीति में अन्वय ही अनुपयोगी है किन्तु कि राजनीति संकल्पित में।

( ६ ) बेन्सम के उपयोगितावाद से पूर्वापत्ति ही साध्यान्वित हुए। सुख की मात्रा की अधिकतम वृद्धि हेतु पूर्वापत्तियों ने सर्वहारा का शोषण करने के लिए बेन्सम के सिद्धान्त से प्रेरणा ली। उन्होंने अपने स्वार्थ के कारण मानवता का विस्मरण किया। हैनोवेल का कथन है कि बेन्समवाद एक ऐसा उदारतावाद है जो निरंकुशता के लिए अधिक अनुकूल है।"

## फ़ासिस्टवाद (Fascism)

'फ़ासिस्टवाद' बीसवीं शताब्दी की देन है। यह एक सभ्य सर्वाधिकारवादी मान्योत्पन्न था। योरोप में यह मान्योत्पन्न बड़ी तीव्र गति से उभरा—इस से बीसवीं शताब्दी के रूप में जर्मनी में नाजीवाद के रूप में और इटली में फ़ासिस्टवाद के रूप में। सोस्यलिस्टवाद और फ़ासिस्टवाद में बड़ा अन्तर है, किन्तु फ़ासिस्टवाद और नाजीवाद में कोई विभेद नहीं है। प्रथम की इटली में फ़ासिस्टवाद और द्वितीय की जर्मनी में नाजीवाद की संज्ञा मिली। फ़ासिस्टवाद शब्द की उत्पत्ति सैटिन शब्द फैसियो (Fascio) से हुई है। इसका अर्थ समूह या गट्टर है, जो एक साथ वेष्ट की छायाओं के समूह के रूप में बँधे गये हों और जिनके बीच में युद्ध में नाम धारणवादी एक झुंझुकी का निशान हो। यह निशान 'एकता में शक्ति' का प्रतीक है। यह किन्तु रोमन इतिहास में मरिस्टुट के अन्तर्गत एक कर्मवादी की शक्ति का प्रतीक था। इटली में फ़ासिस्ट बस बड़ा गुर्भपठित एवं शक्तिशाली था। इसके गिरोपियों में ही इसे फ़ासिस्ट नाम से पुकारा। फ़लतः यह फ़ासिस्टवाद कहलाया। फ़ासिस्टवाद कोई एक सिद्धान्त न हो कर एक सिद्धान्त-समूह का नाम है, जिसमें इटली के फ़ासिस्टवाद और जर्मनी के नाजीवाद का समावेश है। साम्यवाद की भाँति यह भी जीवन का एक साधनवादी दर्शन है। राज्य और राजनीतिक विषयों के अभाव, यह साधारण, धर्म, संस्कृति और धार्मिक विषयों पर भी समुचित प्रकाश डालता है। यह दर्शन अन्धकार, समात्यक सरकार, स्वतंत्रता समाजवाद और शक्ति का प्रबलतम विरोधी है। यह मान्यवाद में कोई निष्ठा नहीं रखता। अन्धकार ही है, "मानव-कर्मण तथा जनतात्मिक शासन के प्रतिबुद्ध फ़ासिस्टवाद नहीं की, 'अधिकाधिकतमता, साधन और फ़लदायक जनमानस' का प्रतिराजन करता है, और स्व निर्मित कृतीनर्तवीय शासन के अधिनार का अन्वयक है। फ़ासिस्टवाद में "व्यक्ति राज्य के लिए जीवित रहता है, राज्य व्यक्ति के लिए जीवित नहीं रहता।"

## फासिस्टवाद का इतिहास

फासिस्टवाद का उदय प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त हुआ। इसकी उत्पत्ति इटली में समाजवादी शक्ति की विफलता के कारण हुई। युद्ध के दिनों में समाजवादियों का इटली में बहुमत था। वे युद्ध में भाग लेने के प्रबल विरोधी थे और इसके लिए उन्होंने कड़ी प्रचार भी किया। इटली के समाजवादी सन् १९१७ की कड़ी राज्य-शक्ति से बड़े प्रभावित हुए थे; घट-बे कड़ी-व्यवस्था को ही सर्व श्रेष्ठ समझ कर यहाँ स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शक्तियों को सात मंज के मोचे संघटित किया और उन्हें पूर्वोक्त का अनुत्पन्न करने के लिए कर्म-कारखानों पर एकाधिकार करने की सलाह दी। जनता शक्ति के स्वर्णिम स्वप्न देखने लगी और तत्कालीन प्रतिष्ठित शासन की विरोधी हो गई। इटली की सरकार ने भी राज्य-शक्ति के भय के कारण उदात्तता की नीति का प्रवर्तन किया। युद्धोपरान्त देश में बेकारी और मंदी फैल गई। सरकार को विवश होकर वर्ष में कमी करने के लिए पौकों को छोड़ देना पड़ा जिसके फलस्वरूप महत्वपूर्ण वैश्विक बेकार हो गये। ये वैश्विक समाजवादी दस में सम्मिलित हो गये। इस समय समाजवादी दस पूर्णतः संघटित और सत्ताशील हो गया था। उनका नेम्बर घाँट डेनुटीज स्थानीय सम्घाषी कर्म-कारखानों भूमि तथा सभी शक्ति-स्रोतों पर पूर्ण आधिकार्य हो गया था। किन्तु समाजवादियों के पास आकर्षक नारे थे, कोई सुनिश्चित योजना नहीं थी। उन्हें यह परिचय नहीं था कि किस प्रकार राष्ट्रिय-व्यवसाय की प्रवृत्ति हो, कर्म-कारखानों का किस प्रकार संसाधन किया जाय और बेरोजगारी को किस प्रकार दूर किया जाय। वे तत्कालीन समस्याओं को सुसभाने में निदानमेव असफल रहे। उनसे वैश्विक और राष्ट्र-वादी भी चिढ़ गये थे, क्योंकि उन्होंने विश्वयुद्ध में भाग लेने का बट कर विरोध किया था। उन्होंने कारखानों पर सामाजिकी करा कर और उनकी कोई अनुचित व्यवस्था न करके पूर्वोक्त और शक्ति-वर्ग दोनों को ही धनता विरोधी बना लिया था। इसके प्रतिष्ठित बेरोजगारी की समस्या भी हल न कर सकने के कारण, बेरोजगार शक्तियों के भी वे कोपमात्र बन गये। युवाव के समय समाजवादियों ने किसानों को बर्षोवार्तों की जमीन छीनकर लेने का वचन दिया था, किन्तु परिस्थितिवशात् वे इसे पूरा नहीं कर सके। घट-वृषक-वर्ग भी समाजवादियों से असन्तुष्ट हो गया। स्थानीय संघाषी में जाते समय समाजवादियों ने जनता से भ्रमन-कर तथा जमीन-कर को घटाने का वायदा किया था किन्तु घटाने की अपेक्षा उन्हें और कर-बुद्धि करनी पड़ी। जनता समाजवादियों के इन कार्य-वक्तव्यों से

पूर्णतः निराश और अस्तव्यस्त हो गई थी। समाजवादियों को इस स्थिति का फलके विरोधियों ने पूरा साम झटाय़ा और राष्ट्रवादी, पूर्णोपनिषि तथा भविष्यवादियों ने एक नवीन दल की स्थापना की जो 'फ़ासिस्ट दल' कहलाया।

प्रथम विश्व-युद्ध में इटली ने जर्मनी के विरुद्ध भाग लिया था। जर्मनी को पराजय के उपरान्त, मित्रराष्ट्रों और जर्मनी के बीच 'वसर्हि' की सन्धि हुई। इस सन्धि के द्वारा जर्मन ज़निबेरा और युद्ध से बची सामग्री का विभाजन हुआ। विभाजन से इटली लाभान्वित नहीं हो सका। उसकी साम्राज्यवादी विप्ला अचूरी ही रह गई क्योंकि सभी ज़ानिबेरा और सेप सामग्री को इंग्लैण्ड, फ़्रांस और अमरीका ने हड़प लिया। इटली के इस राष्ट्रीय अपमान को प्रसिद्ध कवि और राष्ट्रवादी शेटा बी एन्नाजिओ सहन नहीं कर सका। उसने सरस्वती की पूजा व्यापक रुप से आरम्भ की। उसने राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए सैनिकों और युवकों का आवाहन किया। युवोत्थिनी ने इस आवाहन का स्वागत किया और कान्ती क्रमोच भाव्य करनेवाले स्वयंसेवकों की टोली में बूर पड़ा। सरकार किंरुतय्य किभूइ हो गई और मित्र-राष्ट्रों के बैरते-बैरते पत्र पर इटली का भाषिभय हो गया। फ़ासिस्टों ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर जनता को माजी भवति की ओर आशाभित कर दिया और उसकी निहा फ़ासिस्ट दल में हो गई।

बेनिटो मुसोलिनी का जन्म २९ जुलाई १८८३ ई० को इटली के मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। उसका पिता जो एक सक्रिय समाजवादी था, मुझर का काम करता था और उसकी माता एक अध्यापिका थी। मुसोलिनी साधारण-सी शिक्षा प्राप्त करके १९०९ में एक मध्यमक बन गया, किन्तु शीघ्र ही उसे अपने कमिन्वर्ती समाजवादी विचारों के कारण इस पेशे को छोड़ कर स्विट्ज़रलैण्ड जाना पड़ा। वह स्विट्ज़रलैण्ड, फ़्रैन्सिया और इटली में लगभग १२ बार भ्रम गया। १९१० में उसने प्रतिन बन से इटली में आ कर समाजवादी आन्दोलन में मुख्यतः एक कर्कर की स्थिति से भाग लेना आरम्भ किया। इस समय उसका जन्म समाजवादी शासन की स्थापना करना था, और वह जार्ज सोरैल की सीधी कार्यवाही से पूर्णतः छुटत था। ९ दिसम्बर को वह समाजवादी दल के पत्र प्रबन्ती (Arbani) का सम्पादक नियुक्त हुआ। १९१४ के प्रथम महायुद्ध में भाग लेने का पढ़ते ही युवोत्थिनी ने विरोध किया था, किन्तु बाद में उसने उसका समर्थन किया। उसके इस अघरवादी दृश्य की समाजवादियों ने पौर निन्दा की तथा उसे पूर्णोपनिषि कहा। युवोत्थिनी ने अकतो के संपादक से त्यागपत्र ले लिया

धीरे उसे समाजवादी दल में पार्टी से निकाल दिया। इस समय भी मुसोलिनी की पूर्ण धास्ती समाजवाद में थी। उसने अपने इस निष्कासन पर कहा था "यह न सोचिये कि आप मुझे दल की सकस्यता से दल में करके समाजवाद में जो मेरी निष्ठा है, उसे भी समाप्त कर सकेंगे या आप मुझे क्रांति में समाजवाद के लिए काम करने से रोक सकेंगे।" उसने अपना एक शैक्षिक पत्र इटली की जनता (The Popolo d' Italia) प्रकाशित किया। इस कार्य के लिए उसे फ्रांस से भागिक सह्यता मिली। समाजवादियों का बस पर यह शोषारोपण कि उसने अपने को फ्रांसीसी पूंजी के हाथ में बेच दिया है, निरान्तरेण सत्य था। १९१२ में वह फौज में भर्ती हो गया और १९१७ तक शैक्षिक-सेवा में रत रहा। कुछ कास के उपरान्त उसने अपने पत्र का पुनः प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। मुसोलिनी ने मितान में २३ मार्च १९१९ को एक छोटी सी समाज बुलाई, जिसने एक 'बड़ाका मैन्ड दल' (Fascio di Combattimento) का निर्माण किया। उत्तरी धीर मध्य इटली में इसके सम्बन्धित अनेक शाखाएँ स्थापित की गईं। मुसोलिनी की अध्यक्षता में इस की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उसके दल में पूंजीपति सिनिक, मध्यम धोखे के लोग मजदूरवादी राष्ट्रवादी धीर मुद्रवादी सभी सम्मिलित हो गये। मुसोलिनो ने बोधया की, कि हम राजत्व का सम्भोग नहीं करना चाहते, अपितु वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर एक शक्तिशाली मजिस्ट्रेट्स धीर बैन्डर चाहते हैं। इस बोधया का यह प्रभाव हुआ कि राजत्व के पक्षपाती भी उसके दल में सम्मिलित हो गये। जिन कर्मचारियों को समाजवादियों न माना बन्दी के हाथ बन्ध कर दिया जा, उसको फिर से बाधु किया गया। इसके पूंजीपति धीर असंख्य बेरोजगार श्रमिकों की सहानुभूति फासिस्टों को मिल गई। उन्होंने रैम, ट्राम्पे धीर डक-थर को भी रक्षा की, जिन्हें समाजवादी गठ-भट करना चाहते थे। उसके इस कार्य से सरकारी कर्मचारी भी उनके प्रशंसक हो गये। मुसोलिनी ने अपने दल की शक्ति बढ़ा कर उपरोपित किया कि फासिस्ट दल इटली का शासन-सूत्र संभालने में पूर्ण समर्थ है। हमने बर्मेनी को परामुत कर राष्ट्र को रक्षा की है, और देश को समाजवादी शक्ति के सतरे से बचाया है। यदि हमारी मार्गों को नहीं माना गया तो हमें विवश होकर बल प्रयोग का धाम्य लेना पड़ेगा। २८ अक्टूबर १९२२ को ५,०० कासी कमीजवाले फासिस्टों ने रोम की धीर कूच कर दिया। राजा भयभीत हो गया क्योंकि यह जानता था कि सेना उसकी धावा की धबड्ढेना कर देगी। अतः राजा ने मुसोलिनी को मजिस्ट्रेट्स के निर्माणार्थ धामन्धित किया। "इस प्रकार न तो मुद्र का लमाड़ा बना, न एक भी बन्धु



की वस्तु मरम हुई, न एक ईश सूनी भूमि रहने से पीसी हुई। किन्तु राज्य-कल्पित हो गई।" जनवरी १९२३ की सुसोचिनी ने प्रकाश कर से वैधानिक प्रणाली का अन्त कर फासिस्ट नीति को विचारमूक रूप प्रदान किया। उसने कहा था, "यदि १९वीं शताब्दी समाजवाद, प्रसारवाद तथा जनतंत्र का युग था, तो २०वीं शताब्दी सर्वाधिकारवाद समष्टिवाद, फासिस्टवाद और शक्ति का युग होगा।" फासिस्टवाद के साफल्य का एक प्रमुख कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति भी थी। वैसा कि अक्सर कहा जाता है, "चूंकि पश्चिमी प्रजातंत्र विरुद्ध को शक्ति के लिए संघटित करने में विफल पसकम रहे, फासिस्ट बिना किसी कठिनाई के मुझ के लिए उसका संघटन करने में सफल हुए हैं। चूंकि ईशरीर और अंतर्गत शक्त प्रकार से राष्ट्रीय राज्य की प्रगति स्थापित करने में हड़ से फासिस्टवाद ने राष्ट्र-ईश की सत्ताओं के विरुद्ध राष्ट्र को तैयार किया। चूंकि जनताधिकार विमताओं ने प्रजातीय समता को मान्यता देना अस्वीकार किया, फासिस्टवाद ने प्रजातीय वैषम्य को अपना सिद्धान्त बना लिया। उन जनताधिकार राष्ट्रों के विरुद्ध विन्तुनी उपनिवेशों की जनता के शोषण का अन्त करने में बहुत शीघ्र विचारमत्ता फासिस्टवाद ने एक नवोत्पन्न युद्ध प्रारम्भ किया, जो प्रजातंत्रों के राष्ट्रीय स्वत्व के रूप में साम्राज्यवाद को प्रतिष्ठित करता है। यदि बर्साई संघ के लिए एकत्र राजनीतिज्ञों ने निष्पक्षता, उपायता, दूरदर्शिता एवं समता का दृष्टिकोण अपनाया होता तो निरसन्धे मागी पीढ़ी फासिस्टवाद के सर्वकर सत्तों और द्वितीय महायुद्ध की विनीषिका का अन्त नहीं हो पाती। किन्तु ये राजनीतिक स्वार्थ में महान्न थे। इन्होंने जनताधी सिद्धान्तों की निर्मम हत्या की, जिसके फलस्वरूप फासिस्टवाद का मार्ग प्रशस्त करने में इनका अग्रगण्य योगदान था।

### फासिस्ट-सिद्धान्त की प्रेरक शक्तियाँ

(१) फासिस्टवादी नेता प्रारम्भ में कोलोसा, फेडरजोनी, बर्बना और फोरजेर के राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित हुए थे। इस राष्ट्रवादी आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य एक विस्तृत रोमन-साम्राज्य की स्थापना करना था। फासिस्टों ने भी अपना लक्ष्य एक बृहत् रोमन-साम्राज्य की स्थापना बनाया।

(२) हीटलर की विचारधारा ने फासिस्टों को अत्यन्त रूप में प्रभावित किया। आज भी यह सिद्धान्त 'मियो-हिनेसिजम' के नाम से प्रसिद्ध है। नवीन हीटलर यात्रियों में मियोबानी जेन्टिल (Giovanni Gentile) एक कोटि का दार्शनिक था और इटली में हीटलर के सिद्धान्तों का प्रचार उसी ने किया। उसने फासिस्टवाद को हीटलरवादी पट दी। सुसोचिनी का भी हीटलरवादी-दर्शन प्रेरक

शक्ति बना। आदर्शवाद के अनुसार व्यक्ति के कार्य स्वेच्छामक की अपना नैतिकता-पूर्ण होने चाहिए। व्यक्ति का बड़ा कार्य नैतिक है जो व्यक्ति समाज एवं मानवता को नैतिक बृद्धि में सहायक हो। किन्तु उपयोगितावाद और समाजवाद नैतिक उन्नति को ही जीवन का परम लक्ष्य समझता है। मुसोलिनी तथा फ्रांसिस्ट विचारकों ने आदर्शवादी विचार को अपनाया और समाजवादियों तथा उपयोगितावादियों के इस दृष्टिकोण को निम्नकोटि का बताया। फ्रांसिस्टों का कहना था कि "जीवन का एकमात्र उद्देश्य नैतिक परिष्कार ही नहीं है। नैतिक परिष्कार पारलौकिकता की खोज है। जीवन का परम लक्ष्य व्यक्ति की समाज एवं राष्ट्र-सेवा है। यही मानवता नैतिकता एवं प्राणायामिकता की प्रतिबन्धिता है। राज्य व्यक्ति की आत्मा का प्रतीक है। राज्य आत्मा और विचारधारा का प्रतिबिम्ब है, अतः व्यक्ति को अपने नैतिक सुखों का परित्याग करके राष्ट्र-सेवा में रत रहना चाहिए। इस प्रकार फ्रांसिस्टों ने नैतिकता एवं प्राणायामिकता को सर्वोच्च स्थान प्रदान कर, विरह शक्ति अन्तर्द्वारायता और विरह-अशुल्य को भावना को निःसार बनाया।

फ्रांसिस्टवाद आदर्शवादी स्वतंत्रता-सम्बन्धी आरणा से भी प्रभावित हुआ। होमर और बोसाङ्ग के अनुसार सभी स्वतंत्रता राज्य के नियमों के परिपालन में ही सम्मिलित है। होमर ने राज्य को 'विराट' तथा बोसाङ्ग ने राज्य को 'सामान्य शक्ति' का प्रतीक बताया। मुसोलिनी ने भी इसी विचार-संरूप को अपनाया और सभी स्वतंत्रता राज्य के नियमों के अनुसार चलने में ही बतायी। किन्तु मुसोलिनी ने व्यक्तिपरक स्वतंत्रता का अन्वेषण कर कर्तव्यों पर विशेष बल दिया। अपने व्यक्ति को राज्य का दास बना दिया, जिसका अस्तित्व राज्य से निम्न नहीं है।

(१) फ्रांसिस्टों पर दन्ति (Dante) और मेकेवेली (Machiavelli) के विचारों का भी प्रभाव पड़ा। मेकेवेली द्वारा प्रतिपादित रोमन-राज्य के आचार पर एक सुदृढ़ राज्य की स्थापना करना चाहते थे। उनकी साम्राज्यवादी नीति पर मेकेवेली की सृष्टि थी।

(२) मुसोलिनी को चिन्तनरम जेम्स (William James), हेनरी बर्गसॉ (Henri Bergson) नीत्से (Nietzsche), जार्ज सोरेल (George Sorel) आदि दार्शनिकों की विचारधारा ने प्रभावित किया। सोरेल के दर्शन से बड़े प्रचलन युवावस्था में ही प्रभावित हो चुका था। उस समय उसको निम्न संवाद में भी। सोरेल ने आदर्शवादी वर्ग-संघर्ष की बर्गसॉ

के प्रेरणा-सिद्धान्त (Theory of intuition) की पुत्रि थी। मुसोलिनी ने अपने अधिनायकत्व की पुष्टि के लिए सोरेल के व्यक्तिवादी सिद्धान्त को लागू किया। अपने सोरेल से द्वेष और शक्ति के धीबल्य को प्राप्त किया। मुसोलिनी की मात्वा किसी सिद्धान्त या बड़ा विचार में न हो कर कर्म में थी। वह विवेक की अपेक्षा विश्वास को अधिक महत्त्व देता था। उसका मत था कि विश्वास के द्वारा अज्ञान का भी सम्भव बनाया जा सकता है। नीचे की भाँति मुसोलिनी का भी विश्वास था कि संघर्ष केवल अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ही अपेक्षित नहीं है, अस्तित्व सत्ता-स्थापित करने के लिए भी आवश्यक है; क्योंकि जीवित रहने के साथ-साथ व्यक्ति या राष्ट्र अपनी मर-कीर्ति को भी कामना करता है जो बिना संघर्ष के सम्भव नहीं है।

(२) मुसोलिनी के जनता-विरोधी विचारों पर पारिडो (Pareto) का प्रभाव है। वह इस प्रभाव के कारण ही जनताही प्रणाली का धनीचित्त सिद्ध करता है। उसके कथनानुसार निर्वाचन-प्रणाली धोखे की टट्टी है। इस प्रका में जन क्रायट और बेईमानी का ही प्राधान्य है। विचारों की कोई महत्ता नहीं है। उसका विश्वास है कि सभी व्यक्ति विवेकहीन एवं प्रतिभा-सम्पन्न नहीं होते; अल्पसंख्या में कुछ ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो इन सभी गुणों से विभूषित होते हैं।

### फासिस्टवादी दर्शन

फासिस्टवाद की धार्मिक पुष्टि पर प्रकाश डालने के लिए कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं है, जिसमें उसके अर्थों एवं नीतियों का संयोग एवं लक्ष-संघट-विवेचन किया गया हो। अस्तुतः फासिस्टवाद का कोई भी ऐसा प्रतिपादन नहीं है जिसने उसके सिद्धान्तिक अर्थ की विवेचना की हो। अन्ते-कार्लमार्श ने नवीन सिद्धान्तों को शीघ्र ही समाजवाद की वैज्ञानिक रूप प्रदान किया था जो जैसे सेमिन ने सोसियलिज्म के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। परन्तु यह कहना व्यापक ही है कि फासिस्टवाद का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वह पूर्णतया व्यावहारिक तथा परीक्षा और अनुभव पर निर्भर करता है। मुसोलिनी के शब्दों में 'हमारे पास कोई निरिपत सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि हमसोय नहीं हैं अस्तु स्वतः आन्दोलन हैं हम लोग स्वतंत्र विभागी जनसमुदाय हैं। (हम लोग सिद्धान्तों एवं प्रणालियों के अभाव में नहीं हैं, बल्कि हम आन्दोलन हैं।) फासिस्टवाद समाज पर आधारित है, साम्यवादी सिद्धान्त पर। हम लोग निरिपत और आधुनिक होना पसन्द करते हैं। हम विचार और सिद्धान्त के अर्थों से बच्चे निकलना पसन्द करते हैं। (मैंतु आवश्यक नहीं है, बात नहीं है।)

एल्फ्रेडो रोक़ो (Alfredo Rocco) को फ़ासिस्ट शासन में व्याप्तमन्त्री एवं कानून-निर्माता था, कहाँ है, "यह सत्य है कि फ़ासिस्टवाद सर्वोपरि कर्म तथा भावना है और ऐसा ही अधिक्य में इसे रहना चाहिए। यदि यह ऐसा न होता तो इसके पास वह विशाल शक्ति तथा नव-जीवन संचार की समता न हुई होती, जो आज इसके पास मौजूद है और केवल बीजे से बुनियादी लोगों का एकमात्र विचार बन कर ही रह जाता।" यद्यपि फ़ासिस्टवाद व्यावहारिकता पर अधिक बल देता है किन्तु फिर भी वह कुछ सिद्धान्तिक कल्पनाओं का निमाख कट्टा है और कुछ सामान्य सामाजिक भावनों का निपारण कट्टा है। वह इटली के सामाजिक जीवन को मूलतः पुनर्गठित करके नव-जीवन प्रदान करना चाहता है। प्रत्यक्षतः अपनी इस सभ्य पूर्ति के लिए यथार्थवाद और रहस्यवाद का सम्मिश्रण किया है। (फ़ासिस्टवाद में कर्म की प्रधानता है, जबकि सिद्धान्त का स्थान गौण है।) यह पक्षे कर्म करता है और बाद में, उसके लिए, सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। वह सिद्धान्त की प्रवृत्ति अनुभूति द्वारा करता है न कि तर्क द्वारा। फ़ासिस्टवाद रचना और प्रणाली के जिन नियमों की धारणी उद्देश्य-भूति के लिए समय-समय पर अनगना है, वे ऐसे होशे हैं जो कि कार्यरूप में परिणत किये जा चुके हैं। प्रत्येक नियम निश्चित नहीं होते और अनिर्धारित इनमें कोई परस्पर मेल भी नहीं होता। यद्यपि फ़ासिस्टवाद का कोई ऐसा कोषला-यन नहीं है जिसमें सिद्धान्तों की विवेचना की गई हो फिर भी इनके 'नागरिक जीवन का एक नवीन विचार' एक शक्तिशाली परिवर्तनकारी धारणात्मक, 'नवीन संस्कृति' 'राज्य की प्रकृति, उसके सभ्यों और व्यक्ति तथा राज्य के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं। फ़ासिस्टवाद के ये विचार मार्क्सवाद, उदारवाद और बर्तन के विपरीत हैं। इस प्रकार फ़ासिस्टवाद भी एक प्रकार का राजनीति-व्यवस्था बन गया है। किन्तु यह व्यर्थ प्रकट है और इसके विचारों में कोई सारसभ्य नहीं है, जैसा कि सिबाइन (Sabine) ने कहा है, "यह ऐसे विचारों का संकलनमात्र है, जो विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किये गये हैं, और परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुकूल होने के कारण एकत्र कर लिए गये हैं।" यह सिद्धान्त विचार द्वारा परिष्कृत नहीं है और प्रायः भाङ्गतापूर्ण भी है। यह नीरवे के 'सत्ता की इच्छा' (will to power) के सिद्धान्त जीवन के राष्ट्रवाद और वर्गों के बुद्धि-निरोधवाद (Anti-intellectualism) को सम्मिश्रित करने का प्रयास है।" इसकी राज्य-सम्बन्धी कारण अधिकार में धारणाशाली है और शासन की कल्पना में कुनोमर्तन (Aristocracy) को ही स्थान दिया गया है। इस प्रकार इसके विभिन्न विचारों में कोई धारणा

नहीं है। ये व्यवस्थाविता के द्योतक हैं। मुसोलिनी घोर व्यवस्थावादी था। उसने सामयिक परिस्थितियों के अनुसार अपनी नीति का निरन्तर किया। मुसोलिनी अपनी मुद्रा-नियमन में जनवादी, रूढ़वादी, शान्ति-प्रिय, समाचार-पत्रों को स्वतंत्रता का बहुर समर्थक, पूरा नास्तिक और समाजवादी था किन्तु सत्ता-प्राप्ति के उपरान्त बड़ी जनतंत्र का हत्याकाण्ड यमिक-आन्दोलन के स्वतंत्र अस्तित्व का घोर शत्रु, मुद्रा-नियमन, समाचार-पत्रों को स्वतंत्रता का हत्या करनेवाला, ईरान में शास्य रखनेवाला और पोप की धार्मिक सत्ता की प्राधान्य देनेवाला, समाजवाद और उत्तरवाद का परम विरोधी बन गया। उसने अपने समाजवादी बन्धुओं की हत्या करवायी, उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दीं और देश-निष्ठाताम के लिए विषय किया। माल्कोली (Malcooli) जिसने फ्यसिस्टवाद की तुलना एक बेरिया से की थी एक समय मुसोलिनी का समाजवादी साथी था जिसे मुसोलिनी ने अविनायक बनने के बाद मरवा डाला था। मुसोलिनी ने अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए सभी नीतियों को अपनाया। जिस नीति से स्वार्थ-पूर्ति हो वह उचित, नैतिक एवं ग्यायसंपन्न थी। इस प्रकार कर्म करते समय फ्यसिस्टों के लिए किसी सिद्धान्त का प्रश्न नहीं था। सिद्धान्त का प्रतिपादन कर्म के बाद किया गया। मुसोलिनी ने कहा था, "फ्यसिस्टवाद किसी सिद्धान्त का पहले से ही पुरी विचारों और विस्तार के साथ पालन-पोषण करता नहीं है। यह कर्म के लिए आवश्यकता से उत्पन्न हुआ था और आरम्भ से ही सिद्धान्तिक होने की अपेक्षा व्यावहारिक था। "फ्यसिस्ट दल की राजनीति के निम्नी हैं, जो किसी सुनिरिखत सिद्धान्त से बंधे हुए नहीं हैं। उनका एक ही मन्व्य है, और वह है—इसी निवाहियों का पालन करना।"

### राष्ट्र के प्रति मन्व्य

फ्यसिस्ट राष्ट्र की स्तुति करते हैं। आदेशवाहियों की भाँति उनका विश्वास है कि राष्ट्र का अपना व्यक्तित्व, इच्छा एवं आदर्श होता है जो उसमें बसनेवासे व्यक्तियों से सर्वथा भिन्न होता है। उत्तरवाद एवं प्रजातंत्र व्यक्तियों के हितों की रक्षा करते हैं; समाजवाद एक धार्मिक कर्म के हितों का संरक्षक है, किन्तु फ्यसिस्टवाद सम्पूर्ण समाज का एक इकाई के रूप में ध्यान रखता है। "फ्यसिस्टवाद के लिए समाज ही राष्ट्र है, व्यक्ति प्राण है और उनका समस्त जीवन व्यक्तियों का उसके राष्ट्रों की प्राप्ति के लिए, राष्ट्रों के रूप में उपयोग करने में ही है।" फ्यसिस्टवाहियों की राज्य की प्रकृति के सम्बन्ध में आरणा व्यक्तित्वाहियों से सर्वथा भिन्न है। वे व्यक्तित्वाहियों की अनुवादी (Atomistic) व्यवस्था

यांत्रिक ( Mechanistic ) कल्पना के स्थान पर राज्य की साव्यवचीय ( Organic ) प्रकृति मानते हैं । 'समाज' से उन्नत प्रमिप्राय सबैव ही 'राष्ट्र' ( Nation ) से होता है । राष्ट्र का धर्म है, उन समान लोगों का वह समूह जो सामान्य भाषा धर्म, रीति, रिवाजों तथा परम्पराओं द्वारा एकता के सूत्र में बाँधे हों । अस्तित्वों के अनुसार व्यक्ति की यदि कोई महत्ता है तो वह राष्ट्रीय जीवन के प्रसंग में ही है, इसके अलग वह एक निर्बीज पदार्थ है, एक अस्वल्प कल्पना की उद्यम है । व्यक्ति का जो एक निश्चित मध्य प्रवृत्ति व्यक्तित्व हुआ करता है वह राष्ट्र या राज्य के अस्तित्व होने के माते ही होता है । राज्य राष्ट्र का एक जीवनदायी ढाँचा है । इस प्रकार राज्यवाद ( Stateism ) और राष्ट्रियतावाद ( Nationalism ) दोनों का व्यक्ति के जीवन पर एक-सा ही प्रभाव पड़ता है । राष्ट्र एक आत्म-पूरित इकाई ( Self sufficient entity ) है, जिसका जीवन सतत और अनन्तकालीन है । राष्ट्र 'अपनी एकता के सूत्र में बाँधे न केवल जीवित सदस्यों का ही विवरण होता है, अपितु अस्तित्वों के सम का बोध कराता है ।' इस प्रकार अस्तित्ववाद राष्ट्र या राज्य की निरन्तर सामंभूमता की स्थापना करता है और नैतिक एवं धार्मिक दोनों क्षेत्रों में राज्य की सर्वोपरिता बनाने रहता है । अस्तित्ववाद के अनुसार व्यक्ति अपनी अस्तित्व, सम्पत्ता, राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवयव आदि को राष्ट्र से बरवान स्वयं प्राप्त करता है और राष्ट्र से अलग उसका कोई निम्न व्यक्तित्व ही नहीं है । अस्तित्ववाद व्यक्ति को अपनी धार्मिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए किसी प्रकार के अधिकार प्रदान नहीं करता किन्तु राज्य के अस्तित्वार्थ व्यक्ति के हितों की प्रावृति देने को सदा तैयार रहता है । 'राज्य ही अन्तिम वा अरम मध्य है जिसे व्यक्ति के विरुद्ध सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है जिसका कि सर्वोच्च धर्म राज्य का अस्तित्व होना है ।' (राज्य से पृथक् व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है । व्यक्ति राज्यकी विशाल प्राकार में एक ईंट की भाँति है । राज्य के द्वारा ही अन्तर्गत सर्वाङ्गीण विकास सम्भव है । मुसोलिनी कहा करता था, "समस्त वस्तुएँ राज्य में हैं, कोई भी राज्य के बाहर नहीं है । कोई भी वस्तु या सत्ता राज्य के विरुद्ध नहीं हो सकती ।")

अस्तित्ववाद शोकावर्तन, उदारवाद और समानवाद का विरोधी

(अस्तित्ववादी समात्मक अनर्तन को मूर्खों का शासन समझते हैं जो कि अष्ट, बीरे-बीरे रणभेदात्ता कालाधिक और अत्यावहारिक है । उनके मतानुसार अनन्तन सदा हुआ मुक्त शरीर है और इसकी विधान-समार्थ केवल वास्तविकता की बुझानें

है, जिनसे किसी प्रकार की कोई फल प्राप्ति नहीं हो सकती } वे प्रजातंत्र को धर्म-  
 सगिक समझते हैं और उसकी आधारभूतियों को भी प्रमात्य शोषित करते हैं। उनकी  
 दृष्टि में व्यक्ति का कोई पुरुष्-व्यक्तित्व या स्वयं नहीं है और न उसे प्राकृतिक  
 अधिकार ही उपलब्ध होने चाहिए। फासिस्टों के मत में यह धारणा कि व्यक्ति  
 अपने लिए जीवित रहता है और उसकी स्वतंत्र सत्ता है तथा उसे अपने व्यक्तित्व  
 के विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता देनी चाहिए, ठीक-संपूर्ण नहीं है क्योंकि व्यक्ति  
 की राज्य से मिला कोई सत्ता है ही नहीं।

फासिस्टवादी विश्वास करते हैं कि जन-समुदाय अपने को शासित करने के  
 नहीं है। बहुमत सदैव अधोम्य और अधम्य व्यक्तियों का होता है। इसमें राष्ट्र-  
 योग्य के मार्ग प्रदर्शन की क्षमता नहीं होती। इस प्रकार फासिस्ट जनतंत्रिय प्रजाती  
 का मनीषित्व सिद्ध करते हैं। (उनकी दृष्टि में, केवल अल्पसंख्यक व्यक्ति ही शासन  
 करने की योग्यता और भाकाशा रखते हैं) जिनमें उच्चकोटि की दूरदर्शिता, महान्  
 व्यक्तित्व, शैक्षणिक सम्यक्-ज्ञान और राष्ट्र के प्रति अथवा अज्ञा तथा भक्ति होती  
 है। वे अपनी प्रतिभा के द्वारा विभिन्न वर्षों में सामंजस्य स्थापित करने में सफल-  
 भूत हो सकते हैं। वे राष्ट्र-हित को मनीषित्व समझते हैं और राष्ट्र की रक्षा  
 कर सकते हैं। नागरिकों की सरकार की आलोचना करने का कोई अधिकार  
 नहीं है। उनका पूर्णतः कर्तव्य यह है कि राज्य द्वारा प्रयत्न किये को पूरा करें।  
 फासिस्ट मानव-प्रसमानता में विश्वास करते हैं, वेता कि मुसोलिनी ने कहा था,  
 "फासिस्टवादी मानवता की अथवा सामंजस्य एवं फासिस्टवादी प्रसमानता का पोषण  
 करता है।" इस प्रकार फासिस्टवादी जनतंत्र की अथवा मुनीत-तंत्रिय शासन  
 व्यवस्था का समर्थक है। ऐसी व्यवस्था का संवाहन एक महान् नेता के नेतृत्व  
 में कुछ व्यक्तियों द्वारा होगा। यह नेता पूर्णतः अविनाशक होगा। मुनीत-तंत्रिय  
 शासन में विरोधी भावना के लिए कोई स्थान नहीं है।

फासिस्टवादी जनतंत्र को अस्थायिक एवं अस्थायिक सिद्धान्त कह कर  
 अज्ञान प्रदर्शित करते हैं। वे सौकिक सार्वभौमता (Popular Sovereignty)  
 और सामान्य दृष्टि की पद्धति का भी विरोध करते हैं। इनके कथनानुसार सामान्य  
 दृष्टि केवल व्यक्तियों की यत्ना मात्र ही नहीं है, अपितु सामान्य दृष्टि में व्यक्तियों  
 की प्रेरणा का योग होता है। यदि प्रेरणा को अज्ञान नहीं मानें, अथवा अज्ञान  
 हर्ष सामान्य दृष्टि नहीं बतला सकता। फासिस्टवादी अस्थायिक सिद्धान्त की  
 अन्तर्गत वैकीली पद्धति से निवृत्त है और इसके शैक्षणिक तथा व्यावहारिक दोनों  
 कर्तों को अज्ञान करती है। "फासिस्टवादी इस बात का अज्ञान करता है कि

सबस्य केबस सबस्य होने के नाते मानव समाज का संवासन कर सकते हैं, यह इस बात का भी नियम करता है कि पात्रिक विचार विमर्श द्वारा ये सदस्यगण समाज का शासन कर सकते हैं फासिस्टवाद इस तथ्य को भी प्रमाणित करता है कि मानवों में उत्साहक, सामकामी तथा अनाहानक असमानता प्रचलित रहती है और उन्हें बाह्य यांत्रिक मजदुरान द्वारा समान नहीं किया जा सकता है। जन तंत्र का आधार सार्वभौमिक मताधिकार के विरुद्ध प्रस्ताव पर प्राम्थित है, जबकि फासिस्टवाद का आधार रिपब्लिक के समान है। फासिस्टवादो समाज में नेताओं का निर्वाचन न तो जनता द्वारा ही होगा और न वे जनता के प्रति उत्तरदायी ही होंगे। इसके विपरीत जनता नेताओं के प्रति उत्तरदायी होगी। वहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फौजी अनुशासन और अन्ध आशाकारिता होगी। फासिस्टों के प्रमुख नारे थे—'आस्था रखना, 'आज्ञा पालन करना' और 'तकना' तथा 'मुझे सिनी सबैब सही है।' फासिस्टवादी व्यवस्था में जनवादी एवं उदारवादी विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। फासिस्टवाद कुमोनवर्गीय शासन के सिद्धान्त को अस्वीकार करता है और ज्यों को उसने अपना ध्येय बनाया।

फासिस्टवाद जनतंत्र को एक सरकारी व्यवस्था और सिद्धान्त दोनों के रूप में अस्वीकार करता है। यह व्यक्ति के अधिकतम सुख के सिद्धान्त को जिसमें कि राज्य का कस्याणकारी आधार निहित है, पुनः स्थापित करता है। 'उदारवाद व्यक्ति विशेष के हित में राज्य को अस्वीकार करता है, जबकि फासिस्टवाद राज्य को व्यक्ति की सच्ची यथार्थता के रूप में पुनः स्थिर करता है।' फासिस्टवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता की उदारवादी मायता का अनाहान करता है। उदार प्रवर्तक का नारा है—'स्वतंत्रता सदा तथा बन्दुबन्ध' किन्तु फासिस्टवाद, 'आदेश, अनुशासन और सत्ता' पर बल देता है। फासिस्टवाद सत्तावादी और सत्तावादी राज्य के आधारों को अस्वीकार करता है। फासिस्टवाद उदारवादी परम्परा को टुकड़ाकर सर्वाधिकारी व्यवस्था का निर्माण करता है। उदारवाद व्यक्ति का मौलिक अधिकार प्रदान करता है, राज्य की आलोचना करने का अधिकार देता है। यदि लोग चाहें तो वैधानिक एवं शक्तिपूर्वक साधनों द्वारा शासन में परिवर्तन कर सकते हैं। किन्तु फासिस्टवाद में व्यक्ति के नैसर्गिक अधिकार ग्राहीन हैं, क्योंकि अधिकार केवल राज्य द्वारा ही प्रदान किए जाते हैं। फासिस्टवाद व्यक्ति को राज्य के विरोध करने को स्वतंत्रता प्रदान नहीं करता। फासिस्टवाद के अनुसार व्यक्ति की सच्ची स्वतंत्रता राज्य के आदेशों के परिपालन में ही है। उदारवाद के अनुसार राज्य को व्यक्ति के सामाजिक, शैक्षिक एवं



सांस्कृतिक कार्यों में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, किन्तु फासिस्टवादी राज्य में व्यक्ति के सामाजिक सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक मनोवैज्ञानिक कार्यों का सम्पूर्ण राज्य द्वारा ही होता है। उदारवाद के अनुसार राज्य साधक है धीरे व्यक्ति साम्य किन्तु फासिस्टवाद के अनुसार व्यक्ति साधक है धीरे राज्य साम्य। फासिस्टवादी समाज में राज्य सर्वप्रधान एवं सर्वशक्ति-सम्पन्न है जबकि व्यक्ति धीरे बर्ग का स्थान गीण है। फासिस्ट राज्य एक केवल शक्ति है। उच्च निजी व्यक्तिगत मोर इच्छा-शक्ति है। राज्य से भिन्न व्यक्ति या बर्ग की कीमत गणना ही नहीं है। उदारवाद में नीतिकृता का प्राधान्य है जबकि फासिस्टवाद में धार्मिकता की प्रधानता है। फासिस्टवादियों के मत में, नीतिकृत सत्त्विकता की परिचायक है, यह जीवन का निम्न कोण का मध्य है मानवता के लिए नैतिक संघर्षमय धार्मिकता एवं संयमी जीवन ही व्यवस्था है, मगर फासिस्टवादी नीतिकृता को मानव-जीवन में उच्च स्थान देते हैं। नीतिकृता केवल राज्य में ही सम्भव है। राज्य के नियमों का पालन करना ही नीतिकृता है। नीतिकृता की अभिव्यक्ति राष्ट्र-प्रेम, राज्य भक्ति, साम्राज्यवादी भावना और नैत-बर्ग में धार्मिकता से होती है। किन्तु उदारवादी नीतिकृता धीरे नैतिक जीवन को व्यक्तिगत क्षेत्र के अन्तर्गत रखते हैं। उन्हें राज्य का व्यक्तिगत नैतिक जीवन में हस्तक्षेप सदा नहीं है।

फासिस्टवाद समाजवाद का भी विरोधी है। समाजवादी वर्तमान पूँजीवाद को परिवर्तित कर बर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इस उद्योग की पूर्णतया देन के लिए वे व्यक्तिगत सम्पत्ति का सम्पूर्ण, उत्पादन के समस्त साधनों का समाजीकरण धार धन का समुचित वितरण करना चाहते हैं। फासिस्टवाद धार्मिक सामाजिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं करना चाहता। यह व्यक्तिगत सम्पत्ति को अभिचार्य सम्पन्नता है। उसके पक्ष धार्मिक नियमों को दूर करने की कोई योजना नहीं है। फासिस्टवाद मार्क्सवाद की ऐतिहासिक नीतिकृता की धार्मिकता धीरे बर्ग-संघर्ष में कोई धिक्का नहीं करता। उसका यह विश्वास नहीं है कि मानव-कार्य धार्मिक कारणों से ही प्रेरित होते हैं। मुन्सेनिनी ने कहा था कि व्यक्ति को धार्मिकता धीरे नीर नूदा से अन्तःप्रेरण मिलती है। धर्मियों की दृष्टि में धार्मिक वस्तुओं या मुन्सेनी धीरे का एकमात्र सत्य नहीं है। मुन्सेनिनी के शब्दों में 'धार्मिक मुन्सेनी मानव की पशु बना देगा जो वेचन खाने धीरे अन्तः खाने की दल भोज करेगा धीरे इस प्रकार मानवता को केवल धार्मिक जीवन-दान का संन्यास बना देगा। फासिस्टवादी बर्ग-संघर्ष

के स्थान पर वर्ग-साम्राज्य को महत्त्व देते हैं। वे समाज में विभिन्न वर्गों की उदात्तता समझते हैं। उनका विश्वास है कि साम्राज्य में विभिन्न वर्गों को समानाधिकार देना ही सही है। उनका विश्वास है कि स्वामी और सेवक के बीच ऐक्य-सम्बन्धों की स्थापना हो जाती है और वर्ग विरोध नैतिकता का अन्त हो जाता है। इस प्रकार फासिस्टवाद विभिन्न वर्गों में सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है और उन सभी को राष्ट्र के सम्मुख प्रतिष्ठित कर देता है। फासिस्टवादी साम्राज्यवाद की पूर्ण-जातीय भावना को अंगीकार करते हैं। वे पूर्ण-जातीयता द्वारा अर्थिकों के शोषण उनके अन्तर्गत अधिक भ्रष्ट नाम और बेहतर मुनाफा की अर्थात् करने हैं, किन्तु समाजवाद द्वारा प्रतिपादित इस को न्यायता प्रदान नहीं करते। फासिस्टवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति और शोषक-वर्ग का उन्मूलन नहीं करना चाहते। वे पूर्ण-जातीय वर्ग को उपयोगी समझते हैं। किन्तु ये न तो पूर्ण-जातीय वर्गों को निजी हित के लिए कस-कारखानों पर पूर्ण एकाधिकार एवं नियंत्रण की स्वतंत्रता ही देते हैं और न अर्थिक-सर्वों को उद्योगों पर स्वैच्छात्मक एकाधिकार की ही छूट देते हैं। फिर भी, फासिस्टवाद, 'कोल' के शब्दों में, "राज्य का समाज के सामाजिक जीवन तथा आर्थिक जीवन के नियंत्रण का अन्तिम अधिकार मानते हुए, आर्थिक मामलों को जहाँ तक सम्भव है, व्यक्तिगत उद्योग पतियों के हाथों में ही रखने देना चाहता है।"

### व्यक्तिगत स्वतंत्रता

फासिस्ट राज्य में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि फासिस्टवादी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अनेकता राज्य की शक्ति पर अधिक बल देते हैं। उनके मत में, व्यक्ति की स्वतंत्रता राज्य की शक्ति पर निर्भर करती है। अतः अधिक राज्य-शक्ति होगी उतना ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्षेत्र व्यापक होगा। फासिस्टों के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता या समानता की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी एक शक्तिशाली राज्य की आवश्यकता है। व्यक्ति अपने व्यक्तिगत या विकास स्वयंसेवक नहीं कर सकता। वह केवल राष्ट्र-हित में ही सम्भव हो सकता है। व्यक्ति का वह पुण्य कर्तव्य है कि वह अपने व्यक्तिगत को परिवार, वर्ग और अन्ततः राज्य में विलीन करे। फासिस्टवादियों के अनुसार, "बिना किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं है, केवल उच्च स्वतंत्रता के जो राज्य में अन्तर्गता है।" राज्य "निर्दुःख इच्छा के समानार्थ एक साधिकार समुदाय है और समाज के लिए सामान्यतः तथा व्यक्तिगत नागरिक के लिए विशेषतः एक प्रतिभू है, जिसकी सुरक्षा

वास्तुकी कल्पना द्वारा की जाती है। "स्वतंत्रता एक अधिकार न होकर एक कर्तव्य है।" फासिस्टवादी स्वतंत्रता को नैतिक अधिकार नहीं मानते, वह तो राज्य की एक रियायत है, जो राज्य के नियमों के पालन करने में सन्निहित है। स्वतंत्रता 'कानूनी शरीरता' और 'साम्याशीलता' है। व्यक्ति की स्वतंत्रता समाज-सेवा में ही निहित है। व्यक्ति जिसका अपने को समस्त में विनीत कर पाता है, वह उतना ही स्वतंत्रता का उपभोग करता है। स्वतंत्रता वास्तव की शक्ति है, जैसे कि जेन्टाइल कहता है, "कानून और राज्य स्वतंत्रता का सर्वश्रेष्ठ प्रकट-रूप है" तथा "आधुनिक स्वतंत्रता आधुनिक राज्य-शक्ति में समुचित है।" व्यक्ति अपना वास्तविक व्यक्तित्व और अपनी स्वतंत्रता समीक्षा कर सकता है, जबकि वह अपनी शक्ति को बड़ी इकाइयों में विनीत कर दे। अतः व्यक्ति की अपने राज्य या राष्ट्र में शक्ति है और सामुहिक शक्ति अधिकतम शक्ति से श्रेष्ठतर है। इस प्रकार फासिस्टवाद का प्रमुख लक्ष्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और अधिकार जो अलग-अलग के आधार पर प्राप्त हैं, उनके स्वतंत्रता पर शीघ्रता से तथा हीनता में श्रेष्ठतर संगठित राष्ट्र के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करता है और स्वतंत्रता शक्ति तथा आधुनिक के जनतावादी शक्तियों की शक्ति पर अन्तर्निहित प्रभुत्व और श्रेष्ठतर संगठन ( Hierarchy ) को स्थापित करता है।

### निगमात्मक राज्य

फासिस्टों का कथन है कि आधुनिक युग में निगमात्मक राज्य उनकी सर्वाधिक मौलिक एवं महत्वपूर्ण बात है। यह है नैतिकवाद और समाजवाद दोनों सिद्धान्तों से निम्न, उच्चतर एवं नवीनतर है, जैसा कि मुहोबिनी ने कहा था कि निगमात्मक राज्य, "सर्वाधिक महत्वपूर्ण और मौलिक रूप है, दूसरे शब्दों में सबसे अधिक प्राथमिक कार्य है।" "निगमात्मक समाजवाद और समाजवाद दोनों ही से उच्चतर है; यह एक नूतन व्यवस्था का प्रथमदशा है।" किन्तु फासिस्टवादी निगमात्मक राज्य के सिद्धान्त में श्रेष्ठतर संगठन और आधुनिक संस्थाओं के विचारों का समावेश है। बुनारी विमनिन्स के मत में, "फासिस्टवाद नैतिक पूर्वजावाद का प्रतिनिधित्व ही नहीं है, बल्कि यह अपने समाजवादी शक्तियों से ही पूर्ण है।" एक अन्य शक्ति का विचार है कि फासिस्टवाद पूर्वजावादी और समाजवादी दोनों है, क्योंकि पूर्वजावादी और समाजवादी दोनों ही प्रकृतियाँ अन्तर्निहित हैं।

निगमात्मक राज्य में अधिकांश संस्थाएँ और निबंधन के फासिस्टवादी सिद्धान्त के आधार पर फासिस्टवादी आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करने से है। यह आर्थिक

व्यवस्था राज्य द्वारा नियंत्रित पूर्वोक्त और धर्म के संघर्षों में उपनिम्नित कर दी जाती है। प्रत्येक संघर्ष अपने उद्योग या व्यवसाय पर एकाधिपत्य रखता है। फासिस्टवादियों की धारणा है कि राज्य ऐसे व्यक्तियों द्वारा निर्मित हुआ है, जो समाज के विभिन्न वर्गों करनेवाले व्यावसायिक समुदायों में संघटित हैं। वे व्यावसायिक समुदाय समाज के लिए स्वाभाविक और आवश्यक होते हैं। इन समुदायों को कुछ विशिष्ट एवं आवश्यक कार्यों का सम्पादन करना होता है जिनके लिए उनका उत्तरदायित्व राज्य के प्रति होता है। इस प्रकार के प्रत्येक समुदाय को निगम (Corporate) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य को इन निगमों द्वारा ही करता है। ये निगम प्रत्येक व्यक्ति को सामूहिक रूप में करने का अवसर प्रदान करते हैं। इनके द्वारा वार्षिक प्रतियोगिता की अपेक्षा राष्ट्रीय सहयोग एवं सहकारिता को बल मिलता है। व्यक्ति ट्रेड यूनियनों और निगमों के संघर्ष में विभिन्नता है। निगम एक स्वायत्तरीय संस्था नहीं है। वह राज्य द्वारा नियंत्रित होती है। उसके अधिकारियों का चुनाव उसके सदस्यों द्वारा नहीं होता। उनकी नियुक्ति राज्य द्वारा होती है। निगमों की सार्वभूम्यता भी राज्य द्वारा नियंत्रित है। सभी व्यक्ति इसके सदस्य नहीं हो सकते। राज्य की इस प्रभुसत्ता के सम्बन्ध में 'बोर्ड' का कहना है कि मुसोलिनी कहता है कि— 'फासिस्ट राज्य ने अपने अन्तर्गत राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओं को भी सम्मिलित कर लिया है और जिन सामाजिक तथा आर्थिक निगम-समुदायों को अपने अन्तर्गत लिया है, उनका द्वारा वह अपना प्रभाव राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक धर्म पर डालता है और राष्ट्र की सम्पूर्ण आर्थिक राजनीतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को जो अपने समुदायों में संघटित है, अपने में शामिल करता है। इस प्रकार फासिस्टवाद आर्थिक एवं भौतिक क्षेत्र में भी राज्य की प्रभुसत्ता स्थापित करता है। मालिक और मजदूर की इन निगमों में समान स्थिति है। मुसोलिनी ने राज्य के इस फासिस्ट-सिद्धान्त का प्रतिपादन इस प्रकार किया है, 'फासिस्टवाद के लिए राज्य निरंकुश है और व्यक्ति तथा समुदाय सपेक्ष है। फासिस्ट राज्य यह सब प्रहरी नहीं है, जो जनता की व्यक्तिगत सुख के लिए अस्तु हो और न राज्य का संघर्ष इसलिए हुआ है कि वह नागरिकों के भौतिक कल्याण एवं शान्तिपूर्ण जीवन को व्यवस्था के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ संचालन करे। फासिस्टवाद की कल्पना के अनुसार राज्य राष्ट्र के राजनीतिक न्यायिक और आर्थिक संघर्ष को उपसम्पन्न के लिए एक आध्यात्मिक संघर्ष है। यह ऐसा संघर्ष है जो अपनी उत्पत्ति तथा विकास में धारणा की धर्मिक है। राज्य देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा की गारण्टी देता है, किन्तु

यह बनता की धारणा की भी रक्षा करता है, जो विरकास से घबरी माया, सोकाचार एवं भ्रमों द्वारा विकसोत्सुख रही है। राज्य केवल वर्तमान ही नहीं है, अपितु वह मृत और भविष्य भी है। राज्य नागरिकों को नागरिकता की शिक्षा देता है, वह उन्हें उनका ध्येय बतसाता है, उन्हें एकत्व की ओर प्रेरित करता है, उसका म्याप उनके विविध हितों में एकता की स्थापना करता है, वह भावी सन्तान को कला विज्ञान कानून और मानव-संपन्न के क्षेत्रों में जो मस्तिष्क ने सफ़लताएँ उत्पन्न की हैं, उन्हें विरासत के रूप में प्रदान करता है; वह उन्हें एक कबीले के जीवन से मानव-शक्ति के उच्चतम रूप, साम्राज्य-शासन को पहुँचाता है।” इस प्रकार ‘मूल्यक वस्तु राज्य के लिए है, राज्य के विरुद्ध कोई भी वस्तु नहीं है, राज्य से बाहर भी कुछ नहीं है।

जब एनर्जियो (Annunzio) और उनके अनुयायियों ने सन् १९१९ में फ्लूम (Fiume) के शहर पर एकाधिकार कर लिया तो एक नवीन संविधान की रचना की गई। इस संविधान के अनुसार नागरिकों की व्यावसायिक कार्य के सिद्धान्त के आधार पर संपादित करना था। सर्व प्रथम को व्यक्ति नागरिक और व्यावसायिकों के रूपों में विभक्त कर दिया गया। केवल एक ही संघ को उद्योग या व्यावसाय की प्रत्येक शाखा में मान्यता दी गई। संघ की स्वतंत्रता अनिवार्य नहीं थी। संघ के पदाधिकारी या तो फ्रांसिस्ट राजनीतिज्ञ होते थे या ऐसे व्यक्ति जिनकी भक्ति फ्रांसिस्ट शासन के प्रति थी। निःसन्देह व्यक्ति और नागरिकों के संपन्न व्यावसायिक आधार पर स्थापित थे। वर्ष-सर्वर्ष प्रशासन या और नागरिकों मजदूरों और व्यावसायिकों को राज्य-हित की दृष्टि से एक साथ कार्य करना पड़ता था। जब इटली में १९२२ को फ्रांसिस्ट शासन की स्थापना हो गई तो एनर्जियो की नियमात्मक-व्यवस्था को चरुख कर दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत जाने का एक कारण यह भी था कि इटली और विश्व के लोग यह जान सके कि फ्रांसिस्टशासक केवल प्रतिस्पर्धात्मक वर्तन ही नहीं है, अपितु एक नवीन रचनात्मक सिद्धान्त भी है।

फ्रांसिस्ट सरकार ने नियमात्मक प्रणाली को इटली में लागू किया। ये नियम एक उद्योग में प्रशासकीय एकात्मता थे। इनका प्रमुख ध्येय उद्योग में व्यक्तियों तथा नागरिकों के संपन्नों को संगठित एवं निर्वाहित करना था। यद्यपि कानून की दृष्टि से ये संघ स्वतंत्र थे, किन्तु इनका संचालन राज्य द्वारा होता था। इन नियमों के लिए एक राज्य-मंत्री नियुक्त होता था जो उनकी बैठकों का सभापति बन जाता था। व्यक्ति, पूँजीपतियों के प्रतिनिधि और राज्य-कर्मचारी मिल कर

राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निवारण करते थे। ये नियम बेतन आयात-निर्यात उत्पादन, कार्यकास, बस्तुओं की कीमत और मजूरी-पूर्वीपटियों के समझौते आदि को निश्चित करते थे। राष्ट्रीय आर्थिक जीवन पर इन नियमों का एकाधिकार था। ये नियम राज्य को एकमात्र प्रशासकीय एजेंसियाँ ही थे और प्रत्येक दशा में एक कारण से कम नहीं थे। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी केन्द्रीयकरण पूर्णरूपेण व्याप्त था और फासिस्ट पार्टी की इन पर प्रभुता थी।

बहरि मुसोलिनी को इस निगमरमक राज्य-व्यवस्था पर बड़ा पर्व था, किन्तु द्वितीय-महामुद्र के समय यह व्यवस्था निष्कम सिद्ध हुई। यह निगमात्मक राज्य जिसने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्वप्नित करुणा के लिए, मरिब जनता के कल्याण एवं सुख को निवारण कर दिया था, पूर्णतः धूल-धूसरित हो गया। क्रिसी का फासिस्टवाद सैन्य मोर्चे की अपेक्षा आर्थिक मोर्चे पर बुरी तरह पराभूत हुआ। निगमरमक राज्य ने पूँजी और साम्राज्य के क्षेत्र में परिवर्तन की अपेक्षा औपनिवेशिक शक्ति और निर्भरता को बढ़ावा दिया। पतन मुसोलिनी के बाद निगमात्मक राष्ट्रीय व्यवस्था का अन्त हो गया।

वहाँ तक इस नियमवादी पद्धति के महत्त्व का अंश है, जिसने इनने राज्य के कार्यों का एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह 'यद्बुद्ध्याम्यम नीति' और समाजवाद से उन्मत्त थी। इसने राज्य और व्यक्ति को परस्पर एकता के मूल में आधार दिया। निगम व्यक्तियों की विचारभिर्यक्ति एवं मतभेदों को एकता का प्रतीक था। इसकी अर्थ क्रिपता यह थी कि नियमवाद सभी राजनीतिक शासकों से निरान्त भिन्न था। यह प्रत्येक प्रकार के शासन में जारी रह सकता था। नियमवाद और सर्वहारा राज्य में किसी प्रकार का साम्यवादी सम्बन्ध नहीं था। इसकी अन्तिम महत्ता यह थी कि नियमवाद ने राज्य के डाले और रूप के नवीन विचारों का प्रतिपादन किया था। इसने बीसवीं शताब्दी के नवीन तथा अन्धे जनतंत्र को उद्घाटित किया। यह न केवल आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित सभी तर्कों के मतभेदों में एकता स्थापित कर सका, अपितु भारत-अनुशासन को प्रकृतित किया। राजनीतिक क्षेत्र में इसने प्रतिनिधित्व के एक नवीन आधार का सूत्रगत किया। धारणमा न तो प्रादेशिक इकाइयों पर निर्भर थी और न यह राजनीतिक बलों का अबाध ही थी।

### बुद्धि विरोध अथवा अर्धबुद्धिवाद

( Anti Intellectualism or Irrationalism )

बुद्धि-विरोध या अर्धबुद्धिवाद फासिस्टवाद का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

फासिस्टवा" किसी निरपेक्ष सत्य में विश्वास नहीं करता जिसे वर्क की कसौटी पर कसा जा सके। सम्भवतः युद्ध में अविश्वास फासिस्टवाद की निश्चित सिद्धांति-विहीनता का एक कारण है। उसके मठ में, वही सत्य है जिसे राज्य सत्य घोषित करे। फासिस्टवाद मानव को अन्तर्गत प्रकृति (instinctive) और अविश्वेकारमक (non rational) पक्ष पर अधिक बल देता है। यह विश्वेकारमक और विश्वेकारमक पक्ष को पूर्णतः उपेक्षा करता है। उसका विश्वास वाद विचार की पद्धति में नहीं है। जेस्टाइल के कथानुसार 'फासिस्टवाद विश्वरक्ष्य से बुद्धि-विरोधक और मैजिनीवादी है; अर्थात् इमानु बुद्धि-विरोध से प्रतिश्राव्य व्यवहार से विचार-रत्याग करने से है। (फासिस्टवाद कात्मिक पक्ष निर्वाण का विरोधी है, जो यथार्थता की परीक्षा के सम्मुख टिक नहीं सकती।) यह उस समस्त विज्ञान एवं दर्शन-शास्त्र का विरोधी है जो कल्पना और विवेक का ही विषय रहता है। यह वह फासिस्टवाद नहीं है जो संस्कृतिक मूल्यों को अस्वीकृत करता है। यह उल्टा संस्कृति का विरोधी नहीं है जिसका कि युधि संस्कृति वा उम संस्कृति का जो निहित नहीं करती, जो म नव नहीं बनाती, बल्कि जो एक परिष्कारशीली और अमित कला-शास्त्री, अर्थात् बुनिया में पैदा करती है, अर्थात् कि व्यक्ति नैतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से असाधन रहता है। फासिस्टवाद अपने चारों ओर अत्याचारिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में समय का कुशलयोग करना पसन्द नहीं करता। किन्तु जब हम कहते हैं कि यह एक प्रणाली या सिद्धान्त नहीं है, इससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह एक अल्प परम्परा या एक विरुद्ध अल्प पद्धति है। यदि एक पद्धति या दर्शन से इमानु उल्लंघन एक सशोध विचार, एक सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त (Principle of universal character) से है, जो नित्य अपनी अन्तर्गत अन्तः और महत्ता का प्रकाशन करता है, तो फासिस्टवाद मुद्द एवं ठोस नींव पर आधारित एक पूर्ण प्रणाली है और इसके विकास से सम्बन्धित एक नैतिक तर्क है। जिन्हें यह सब प्रतीत होता है और इस सिद्धान्त की शक्ति का आभास है, वे उत्तरीतर इसके विकास में रहें हैं।" इस प्रकार फासिस्टवायियों के मतानुसार राजनीतिक सत्ता अत्यन्त होती चाहिए, न कि संस्थागत। सम्पूर्ण राजनीतिक गति-विधि का क्षेत्र भारत या इत्यादी होना चाहिए अर्थात् बुद्धि के। अतः फासिस्टवाद अन्तःवादी विचार का अन्तःविषय सिद्ध करता है जहाँ वाद-विचार का प्राधान्य है। यह शास्त्र के संसदीय रूप को अमान्य ठहराता है। फासिस्टवायियों का कथन है कि संसद का यह कार्य नहीं है कि वाद-विचार तथा अन्तःवादी द्वारा सामान्य इच्छा का

निवारण और उसकी प्रतिष्ठा करने और कार्यकारिणी को इसे विनाशक बनाने के लिए विचार करें। फासिस्टों की दृष्टि में, संसद राज्याकांक्षा की प्रतिष्ठा के माध्यम के रूप में विरर्थक सिद्ध हुई है।

फासिस्टवादी कुछ प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों को ही सरकार-संचालन के योग्य समझते हैं। उनके अनुसार केवल प्रत्यक्ष व्यक्ति या ब्रह्म, शिक्षा तथा सामाजिक स्तर की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। उन्हीं में सरकार के चलाने की शक्ति है, यद्यपि 'एक नेता में विश्वास करते हैं जिसका बौद्धिक चरमतम उत्कृष्ट होता है और जिससे कभी भ्रम नहीं होती। जब कभी जनता और नेता के विचारों में मतभेद होता है, तो प्रथम की धारणा समर्थन कर देना चाहिए। ऐसा नेता विद्वान् या सिद्धान्तवादी होने की अपेक्षा एक व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक होता है। वह समय का से समाज का जिसमें हित है उसे भ्रम-मोहिता समझता है। व्यक्ति सदा अपने व्यक्तिगत हितों को ही समझते हैं, और ऐसे हित समाज हित से भिन्न होते हैं।'

फासिस्टवाद बुद्धिवादी और नैतिक साधनों द्वारा कार्य करने में विश्वास नहीं करता। वह बल प्रयोग को प्रमाणात् है। यदि जनता राज्य-मक्त नहीं है तो उन्हें राज्य-मय पैदा करना चाहिए। राजनीतिक नेता का सर्वोपरि कर्तव्य अपने पक्ष में जन समर्थन का ही प्राप्त करना नहीं है, बल्कि अपने प्रति आदर-भाव और शक्ति में आदेश-परिपालन की भावना का संचार करना है। अपनी इस कर्तव्यपरायणता के लिए वह कितनी भी साधनों को प्रयत्न करता है। फासिस्टवाद साधनों की पवित्रता पर बल नहीं देता और न विशुद्ध आदर्शवाद और धर्म को ही एकमेव साधन मानता है। शक्ति और धर्म का प्रयोग केवल तभी होता है, जब अन्य साधनों की उपयोगिता निरूपित सिद्ध होती है। साक्षात्कार प्रचार उनके कार्य-क्रम की पूर्ति का एक प्रमुख साधन है। इसके प्रतिरिक्त वे बच्चों को फासिस्टवादी सिद्धान्तों से प्रभावित करने के हेतु शिक्षा-प्रणाली के नियोजन एवं नियंत्रण पर विशेष बल देते हैं। इस प्रकार फासिस्टवाद का मुख्य बौद्धिक विकास न हो कर सबसे शारीरिक एवं आधिपतिक निर्माण करता है।

### फासिस्टवाद और धर्म

जिस समय मुसोलिनी सत्ताकब्ज हुआ, उसके पक्ष कोई विरोध कार्य-क्रम नहीं था। उसका विरोध कार्य-क्रम की अपेक्षा धर्म में था। अस्तुतः अक्सरवाद ही उसका कार्य-क्रम था। उसने सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अक्सरवादी नीति को अपनाया। मुसोलिनी और अन्य फासिस्ट वर्ग के विरोधी थे। अपनी



ईश्वर में कोई मात्स्या नहीं थी। किन्तु देश-हित एवं अपनी सदाय-शुक्ति के लिए फासिस्टों के लिए यह आवश्यक था कि वे वर्ष से मित्रवत् सम्बन्ध स्थापित करें। इसके प्रतिरिक्त, कुछ ऐसे व्यक्तियों का, जिन्होंने फासिस्ट-बल की सहायता ग्रहण कर ली थी, वैयक्तिक वर्ष के प्रति मुक्तार था। अन्ततः फरवरी १९२९ में फासिस्टों और पोप के बीच एक संधि हुई और इस संधि के द्वारा, जो विशेष बत्ता था रहा था समाप्त हो गया। पोप ने फासिस्टों के शासन को मान्यता प्रदान की और फासिस्ट सरकार ने भी पोप की सत्ता को मान्यता दे दी। वैयक्तिक पोप म्यादिक स्वयं से किमुपित किया गया। वर्ष द्वारा नागरिकों को कर्त्तव्य-भावना की ओर प्रेरित किया गया। वैयक्तिक वर्षवत्त्वियों के वर्षों के लिए वार्षिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। पोप ने सभी वैयक्तिक पुस्तकियों और वैयक्तिक वर्ष में विरवास करनेवालों को राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबन्धित किया, फिर भी वैयक्तिक वर्ष के अनुयायियों ने चुनाव के समय फासिस्ट सम्पीरवारों का समर्थन किया। जब १९१५ में प्रबोधनिया पर इटली ने आक्रमण किया तो वार्षिक नेताओं ने इसे वर्ष-मुक्त की सजा दी और नागरिकों की वार्षिक भावनाओं को उमाड़ कर उन्हें वर्ष-मुक्त में सम्मिलित होने के लिए बाध्य किया। सन् १९४० में जब इटली ने ग्रीस पर आक्रमण किया तो पोप ने हमसावर फीज को आश्रय बंद दिया। वैयक्तिक वर्ष और फासिस्टों के बीच यह सहयोग-नीति फासिस्ट शासन तक चली रही। इस प्रकार मुसोलिनी ने अपनी अक्षरवाही एवं राजसी नीति को व्यापारिकता एवं वैयक्तिकता की पुष्ट की।

### फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद

मुसोलिनी का विरवास था कि सत्त संघर्ष व्यक्तियों और संघ दोनों में है। संघर्ष केवल जीवन के अस्तित्व के लिए ही नहीं होता बल्कि नीरव-भाषा के लिए भी होता है। नीरव-भाषा की अभिव्यक्ति साम्राज्य की परिबुद्धि में होती है। साम्राज्य-परिवुद्धि की बनना एक जाति के जीवन एवं विवास की परिबुद्धि है। यह पण्ड की शक्ति को प्रकट करती है। अतः साम्राज्यवादी भावना में ही पण्डोपान निहित है। (इस प्रकार फासिस्टवाद के मत में 'विरव-शान्ति वापरी का एक स्वप्न है।' 'मुसोलिनी के शब्दों में साम्राज्य जीवन का सनाउन एवं अवन निवन है।' 'इटली का विस्तार जीवन और मृत्यु का एक विषय है। इटली को वा लो विस्तारित होना चाहिए वा विनष्ट होना चाहिए।' 'मुसोलिनी के लिए विरव-बन्धुत्व एवं विरव-शान्ति वाप्यनिक बन्धु की एक उद्दान थी। उसके

कमलानुसार, 'यद्यपि उमर सुन्दर होते हैं किन्तु राइफल, मशीनगन बहाज, हवाई-बहाज और शोध उद्योगों में सुन्दर होते हैं। बन्दूकें मस्जान की पनखा अधिक वांछनीय हैं।' मुसोलिनी की दृष्टि में "एक ली के लिए जो महान विप्लव का है वही पुरुष के लिए युद्ध का है।" "मैं निरन्तर शान्ति में विरमस नहीं करता, न केवल मैं इसमें विश्वास हो करता हूँ, यद्यपि मैं इसे मानव के सभी मूलमूल गुणों को बहानेवाला और एक निषेध मानता हूँ। भय फासिस्टिकार के अनुसार स्वामी शान्ति न तो बर्ज्याणकारी ही है और न सम्भव ही। शान्ति में जीवन का अन्त है और युद्ध में जीवन का परिष्कार एवं विकास है। अन्त इटली को एक वैदिक राष्ट्र बनाना चाहिए।

### फासिस्ट दल

फासिस्ट दल इटली का शासक-दल था। जेन्टिले के मतानुसार, 'बहु राज्य को पर्याप्त था। दल का राज्य पर एकाधिकार था। दल द्वारा राज्य-नीति का निर्वाह, कानून-निर्माण और प्रशासकीय कार्यवाहियों का संवाहन होता था। दल और शासक-वर्ग एक ही था। पार्टी को सर्वव्यवस्था सभी के लिए बनाने की हो कर प्रतिबन्धित थी। पार्टी में सदस्यों को बड़ी सावधानी के साथ भर्ती किया जाता था और प्रतिशिक्षित एवं अनुशासित भी किया जाता था। जो सदस्य योग्य एवं दल सिद्ध होते वे उन्हें फौज में भर्ती किया जाता था, किन्तु प्रयोग और प्रशासकीय व्यक्तियों के लिए पार्टी में कोई स्थान नहीं था। राज्य के सभी विभागों में पार्टी के सदस्यों की नियुक्ति की जाती थी।

फासिस्ट दल का समूह राज्य के समान था। केन्द्रीकरण और एकीकरण दल का वैशिष्ट्य था। दल की स्थानीय संस्था को फैसियो (Fascio), प्रांतीय संस्था को फैसी (Fasci) और राष्ट्रीय संस्था को महती फासिस्ट संघ (Grand Fascist Party) कहते थे। स्थानीय और प्रांतीय संस्थाओं की स्वतंत्रता और-बीरे अनाश हो गई थी। केन्द्रीय संस्था पर पूर्णविरण्य मुसोलिनी का था, जिसे डोसे (Duce) कहते थे। नेता दल ही की नीति का निर्धारण करता था। बड़ी सरकार का सर्वोच्च अधिकारी था। दल की बड़ी फासिस्ट संघ ही राज्य की सर्वोच्च प्राधिकारी थी। केन्द्रीय संस्था से परामर्श सेना भी नेता के विचार पर निर्भर करता था। बड़ी केन्द्रीय और प्रांतीय मंत्रियों तथा सदस्यों की नियुक्त करता था। प्रांतीय मंत्री स्थानीय मंत्रियों की नियुक्ति करते थे। इस प्रकार मुसोलिनी पूर्णतः अधिनायक था। किन्ती की नियुक्ति और परच्युति उसकी

दृष्टि पर निर्भर करती थी। एक में साम्यवादी बस की मति जनवाद नहीं था। बिरोधी दलों का भी सम्बन्ध कर दिया गया था। जनता की पार्टी द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों एवं उम्मीदवारों में से चुनने का अधिकार का मति अन्य दलों से। इस प्रकार आसिस्ट राज्य में साम्यवादी एवं बाएँ जनवाद का मिताम्ब समाज था।

### फासिस्टवाद और साम्यवाद

यद्यपि आसिस्टवाद और साम्यवाद दोनों में विभिन्नता है किन्तु फिर भी दोनों में कुछ समानताएँ हैं, जो बिचारणीय हैं (१) दोनों बिचारवाचकों का बन्धन ब्रह्म विरुद्ध की उपाय परिस्थितियों के कारण हुआ। दोनों देशों के नेताओं ने अपने देशों की उपजाती विषम परिस्थिति से ज्ञान उठाया। दोनों ने जनता को आकर्षक मार्गों द्वारा प्रयासित कर समीचीनता की स्थापना किया। दोनों ही शक्ति के प्रयास के और भी अपनी सफलता का एक सामन था। किन्तु आसिस्टवाद द्वितीय विश्व युद्ध में विनीत हो गया, जबकि साम्यवाद प्रायः भी विनीत है। इसे प्रायः सफलता मिली है। यदि यह कहा जाय कि प्राय का युग साम्यवादी है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्राय पूर्वोक्त और साम्यवाद एक ही है। बिच से उसको उखाड़ दिया ही रही है। युग धर्मद्वारे से रहा है। मानव-जाति साम्यवाद की ओर आकर्षित हो रही है। स्व ने पूर्वोक्त देशों को वैज्ञानिक क्षेत्र में पछाड़ दिया है। साम्यवाद का कुतपति से फिलहाल उसके सिद्धांतिक साध्य का चोटक है।

(२) दोनों ही अधिनायकवादी प्रणाली में धारणा रखते हैं। दोनों ही पूर्वोक्त जनतंत्र का उदाहरण करते हैं। दोनों के वर्तन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, भाषण, मत प्रदर्शन और राजनीतिक दलों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे संघर्ष की जनवाद को ऐतिहासिक, अकार्यक्रम और निरर्थक समझते हैं। दोनों ही व्यक्ति के वैयक्तिक सम्बन्धों की अपेक्षा शक्ति के पुनर्र्थ और व्यक्ति की धर्मना राष्ट्र पर बल देते हैं।

(३) दोनों की निष्ठा संघर्ष में है। साम्यवाद वर्ग-संघर्ष में निरवास करता है जब कि आसिस्टवाद राष्ट्र-संघर्ष में।

आसिस्टवाद और साम्यवाद में यह समानता होते हुए भी पचास विभिन्नता है। यह निष्ठा अपनी व्यापक और उच्च है कि दोनों ने एक दूसरे को अस्तिर बिहोत करने का प्रयास प्रयास किया। आसिस्टवाद ने साम्यवाद के प्रसार को यूरोप में फैलाने से रोक्ने की कोशिश की और साम्यवाद ने आसिस्टवाद को पच

नीतिक एवं राष्ट्रीय भावों पर अत्यन्त घोर प्रहार किया, क्योंकि यह वर्तन सर्वज्ञान पर प्रहार करता है। दोनों सिद्धान्तों का यह विचार-वैमिश्रण उनके उद्देश्यों पर आघात है, जो निम्नलिखित हैं—

( १ ) फासिस्टवाद राज्य को आदर्श एवं प्रतिपाद्य सत्या मानता है। यह उस पर अधिक बल देता है और राज्य ही ज्योत्सना साम्य है तथा व्यक्ति साम्य। मुसीबतियों के उन्मूलन में, "राज्य फासिस्टवादी आदर्शों का प्रतिरूप है।" इसके विपरीत साम्यवाद राज्य को एक बर्गीय संस्था एवं बमनकाये यंत्र मानता है। यह राज्य के अस्तित्व को अनुस नष्ट कर देना चाहता है। किन्तु साम्यवाद इसे संवैधानिकता तक बनाये रखने के पक्ष में है, क्योंकि इसके द्वारा पूँजीवादी-वर्ग के उन्मूलन में सहायता मिलेगी। जब पूँजीवादी तत्व विनष्ट हो जायेंगे तो राज्य 'मुरन्त कर विर जायेगा' (Will wither away)। सेनिन ने कहा था "राज्य केवल ऐसा उन्मूल है, जिसके द्वारा सर्वज्ञान-वर्ग अन्य वर्गों के समर्थ करता है।"

( २ ) फासिस्टवादी समाज को यथावत् बनाये रखने के पक्ष में है। वे मानव प्रसमलता में विश्वास करते हैं। फासिस्टवाद एक राष्ट्रीय मान्योतन है, जो राज्य की सर्वोत्थिता को महत्त्व देता है और व्यक्ति को राज्य के अधीन रखना चाहता है। किन्तु साम्यवाद एक अन्तरराष्ट्रीय मान्योतन है और उसका सत्य वर्ग एवं राज्य-विहीन समाज की स्थापना करता है। एव समाज में न तो शोषण होगा और न राज्य को सार्वभौमता ही।

( ३ ) फासिस्टवाद पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों का निरूपण करता है, जब कि साम्यवाद दोनों का प्रसक्तम विरोधी है और उनके उन्मूलन के लिए प्रयत्नशील है। सेनिन के अनुसार, 'साम्राज्यवाद पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था है।' और मात्र साम्राज्यवाद बुरा-बुराई ही रहा है।

( ४ ) फासिस्टवाद में व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है। व्यक्ति राज्य के पूर्णतया अधीन है। फासिस्टवादियों का कल्पित राज्य फासिस्टवाद का एकमात्र निरंकुश शासन है। ऐसे शासन में शोषण अन्यायवाद, अत्याप और प्रसमलता की परिधि ही होती है। किन्तु साम्यवाद प्रत्येक प्रकार के शोषण का अन्त करना चाहता है, चाहे यह मनुष्य द्वारा मनुष्य का, वर्ग द्वारा वर्ग का और अन्त द्वारा राज्य का क्यों न हो? साम्यवाद की आध्यात्मिक मानव-हित चिन्तन है, जब कि फासिस्टवाद की राज्य-हित-चिन्तन।

( ५ ) फासिस्टवाद में जातिवादी की समानता का पूर्ण अभाव है । फासिस्ट जातिवादी की धारणा है कि जैसा व्यक्तिमें में संघर्ष व्याप्त है विसा ही राष्ट्रों में भी व्याप्त है । साम्यवाद जातिवादी की समानता का समर्थक है और वह एक जाति पक्षप जाति के प्राधिपत्य की भत्सेना करता है । उस में अनेक राष्ट्र, अनेक जाति और जातिवादी हैं किन्तु सभी सांस्कृतिक स्वार्थम्य का अभिप्राय करती हैं ।

( ६ ) फासिस्टवाद की वर्ग-सामंभस्य में वास्ता है । वह वह नहीं मानता कि वर्गों में कोई सामाजिक विरोध है । उसके मत में वर्गों में परस्पर सहायोग सम्भाव्य है और वर्ग-सहयोग द्वारा ही राष्ट्रव्याप्त हो सकता है । इसी कारण फासिस्टवाद के अन्तर्गत पूँजीवादी वर्ग व्यवस्था सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ एवं आररपक थी । साम्यवाद की आभासिता वर्ग-संघर्ष है । साम्यवाद के अनुसार वर्गों द्वारा ही वर्ग-संघर्ष पैदा हुआ है और वर्गों द्वारा ही इसका अन्त होगा । धर्मिक-वर्ग ही एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना करेगा । साम्यवाद का यह एक विश्वास है कि पूँजीपति और धर्मिक तथा शासक और शासित में कभी पारस्परिक सहायोग नहीं हो सकता ।

( ७ ) साम्यवाद के अनुसार व्यक्ति के जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है । आर्थिक व्यवस्था क अनुसार ही वर्ग राजनीति और संसृति का निर्माण होता है । वे आर्थिक व्यवस्था को अनुसरते हैं । आर्थिक व्यवस्था धर्म, संसृति और राजनीति को नियमित करती है । किन्तु फासिस्टवाद आर्थिक व्यवस्था की अपेक्षा आत्म वीर्य को उच्चतर स्थान प्रदान करता है ।

( ८ ) साम्यवाद धर्म का विरोधी है । वह वर्ग और धर्म को समाप्त करना चाहता है, क्योंकि ये मर्यादा शोषण की प्रक्रिया को स्थापित प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई हैं । मार्क्स के अनुसार, 'धर्म व्यक्तियों के लिए आशुता का नशा है ।' आचार्य नेल्सेन के शब्दों में 'फासिस्टवाद के समान मार्क्स का कहना था कि मनुष्य धर्म को बनाता है, न कि धर्म मनुष्य को और मानवैतर परमपुरुष को बनाना मनुष्य के स्वास और अहम का नतीजा है । जिसका हा आर्थिक मनुष्य स्थिर को दुर्लभ में विनियमित करता है जैसा ही अधिष्ठ वह अपने का अधिष्ठ और विनियमित बनाता है ।' इसके विपरीत फासिस्टवाद वर्ग और धर्म दोनों का ही अर्थिक सिद्ध करता है । अपने अपने आत्ममूर्तों को धर्म का पुन दिया और पेश से मिनमन् सन्तुष्ट स्थापित विवे ।

( ९ ) साम्यवादी व्यवस्था में धर्मिक और किसान को समुचित स्थान प्राप्त है । साम्यवाद सर्वहारा के पक्षपात में विरक्त करता है । जीवन में नवीन प्रगति

को प्राप्त किया गया है। इस में आज जनतन्त्रीय केन्द्रीयकरण (Democratic centralism) प्रतिष्ठित है। किन्तु फासिस्टवाद में अधिक के लिए कोई स्थान नहीं है। मुसोलिनी का कथन था कि मजदूर समाज का कर्णधार नहीं हो सकता, क्योंकि वह अपनी गृह-व्यवस्था करने में ही असमर्थ है। फासिस्टवाद जनतन्त्र का शोर विरोधी है। उसके दर्शन में जनतन्त्र के लिए कोई भी स्थान नहीं था। वह जनतन्त्र पूजीवादी हो या सर्वहारा का।

(१०) फासिस्टवाद क्री-जाति की अपना मुख्य-जाति को पवित्रतर समझता है, और वह प्रथम को द्वितीय के समीप कर देता है। साम्यवाद में क्री और पुल्प के विमर्श के लिए कोई स्थान नहीं है। आज इस में कित्ना पुरुषों के समान ही प्रत्येक क्षेत्र में अधिकारों का उन्मोग करती हैं।

### फासिस्टवाद की आलोचना

फासिस्टवाद का मानवीय दृष्टि से बाहे मूल्यांकन न रहा हो, किन्तु उसे अपने ध्येय में आशाहीन सफलता मिली यह निर्विवाद है। 'उसने इटली के राष्ट्रीय जीवन का पुनर्रचना किया। जब इटली कर्तारि-संधि के कारण उपेक्षित एवं अपमानित हो रहा था ऐसे समय में फासिस्टवाद ने इटली के मान एवं गौरव की रक्षा की। उसने उदारवाद एवं जनवाद दोनों विचार-सरणियों की मर्शना कर उग्र राष्ट्रवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उसने आन्तरिक शांति-सुरक्षा तथा कुशल शासन-व्यवस्था स्थापित की। उसने राष्ट्रीय संकटों का मुकाबला किया और इटली को संसार के प्रथम कोटि के राष्ट्रों में ला खड़ा किया। फासिस्टवाद ने समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध दिया और अधिकों तथा पुँजीपतियों के मध्य सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। वस्तुतः, 'इटली-निवासी अपने सर्वोच्च तानाशाह मुसोलिनी के नेतृत्व में उसके मार्ग प्रदर्शन की क्षया में पुनर्जीवित हो उठे।' किन्तु फासिस्टवाद की इन सफलताओं के बावजूद भी, वह द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत में विफल हो गया। फासिस्टवाद का प्रादुर्भाव मुसोलिनी के साथ हुआ, उसकी पतिविरथियों के साथ वह विकसित हुआ और उसके अन्तर्गत के साथ वह भी विनीत हो गया। फासिस्टवाद में निम्नलिखित दोष थे —

(१) फासिस्टवादी आन्दोलन अनेक दृष्टियों से अप्रमूर्ण था। वैसा कि सैवाहन ने कहा है, 'यह ऐसे विचारों का संकलन मात्र है, जो विविध स्रोतों में प्राप्त किये गये हैं। और परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुकूल होने के कारण एकत्र कर लिए गये हैं।' "यह सिद्धान्त विचार द्वारा परिष्कृत नहीं है और प्राय

मानुष्यतापूर्ण भी है। यह नीति के 'सत्ता की इच्छा' (will to power) के सिद्धान्त, हीरोस के राष्ट्रवाद और बर्नसो के बुद्धि विरोधवाद (anti-intellectualism) को सम्मिलित करने का प्रयास है।<sup>17</sup>

(२) फासिस्टवाद आधुनिक श्रवणशील विचारों का विरोधी है। यह धर्मवाद और विरह-शान्ति का प्रतिवाद है। यह उदारवाद और मानव-समानता में विश्वास नहीं करता। यह व्यक्तियों को अपने सम्बन्ध में विस्तार करने की स्वतंत्रता नहीं देता। नेता के आदेश-परिपालन पर ही बल देता है। इस प्रकार फासिस्टवाद मानव-श्रवण को कुच्छिन्न कर देता है।

(३) फासिस्टवाद धार्मिक राष्ट्रवादो है। यह राज्य की स्वयं से एक अहोरेण्य घोषित करता है। व्यक्ति एक साधन है, जिसे राज्य के लिए अपने को निष्कलर कर देना चाहिए। ऐसा दर्शन मानवता का कल्याण नहीं करता। पुण्योप की कल्पना सम्मत्ता और संस्कृति का विनाश करती है। मौखिक शर्ष भीषता के अभाव में और व्यक्ति का राज्येच्छा पर निर्भर रहना राज्य निरेकुञ्जता को प्रविष्टित करता है।

(४) फासिस्टवाद मानव को उसके नैतिकीत्यान के लिए स्वतंत्रता और अधिकार प्रदान नहीं करता। यह उसके जन्मजात बुद्धों और धार्मिकता को विकसित करने का अवसर नहीं देता। फासिस्टवाद स्वतंत्रता का पक्षत धर्ष लपटा है। उदका यह विचार कि स्वतंत्रता केवल एक कर्तव्य है, न कि अधिकार और स्वतंत्रता केवल एक मुरह राज्य में ही सम्भव है, तर्क-संगत नहीं है। व्यक्तिगत-स्वतंत्रता का धेव और प्रकृति को राज्येच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता।

(५) फासिस्टवाद भय की नीति पर आधारित है। यह शान्ति का अरुहस करता है। यह हिंसा और अ-संक्राव में विरगत करता है। राजनीतिक कार्यों के लिए शक्ति को ही साधन के रूप में उचित बताता है। किन्तु एक स्वायी परोपकारी और उदार सरकार के लिए शक्ति और भय को आधार नहीं बनाया जा सकता। केवल श्याव और अयुता ही एक स्वायी समान तथा राज्य के आधार हो सकते हैं। चीन का कथन उचित ही है कि, "शक्ति नहीं, अनेच्छा राज्य का आधार है। बिना अधिकार के शक्ति केवल अस्थायी रह सकती है। अधिकारपूर्ण शक्ति ही केवल राज्य का स्वायी आधार है। अनुपूर्व एवं निरिचय राष्ट्रीय एवता और नीति के लिए शक्ति मानव की आरमा एवं अस्तित्क का हानन करती है। यह अनेच्छापूर्वक राज्य के नियमों के परिपालन एवं धर्म-अनुशासन

की प्रकृति का मूल्यांकन नहीं करती। उसी के मतनुसार 'शक्ति के समस्त सुरुणा आवश्यकता का कार्य है, इच्छा का नहीं, अधिक-से-अधिक कुटिलता का कार्य है। फ्रांसिस्ट राज्य, "एक ऐसा इंसान है जिसका निर्माण हुतगति और आत्मसुख तथा उर्ध्व के लिए हुआ है, स्वायत्त के लिए नहीं।"

(६) फ्रांसिस्टवाद प्रगति एवं विकास के मार्ग में एक अव्यस्त अवरोध है। कोकर का कहना है, 'अविनायकतंत्र एक संगठित वर्क-गृह के समान है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को एक कार्य सौंप दिया जाता है और उसकी प्रतिबिम्ब पर बड़ी सख्ती से दृष्टि रखी जाती है। यह व्यवस्था समाज के बोधी एवं धनपत्री व्यक्तियों के लिए तो ठीक है किन्तु सामान्य व्यक्तियों के लिए विशेषतः उच्च व्यक्तियों के लिए, यह उपयुक्त नहीं है। राष्ट्र के सार्वजनिक एवं सांस्कृतिक जीवन का केन्द्रीय तथा समनकारी निर्देशन ज्ञान-विज्ञान, साहित्य एवं कला के विकास के सम्भाव्य के लिए बाधक है। वस्तुतः यह एक प्रत्यापी निदान की दृष्टि से साम प्रद सिद्ध हो सकता है किन्तु निश्चित रूप से समाजाधारण के लिए सदा के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। अल्बर्ट आइन्स्टाइन के शब्दों में 'अविनायकत्व का अर्थ है चारों ओर प्रतिबन्ध और उसके परिणामस्वरूप निरर्थक प्रयास। विज्ञान केवल स्वतन्त्र भाषण के वातावरण में पनप और बढ़ सकता है।' वेनेवेरो ओटे लिखता है, 'बल प्रयोग पर आधारित शासन केवल पतनोन्मुख जातियों में ही निरकाल तक बने रह सकते हैं, वे ऐसे राष्ट्रों में अस्वाधी कास के लिए ही स्थापित रह सकते हैं जो अज्ञानी हैं और उन्नत हो रहे हैं और समस्त निर्विभक्त शक्तियों के अधिक हिंस्रमक विस्फोट होते हैं।' फरेरो का कथन है, 'बल ने जिसका निर्माण किया उसका बल ने नाश भी कर दिया- रोम-साम्राज्य का निर्माण फौज द्वारा हुआ था और उसका अन्त फौज ने ही कर दिया। प्राचीन सम्प्रदाय रोमन-साम्राज्य के साथ ही विनष्ट हो गई जब कि साम्राज्य में शासन को आधाररिक्ता केवल बल ही रह गई थी, जिसे कायूनी अधिकार का समर्पण प्राप्त नहीं था।



## बहुलवाद (Pluralism)

यह बोधनी राज्याधी का दर्शन है। इसका प्राथमिक राजनीति दर्शन में सर्वप्रथम प्रयोग हेराल्ड ज० लास्की (Harold J Laski) ने किया। यह सिद्धान्त धर्मोपचार विरोधी है। यह हीरोपेनवादी धारणा के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुआ। हीरोपेन ने राज्य को 'भूमि पर ईश्वरीय भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह दर्शन राज्य विरोधी नहीं, अपितु राजसत्ता-विरोधी है। बहुलवाद राज्य की एक अतिरिक्त तंत्र की धेणी में रखता है, जिसकी क्षमता एवं अधिकार परिमित हैं। मार्कर के शब्दों में 'यद्यपि हम राज्य को केवल समान व्यक्तियों का ही एक संघटन नहीं समझते अपितु उसे इस संस्था के रूप में देखते हैं जिसकी रचना मनुष्य के उन छोटे-छोटे समुदायों से मिल कर हुई है जो व्यक्ति के जीवन-उत्थान हेतु धन-धन्य प्रयास करके अपने उच्चतम तब्य प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं।'<sup>1</sup>

### बहुलवाद का क्रमिक विकास

साम्यवादीय युरोप के राजनीतिक इतिहास पर इतिहास करण से राज्य की स्थिति का बोध होता है। इस युग में राज्य सर्वोपरि एवं सर्वव्यक्ति-समाप्त नहीं था। राज्य संस्थाओं का जन्म-जीवन पर धार्मिकता का और राज्य का इसके द्वारा भाव-दर्शन होता था। धार्मिक विषयों में चर्च, नीतिक विषयों में सामन्त और धार्मिक विषयों में धेणी की प्रवृत्तता थी। राज्य की धार्मिक विषयों में चर्च के सम्बन्ध नतमस्तक होना पड़ता था। इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हैं। जबकि राज्य को अपनी रचना के विरुद्ध चर्च के धारणों का सामन करना पड़ा। सामा

1 "No longer do we consider society as mere sand heap of individuals all equal and unrelated though leading a common life, but an association of individuals already united in various groups each with its common life in a further and higher group for a further and more embracing purpose"

बिन्त्य क्षेत्र में भी राजाओं को सामन्तों के इच्छानुसार कार्य करना होता था। इसके प्रतिरिक्त केन्द्रीय सत्ता का विरोध भी राजा को सहन करना पड़ता था। इस प्रकार बर्ष, सामन्त धीरे-धीरे केन्द्रीय सत्ता के विरोध स्वरूप कभी-कभी कुछ धीरे-धीरे होते रहते थे। इसी काल में धीरे-धीरे राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हुआ। राजा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहता था और ब्यानापी वर्ग भी राज्य को सर्वशक्तिमान् बनाता चाहता था। इस प्रकार राजसत्ता का केन्द्रीयकरण एक प्रावरणक लक्ष्य हो गया। हाम्ब (Hobbes) जैसे अनुभवकारी विचारक ने इन गृहयुद्धों की विभीषित्य को देखा और राज्य विरोधी शक्तों का विरोध किया। उसने राजा की शक्ति का प्रीक्षित्य सिद्ध किया। राज्य ही उसका 'लीव्थान (Leviathan)' था और संव मानव की शैतनियों में कड़े की भाँति थे। रूसो (Rousseau) के प्रारम्भिक मतों में राज्य ही सामान्य इच्छा (General will) था और संवों को कोई स्थान नहीं था। सामान्य इच्छा सभी सम्भव है जबकि संवों का कोई अस्तित्व न हो। आस्टिन (Austin) ने 'सुनिश्चित सर्वोच्च मानव' (determinate human Superior) को ही सर्वोपरि बताया। हीगेल (Hegel) ने राज्य को 'विरवात्मा का प्रतिनिधि', विवेक का मूर्तस्वरूप' (embodiment of reason), 'पृथ्वी पर ईश्वर की यात्रा' (The march of God on earth) आदि अनेक संज्ञाओं से किञ्चित्त किया। उसने राज्य को निरंकुश, सर्वसम्पन्न, अप्रान्त, 'आत्मशक्ति स्वामीगता का मूर्तस्वरूप', स्वतन्त्रता की यथार्थता' कहा। हीगेल ने राज्य को साधन की अपेक्षा साध्य बताया। उसने उसे धर्म वैधानिक ही नहीं अपितु धर्म नैतिक भी बताया। समाजवादी विचारकों ने भी राज्य को अपनी लक्ष्य-सृष्टि का साधन बताया। मार्क्स ने भी 'सर्वहारा की अभिजात्यशक्ति' की प्रतिष्ठा के लिए राज्य की सत्ता का मूर्त्यांकन किया।

हीगेल की राज्य-सम्बन्धी-बारशा के प्रतिक्रिया-स्वरूप बहुसंख्यक का उदय हुआ। इस वर्ग के प्रादुर्भाव का अर्थ ईंग्लैण्ड को है। ईंग्लैण्ड में व्यक्तिवादी विचारधारा के प्रणेता लॉक और जॉन स्टुअर्ट मिल ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर विशेष बल दिया। आत्मी ने विभिन्न संवों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला और उन्हें राज्य की समान स्थिति में रखा। प्रजातंत्र की असफलता धीरे-धीरे प्रजातंत्रीयवादी संघर्षों की दुर्बलता से भी बहुसंख्यक को पराजित बतलाने में आया। राज्य के केन्द्रीयकरण और अपरिमित कार्यों के कारण कार्य-कुशलता में शिथिलता ने बहुसंख्यक भावना को सुदृढ़ किया। वार्ड (Ward) के शब्दों में, 'किन्तु को पक्षपात ही

गया है और शीर्षबिन्दुओं पर रक्तहीनता दृष्टिगोचर होती है।<sup>1</sup> यद्यपि बहुत शक्तियों ने विवेकित सत्ता की बकायत की।

### बहुलवाद पर अन्य विचारधाराओं का प्रभाव

जिन विचारधाराओं ने बहुलवाद को प्रभावित किया विशेषतः वे यही हैं, जिन्होंने प्रज्ञेयवादी दर्शन की कटु आलोचना की। ये विचारधाराएँ पाँच धारों में विभक्त की जा सकती हैं—

(१) व्यक्ति-स्वतंत्रतावादी—इस दृष्टिकोण के समर्थक जॉन सॉक, माटे-स्व्यू और जॉन स्टुअर्ट मिल थे। सॉक उच्चकोटि का व्यक्तिवादी था। उसने व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता और सामाजिक अधिकारों को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। उसका राज्य संघन नहीं था, केवल संरक्षक था; जिसकी प्राधारशिला जन-स्वीकृति (will) थी। संघनता का निवास जन-स्वीकृति में था। व्यक्ति राज्य से उच्चतर है, यद्यपि राज्य व्यक्ति का स्वामी न हो कर बस है। उसका अस्तित्व व्यक्ति में निहित है।

माटेस्व्यू या कि व्यक्ति-स्वतंत्रता-प्रेमी था उसने राज्य के शक्ति-विभाजन पर बत दिया। उसने राज्य के शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह राज्य के केन्द्रीयकरण को व्यक्ति-स्वतंत्रता के लिए पाठक समझता था यद्यपि उसका यह दृष्टिकोण यह था कि राज्य की शक्तियों का समुचित रूप से विभाजन होना चाहिए। शक्ति विभाजन से अभिप्राय विदेशीकरण से था। राज्य के तीनों अंग—कार्यपालिका और न्यायपालिका पूषक-पूषक होने चाहिए। ये राज्य की तीनों शक्तियाँ एक ही व्यक्ति में निहित न हों। जब एक ही व्यक्ति या समा में इन तीनों शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता है तो ऐसी दशा में व्यक्ति-स्वतंत्रता असम्भव है। व्यक्ति-स्वतंत्रता केवल सत्ता के विदेशीकरण में ही सम्भव है। यह विचारधारा प्रज्ञेयवाद के सर्वथा विपरीत है।

जमींदारी राजतन्त्री का प्रमुख व्यक्तिवादी विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल था। इसकी विचारधारा का केन्द्रीय व्यक्ति था। व्यक्ति-स्वतंत्रता का धीरस्थ विद्वान् इसका सर्वांगीण तद्वय था। इसने राज्य के बाह्य एवं अधिकारों को वर्धित किया। इस प्रकार तीनों विचारकों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विशेष बल देकर प्रज्ञेयवादी दर्शन का विरोध किया।

1 "There is apoplexy at the centre and anaemia at the extremities"—Ward

(२) पुनर्रचनावाद—पुनर्रचनावादी विचारकों में जर्मन दार्शनिक विर्क (Otto Von Guericke), मेटसेरुड (F W Mettard) और फ्लिंस (J N Figgins) प्रादि प्रमुख हैं। इन विचारकों ने मध्यकालीन सभ्यता की मूरि मूरि प्रशंसा की। इनके विचार में मध्य-युग में जबकि राज्य-शक्ति केन्द्रित नहीं थी तो व्यक्तियों का जीवन समृद्धिरासी और सुखी था। इसलिये उन विच्छिष्ट तापों की पुनःस्थापना होनी चाहिए। यह विचार ही 'पुनर्रचनावादी' कहलाया। विर्क ने मध्यकालीन संघों की उपादेयता पर प्रकाश डाला। उसके कथनानुसार इन संघों का व्यक्त के सामाजिक राजनीतिक प्राधिक और सांस्कृतिक जीवन में बोधवता था। ये संघ स्वतंत्र थे और इनके सदस्य इन संघों के नियमों का स्वेच्छा से पालन करते थे। राज्य की इन संघों पर सर्वोपरिता नहीं थी। उसका स्थान सदस्य संघों का था। मेटसेरुड ने, जो कि प्राथमिक काल में संघों की दृष्टि से बहुसंख्यकी विचारों का संस्थापक समझा जाता है, ऐसे ही विचार व्यक्त किये थे। ये दोनों विचारक संघों को समाज तथा राज्य में महत्त्वपूर्ण स्थान बिलाली के पक्षधारी थे। मेटसेरुड का मत था कि स्थानीय निकायों (Local Bodies) को स्थानीय प्रशासन और व्यवस्था में अधिकतम स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। फ्लिंस के विचारों की आभासमिति भी मध्ययुगीन संघ की स्वतंत्रता थी। उसने वर्गों की स्वतंत्रता पर बल दिया और अन्य विभिन्न संस्थाओं का जो कि विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित थीं, प्रौथिव्य सिद्ध किया। उसने राज्य को 'संघों का संघ' बताया। इस प्रकार बहुत नाब पर पुनर्रचनावादी विचारधारा का मधेष्ट प्रभाव पड़ा।

(३) समाजवादी विचारधाराएँ—समाजवादी विचारधारा के अन्तर्गत तीन विच्छिष्ट विचारधाराएँ प्राणी हैं, जिनमें (१) अराजकवाद (Anarchism), संघवाद (Syndicalism) और गेण्टी-समाजवाद (Guild Socialism) हैं। अराजकतावादी राज्य को अर्थ एवं विचारमय समझते थे। उनकी दृष्टि में, राज्य अतिव्यापक नहीं है और वास्तविक स्वतंत्रता केवल अराजकवादी समाज में ही सम्भव हो सकती है। फ्रेंचवादी संघवादी भी राज्य का विनाश चाहते थे। उनका मत था कि समाज बहुसंख्यकी है और वर्ग-संघर्ष का प्राधान्य है। गेण्टी समाजवादी फेब्रिजवाद (Fabrianism) और समष्टिवाद (Collectivism) के विरोधी थे। इनमें कोल (G D H Cole) निरालस बहुसंख्यकी था। उसने राज्य को समाज स्थान प्रदान किया।

(४) विधानवाद—ड्यूगी (Duguit) ने फ्रांस और ड्रेब (Krabbe) ने हालैंड में बहुसंख्यकी विचारधारा का अमूर्तन किया।

दुःखी के शब्दों में 'कानून राजनीतिक संगठन की अपेक्षा स्वतंत्र, सख्त और पूर्ण कामिष्ठ है। यह सामाजिक जीवन का फल है। कानून राज्य को परिमित करता है। जब भी कानून को राज्य से घोर उच्चतर मानता था। विमल भावियों ने राज्य को सर्वोच्च विचारिकी संस्था का भ्रमण माना, किन्तु उन्होंने राज्य की विचारियों को सामाजिक एवं न्याय की भावना पर अवलम्बित बताया। दोनों विचारकों ने, राज्य के किसी भी अंग को कानून बनाने का पूर्णधिकार हो, इसका उद्घाटन किया। इस प्रकार आस्टिन का 'मुनिरिचित सर्वोच्च मानक' राज्य में नहीं स्थित नहीं है और जब ने तो यहाँ तक कह दिया कि "सर्वभौमता की बाराखा को राजनीति से निकाल देना चाहिए।"<sup>1</sup>

### बहुतवादी आधुनिक विचारक

आधुनिक बहुतवादी विचारकों में लियडसे, बार्डर, क्रोस, लिडनी और वीट्रिस वेब तथा तास्की आदि प्रमुख हैं।

लियडसे (A D Lindsay) यह प्रती जीवित घोर प्रॉफेसरेट्स विद्यापीठ में प्रोफेसर रहा है। लियडसे के कल्पनावादी होते हुए भी उसके विचारों में बाराखा की भूलक दिखाई देती है। इस कारण इसे 'बाराखावादी कल्पनावाद' का विचारक माना जाता है। लियडसे ने कहा था "यदि हम तथ्यों पर दृष्टिगत करें तो यह स्पष्ट दिखाई देता कि सर्वभौम राज्य (Sovereign State) का विघ्न सहित हो चुका है।" समाज-संघर्ष एवं समन्वय हेतु सर्वा की उपाययता राज्य से नहीं अधिक है। इनकी अधिक महत्ता है और ये नागरिकों के हितों का प्रतिनिधित्व समुचित रूप से कर सकते हैं। लियडसे राज्य की प्रतिहार्य मानता है किन्तु वह 'संघर्षों का संघटन' (an organisation of organisations) है। अन्य संघटनों की सहमता वैश्विक (voluntary) और अनिवार्य-मूलक (selective) है, किन्तु राज्य की प्रतिहार्य (compulsory) तथा व्यापक (comprehensive) है। मनुष्य की यज्ञा वर्ष, अधिक संस्थाओं और संघों के प्रति राज्य की अपेक्षा अधिक है। राज्य का जो प्राना व्यक्तिगत नहीं है, क्योंकि किये नियम (corporation)

1 "The notion of sovereignty must be expunged from political theory"—Lindsay

2 "If we look at the facts, it is clear enough that the theory of the sovereign state has broken down."—A D Lindsay

के सम्बन्ध में 'संघ-चेतना' (group mind), 'संघ इच्छा' (group will) और 'संघ व्यक्तित्व' (group personality) की कल्पना करना निरर्थक है। राज्य का निर्माण पर अधिकार केवल तभी और वही मात्रा में है जिसका कि सामरिक राज्य को प्रदान करें।<sup>1</sup> राज्य का प्रमुख कार्य छोटे-छोटे संघों का सम्बन्ध करना है। राज्य की आज्ञा का पालन नागरिक इस सामाजिक सम्बन्धता के ही कारण करते हैं।

बार्कर (Earnest Barker)—यह भी फ्रांसफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर या और अभी जीवित है। यह कल्पनावादी होते हुए भी विचारकों में उदार है। बार्कर की 'Political thought in England from Herbert Spencer to the Present Day' नामक पुस्तक १९१३ में प्रकाशित हुई। बार्कर विरोधवादी विड और मेटकैण्ड से परिक्रम प्रभावित हुआ है। बार्कर ने बेन्धनवादी परम्परा पर प्रहार किया। बेन्धन और उसके अनुयायियों के अनुसार सामाजिक जीवन में संघों का कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार राज्य और व्यक्ति के बीच जो सम्बन्ध है वह सीधा है। बार्कर ने बेन्धनवादियों की इस झुटि की और संकेत किया। उसने कहा कि प्राथमिक समाज उद्योग है। सामरिक विभिन्न संघों के सरस्य हैं। इन संघों का राज्य की अपेक्षा अधिक सम्मानप्रद स्थान है। एक मनुष्य का सम्बन्ध राज्य के साथ उसके संघ द्वारा ही होता है। इन संघों की रचना राज्य द्वारा नहीं हुई है। वे स्वाधी संघ समाज में राज्य-निर्माण से पूर्व ही वे और इनमें से प्रत्येक का अपना कर्तव्य और नियमीय स्वयं या। 'हम राज्य को व्यक्तियों के सामान्य जीवन के लिए निर्मित संस्था के रूप में कम देखते हैं, हम उसे ऐसे व्यक्तियों की संस्था के रूप में ही अधिक देखते हैं जो पूर्व से ही ऐसे पब्लिक व्यापक सामान्य लक्ष्य के लिए अनेक समुदायों में संयुक्त हो।' राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह इन संघों के अस्तित्व को स्वीकार करे और इनका सम्बन्ध करे। बार्कर ने कहा था, "जीवन की एक सामान्य और व्यापक व्यवस्था के रूप में राज्य को अपने साथ रहने वाले संघीय सम्बन्धों को, संघीय पारस्परिक सम्बन्धों को तथा संघ और उसके सदस्यों के सम्बन्धों को सन्तुष्टि रचना आवश्यक है। अपने साथ होने वाले सम्बन्धों को स्वयं अपनी व्यवस्था के प्रति जिज्ञा और उसकी प्रवृत्तता को सुनिश्चित रखने के हेतु सन्तुष्टि करना

1 "The state can have control over the associations with-  
in it only if and so far as, the citizens are prepared to give  
it such power"

प्राबुनिक है। संघों के पारस्परिक सम्बन्धों को विधान की दृष्टि में संघों की समानता को बनाये रखने के लिए अनुसूचित करना आवश्यक है और संघों तथा उसके सदस्यों के सम्बन्धों को इसलिए अनुसूचित करना आवश्यक है कि व्यक्ति संघ की निरंकुशता का प्रकार न बन जाय।<sup>1</sup>

कोले (G D H Cole) — कोले मानस्योर्ड विश्वविद्यालय का स्नातक था और वह वहीं पर प्रोफेसर हो गया। जब वह स्नातक भी नहीं हुआ था कि उसने पेरियन-समाज की सदस्यता ग्रहण कर ली थी।

कोले ने प्राबुनिक प्रतिनिधित्व-प्रणाली के बेन्थमवादी विचार को समान्य घोषित किया। उसका कथन था कि व्यक्ति के अनेक लक्ष्य और हित होते हैं। प्रथम केवल एक ही व्यक्ति इन लक्ष्यों एवं हितों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। इन लक्ष्यों तथा हितों का प्रतिनिधित्व विभिन्न संघों द्वारा ही हो सकता है। इसी कारण वह 'व्यावहारिक प्रतिनिधित्व' (Functional representation) का समर्थक बना। कोले ने कहा कि "समाज में प्रत्येक रूप में निर्वाचन प्रतिनिधियों के उठने ही अनुचित होने चाहिए, जितने कि करने योग्य व्यवसायों के स्पष्ट एवं प्राबुनिक बने हैं। मनुष्य को उठने ही भिन्न तथा प्रत्येक रूप में प्रयोग होने योग्य देने का मताभिचार होना चाहिए, जितने कि उसके सामाजिक लक्ष्य धारणा हित हैं।" एक धारणा समाज को उपनोक्तियों और उत्पादकों के बीच विच्छेद हो जाना चाहिए। ये संघ बहु-प्रभुत्व (co-sovereign) होंगे। उत्पादकों का संबन्ध राष्ट्रीय संघों (national guilds) में होना। ये संघ प्रजासत्ताकीय एवं वैधानिक दृष्टि से अधिकार-सम्पन्न होंगे। ऐसी दशा में न्यायपालिका उच्च और श्रेणीमूलक विधानों (guildlaw) की व्याख्या करेगी। इसके प्रतिरिक्त मजदूरों का निर्णय एक अनुसूचित संस्था (co-ordinating body), जो संघ के दोनों सदस्यों की सम्मिलित समिति द्वारा नियमित

1 "The state as a general and embracing scheme of life, must necessarily adjust the relations of associations to itself, to other associations and to their own members to itself in order to maintain the integrity of its own scheme; to other association to preserve the equality of associations before law, and to their own members in order to preserve the individual from the possible tyranny of the group"

होगी, करेगी। इस सम्बन्धित संस्था का व्यापकता, कानून तथा पुलिस की सम्पूर्ण शक्ति पर एकाधिपत्य होगा। इस प्रकार कोस की योजना में राज्य अधिकार्य होते हुए भी अन्य समुदायों के समान ही है। उसके पास जतनी ही अधिकार-सत्ता होगी चाहिए जिससे कि अन्य संघों के पास, ताकि वह समाज में अपने विशेष कार्यों को समुचित रूप से कर सके।

कोस ने इसी की 'सामान्य इच्छा' का भी उद्घाटन किया। उसके मत में 'सामान्य इच्छा' सामाजिक है। यह कल्याण के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं है। व्यक्ति की स्वामी इच्छा (active will) का बोध सम्भव है, किन्तु सामाजिक इच्छा (real will) का ज्ञान होना असम्भव है। जब सामाजिक इच्छा का बोध ही असम्भव है तो उसका प्रतिनिधित्व करनेवाली 'सामान्य इच्छा' का बोध भी निश्चय असम्भव है। फलतः 'सामान्य इच्छा' जिसमें राज्य की सार्वभौमता का निवास है वह भी कल्पनात्मक तथा अस्तित्वहीन है।

सिडनी और बेव—ये ब्रिटिश श्रमिक-साम्योत्तम के प्रमुख विचारक हैं। इन्होंने १९२० में लेबर पार्टी को एक भावार्थ समाजवादी योजना (Constitution for Socialist Common Wealth of Great Britain) प्रस्तुत की। बेव सर्वप्रथम विचारक है, जिसने कहा कि संघर्ष व्यक्ति के समस्त हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। अतः उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत दो संघों का सम्मेलन किया गया, जिसमें एक राजनैतिक-सम्बन्धी विषयों तथा दूसरे सामाजिक विषयों से सम्बन्धित होगी। इस प्रकार दोनों संघों अधिक कार्य भी कर सकेंगी और अधिक कार्य भार होने से सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी हो पायगा। इसके प्रतिरिक्त अन्य विचारक जैसे बेलाक (H. Belloc) भाषि ने भी विकेन्द्रीकरण-सम्बन्धी अनेक योजनाएँ बनाई थीं।

सास्की (Harold J. Laski)—सास्की हमारे युग के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक विचारकों में से था। उसका जन्म सन् १८९३ में सैनफ्रेडो में एक उच्च मध्यम-वर्गीय परिवार में हुआ था। बचपन में ही सास्की बड़ा मेधावी और कुशाग्र बुद्धि का छात्र था। उसकी स्मरण-शक्ति और अध्ययनशीलता ने सभी की आकर्षित कर लिया था। अठारह वर्ष की अवस्था में ही सास्की ने शाही कर ली थी। उसकी पत्नी उससे उम्र में बड़ी थी। सास्की अभी एक स्कूल का विद्यार्थी ही था। किन्तु सास्की के माता-पिता ने उसको शाही की मान्यता प्रदान नहीं की, क्योंकि उसका पिता कट्टर यहूदी था और यह सहन नहीं कर सकता था कि उसका लड़का अंग्रेज ईसाई लड़की से विवाह करे। सास्की प्रॉक्सपोर्ट में १९११ से १९१४ तक



अध्ययन करता रहा। अपनी अटूट लगन के कारण सास्की ने १९१४ में इतिहास में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। ऑक्सफोर्ड में उसके कुछ फिजर, मेटफिज़ और बार्नर आदि थे। बचपन से ही सास्की की अभिरुचि राजनीति में थी। अपनी इस विचित्र रुचि के कारण अध्ययनोत्सुक सास्की ने पत्रकारिता को अपनाया। सास्की मातृक था, पर वह भाववतावादी ही गया। वह प्रथम महायुद्ध के समय क्वाटा और प्रमरीका के विरविविद्यार्थियों में प्राध्यापक के पद पर रहा। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'Problem of Sovereignty' ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धित विचारों की कोटि में उभरे रख दिया। जब १९२० में प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ, तो सास्की इंग्लैंड आया तथा और London School of Economics and Sciences में ग्राहम वल्लास (Graham Wallas) के स्थान पर उसकी नियुक्ति राजनीति के प्राध्यापक पद पर हो गई। अध्ययन के प्रति सास्की की विशेष अभिरुचि थी। वह अपने छात्रों के प्रति अत्यधिक उदार था।

सास्की 'डेविडन-संग' का सदस्य और सेबर पार्टी का प्रमुख नेता था। सन् १९४३ में वह इसका समापति भी था। वह उच्चकोटि का दार्शनिक था और व्यक्ति उसके विचारों का नेत्रबिन्दु था। १९११ के उपरान्त वह मार्क्सवाद की ओर झुका और अन्त में वह मार्क्सवादी हो गया। यह प्रख्यात राजनीतिक विचारक, दार्शनिक, पत्रकार, लेखक, अध्यापक और अभिक-नेता आज इस संसार में नहीं है, किन्तु आज भी इसके अनेक शिष्य संसार में फैले हुए हैं, जो इससे प्रेरणा लेते हैं। 'मम' ने सास्की की तुलना एक राजनीतिक विचारक की दृष्टि में माटेस्कु और दि टोक्विने से की है।<sup>1</sup>

## सास्की के ग्रंथ

- (1) Studies in the Problem of Sovereignty
- (2) A Grammar of Politics
- (3) Authority in the Modern State
- (4) Socialism and Freedom

1 'As a Political thinker Blum compared Harold to Montesquieu and De Tocqueville and added that he did not think that any other man in Europe or America had such a profound and original knowledge of democratic thought and institutions since the seventeenth century'—Kingsley Martin

- (5) Communism
- (6) The State in Theory and Practice
- (7) Liberty in Modern State
- (8) Parliamentary Government in Great Britain
- (9) American Presidency
- (10) American Democracy
- (11) Karl Marx An Essay प्रादि प्रमुख हैं ।

सास्की पर अन्य विचारकों का प्रभाव

(१) सास्की अपने ध्यान-जीवन में ही अपने ग्रन्थापक-गण की उदार प्रार्थना की तथा व्यक्तिवादी विचारवादी से पर्याप्त रूप में प्रभावित हुआ था । इनमें प्रमुखतः डायसी ( A V Dicey ) फिशर ( H A L Fisher ) और बार्कर थे ।

(२) नेविंसन ( H. Nevins ) और लान्सबरी ( George Lansbury ) ने भी सास्की का प्रभावित किया । नेविंसन एक उदारवादी विचारक और लान्सबरी एक शास्त्र-धर्मिक नेता था । सास्की ने प्रथम से स्वतंत्रता का अर्थ और उसके महत्ता तथा दूसरे से समाजता का अर्थ और उसका महत्त्व समझा ।

(३) सास्की प्रीन से भी अपेक्षित रूप में प्रभावित हुआ । उसके नैतिक बेलना की कल्पना और व्यक्तिवाद ने उस जीवन भर प्रभावित किया । इस प्रकार प्रीन के विचारों की सास्की के दर्शन पर अमिट छाप है ।

(४) येणो समाजवादी दर्शन से भी सास्की प्रभावित हुआ । इस दर्शन के प्रभाव ने उसे इसका समर्थक बना दिया था । किन्तु उसने इसकी राजसत्ता की बाधना की आलोचना की थी ।

(५) सास्की पूँजीवाद का घोर शत्रु था । उसके इस दर्शन पर 'मोजरू' ( Senor de Moeztu ) तथा 'टानी' ( R H. Tawney ) के साम्यवादी-प्रतिकार-सिद्धान्त का प्रभाव स्वतः रूप से दृष्टिगोचर होता है । सम्यक्ति के प्रतिकार का प्रोत्साहन समाज-हित से होता है । किन्तु पूँजीवति ऐसा प्रतिकार नहीं रखता क्योंकि उसका अर्थ समाज-हित की अज्ञाना निन्दा हीत होता है । इस विचार ने सास्की को बहुत प्रभावित किया ।

(६) "सत्य नहीं है जो श्रुतकर है, सत्य नहीं है जो हाथिकारक है । इस मूल के प्रतिपादक विलियम जेम्स ( William James ) ने भी सास्की

की प्रभावित किया। यह तथ्य दर्शन के क्षेत्र तक ही परिमित था, किन्तु सास्की ने इस तथ्य को राजनीतिक क्षेत्र में भी लागू किया। उसका कथन था कि राजनीति में केवल ऊँची सिद्धान्तों का कार्यान्वयन होना चाहिए जो सामग्र्य हों; क्योंकि घात में बड़ी धरप सिद्धान्त होने। अतः ऐसे सिद्धान्त जो हाथिग्रह हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उनसे महत्प्रयास स्पष्ट है।

(७) मार्स मार्क्स भी सास्की का प्रेरक है। उसने Karl Marx An Essay नामक पुस्तक १८२६ में लिखी। १८३४ में उसका 'मार्सकी भाषण' उसके मार्क्सवादी अनुकाश को प्रसिद्ध करता है। वस्तुतः सास्की के बहुलवादी विचार मार्क्सवाद की पृष्ठभूमि पर ही निर्मित हुए थे। बेल्जि की राज्य-सम्बन्धी निरन्तरता की बारखा का समावेश उसकी State in Theory and Practice नामक पुस्तक में हुआ है। वह सोवियत सभ्यता का प्रशंसक था और उसने स्पष्ट रूप से धारित किया कि यह सभ्यता ही यूरोपीय सभ्यता को जीवित रख सकती है। मार्स का सास्की पर इतना अधिक प्रभाव था कि उसका व्यक्तिवाद का निरन्तरता मार्क्सवादी दृष्टि-विन्दु से होता था जबकि मार्सवाद का निरन्तरता व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से।

## समाज और राज्य

सास्की की दृष्टि में आधुनिक समाज संघीय और बहुलवादी है। समाज में व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व राज्य द्वारा न होकर संघों द्वारा होता है। व्यक्ति के अनेक प्येव होते हैं और इन विभिन्न प्येवों की पूर्ति विभिन्न संघों द्वारा होती है। इन विभिन्न संघों के नियमों का पालन नागरिक उसी मति करते हैं जैसे राज्य विधियों का। अतः समाज में इन विभिन्न संघों का प्रमुख स्थान है और अनेक-अनेक क्षेत्र में इनकी प्रभुता है। इनकी शक्ति सम्प्रभता के सम्मुख कमी-कमी राज्य को नतमस्तक होना पड़ता है। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से परिपूर्ण है जबकि विभिन्न संघों के आन्दोलनों के सामने राज्यों को झुकना पड़ा है। उदाहरणार्थ अखिल भारतीय कांग्रेस के समस्त ब्रिटिश साम्राज्यवाद नतमस्तक हुआ। अखिल भारतीय रेल-संघ (All India Railway Federation) की माँगों को ब्रिटेन-सरकार ने स्वीकार किया है। हिन्दू बोर्ड बिना कब बनता द्वारा व्यापक विरोध हुआ तो राजसभा को झुकना पड़ा। इस प्रकार संघ परवर्ति शक्ति शाली है। किन्तु सास्की राज्य को सर्वोच्च संस्था महत्त्व मानता है। "राज्य एक ऐसी संस्था है, जिसकी उत्तरदायिता अनिवार्य है। यह नागरिकों के रूप में, मानकों

के हितों की रक्षा के लिए एक संस्था है," और "उसे अन्य संस्थाओं पर उस सीमा तक नियंत्रण करना चाहिए जहाँ तक उनके इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए नियंत्रण आवश्यक हो।" किन्तु यह ऐसा कहकर संघों की स्वायत्तता का भंग नहीं करता। मिश्र-मिश्र तन्त्रों की पूर्ति के कारण संघों में पारस्परिक संघर्ष स्वाभाविक है। अतः एक ऐसी केन्द्रीय तथा सत्ता-सम्पन्न संस्था की आवश्यकता है जो समन्वयकारी कार्य कर सके और यह संस्था राज्य है। किन्तु तान्की ने राज्य की सार्वभौमता (Sovereignty) पर बबरख्त प्रहार किया था। उसका कथन था "राजनीतिक दर्शन के लिए सार्वभौमता के कानूनी सिद्धान्त को बंध बनाना सम्भव नहीं है", और "यदि सार्वभौमता की सम्पूर्ण कल्पना का परित्याग कर दिया जाय तो यह राज्य-विज्ञान के लिए स्वामी हित का कार्य होगा।" उनकी दृष्टि में, वरम सार्वभौमता का सिद्धान्त एक कानूनी कथित कल्पना (legal fiction) तथा निरर्थक धारणा (barren conception) है। और यह "धर्मियत एवं अनुत्तरदायी राज्य का सिद्धान्त मान्यता के हितों के अनुकूल नहीं है" तथा इसकी समाप्ति उसी प्रकार हो जायेगी जिस प्रकार राजाओं के ऐसी अधिकार का अन्त हो गया है। इस प्रकार सार्वभौमता अनेक संघों में बिभक्त हो जानी चाहिए। राज्य का कर्तव्य सहयोग और अनुमन का है जो उसे पूरा करना चाहिए। राज्य की विधियाँ बनाने का भी अधिकार है, किन्तु ये विधियाँ जन-हित पर आधारित हों और उनका बहुसंख्यक समुदाय विरोध नहीं करता हो। जिन कानूनों का जनता विरोध करती है, राज्य को उन्हें नहीं बनाना चाहिए। इस प्रकार राज्य की विधि-निर्माण शक्ति भी परिमित है।

तान्की ने राज्य की सार्वभौमता पर जो आक्षेप सपाये थे, उनके निम्न मिश्रित कारण हैं—

(१) राज्य को अक्षेत्रवादी तथा अन्य विचारक एक सत्ताधारी संस्था मानते हैं, किन्तु व्यवहार में इस सत्ता का उपयोग कुछ पूर्ण-पति करते हैं। राज्य उनके शोषण का एक साधन है। सार्वभौमता पर एकाधिपत्य इन पूर्ण-पतियों का ही है।

(२) यह कहता कि राज्य व्यक्ति को एक धारण नागरिक बनाता है और सुसम्पन्न जीवन की व्यवस्था करता है—बहुत बड़ा बोझ है। यहाँ उत्पादन के समस्त साधनों पर कुछ बोझ लोगों का एकाधिकार हो और यहाँ और शोषण की

प्रक्रिया पनपती हो, ऐसी राज्य-व्यवस्था में भारत नैतिक जीवन प्रत्यावहारिक एवं क्रिस्तात सम्भव है। शासन-मूक तो इन्हीं शोषकों के हाथों में है। फिर किस प्रकार ये शोषक शोषितों के स्वास्थ्य की बात सोच सकते हैं ?

( १ ) अद्वैतवादियों ने राज्य की सत्ता को असीमित कहा है और यदि वह परिमित भी है तो अपनी इच्छा से। किन्तु इतिहास ऐसे घनेक उदाहरणों से परिपूर्ण है जबकि उसकी यह स्वैच्छाचारिता पूर्ण-सुसिद्ध हुई है। उसे अन्य संघों के समक्ष झुक्ना पड़ा है। उसे अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा है।

( २ ) राज्य को अन्तरराष्ट्रीय संस्था कहना भी गलत है, क्योंकि यह अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी है। इसका जन्मसद उदाहरण फ्रान्स का प्रशासकीय नियम ( Administrative Law ) है।

( ३ ) सार्वभौमता ( Sovereignty ) को अविभाज्य बताना भी एक भ्रमस पाण्डा है। शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त जो कि भाव प्रवर्धित है, इसका अनीक्य सिद्ध करता है।

( ४ ) राज्य समाज का प्रतिनिधित्व करता है, इसे भी अनीकार नहीं किया जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि समाज बहुसंख्यकी है, क्योंकि उसकी शक्ति विभिन्न संघों में विभाजित है, और राज्य अद्वैतवादी है।

## व्यक्तिवाद

शास्त्री बीसवीं सदी का 'मित' था। उसकी विचारधारा का केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति ही था। पलुप्त शास्त्री और स्वाधीनता बुद्धिवादी पैदा हुए थे। व्यक्ति का तर्कहीन विकास ही राज्य और समाज का लक्ष्य होना चाहिए। व्यक्ति के नैतिक, धार्मिक और मौखिक उत्थान हेतु राज्य की वातावरण पैदा करना चाहिए। शास्त्री सम्भवतः को अधिक अर्थस्वर समझता था, अर्थदातृ समाज के। उसकी दृष्टि में व्यक्ति साधन है और मुख्यवस्था राज्य।

शास्त्री ने राज्य की अर्थशास्त्रीय व्यक्ति को उच्चतर स्थान प्रदान किया। पहले उसे व्यक्ति के अन्तर्गत ही बताया। राज्य की सत्ता को व्यक्ति अभी मानता है जब उसकी अन्तरात्मा उसे स्वीकार करती है। मुझ पर सत्ता का शब्द उसकी नैतिक धार्मिक की भाषा के अनुगत में ही उचित है। 'मित राज्य के प्रति पैरी प्यदा है, वह वही राज्य ही सत्ता है, जिसमें मैं नैतिक पर्यतता देखता हूँ ।

हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य अपनी अन्तर्दत्ता के प्रति सच्चा होना है ।" और "मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए कोई एक संस्था नियम-निर्माण नहीं कर सकती है ।" इस प्रकार सास्की राज्य को नियम-निर्माण का एकाधिकार प्रदान नहीं करता क्योंकि "य" का क्षेत्र बड़ा व्यापक है और बहु नागरिकता तक हो परिमित नहीं है । "राज्य में मानव की समस्त संस्था-सम्बन्धी प्रवृत्तियों की समाप्ति नहीं हो जाती ।" राज्य तो मानवीय संस्थाओं के कई स्वरूपों में से केवल एक स्वरूप है, यद्यपि मानव के अन्य हितों की पूर्ति अन्य विभिन्न सभों द्वारा होती है । किन्तु ऐसे समय में जबकि हितों में पारस्परिक विरोध हो तो राज्य को क्या करना चाहिए ? उदाहरणार्थ, बेरोजगारी का संघ उद्योगों की घमभी देता है जिससे कि राज्य में धनपबस्था फैलने की आशंका है, और राज्य इस संघ को उद्योगों बन्द करने का आदेश देता है । ऐसी स्थिति में राज्य की सर्वश्रेष्ठता उसकी नैतिक प्रार्थना की श्रेष्ठता पर निर्भर करती है । उसे अपनी नीति और कानूनों द्वारा व्यक्ति के धर्म-शौच के लिए उचित प्रयत्नशील रहना चाहिए । इस प्रकार राज्य का सर्वोपरि कर्तव्य व्यक्ति की बहुमुखी प्रतिभाओं को पूर्णतः देना है । उसे धर्म-सन्तुष्टि प्रदान करना है ।

### अनर्तक

सास्की की अनर्तक में प्रयास निम्न है । वह इसका कट्टर अनुयायी था किन्तु उसने पूर्णतः अनर्तक की बहु मानवीयता की थी । उसका कथन था कि पश्चिमी राज्य और अनर्तक परस्पर विरोधी हैं । अनर्तक की स्थापना केवल बहुमन्त्रीय राज्य में ही सम्भव हो सकती है ।

सास्की प्राथमिक निर्वाचन-प्रणाली को उन्मूलक नहीं समझता था क्योंकि बार या पाँच वर्ष में शासनायक एक केवल एक बार अपना उत्तरदायित्व प्रजा के प्रति सम्भरता है । इससे अनर्तक वास्तविक नहीं होता । जब धर्म-निर्वाचन होता है, तो चुनाव-शोषण-प्रण में बड़े प्राथमिक कार्य का उत्प्रेषण होता है, किन्तु राज्य-सुख हास में आने पर वे समस्त प्रतिज्ञाएँ विस्मृत कर धर्मनामकताही प्रतिष्ठित की जाती है । इसका परिणामशाह ही जाता है और अनर्तक के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को भूल जाता है । किस प्रकार ऐसी शासन-व्यवस्था अनर्तकीय हो सकती है ? सास्की का विश्वास सास्की अनर्तक में था, जहाँ विभिन्न विपर्या

1 "The only state to which our allegiance is the state in which I discover moral adequacy our first duty is to be true to our conscience"—Laski

पर जनता की विचार-समिप्यक्ति का धबधब प्रदान किया जाता हो और इसके नियंत्रण ही राज्य विधानों की आधारशिला हों, वही सच्चा जनतंत्र है। ऐसे जनतंत्र में संघों का अस्तित्व आवश्यक है; क्योंकि इन्हीं के द्वारा जनमत-निर्माण और विचार-प्रकाशन होता है। ऐसी स्थिति में ही नागरिक राज्य विधियों का पालन करता है क्योंकि वे उसके विचारों के प्रतिबिम्ब एवं प्रतीक हैं। इस प्रकार भारतीय जनतंत्र सामाजिक प्रगति का चेतक है।

### अन्तर्राष्ट्रीयता

सास्त्री विरह-शान्ति का परम समर्थक था। विरह-शान्ति की स्थापना उसका सर्वोच्च उद्देश्य था। उसका मत था कि एक आदर्श नागरिक को विरह-बन्धुत्व की भावना से मोत-मोत होना चाहिए। उसे अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रत्येक समस्या पर विचार करना चाहिए। विरह-शान्ति उसका मूलमंत्र और मानवता उसका मरम होना चाहिए। उसके कार्य ऐसे होने चाहिए कि जिससे समस्त विरह एकता के सूत्र में गाँध हो सके। सास्त्री ने कहा था कि राज्य को मां यही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। विरह-शान्तिवादी राज्य और वास्तव का 'सुनिश्चित सर्वोच्च मंगल' इस विरह-एकता में बाधक था। सास्त्री ने अल्पकाल ही बिता दिया। जब एक भारतीय राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण होना तो सामाजिक प्रगति का हीना भी सम्भव होना। विरह-वस्थाएँ में ही सभी का कल्याण निहित है। अतः राज्य का सर्वोपरि कर्तव्य विरह-शान्ति की स्थापना होनी चाहिए।

सास्त्री ने कहा था कि धर्म के युग में राज्य की प्राचीन श्रेष्ठवादी धारणा का कोई प्रतिकल्प नहीं है। मानवता का उत्सर्जन करके कोई राज्य जीवित नहीं रह सकता। प्रत्येक राज्य मात्र उत्तरदायित्व का अनुभव करता है। उसे बाधित एवं अवशिष्टताएँ पान-अभाव का ध्यान है और राष्ट्रों की प्रतिक्रिया की बहु समीक्षाएँ सम्भवता है। अतः राज्य का श्रेष्ठवादी रूप न मान है और न सम्भव ही ही सकता है।

### बहुलवाद का औचित्य

बहुलवाद कठोर एवं दृढ़वादी विधानवादिता और राज्य की धार्मिकता की एक उचित प्रतिक्रिया है। बहुलवाद में राज्य की धार्मिकता के विधानरूप पर बल दिया है। वह राज्य की प्रायः राज्यों के सम्बन्ध में पूर्ण श्रेष्ठता को उचित नहीं समझता। बहुलवादी विभिन्न सामाजिक संघों के बहुते हुए प्रकार,

हमके कार्य-क्षेत्र में राज्य द्वारा प्रभावशालक हस्तक्षेप तथा उन्हें राजनीतिक व्यवस्था में अधिक महत्ता देने पर प्रकाश डालते हैं। वे विधि को राज्य से स्वतंत्र एवं उच्चतर समझते हैं। बहुमत-राज्यीय संघ व्यवस्था तथा धारा-सभा में संघ-प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी उनके तर्कसंगत सुझाव बड़े ही उपयोगी हैं। बहुसंख्यकी विचार धारा में राजनीति-दर्शन को नवीन दिशा की ओर मोका है और नवीन हथकण्डे हैं संघर्षों के निवारण हेतु। वैसा कि पैटिन ने कहा है—“बहुसंख्यवाद एक ऐसी व्यवस्था का दृष्टिकोण है जबकि नवीन स्थितियाँ उन दिनों के वैधानिक बर्गीकरण को असन्तोषजनक या रूढ़ी थीं और उनके पास ऐछ कोई पर्याप्त एवं निश्चित उपादान नहीं था जिससे वे उपस्थित संघर्षों का निवारण कर सकतीं। यह समन्वय एवं समझौता की उच्च प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है जिसके द्वारा नवीन बर्गों की रचना की जाती है और विरोधी स्वार्थों को सन्तुलित किया जाता है।”

मिस फॉलेट (Miss Follet) ने अपनी New state नामक पुस्तक में बहुसंख्यवाद के दो मुख्य बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं —

(१) बहुसंख्यवादियों ने राज्य के इस प्राथमिक अधिकार का भंडाफोड़ किया है कि वह सर्वप्रथम है।

(२) बहुसंख्यवादियों ने प्राथमिक संघीय जीवन के महत्त्व को प्रकट किया है और राजनीतिक व्यवस्था में संघों को विशिष्ट स्थान मिलाने पर बल दिया है।

(३) वे स्थानीय जीवन के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं और उसके पुनर्जीवन की माँग करते हैं।

(४) उनकी दृष्टि में राज्य और उसके अंगों के हितों में अन्तर है। दोनों के स्वार्थ समान नहीं हैं।

(५) बहुसंख्यवाद की उत्पत्ति के कारण जन-मीड का अन्त हो रहा है और व्यवस्थित संघों की स्थापना हो रही है।

(६) बहुसंख्यवाद ने एकात्मकता, सयुक्त और संघवाद की समस्या पर प्रकाश डाला है।

बहुसंख्यवाद की आलोचना—

(१) बहुसंख्यकी सार्वभौमता का विभाजन कर राज्य को सन्तुलनवादी संस्था (Co-ordinating body) बनाया जाते हैं। किन्तु राज्य वैधानिक नियमन शक्ति के बिना सन्तुलन का कार्य कैसे करेगा, यह पूर्णतया संदिग्ध है।



(२) बहुलवादी विचारकों की विचारधारा में विरोधाभास है। एक घोर वे राज्य की शक्ति का विरोध करते हैं, तो दूसरी घोर उसका समर्थन। वास्की ने सार्वभौमता के विद्वेष्टीकरण की बकासत की है, किन्तु राज्य की प्रभावित अधिकार-सम्यधरा का भी शीघ्रतम सिद्ध किया है। वार्डर की दृष्टि में, राज्य व्यक्ति के हितों की पूर्ति की तथा भागरिक को अज्ञात-व्यक्ति की सञ्चय प्रतिमा है। "हम देखते हैं कि राज्य को व्यावसायिक संघ, राष्ट्रीय सभ्य और धर्म-संघ की प्रगति के समझ बन जाने को कहा जाता है। किन्तु वाहे बितने अधिकारों के सम्बन्ध में वे संघ बाने करें या निल बामें फिर भी राज्य एक व्यवस्थात्मक शक्ति के रूप में आवश्यकता हीमा, और यह भी सम्भव है कि यदि इन संघों को नवीन अधिकार मिलते हैं तो राज्य को भी बितने अधिकार अपने सौन लिये बायने प्रयेगाहृत उनके नहीं अधिक अधिकार प्राप्त हों क्योंकि उसे व्यवस्था की घोर अधिक धम्भीर तथा भारी समस्याओं की हल करण होगा।" "विक्र और मैटसेएड सभ्य को वास्तविक व्यक्तित्व प्रदान करते हुए भी यह स्वीकार करते हैं कि राज्य प्रत्ये सामाजिक संस्थाओं से उच्चतर है। फ्रिंस राज्य को समुदायों का समुदाय मानता है। पाल बकर (Paul Boncour) सभी संस्थाओं को सार्वभौम मानता है, किन्तु उनकी राज्य के अन्तर्गत ही रणता है और उसके मठ में राज्य सभी नागरिकों के हितों तथा राष्ट्रीय एकता का मजबूत आधार है। लिएडसे राज्य को उच्चतम संस्था मानता है, क्योंकि उसकी सार्वभौमता अनिवार्य है।

(३) बहुलवादियों का यह तर्क कि सनातन के अन्तर् विभिन्न सभ्य समालापर रूप से बहते हैं और उनके मध्य कर्तव्य-अन्वामी पासविक संघर्ष नहीं होता, व्यायसंभव नहीं है। यदि उनका यह तर्क ही तथ्यपूर्ण है तो एक सार्वभौम राज्य की आवश्यकता वा कोई प्ररन ही नहीं उठता, किन्तु बस्तु-स्वतः सर्वथा

1 "We see the State invited to retreat before the advance of the guild, the national group, the church. Yet whatever rights such groups may claim or gain, the State will still remain necessary adjusting force; and it is even possible that if groups are destined to gain new ground the State will also gain, perhaps even more than it loses, because it will be forced to deal with ever graver and ever weightier problems of adjustment."

—E. Barker

इसके विपरीत है, क्योंकि विभिन्न संघों के बीच कस व्यो, स्वार्थों और मिष्टाओं सम्बन्धी संघर्ष होता है। अतः ऐसी वृथा में एक अधिकार-सम्पन्न राज्य की परम आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त बहुमतवादी किस प्रकार आवश्यक और अनावश्यक संघों का निर्णय करेगा और उन्हें प्रतिनिधित्व देने का भी क्या आचार होगा ?

(४) मिस फोलेट का यह ठोस अधिक मुक्तिदायक है कि "राज्य को संघों का संघटन नहीं कहा जा सकता क्योंकि कोई भी संघ या संघ-समूह व्यक्ति के पूर्णत्व को नहीं समेट सकता और एक आदर्श राज्य व्यक्ति के पूर्णत्व की मांग करता है। नागरिकता व्यावसायिक संघ की सहायता से अपेक्षाकृत विशिष्ट वस्तु है। हमें राजनीति में परिपूर्ण मनुष्य की आवश्यकता है। आदर्श एकीकृत राज्य सभी का अन्तर्निहित करनेवाला नहीं है। वह सर्व-परिप्राही है। एक सच्चे राज्य को सभी स्वार्थों को अपने अन्तर्गत एकत्र करना चाहिए। उसे हमारी अनेक मिष्टाओं को लेकर उन्हें एकत्रित करना चाहिए। हमारी अन्तमा का वास राज्य में है।"

(५) बहुसंख्य के आलोचकों का कथन है कि यदि राज्य को अन्य संघों के समान एक संघ मान लिया जाय तो तीन महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं —

- (१) राज्य अन्य संघों से कर-वसुली के अधिकार से वंचित हो जायेगा।
- (२) संघों के पारस्परिक झगड़ों के निर्णय देने का अधिकार उसे नहीं रहेगा। और

(३) राज्य की अनिवार्य नागरिकता समाप्त हो जायेगी।

अतः एक ऐसी संस्था की परमावश्यकता है जो अन्य संघों से अलग एवं पर्याप्त शक्ति-सम्पन्न हो जिससे कि अन्य संघों में सुभ्यत्वा और शांति स्थापित कर

---

1 "The State can not be composed of groups because no group nor number of groups can contain the whole of me and the ideal State demands the whole of me My citizenship is something bigger than my membership in the Vocational group We want the whole man in politics... The ideal unified State is not all absorptive It is all inclusive... The true State must gather up every interest within itself It must take our many loyalties and find how it can make them one The home of my soul is in the State" —Miss Follett

सगा, जिसका अपना धर्म और अपनी सरकार थी। फ्रांस में भी इंग्लैण्ड का अनुसरण किया। फ्रांस में राष्ट्रीयता की जन्मदात्री जोन आर्क (Joan of Arc) थी। उसने फ्रांसीसी जाति को राष्ट्रीयता की भावना से प्रीत-श्रेष्ठ किया। स्पेन और पुर्तगाल में भी विभिन्न कारणों से राष्ट्रीयता का उदय हुआ। सेंट जोन (St. Joan) हुस (Hus), दान्टे (Dante), लूथर (Luther) और मैकेवेली (Machiavelli) आदि महात्तु विचारकों ने राष्ट्रीयता की भावना को बलवती बनाया। मैकेवेली ने इटली को, जो विभिन्न स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था, राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँध दिया। इसके लिए उसने पौन के विरुद्ध बयावत की थीर वह इटली की एक सुसंरचित राष्ट्रीय राज्य बनाने में सफलमूत हुआ। धार्मिक-सुधार-आन्दोलन (Reformation) ने रोमन कैथोलिक धर्म की सार्वभौमता को विभट्ट कर राष्ट्रवाद को विकसित करने में समुत्तुर्ण कार्य किया। किन्तु राष्ट्रवाद के पुनरुत्थान में विधिष्ट हाय फ्रांसीसी राज्य ज्ञान्ति कर रखा। पोलैण्ड के विभाजन के उपरान्त ही फ्रांस में राज्य-ज्ञान्ति हो गई थीर नैपोलियन का यूरोप के विभिन्न देशों पर एकाधिपत्य हो गया। फ्रांसीसी ज्ञान्ति ने 'मानव समाज को जातियों के रूप में संगठित करने की पद्धति को पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित किया।' और "जनप्रिय शासन-सिद्धान्त तथा राष्ट्रीय धर्म-निर्याय के सिद्धान्त को स्थापित किया।" फ्रांसीसी ज्ञान्ति ने राष्ट्र-ध्वज, राष्ट्र धिष्ठ और राष्ट्रगान को प्रचारित एवं प्रसारित किया। इसके द्वारा जनतन्त्रात्मक राष्ट्रवाद को बल मिला और राष्ट्र शक्ति की भावना में परिबुद्धि हुई। इस प्रकार फ्रांसीसी जाति एक सबसे राष्ट्र के रूप में संरचित हो गई थीर इस भावना से अन्य देश भी प्रभावित हुए। नैपोलियन की अधीनता में जो राष्ट्र थे उन में भी राष्ट्रीयता की महार बीड़ गई। इसके प्रतिरिक्त लेखकों, कवियों और दार्शनिकों ने राष्ट्रीय ध्यमरुष्ट की विचारधारा को और विकसित किया, जिनमें विशेषतः उल्लेखनीय हैं—काँट, शिल्ले, हीबेल, गिटर गेटे (Goethe) आदि। शिल्ले ने कहा, "हम धर्मनी निवासियों में एकता की उस भावना को फुँकना चाहते हैं जो उनके धर्म प्रार्थन को पढ़ता है।" हीबेल ने भी राष्ट्र का स्तुतिबन्धन राज्य को "दुष्पी पर ईश्वर का प्रयाण" कहकर किया। रोस (H. Roos) का कथन है कि, "राष्ट्रीयता ने समस्त धनता में धनता एक धर्मोचित धमत्कार सिद्धाया। विचारकों ने उस धमत्कारिक शक्ति की अनुभूति की गेटे जो धर्मन राजनीति के प्रति धार्कन्ति नहीं था धामी में इस भावना की समुत्तु शक्ति के प्रदर्शन से विधिष्ट रू से प्रभावित हुआ। गिटर और शिल्ले ने इस भावना का विरय के

लिए मुठ संजीवनी बूटी को माँति स्वागत किया। बर्नसबर्न भीर कोलरिज जैसे विरव-कवियों ने जन-जनार्दन के मोह पूर्व उरबात को देख अपने काव्य का सजन किया और इसी में यह भविष्यवाणी की “जो भी इस राष्ट्रीय बागुति को निगट करने का प्रयास करेगा उसका पराजित होना अनवरयन्मानी है। यह अपने विरुद्ध रूप में राष्ट्रीयता को।” किन्तु इस राष्ट्रीय बापरण की १८१४ की विद्वान-बाप्रेस (Congress of Vienna) में यूरोप के पुननिर्मण के प्रश्न पर, उपेक्षा की यह भीर राजाओं के अधिकारों को माव्यता प्रदान की गई। यह राष्ट्रवाद राजनीतिक सिद्धान्त में रूप में उचित हुआ। इसी, पोलेण्ड और यूतान में राजनीतिक कमलिया हुई। इसी में मेजिनी राष्ट्रीयता का महान् सेगानी और प्रमूठ था। बिस्मार्क ने भी ‘रक्त और सौह’ (Blood and Iron) की नीति का प्रमुसरण कर जर्मनी को एक शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्य में परिणत कर दिया। बिस्मार्क के समकालीन ट्रीट्शके (Trenschke) ने, जो बलिन विरव विद्यालय में १८७४ से १८९१ तक इतिहास और राजनीति का प्राध्यापक रहा, राष्ट्रवाद का नवीन विचार प्रमुठ किया। ट्रीट्शके बिस्मार्क और हिटलर की ही नीति में आया है। इसी और जापान विरोधक उसकी विचारबाध से प्रभावित हुए। उसका कहना था कि राज्य का अपना एक विश्व सामूहिक व्यक्तित्व है और उसकी अपनी एक इच्छा है। ट्रीट्शके एक सार्वनीकिक राज्य (pan-national state) में विरवास नहीं करता था। उसकी धारणा थी कि शक्ति के दृष्टिकोण से एक राज्य का प्रतिनिधित्व केवल राष्ट्र ही कर सकता है। एक राज्य को किसी अन्तर्राष्ट्रीय संघ के सम्मुख झुकने की आवश्यकता नहीं। “जब एक राष्ट्र का अस्तित्व खतरे में हो, तो किसी बाह्य शक्ति की निष्कता में विरवास नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह एक राज्य के लिए सम्मान का एक प्रश्न है कि वह कठिनाइयों का समाधान स्वयमेव करे।”

प्रथम विरव-मुठ के उपरान्त राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को यथेष्ट बल मिला। बर्साई की संधि (Treaty of Versailles) में ‘राष्ट्रीय आत्म-निर्णय’ (National self-determination) के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। इसका श्रेय राष्ट्रपति बिस्सन को है। बिस्सन के चौदह यूरोपीय जर्मन्म में ‘आत्मनिर्णय’ के सिद्धान्त को भी शामिल किया गया था। इसी सिद्धान्त के आधार पर चेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia), पोलेण्ड (Poland), लेटाविया (Latavia) लिथुनिया (Lithuania) आदि अनेक नवीन राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण हुआ। किन्तु राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का

निष्पन्न तथा अज्ञात प्राप्त नहीं किया गया, क्योंकि इससे शीर्षस्थ राष्ट्रों के परस्पर हितों को बाधा पहुँचता था।

## राष्ट्र और राष्ट्रीयता

'राष्ट्र', 'राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्रवाद' शब्दों की सटीक परिभाषा में सम्बन्ध में राजनीतिक विचारक एकमत नहीं हैं। 'राष्ट्र' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'नेशियो' (Natio) से हुई है, जिसका अर्थ है 'जन्म' या 'प्रजाति'। फलतः व्युत्पत्ति की दृष्टि से एक राष्ट्र से अर्थप्राप्त है जिसका अर्थ एक नस्ल से हो। ऐसे व्यक्ति जो एक-सम्बन्ध द्वारा एक राजनीतिक समान में परस्पर संबद्ध हों। किन्तु इससे यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रवाद और प्रजातिवाद समान विचार के हैं। बर्गस (Burgess) और लीकोक (Leacock) राष्ट्र की परिभाषा बर्गोव भाव में करते हैं। वेसे बर्गस सामान्य बंश-परम्परा की कोई धारणा रख नहीं सकते। इसके मतानुसार, 'राष्ट्र वह जनसंख्या है जिसकी भाषा, साहित्य परम्परागत रीति-रिवाज तथा इतिहास समान है, जिनमें अल्प-संख्ये की अल्पता के समान भाव हैं और जिनका अर्थ ऐसी भूमि पर है जिसमें मीनासिद्ध एकता है।' चेम्बो (Chambo) की धारणा है कि राष्ट्र का अर्थ जन्म और भाषा के समुदाय से संबद्ध है। किन्तु वेस और राष्ट्र को मिश्रित विचार राष्ट्र हैं। फिर एक की पुनीतता के सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं है। संयुक्त अमेरिका की जनसंख्या का निर्माण विभिन्न नस्लों या विभिन्न एक से हो सकता है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित एक राष्ट्र है, जहाँ विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न वर्ग-वर्गों की एकता है।

कुछ विचारक राष्ट्र का प्रयोग राजनीतिक संघटन की विचारधारा में करते हैं। उनके मत में राष्ट्र का अर्थ है ऐसे व्यक्ति, जो सांस्कृतिक एवं भाषात्मक दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध की अनुभूति करते हैं और एक सरकार के अन्तर्गत सुसंघटित हैं।

'राष्ट्र' और 'राष्ट्रीयता' दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में होता रहा है। किन्तु अब निश्चित रूप से दोनों का विभिन्न अर्थों में प्रयोग होता है। 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग राजनीतिक एकता या स्वाधीनता में होता है—अर्थात् वे विभिन्न ऐसे व्यक्तियों का एक समुदाय, जिनका अर्थ निजी राजनीतिक गठबन्धन हो। इसके विपरीत राष्ट्रीयता में राजनीतिक एकता अभिविष्ट नहीं है। अर्थात् एक राजनीतिक धारणा है, एक मनोबैधानिक गुण है और जिन्हीं सामान में भी इसका

प्रतिष्ठित बना रह सकता है। यह प्रायः एक सांस्कृतिक एवं नैतिक आरणा को अभिव्यक्ति करती है। यह व्यक्तियों के उस समूह को इंगित करती है जो जोत बंध-सामान्य परम्परा, भाषा और इतिहास की समाप्ता द्वारा सम्बद्ध हुए हैं। इस प्रकार हार्ड वाइस के शब्दों में, 'एक राष्ट्रीयता वह जन-संख्या है जो कुछ बन्धनों द्वारा ऐसे ढंग से संयुक्त होती है, जैसे—भाषा साहित्य, विचारों, रीतियों और परम्पराओं द्वारा, कि वह अपनी सम्बद्ध एकता का सम्यक् जनसंख्याओं से भिन्नता का अनुभव कर सकती है, जो उसी मांति निजी समान बन्धनों से संयुक्त होती है। राष्ट्रीयता मूलतः एक मानसिक भावना है जैसा कि जिमर्न (Zimmern) का कथन है, 'राष्ट्रीयता भी धर्म के समान आत्मतत्त्वही (Subjective), मनोवैज्ञानिक, मन की स्थिति एक आध्यात्मिक सम्पत्ति, एक भावना-व्यक्ति विचार और बीजक-है।' रोस (Rose) के मतानुसार राष्ट्रीयता की परिभाषा है, 'दिलों की एक ऐसी एकता जो एक बार बनकर फिर कभी न बिगड़े।'।

किन्तु एक राष्ट्र में अनेक राष्ट्रीयताएँ हो सकती हैं, जैसे इंग्लैण्ड एक राष्ट्र है, पर उसमें चार राष्ट्रीयताएँ हैं—अंग्रेज स्कॉट, वेल्स और उत्तरी आयरिश। हैच (Hayes) कहता है, 'एक राष्ट्रीयता एकता और सार्वभौम स्वाधीनता उपलब्ध कर लेने पर एक राष्ट्र बन जाती है।' जिस प्रकार यहूदी जाति पैलेस्टाइन में इसराइल राज्य की स्थापना से पूर्व एक राष्ट्रीयता थी, किन्तु अब यह एक राष्ट्र है। हिन्दू और मुस्लिम दो राष्ट्रीयताएँ हैं, किन्तु एक राष्ट्र भारत में निवास करती हैं। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के इस अन्तर की ओर स्पष्ट करते हुए हैच कहता है, 'एक राष्ट्रीय राज्य का आचार सर्वत्र राष्ट्रीयता होती है, किन्तु राष्ट्रीयता का अस्तित्व एक राष्ट्रीय राज्य विहीनता हो सकता है। राष्ट्र तत्त्वतः राजनीतिक होता है, जबकि राष्ट्रीयता प्रधानतः सांस्कृतिक होती है और केवल संयोग से राजनीतिक हो जाती है।' इस प्रकार इतिहास ग्रहम्बर (Hutchins Abroad) के शब्दों में, राष्ट्रीयता 'एक शिक्षा-विषयक आरणा है वह लोगों को एक राष्ट्र बनाने एक राष्ट्र अनुभव करने तथा एक राष्ट्र-निमात्र करने की शिक्षा प्रदान करती है।'।

### राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्त्व

राष्ट्रीयता के वे तत्व जो व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधते करते हैं, अनेक और विभिन्न हैं। ये तत्व राष्ट्रीयता के लिए केवल परमावश्यक ही नहीं हैं, अपितु राष्ट्रीयता का अस्तित्व ही इन पर निर्भर करता है। ये तत्व हैं (१) बंधीय

एकता, (२) भौतिक एकता, (३) सामाज्य संस्था (४) समान भाषा, (५) समान धर्म, (६) समान धार्मिक हित, (७) समान शासन धीर (८) सौकर्य ।

(१) वंशज एकता (Unity of Race)—कुछ लेखक बंशज एकता को राष्ट्रीयता के संस्थापन धीर उसे बसबसी बनाने में प्रमुख स्थान देते हैं । जर्मन धीर ब्रास दोनों विचारकों ने बंशज एकता को राष्ट्रीयता के निर्माण में आवश्यक तत्व समझा है । किन्तु इसके विपरीत धनेक ऐसे विचारक हैं जो इसे इतना महत्वपूर्ण नहीं समझते । मेजिनी के विचार में बंशज एकता राष्ट्रीयता के निर्माण में कोई महत्वपूर्ण तत्व नहीं है । लैवेजिये (Laveleye) का कथन है कि जर्मो-जर्मो मनुष्यों का सांस्कृतिक स्तर उन्नत होता जायेगा एवं वहाँ उनके इस विचार में सीलिया भाती जायेगी कि राष्ट्रीयता के निर्माण में बंशज एकता एक आवश्यक तत्व है । हेन के मतानुसार “शुद्धता यदि इसका क्वचित् भी अस्तित्व है, तो आजकल एकमात्र प्रसन्न्य जातियों के लोगों में ही है ।” पिस्सबरी के विचार में, “साधारणतः राष्ट्रीयता के निवारण में बंश का सब कोई इतना महत्व नहीं है । किसी भी राष्ट्र में सब कोई विरुद्ध बरा नहीं है । धात्र मानन सर्वत्र वर्णसंकर हैं ।” इस प्रकार बंशज एकता का राष्ट्रीय भावनाओं की सृष्टि में सब कोई महत्व नहीं रहा है । धात्र कोई भी बंश धरणी पुनोत्था का दावा नहीं कर सकता । स्विट्जरलैण्ड संयुक्तराज्य धमदीका धीर बनावडा इसके सागात् उदाहरण हैं, यहाँ विभिन्न मिथित बंश के लोग रहते हैं । यहाँ विभिन्न मिथित बंशजता राष्ट्रीयता के विनाश में बाधक नहीं है । इंग्लैण्ड भी इस बंशज मिथण से सब नहीं सका है । बहु भी सील्टी (Celts), डैतो (Danes), धीर ट्यूटोनों (Teutons) का सम्मिश्रण है । कुछ लेखकों की धारणा है कि राष्ट्रीयता ही बंश को जन्मदात्री है, न कि बंश राष्ट्रीयता का जन्मदाता है । किन्तु जैसे-जैसे धात्र-समाज सम्य होता जायगा, जैसे-जैसे ही बंशज संकीर्णता का विचार हास्यनिवृत्त होता जायगा, जैसे धात्र नवीन धाधिकारों के कारण राष्ट्रीयता की धीधारें बह रही हैं धीर विरवगुणन की बाधना प्रसारित हो रही है । विरव नागरिकता का धाम्बानन उत रोतर बत पकड़ता जा रहा है ।

(२) भौतिक एकता—किमुगेह भौतिक एकता राष्ट्रीयता के निर्माण में एक आवश्यक तत्व है । भौतिक बरा धीर धलधायु मनुष्य के धरिध धीर धमके शापीरिक धाधे को धियेपकः प्रभावित करते हैं । इसके द्वारा ध्यधियों के रूढ-सहृद, लघाण-सग्धे तथा धान-नाल में समानता स्थापित होती है । यद् समानता

ही उनमें भ्रानुमान का संसार करती है। मनुष्य जिस भूभाग में जन्म लेता है उसे अपनी मातृ-भूमि या पितृ भूमि कहकर सम्बोधित करता है। जन्म-भूमि का बन्धन जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है। इसकी महत्ता का अनुभव चाहे मातृ-भूमि में रहकर न होता हो किन्तु विदेश जाने पर तो इसकी अनुभूति होती ही है। मेक्सिको के ये शक्य राष्ट्र के महत्त्व का बोधित्व सिद्ध करते हैं, "हमारा राष्ट्र हमारी जन्म भूमि है, यह घर हमें ईश्वर ने प्रदान किया है, जिसके अन्तर्गत अनेक बड़े कुटुम्ब हैं, जो हमें प्यार करते हैं और जिन्हें हम प्यार करते हैं।" यह बन्धन राष्ट्रीय मनो-मार्गों का बन्धनघाटा और राष्ट्रीयता का आधार-निधि है। इसके बिना राष्ट्रीयता के भाव बाधित नहीं होते। यहूदी जाति को राष्ट्रीयता की भावना और विरवास ने दीर्घकाल तक इसलिये जीवित रखा कि एक दिन पैसेस्टाइल देश उनका एक राष्ट्रीय घर हो जायेगा। जिन्सी जाति राष्ट्रीय भाव विहीन है, क्योंकि उसका कोई निश्चित स्थान नहीं है और वह यत्र-तत्र भ्रमण करती रहती है। यही स्थिति टंग्रा के एस्किमो (Esquimos) की भी है। इस प्रकार प्राकृतिक सीमाएँ राष्ट्रीयता के विकास एवं प्रवृत्ति में महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। इसके द्वारा सामान्य शारीरिक बौद्धिक एवं मनोबैज्ञानिक विशेषताओं की उत्पत्ति होती है। किन्तु हेन इस विचार से सहमत नहीं है। उसकी दृष्टि में जातियों के मध्य प्राकृतिक सीमाओं का विचार केवल कोपे परिकल्पना है। निःसन्देह एक राष्ट्र के लिए एक निश्चित भूभाग का होना परमावश्यक है, किन्तु संसार की समस्त भूमि का विभाजन राष्ट्रीयता के आधार पर करना भी एक अर्थकर भ्रम है। इस भ्रम के कारण मानव-समाज पूरक राष्ट्रीय सीमाओं में बँट जाता है और फिर इन राष्ट्रीय सीमाओं की परिवृद्धि हेतु अत्याचार और संघर्ष का एक नया दौर चलता है। साम्राज्यवादी प्लाटोनाएँ युद्धीय विभीषिण में परिणत हो जाती हैं। इस प्रकार मानवता अनेक बार क्रूर-अत्याचारों से जलीकृत और बर्बर साम्राज्यों द्वारा परवरित हो चुकी है।

(३) समान संस्कृति—संस्कृति राष्ट्रीयता का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है, यह उसका मूलधार है। प्रो० हेन ने भी संस्कृति को राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण आधार माना है। संस्कृति को एकता में सामान्य रीति रिवाज और आधार, सामान्य परम्पराएँ और बाह्यमय समान वीर्याणिक कर्माएँ, महाकाव्य और कला शामिल हैं। सांस्कृतिक समानता में वैचारिक एवं आध्यात्मिक समानता सम्मिलित है। वैचारिक एवं सांस्कृतिक एकता व्यक्तियों को एकत्र में आबद्ध करती है। यह संघटन का एक सत्त माध्यम है।



करना, संयोजित करना और स्थापित रक्ता होगा है। अर्थात् एक ऐसा राज्य जिसका विमाण्ड्य न्यूनमित्त विभिन्न व अनेक राष्ट्रीय इच्छाओं द्वारा हुआ हो और जो एक इच्छा के अधीन हो।" लेनिन के मत में, "साम्राज्यवाद पूर्वीवाद की अन्तिम अवस्था है। कौटस्का (Kautsky) के कथनानुसार, 'साम्राज्यवाद उच्च विकसित औद्योगिक पूर्वीवाद की उत्पत्ति है। यह प्रत्येक औद्योगिक पूर्वी वादी राष्ट्र को मिलाने या सब बड़े राष्ट्रों को अपने अन्तर्गत लाने की प्रवृत्ति है।

अपर्युक्त परिमाणों के आकार पर हम साम्राज्यवाद की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं, "साम्राज्यवाद एक राष्ट्र वा अन्य राष्ट्र पर शोषण की दृष्टि से एकाधिकार कर लेने की नीति है। यह एकाधिकार सदा विजय के रूप में ही नहीं होता, किन्तु आर्थिक और अन्य प्रकार का भी हो सकता है।

### साम्राज्यवाद का इतिहास

साम्राज्यवाद की एक सच्ची कहानी है। यह कहानी राष्ट्रों के उत्थान-पतन की कहानी है। यह एक राष्ट्र के आक्रुण्य की अभिव्यक्ति करती है, जो दूसरे राष्ट्र की पठनावस्था की शोचक है। इसमें किसी की औरक-भाषा छिपी है तो किसी का कष्ट-अन्धम। यह हर्ष विवाद का सर्वोच्च बिन्दु है।

भारत का महाभारत राष्ट्रीय इतिहास बताता है कि यहाँ एक विशुद्ध आर्य-साम्राज्य स्थापित था। अमस्तु भारत पर आर्य-पशाका पड़ताही थी। इस साम्राज्य की अन्तर्गामी आक्रुणिक चीन के कुछ प्रदेशों को लपट करती थी तथा पूर्वी सीमा पूर्वी द्वीपों को छूती थी। अमरीका से भी मित्रवत् सम्बन्ध थे। किन्तु महाभारत के युद्ध ने इस विशाल साम्राज्य को अनेक राष्ट्रों में विभक्त कर दिया और अन्तः कुछ काल के लिए यह साम्राज्यवादी भावना सीखी हो गई। इसके बाद निम्न मैसेडोनिया तथा चीन में अंग्रहारी सी और वहाँ साम्राज्यों की प्रवृत्ति हुई। इस प्रकार साम्राज्यवाद का विकास हुआ। ईसा से लगभग १२५२ वर्ष पूर्व हैबीसोनिया-साम्राज्य की स्थापना हुई। असीरिया साम्राज्य उस समय स्थापित था। मकूनिया के क्रिस्तिय ने ईसा से लगभग ११० वर्ष पूर्व यूनानी साम्राज्य को स्थापित किया। उसके पुत्र सिबन्धर महामु ने, जो एक और साम्राज्यवादी था, इस विशाल साम्राज्य की सीमाओं में परिवर्द्धन किया। उसके साम्राज्य में यूनान, पश्चिमी अशिया, मैसेडोनिया सीरिया निम्न, बेबासोनिया अफगानिस्तान, तुर्किस्तान प्यरस और भारतीय पश्चिमीतर प्रदेश शामिल थे। किन्तु सिबन्धर का यह विशाल साम्राज्य उसके मृत्यु के बाद स्थायी नहीं रह सका और इसका विभाजन उसके सेनापतियों में हो गया।

ईसा से समयग १०० वर्ष पूर्व इटली में रोमन साम्राज्य की स्थापना हुई। यह साम्राज्य समयग ६०० वर्ष तक रहा। इसका अन्त हुए तथा पाच बर्षकी शक्तियों के आक्रमण हुए हुए। पूर्वमासवासों ने अफ्रीका, बसिली एशिया और इब्रीस प्रायि राज्यों पर अपना एकाधिपत्य प्रमाने की कोशिश की। स्वेन भी साम्राज्यवादी दौड़ में पीछे नहीं रहा। उसने भी मेक्सिको, वेक और नीदरलैण्ड प्रायि देशों को अपने प्रधीन कर लिया। स्वेन साम्राज्य यद्यपि बहुत विस्तृत ना, तथापि यह भी प्रतिक्रम तक टिक नहीं सका।

१७वीं शतके प्रारम्भ में हान्सेड-निवासियों ने अफ्रीका, हिन्दुस्तान और बरिबी द्वीप-समूह पर अपना आधिपत्य प्रमाना। इसी समय ब्रिटेन और फ्रांस ने भी भारत, कनाडा और उत्तरी अमरीका के मध्यभाग में अपने साम्राज्यों की स्थापना की। किन्तु फ्रांस-साम्राज्य उसी यूरोपीय सप्तवर्षीय युद्ध के कारण क्षिप्त हो गया। १८०४ में नैपोलियन ने इसे पुनर्जीवित किया; किन्तु यह फिर स्थायी नहीं हो सका। १८८० से १९४६ तक ब्रिटिश साम्राज्य अपने अरमोत्कर्ष पर ना। १८८१ में इंग्लैण्ड का विश्व पर भी आधिपत्य हो गया ना। जापान और अमरीका ने भी साम्राज्यवादी नीति को प्रमाना। इस प्रकार अफ्रीका में यूरोपीय राष्ट्रों ने, सुदूर पूर्व में जापान ने और प्रशान्त महासागर में अमरीका ने अपने-अपने साम्राज्यों की स्थापना की। प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त, प्रथम श्रेणी के साम्राज्यवादी देश इंग्लैण्ड, फ्रांस और हान्सेड ने तथा द्वितीय श्रेणी के साम्राज्यवादी देशों में जापान, अमरीका, पूर्वमास और स्वेन प्रायि की गणना होती थी। १९१७ की अन्ती शक्ति के परचात् अस्स के क्षेत्रक्रम में भी वृद्धि हुई है। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में अपनी इस अनसंख्या एवं क्षेत्रक्रम की वृद्धि के कारण, अस्स ब्रिटेन के बाद साम्राज्यवादी देश समना जाने लगा।

### साम्राज्यवाद के प्रमुख कारण

(१) साम्राज्यवाद की उत्पत्ति अनेक तरकों के कारण हुई है। इसकी उत्पत्ति का सर्वप्रथम कारण नैसर्गिक स्पर्धी मानना है। प्रारम्भ में साम्राज्यवाद अल्पव्य की सुन्दरी स्वाभाविक प्रवृत्ति की परिणति था। उसमें हम सुन्दरी स्वाभाविक प्रवृत्ति के बर्तन होते हैं। प्राचिनिक नियम भी इस तथ्य का प्रीतिरव सिद्ध करता है। बड़े अल्पों का ताप पदार्य छोटे अल्प हैं। इतिहास बताता है कि विश्व प्रचलितों ने जीवन, निवास-स्थान तथा अन्य आवश्यक साधनों के लिए एक

स्वात से दूसरे स्वात में विश्वगण लिया और अन्य जातियों को पत्रित कर अपने राज्य की नींव डाली। इस प्रकार साम्राज्यवाद के विकास में अन्य देशों को पत्रित करने की विधा तथा शक्तियों की स्पर्ध में विपुल भाग लिया है। यह प्रकृति वैज्ञान रोडेस (Cecil Rhodes) को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का संस्थापक है, उसकी साम्राज्यवादी नीतियों में स्पष्ट दृष्टिकोण होती है। शुमैन (Schuman) लिखता है, "आधुनिक साम्राज्यवाद शक्ति प्राप्त करने तथा विजय-भाकांक्षा की एक नवीन अभिव्यक्ति है।" मुंबांशिकी के शर्कों में, "अस्तित्ववाद राज्य-शक्ति और साम्राज्य प्राप्ति का एक संरूप है।"

(२) साम्राज्यवाद की उत्पत्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण आर्थिक है। आधुनिक काल में अविनाश साम्राज्यवादी देश कच्चे मास के लिए विद्यते देशों पर निर्भर करते हैं। साम्राज्यवादी देशों के बीच प्रतिस्पर्धिता का प्रमुख कारण कच्चे मास की यह मांग है। शैच (Schacht) के अनुसार— "संसार की राजनीति में कच्चे मास के लिए संघर्ष महत्वपूर्ण भाग लेता है।"

साम्राज्यवाद इस आर्थिक कारण को साम्राज्यवादी आन्दोलन की एक आधार मिति मानता है। इसका इतना महत्व है कि मैक्स इसे पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था बताता है। मैक्स के शर्कों में, "साम्राज्यवाद विकास की अवस्था में पूँजीवाद की यह स्थिति है जिसमें एकाधिकार एवं राजस्व पूँजी का आधिकार्य स्थापित हो जाता है, जिसमें पूँजी का निर्वात विरोध महत्व प्राप्त कर लेता है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय दुस्ती द्वारा संसार का विभाजन आरम्भ हो जाता है और संसार की समस्त भूमि का संसार के उच्चतम पूँजीवादी देश आरम्भ में बँटा कर लेते हैं। इसका अर्थ है कि "अधिकतम पूँजीवाद का विनाश ही हमें साम्राज्यवादी अभिचार से बचा सकता है।"

अमेरिका और इंग्लैण्ड जैसे उद्योग-प्रधान देश अपने बड़े उत्पादित मास को अन्य देशों में बेचकर तथा अतिरिक्त पूँजी को अधिकतम देशों में सगाकर बीचन-वास्त करते हैं। उनका बीचन-स्तर उनकी निर्वात-शक्ति पर निर्भर करता है। इंग्लैण्ड को जर्मनी और अमेरिका के औद्योगिकरण के कारण ही अपनी औद्योगिक नीति में परिवर्तन करना पड़ा। वह विश्व और सूर्याप पर अपना आधिकार्य इसी कारण रमना चाहता था, क्योंकि कच्चा मास उसे वहाँ से अचुर पाना में मिलता था। अमेरिका भी साम्राज्यवादी शक्तियों का कच्चे इन्ध के कारण ही विचार हुआ। वहाँ से ऊँ, रजह, लहना, गरियम, चीनी और कोको मिलता

था। किन्तु आज साम्राज्यवादी देशों की मूख लोड़ा, कीपता और पैट्रोल के लिए है। प्यारस और मैसोरोटाविया के तैल जैव संसार की राजनीति का केन्द्रबिन्दु बने हुए हैं।

घटिरिक्त पूंजी (Surplus Capital) की आज की राजनीति में एक विशिष्ट स्थान रखती है। पिछड़े देशों को इन्होंने का बहु एक अन्धका साधन है। पूंजीपति देश अधिकसिद्ध देशों की अग्रदिलीन बनाने के लिए ऊँचे ध्यान पर पूंजी उधार देते हैं। किन्तु जब अगुनी देश उस ध्यान को चुका नहीं पाता तो पूंजीपति देश उद्यम पर धरना संरक्षण स्थापित कर लेता है। पार्कर मूल सिद्धता है,

घटिरक्त में यूरोप के पूंजीपति देशों ने अन्धका तथा एशिया के अन्धका अगुनी देशों को हड़क कर लेने की स्वर प्रवृत्ति को प्रकट किया। आज अन्धका इन्धका सर्व श्रेष्ठ उदाहरण है। उसको आसुर कुम्भीति इन्ही भावना की द्योतक है। अन्धकी रिच्छे देशों को धार्मिक सहायता सम्प-साधनय से कम नहीं है। ये देश अन्धकी सामरिक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

(१) घटिरिक्त जनसंख्या भी साम्राज्यवाद के विकास का एक प्रमुख कारण रही है। अन्धकी शताब्दी में यूरोप और एशिया के देशों की जनसंख्या पर्याप्त रूप में बढ़ गई थी। इसी कारण एक अन्धकी प्रस्ता इनके बढ़ाने का उठ गया था। भारत का १९४१ तक मही ठर रहा कि उसे अन्धकी घटिरिक्त भावादी को बसाने के लिए अनिवेश चाहिए। इन्ही ने भी अन्धकी घटिरिक्त जनसंख्या को बसाने का एकमात्र मही विकल्प प्रस्तुत किया। बाद में अन्धकी ऐसे क्रियारमक रूप भी प्रबल किया। अन्धकी घटिरिक्त जनसंख्या के ह्रास का यह कोई उचित साधन नहीं है।

(२) सांख्यिक समय में कुम्भीति साम्राज्यवाद का एक प्रमुख कारण है। इंग्लैंड ने स्वयं मरु, मिन ईरान और भारत के प्रति मिन कुम्भीति भावों को अन्धका के इन बचन का दीक्षित मिय करती है। भारत और अन्धकी भी इंग्लैंड के पर किन्हीं पर बने। किन्तु अन्धकी और उन्धकी साम्राज्यवादी धार्मिकसिद्धा अन्धकी देशों से विभ्र हैं। आरम्भ में अन्धकी के अन्धकी अन्धका साम्राज्यवादी ही नहीं ये अन्धकी बहु साम्राज्यवाद का पीरतम विरोधी था। किन्तु अन्धकी विन तक अन्धकी अन्धकी की परिगानन नहीं कर सता। अन्धकी १९३६ में बहु एक अन्धकी अन्धकी हो गया। अन्धकी अन्धकी अन्धकी साम्राज्यवाद एवं अन्धकी में परिगानन हो गया। अन्धकी साम्राज्यवादी अन्धकी एक अन्धकी की परिगानन है। अन्धकी

प्रमुख एवं पावन उद्देश्य कार्ग प्रामर्श के स्वप्न को मूर्तकप प्रदान करना है। साम्यवाद का प्रचार एवं प्रसार ही उसकी साम्राज्यवादी नीति की आधार-रिखा है। फलतः सभी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों को प्रेरक शक्ति कस है। जब कभी भी कस की परराष्ट्र-नीति में परिवर्तन होता है उसका प्रभाव समस्त संसार की कम्युनिस्ट पार्टियों की नीतियों पर पड़ता है। इस प्रकार कस प्रत्येक देश की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति से घबरात ही नहीं रहता, अपितु उसे प्रभावित भी करता है। इन कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा वह अपने मनोवांछित कार्यों का संपादन करता है। इस प्रकार वह अन्य देशों के मामलों में हस्तक्षेप भी करता रहता है। जैसे कस साम्राज्यवाद का विरोध करता है और इस कथन का भी प्रतिपाद करता है कि वह एक साम्राज्यवादी देश है, किन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। प्राथमिक कस और १९१७ के कस के मानचित्र में एक बड़ा अन्तर है। प्रायः उसकी सीमाएँ परिवर्धित हैं।

अमरीका की साम्राज्यवादी नीति कस की नीति के सर्वथा विपरीत है। अमरीका सिद्धान्त-विहीन है। उसका कोई आधार नहीं है। वह साम्यवाद से घबराता है। अतः साम्यवाद के प्रचार एवं प्रसार को रोकना ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। इस लक्ष्य के पूर्ति-हेतु वह अनेक आन्तरिक महत्त्व के स्वार्थों के निर्माण, अपने विरोध की नीज और विश्वे देशों को आर्थिक सहायता ब्रह्म करने में प्रयत्नशील है। सीटो (S. E. A. T. O.), नाटो (N. A. T. O.), मेडो (M. E. D. O.) आदि संघटनों की स्थापना ही चुकी है। अनेक देशों से सैन्य सहायता करने में वह सफलमूढ हुआ है। वह उन विश्वे देशों को यहाँ साम्यवाद सरलता से फैल चकता है, आर्थिक सहायता दे रहा है। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के आच्छादन-हेतु उसे भी आर्थिक सहायता दे रहा है। इस प्रकार अमरीका प्रायः समस्त अन्तः पर डर रहा है।

(२) साम्राज्यवाद का एक विशिष्ट कारण आर्थिक एवं मानवद्विवादी कारण भी है। १७वीं शताब्दी में अर्थ प्रचार का प्रमुख लक्ष्य साम्राज्यवाद की प्रसिद्धा ही था। इसी क्रम में अन्तः से स्वाम का संयोजक क्रिया। इसका अर्थ अर्थिक-रहित 'बेनुट' अर्थ प्रचारकों को ही था। अन्तः-अर्थ-प्रचार-समिति का भी विशिष्ट साम्राज्यवाद के विस्तार में काफ़ी योगदान था। बर्तमान के मतानुसार, 'जब वह (अर्थ) अर्थी विभिन्न मैन्वेस्टर सामग्री के लिए एक नया बाजार चाहता है तब वह एक अर्थ-प्रचारक को देशवासियों को ईशानमहीह का शक्ति-सहित पहाने के लिए प्रेरित करता है। देशवासी अर्थ प्रचारक को निष्ठापूर्वक कर देते

है। वह रास्ते लेकर सिद्धाई बर्न के रक्षार्थ बीड़ता है, इसके लिए सड़ता है इसके लिए विहित करता है और बाजार को स्वर्न के पारितोषिक के रूप में इहण करता है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब कि बर्न प्रचारक व्यापारियों और शासकों के प्रयुक्त बन कर सम्य देशों में गये।

(६) साम्राज्यवाद की स्थापना में आध्यात्मिक ध्येय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नत साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने को सम्य तथा प्रगतिशील समझते हैं और अल्पसंख्य जातियों को सम्य बनाना तथा उनकी रक्षा करना अपना परम पुरीत कर्तव्य समझते हैं। उनका कहना है कि विच्छेदी जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर उन्हें अपनी आदर्श सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक व्यवस्था से सामान्यित करना एक धर्म है। सैडिल रोडेय कहता था 'मिरा यह बात है कि संसार में सर्वप्रथम प्रजाति हमारी ही है और संसार के जितने भी धर्मिक भाग में हमारा निवास हो वह उतना ही मानव-जाति के लिए हितकर होना।' किन्तु इन साम्राज्यवादी राष्ट्रों के बचन में सरवांश कितना है, अन्वेषक इसका जसजस उदाहरण है। धार्म भी अन्वेषक रीमप्रस्त अतिश्रित और पररहित बना हुआ है तथा बमनकारी कानूनों का शिकार है। वास्तविकता तो यह है कि इनका यह जो मानवता के प्रति एक कर्तव्य है वह मानवता के प्रति एक गहरा भयानक है। वेदा में शोषण समिहित है। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से परिपूर्ण है जब कि इस कथुवित मानना का प्रकटीकरण हुआ है। साम्राज्यवाद का कोई भी कारण क्यों न रहा हो, किन्तु यह सब सत्य है। साम्राज्यवादी शक्तियों के विच्छेद सा-भिवेदीय जनता बनावत कर रही है। सचमुच साम्राज्यवादी विचय सब टिमटिमा रहा है।

## आधुनिक साम्राज्यवाद का रूप

पारि-नाम में जो साम्राज्यवाद का रूप था, उन्वेषे विरुद्ध भिन्न तथा व्यापक रूप धार्म के साम्राज्यवाद ने धरनाया है। आधुनिक साम्राज्यवाद का धार्मिक प्रायः समसार न हीकर कूटनीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हैं। किन्तु फिर भी विजय तथा अनुसूचना (annexation) का सर्वथा परिवर्तन नहीं किया गया है। धार्म साम्राज्यवाद यासिज्य उद्योग-व्यवसायों, रेलवे लाइनों, बाहरवाहा, सामरिक महत्व के घाटों, बर्न मान, रीवार मान के लिए बाजार तथा अतिरिक्त पूंजी के लिए विच्छेद देशों, धार्मिक बन में बना है।

(१) संरक्षित राज्य ( Protectorates )—इस पद्धति के अनुसार अधीनस्थ राज्य के वैदेशिक तथा सुरक्षा सम्बन्धी मामले साम्राज्यीय शक्ति के धर्मसर्वत होते थे और अन्य प्रकार के मामलों के साथ ब्रिटीश एवं आन्तरिक प्रशासन-सम्बन्धी मामले भी साम्राज्यवादी देश द्वारा संरक्षित होते थे। ब्रिटिश साम्राज्य में संरक्षित राज्य सम्राट के उपनिवेश के समान थे। यद्यपि अन्त र्जातीय विद्वानों की दृष्टि से दोनों में विभेद है। संरक्षित राज्य का उर्ध्वोच्छेद अक्टोबर १९१२ से पूर्व मिस्र का जो ईंग्लैण्ड द्वारा संरक्षित था।

(२) अर्द्ध संरक्षित राज्य ( Semi-protectorates )—मिस्र को १९१३ में ईंग्लैण्ड द्वारा भी स्वतंत्रता मिली वह अपूर्ण थी। उसकी बराबर एक अर्द्ध-संरक्षित राज्य बैरुटी की क्वींस ईंग्लैण्ड का निम्नलिखित बातों पर एकाधिकार बना रहा —

- (१) मिस्र में ब्रिटिश साम्राज्य के संरक्षण की सुरक्षा।
- (२) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वैदेशिक आक्रमण या हस्तक्षेप से मिस्र की सुरक्षा।
- (३) मिस्र में विदेशी शक्तों एवं अरब उन्मत्तों की रक्षा।
- (४) मूषल।

इस प्रकार अर्द्ध-संरक्षित राज्य के अन्तर्गत क्यूबा ( Cuba ) तथा हैटी ( Haiti ) थे। अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षित राज्य का अन्तर्गत अबीसीनिया ( Abyssinia ) था। १९०६ की संधि द्वारा ईंग्लैण्ड फ्रांस और इटली ने मिस्र और अबीसीनिया को अर्द्ध-संरक्षित राज्य बनाया था। किन्तु यह अर्द्ध संरक्षित राज्य न रहकर पूर्णतया स्वतंत्र राज्य हो गया। दोनों साम्राज्यवादी शक्तों ने अपनी प्रभुत्वता स्थापित कर ली थी।

(३) प्रभाव क्षेत्र ( Spheres of Influence )—आर. एन. बोएल ( R. L. Boell ) के अनुसार प्रभाव-क्षेत्र से अभिप्राय यह है, जो राज्य प्रभाव क्षेत्र प्रतिष्ठित करता है, "उसे अन्तर्गत लेने के लिए निकालने, जमीनों के खोदने तथा सार्वजनिक निर्माण-कार्य करने के लिए प्राधिकार या एकाधिकार दे दिया जाता है।" इस प्रकार की रीति-रिवाजों प्रकृत-सम्पन्न राष्ट्र अन्तर्गत देशों से किसी प्रकार अन्तर्गत कर लेते थे और अधीनता वह राष्ट्र उनके साम्राज्य का एक अंग हो जाता था। चीन में इस प्रकार की सुविधाएँ अन्तर्गत ईंग्लैण्ड आदि देशों की प्राप्त थीं। ये देश अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्रों में रेलें बना सकते थे, धर्मों का प्रचार कर सकते थे और व्यापार आदि कर सकते थे। ईपान के रेल-मार्गों पर

नी क्रिमेन का एकाधिकार था। इस प्रकार बन्दीका, एशिया और प्रशांत महा-सागर में भी प्रमाण-सौत्र स्थापित किये गये।

(४) पट्टेदारि राज्य ( Lease holds )—आखिरी या वैश्विक कारकों से उत्पन्न तथा पिछले राज्य अपने प्रभाव को कुछ निर्धारित वर्षों के लिए पट्टे पर रख देते थे। प्रथम यह पट्टा १६ वर्षों के लिए होता था। इसके नाम नाम के लिए प्रमुख-शक्ति उद्योग के हार्मों में उद्योगी की जो कि पट्टा देता था। विन्तु सामंतीय शक्ति का उपयोग पट्टेदारों ही करता था। स्पष्टतः का बयान है, "एक बट्टा रखना एक उद्योगी के समान था जब तक कि पट्टा समाप्त नहीं हो जाय।" पट्टे रखने के अनेक उदाहरण हैं—१८६८ में चीन न कस को संयुक्तिया के अन्तर्गत २३ वर्षों के लिए पट्टे पर दिये जायत में बोस में पोर्ट डार्वर और डेल (Darwin) अन्तर्गत रहे, वेई-हाई बार्ड (Wei-Hai-Wei) का पट्टा इंग्लैण्ड के तथा फ्लामा का पट्टा जर्मनी के अधिकार में था।

(५) आर्थिक नियंत्रण ( Financial Control )—अनेक प्रकार की ब्यापियों में पूँजीवनि देश निम्ने देशों की सरकार के आर्थिक व्यवसाय को अपने साम्योय कर्मचारियों तथा प्रतिष्ठितियों द्वारा नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार का नियंत्रण या तो अनेक राज्यों या एक ही राज्य द्वारा हो सकता है। चीन सरकार की आयवनी के अनेक साधनों पर इंग्लैण्ड आदि देशों का एकाधिकार था। कैरीबियन (Caribbean) लिबेरिया (Liberia) और पेरिया (Peru) पर जर्मनी का आर्थिक नियंत्रण है।

(६) कर-नियंत्रण ( Tariff Control )—परिष्करी देश अपने को सामंतीय करने के हेतु आप-निम्ने उद्योगों की विदेशी माल पर निर्धारित शुल्की को दर से अधिक कर न लगाने के लिए विवश करते हैं। इसका केवल एक ही उदाहरण उद्योग है कि परिष्करी देश अनुभव देशों के आयातों पर छद्म आर्थिक और उनके उद्योग-व्यय पक्ष न सकें। इस प्रकार का नियंत्रण १८११ तक जायत पर पट्टा का और चीन, टर्की, भारत, स्पान तथा पेरिया पर भी ऐसा नियंत्रण स्थापित किया गया।

(७) बहुराज्यता ( Condominium )—इसके अतिरिक्त औपनिवेशिक प्रतिष्ठितियों का रोडने के लिए ही या अधिक शक्तियों का विनाशकार भू-भाग पर नियंत्रण करना है। इस प्रकार के संयुक्त अधिकार के अनेक उदाहरण हैं—

(१) फ्रांस और इंग्लैण्ड का न्यू हीब्रिड्स (New Hebrides) पर,  
(२) इंग्लैण्ड और जर्मनी का सूडान में गौत नदी पर, (३) क्रिमेन, चीन और स्पेन



का मोरफ्री में टैगियर ( Taglier ) पर, (४) रॉपार्ड के विभिन्न भागों को बिनेन, फ्रांश और मनरीका ने धातु में विभक्त कर लिया था ।

(२) बहिर्वेष्टापता ( Extra-territoriality )—जब किसी समुदाय देश में साम्राज्यवादी देशों के निवासी बड़ी संख्या में जा बसते थे, तो वे देश अपने निवासियों के लिए अलग न्यायालयों की मांग करते थे । उनकी दृष्टि में वे विदेशी देशों के न्यायालय अपनी समस्त बहों रखते कि प्रवासियों का न्याय कर सकें । यह प्रणाली अधिकारशुभ मुस्लिम राज्यों में अपनायी गई थी । ईसाइयों में चीन, रमान, जापान औरिया आदि देशों में इस अधिकार का उपयोग किया था । जब इन देशों में न्याय करने की परिणामी प्रणाली को अपनाया तभी उन देशों से बहिर्वेष्टापता का अन्त हुआ । इस प्रकार १८१४ में मनरीका ने जापान में और १८१४ में रूस में चीन में इस अधिकार का परित्याग किया । अर्दी ने भी इस प्रकार के सभी अधिकारों का उन्मूलन कर दिया है ।

(३) अनिर्णयित विषय ( Informal Control )—कभी-कभी कुछ विदेशी राष्ट्र एक होकर किसी निश्चि हण राज्य की सरकार की सहायता तब तक प्रदान नहीं करते, जब तक कि उनके सुरक्षासिद्धों द्वारा निर्धारित शर्तें पूरी नहीं हो जायें । मनरीका ने अपनी नीतिना द्वारा निकारगुवा संतोहामियों तथा ईरे बियन सिवत हीरो में इन प्रकार की शर्तों को बलपूर्वक अपनायी प्रयुक्त स्थापित की । ईंग्लैण्ड ने भी बलपूर्वक अपने परराष्ट्र धर्मनी धारण, मैसोतो-टामिया और मिस में रखे ।

(१०) मुक्त द्वार की नीति ( Open Door Policy )—इस नीति के अनुसार असात विदेशी शक्तिओं को भी विदेशी देशों के साथ व्यापार करने के लिए सत्तामयि रूठी है समान सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं । किसी भी अन्य देश के साथ किसी भी प्रकार का विवाद नहीं किया जाता । मुक्त-द्वार से अनिश्चित अर सर की समस्या से है । यह अरसर की समानता दोनों अर्थात् साम्राज्यवादी तथा अन्य विदेशी राष्ट्रों को समझ होती है । विगत शताब्दी में कितने ही मुक्त र्चन के साथ केवल इस कारण हुए थे कि अपने मुक्त द्वार की नीति को लागू नहीं किया था ।

(११) अवरुद्ध-द्वार नीति ( Closed Door Policy )—इसका प्रयोग निरालस्येद मुक्त द्वार नीति के विपरीत होता है । इसका अर्थ प्राथमिकता ( Preference ), विवेक ( Discrimination ) और एकाधिकार

(Monopoly) से है। यह कबल उपयोग एवं बाणिज्य-क्षेत्र से ही सम्बन्धित न होकर जहाजरानी (Shipping), निवेश (Investment) और उपनिवेश (Settlement) से भी है। इसका अर्थ है धार्मिक शक्तों को मातृदेश और उपनिवेश के बीच सुदृढ़ करना है तथा विदेशियों को इन प्रकार के काम से रोकित करना है। अमेरिका ने प्रिन्सिपलिटि में इसी नीति को बहुत प्रिया था। साधारणतः अन्तर्-नीति तीन वर्गों में इष्टिमोचर होती है—(१) धार्मिक-निर्वासन कर, (२) जहाजरानी और (३) रियासतें। कुछ देश धार्मिक-निर्वासन कर धनुष्यता की नीति धरनाते हैं, जिससे स्वतंत्र उपयोग मातृदेश तथा उपनिवेश के बीच स्थापित हो सके।

(१२) निर्धारित प्रदेश (The Mandated Territory)—प्रथम महायुद्ध के उपरान्त अनेक उपनिवेश साम्राज्यवादी राष्ट्रों की धर्मिता से विमुक्त हुए थे। इन विच्छेद देशों के सम्बन्ध में वर्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) में यह निश्चित किया गया कि इनकी प्रशासन-व्यवस्था सम्य तथा उचित विवेका राष्ट्रों को दे देनी चाहिए। वे विजयी देश ही इन धनुष्य देशों की सुशासन-व्यवस्था के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी हूँगे। जब तक वे शांति देश स्वराज्य के योग्य नहीं हो जाते, तब तक इनका प्रशासन इन सम्य राष्ट्रों के अन्तर्गत ही रहेगा। इस प्रकार इन नियोजित प्रदेशों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया (१) प्रथम वर्ग के प्रदेशों को शीघ्र ही स्वशासन के योग्य समझा गया, (२) तृतीय को सर्वाधिक उपयोग सम्भन्ध गया, और (३) द्वितीय को इन वर्गों के बीच में रखा गया। जिन राष्ट्रों को इन प्रदेशों का शासन-प्रकार देना था उनके लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वे अपने कार्य की वारिक रिपोर्ट लीग ऑफ नेशन्स (League of Nations) को देना करें। इस प्रकार के अनुसार (१) इंग्लैंड को ईरान, जर्मनी, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व अफ्रीका का शासन (२) फ्रांस के अन्तर्गत सीरिया और लेबनान आदि; (३) जापान को उत्तरीय प्रशासन महाकाय प्रिन्सिपलिटि (४) आस्ट्रेलिया को म्यूनिखी (५) म्यूनीनेट को परिषदी क्षेत्र-भा का शासन दिया गया। इन निर्धारित प्रदेशों का कुल क्षेत्रफल ११,११,४६२ वर्गमील था और कुल जनसंख्या १,१८,८६,८६० थी।

### साम्राज्यवाद का औचित्य

डी. डी. बर्न्स (C. D. Burns) का कथन है कि "साम्राज्यवाद वादीय

राजनीति की संश्लेषता को विनष्ट करता है और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद एवं विश्व  
 वस्तुत्व का मार्ग प्रशस्त करता है।' बर्तन के इस कथन की प्रायः कोई मात्परता नहीं  
 रही है। प्रतिकारा व्यक्ति बर्तन के इस दृष्टिकोण से निम्न विचार रखते हैं। उनके  
 मत में 'साम्राज्यवाद का मूसल ठरक शोषण और प्रभुत्व है।' 'कूटनीति, बल  
 प्रयोग और सैन्यशक्ति साम्राज्यवाद के प्राथमिक उपकरण हैं।' और 'साम्राज्य  
 वाद का मार्ग इसके पीछियों के रक्त से घनुरिजित है। अतः एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न  
 यह है—क्या साम्राज्यवाद से उपनिवेशीय जनता छामान्धित होती है? क्या  
 उसकी बसा में कोई सुधार होता है? यदि हम ब्रिटिश साम्राज्य जिस पर कमी  
 सुर्यास्त नहीं होता था, पर विचार करें तो देखेंगे कि उसकी स्थिति बड़ी विचित्र रही  
 है। उसके पीछे कोई सुनिश्चित योजना नहीं रही है। वस्तुतः यह वहाँ बीर्य  
 शीर्ष अवस्था में है तो कहीं अत्याचार की पराकृष्ठा की घननमे रखा है। प्रवि  
 कांश रोनों में तो इसका कोई अहेरय ही नहीं रखा और बहुत कम मार्गों में यह क्विचित्  
 सामप्रब विद्य हुआ है। मरि संघर्षों ने भारत को राजनीतिक एकता, शासन-  
 व्यवस्था दिखता तथा अन्य प्रकार के सुधार प्रदान किये हैं तो शोषण, उत्पीड़न  
 और बर्बर कृत्य वा भारतियों के साथ किये हैं इसकी तुलना में मयएमप्राय  
 हैं। गांधीजी ने कहा था, 'ब्रिटिश भारत में कानून द्वारा प्रतिष्ठित सरकार अर्धकथ  
 वनों के इस शोषण के लिए बनती है। बाहे किन्तु ही बाकूष्ण का प्रवेशन  
 किया जाय, बाहे किन्तु ही प्राकृकों की बाकूपरी बिबाई जाय, किन्तु अनेक गांधी  
 में जो जनता की छत्रिर्वा हैं वे हमारी भावों के सामने हैं।' सन् १९४० में  
 भारत की ८० प्रतिशत जनता गिरदार थी। जनता का स्वास्थ्य बिदा हुआ था।  
 भारत की अतुल जनसंख्ति सिविल लीकरियों सेना और वेस्लन प्राति-कर्ताओं पर  
 व्यय होती थी। परिश्रता भूख और सामाजिक विद्रोह सनी अगह ब्याप्त थे।  
 बार्सेलर के बीन ने भारत के सम्बन्ध में कहा था, 'हमारे शासन से वस्तुतः  
 भारत को बड़ा साथ पहुँचा है। परस्पर संघर्षीय समुदाय के मध्य एक लम्बे  
 काब तक हमने शांति बनाये रखी। हमने रेन-भावे का निर्माण किया। हमने  
 मकान से मढ़ाई की, हमने जनता के स्वास्थ्य में सुधार किया हमने राज में  
 बुद्धि की, हमने भारत की भीतिक प्राथम्य-द्वारों के लिए पबर्जि कार्य किया।  
 लेकिन हमने भारतीय जनता के विमों को बिजित नहीं किया। वनों नहीं किया;  
 क्योंकि हमने उसकी धारता की भावता पहुँचाया है।' इसी प्रकार यह कहा जा  
 सकता है कि साम्राज्यवाद द्वारा राजसी प्रकृति, पासता, न्याय तथा शासन के  
 परे का का प्रसीका तथा अन्य स्वामी में अतुलन हुआ है किन्तु माय ही हम

उन तथ्यों का विस्मरण नहीं कर सकते जो हासिएड बार्सों द्वारा डब ईस्ट इंडोज में, स्वेड जातियों द्वारा अन्ड्रेजा घोर केनिया में तथा बेस्त्रियम निवासियों द्वारा कोनो में नामा प्रकार के वृषित हृषकण्डों को घाना कर मानवता को परबलित किया गया है। धात्र भी अफ्रीका की बस्त जनता जंगलों के हाथ का लिलोना बनी हुई है। उनके विश्वास भूभाग की स्वामिनी स्वेड जाति है। वहाँ कोई खेती सम्बन्धी सुधार नहीं हुआ है और कम्पाब्द प्रणाली तो बड़ी ही वृषित पद्धति है। ट्रांसवाल घोर मेन्स में कोई भी व्यक्ति जो वहाँ का जन्मजात निवासी है, प्रत्य किसी कार्य को अब तक नहीं कर सकता जब तक कि उसके पास गीकरी सम्बन्धी धारेण पत्र न हो। यही वशा केनिया की रही है। साम्राज्यवादी शक्तियाँ जोंक के समान हैं, जो बिरहने पर सरलता से नहीं छुटती। उनका एकमात्र उद्देश्य पैन-पैन प्रक्रियेण उपनिवेशीय जनता के जीवन-उत्थन को निकास देना है। जब कभी इन उपनिवेशों की सर्वाङ्गित जनता ने स्वायत्त शासन की माँग की तो उसे निर्ममतापूर्वक कुचल दिया गया। उनकी सम्पत्ति तथा माया को विहृत कर दिया गया और उनमें शासकों के प्रति घास्या पैरा करने का भरसक प्रयास किया गया। वहाँ कहीं कुछ विरूट्ट सुधार क्रिये पये वहाँ भी कर्म-नगरिणी प्रमुखा-धर्मन रही है और उनका कोई उत्तरवाचित्य पाठसभा के प्रति नहीं रहा है।

इस प्रकार साम्राज्यवादी मानवता के परबलन की एक कहानी है। इसकी अस्पति विभिन्न करों में हुई, यह खूब पचना, किन्तु अब यह अपनी मरणासम अवस्था में है। इसने शासितों के बर्न बना, संस्कृति, पाचरण और नैतिक धारों सभी को बधुवित किया है। प्रजातिगत बिहोप भी इसी की देण है। साम्राज्यवाद के इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जब किसी उपनिवेश को इसमें स्वयत्त शासन क योग्य बनाया हो। यह अनुभव हैतों के लिए निरंकुश अविनायकरण एवं शापक सिद्ध हुआ है।

क्या साम्राज्यवाद से मातुरेण की जनता को लाभ होता है? क्या यह उसकी भौतिक बरा को उत्प्रितीय बनाता है? सम्भव ऐसा नहीं है। भौतिक दृष्टि से यह आम जनता को कोई लाभ नहीं पहुँचाता। शोषित-बर्न इसके लाभों से बकिर रहता है। पुँजीवादी-बर्न जनता की व्यक्ति सरकार के शीर्षस्थ स्थानों पर प्रतिष्ठित है वे ही इनमें सामागियत होने हैं। जिसके लम्बुय प्रतिदिन रोगी को समरपा है ऐसा बर्न साम्राज्य-नचागता की बल्पना कैसे कर सकता है? वस्तुता साम्राज्यवाद पुँजीवादी बर्न के मलिनक को उात्र है और इसी बर्न का साम्राज्य

बाद हाथ हिल-सावन हुआ है। इसी वर्ष का बीजम-स्तर उम्कड़र होता है, न कि बल-साधारण का। लीबिया (Libya) इसका जन्मस्थ उदाहरण है जिसे वहाँ की धाम जनता की हानि पहुँचाकर हस्तगत किया गया है। यूमेन लिबिया है "सम्पूर्ण राष्ट्र को कीर्ति से घातित साम नहीं होता है। पौड़ा-बहुत जो कुछ साम होता है वह पूर्वोक्त समानतासे भीर कुछ कीड़े से विरोधाधिकार प्राप्त व्यक्तियों को ही होता है।" एल बर्नेस (L. Bernes) का भी वही विचार है, "विरोध-उपनिवेश आधाप्यतया कुछ वर्षों को ही साम पहुँचाते हैं, वह बल सगलतासे भीर उत्तारकों को सामप्रद होता है किन्तु वेतन प्राप्त करनेवालों को हानि पहुँचाते हैं।" इस प्रकार उपनिवेश के साम्राज्यवादी बंध की जनता को हानि ही है और साम कोई नहीं है। साम्राज्यवाद के प्रतिपादकों की यह बारखा कि साम्राज्यवाद देश अपने उपनिवेश से कच्चा माल प्रचुर मात्रा में प्राप्त करेगा यह भी सत्यपूर्ण नहीं है और न साम्राज्यवाद अतिरिक्त जनसंख्या का ही एकमात्र विषय है। इसी भीर आपान की अतिरिक्त जनसंख्या उपनिवेशों से हम नहीं हुई। इसके अतिरिक्त एक उपनिवेश का साम्राज्यवादी देश के लोगों के जीवन-स्तर पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इसके कारण उनकी भावना रूपित ही जाती है और नैतिकता का स्तर निम्न हो जाता है। साम्राज्यवाद आज हम देखते हैं कि संघर्षों के जीवन-स्तर और उपनिवेशीय जनता के जीवन-स्तर में एक विचित्र मन्थर है। स्वतंत्र जाति अपने को स्वतंत्र प्रजाति का समझती है और उपनिवेशीय जनता उसकी दृष्टि में निम्न प्रजाति की है। इसी कारण उपनिवेशीय जनता का साकार-विचार लोक नहीं है और न वह विरोध मुक्तिपार्थी के ही बीज है। इसी संघर्षीय भावना के कारण संघर्ष पैदा होते हैं। इसी अनुचित भावना के बसीमून रहने के कारण फल-ज-फल भी बलुत्पिठि की नहीं उपज पाये। न भारत के गौरवपूर्ण इतिहास दर्शनसमक बना बाहुमय भीर संसृष्टि का मुत्पादन नहीं कर पाये। फलतः भारत के सम्बन्ध में जो उनके निष्कर्ष रहे हैं, वे तथ्यहीन एवं अवास्तविक हैं।

साम्राज्यवाद शीघ्र ही का प्रतीक है। यह आंतराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धिता स्वर्ण तथा प्रतिपेयिका की उत्पत्ति करता है। इसके हाथ नामा प्रकार के संघर्ष होते हैं। वे संघर्ष बहुधा बाजारों तथा माल और पूर्वोक्त सगलता के सिद्ध स्वार्थों की खोज के कारण होते हैं। बर्नेस का कथन है कि "साधुमिक विरोधाधिकार प्राप्त देशों में इंग्लैण्ड का साम्राज्याधिकार शान्ति के बाद पैदा नहीं जाता।" इस प्रकार साम्राज्यवाद शिथ-शान्ति की स्थापना में सहायक न हो कर बाधक है। फल ही

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बड़ी ही तनावपूर्ण है। लेबालों के परीक्षण हो रहे हैं। क्व  
 को एक प्रबल शक्ति के रूप में प्रकट हुआ है। सांघु-ममरी की पुट के लिए एक  
 पुनौत्थि बन गया है। निःसन्देह उसने पूँजीवादी राष्ट्रों को वैधानिक रूप में पछाड़  
 दिया है, वे निकर्तव्य विमुक्त हो गये हैं और उससे सतर्क हैं। साम्यवाद इन  
 पूँजीवादी राष्ट्रों के लिए एक संकल्पक रोप हो गया है, जिसका निपल करने में वे  
 असमर्थ हैं। इसमें ही मत नहीं हो सकते कि मात्र का पुन समाजवादी है और  
 साम्राज्यवादी काँचा बह रहा है। वैसा कि शून्यत बहता है, 'साम्राज्यों के दिन  
 निरिच्छत हैं, हालाँकि उनका पतन अवरय मोटे-मोटे होता।' किन्तु एक विचार  
 णीय प्रश्न यह है, क्या क्व साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से मोठ-मोठ नहीं है? क्या  
 वह नवीन साम्राज्यवाद के रूप में प्रकट नहीं हो रहा है? क्या उसका सन् १९१०  
 का मानचित्र बनावत बना हुआ है? किन्तु वास्तविकता तो यह है कि साम्यवाद  
 जिसका का रूप में विकृत हो गया है, साम्राज्यवाद का कोई अक्षिप बिन्दु  
 नहीं है। केवल सांघुमिक समाजवादी मानना ही मात्र हमारी रस्ता कर सकती  
 है। यही वर्तन हमें साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा अन्य असमानताओं से बचा  
 सकता है।

Gandhism Mukand Singh

## गांधीवाद (Gandhism)

गांधीवाद नरेन्द्रदेव का कथन है ' गांधी इस युग के एक पश्चिमीय पुरुष थे । वे क्या थे, यह किसी मजलू से साक्षित नहीं कराया जा सकता न उन्हें किसी विशिष्ट वर्ग में धरया जा सकता है । उनके राजनीतिक उत्सृजन में एक प्रकार का अराजकतावाद था, क्योंकि राज्य-संस्था में उनको विश्वास नहीं था पर धर्म किसी बात में पश्चिम के अराजकतावादियों के साथ उनका कोई साम्य नहीं था ? वे समाजवादी थे पर वैज्ञानिक समाजवाद के मानवसूत्र से जीवने पर उनके विचार समाजवाद की माय्यताओं के साथ न विचार में मिलते थे न आचार में ही । सामान्यतः वे धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष माने जाते थे पर न तो उन्हें धार्मिक संस्थाओं पर विश्वास था धीर न हिन्दू धर्म के आचारों का ही वे पालन करते थे ।

'यदि मात्र स दो शताब्दी पहले उनका जन्म हुआ होता तो या तो वे कोई बहुत बड़े महारत्ना धीर किसी धर्ममठ के संस्थापक हुए होते यावा कल्पना साम्राज्य में विचरनेवाले कोई समाजवादी होते ।

विज्ञान-वेत्ता मार्हस्टीन ने गांधीजी के सम्बन्ध में कहा है 'कि आगे आनेवाली पीढ़ियां शायद ही विश्वास कर सकेंगी कि उन बीधा हाइ-मांस का पुतला कभी इस भूमि पर पैदा हुआ था । '

राष्ट्रपिता महारत्ना गांधी का जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ को दीरबन्धर में हुआ था । उनके पिता करमचन्द गांधी राजकोट के बीरान थे । उनकी प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट में हुई । जब गांधी जी हाईस्कूल के छात्र थे तभी इनका विवाह हो गया था । १९ वर्ष की अवस्था में वे कादून पढ़ने इंग्लैण्ड गये । इंग्लैण्ड प्रस्थान करने से पूर्व गांधी जी ने धरनी माता क सम्मुख मरिच पर स्वी धीर मांस सेवन न करन की शीन प्रतिज्ञाई लीं ।

सन् १८९१ की गर्मियां में गांधी जी इंग्लैण्ड से भारत लीये । इन्होंने राजकोट धीर उनका बाह बम्बई में धरनी बचसत की विन्नु बोर्नो ही स्थानों में वे 'बनासत में नितासत प्रमकृत सिद्ध हुए, क्योंकि बम्बई की अवासत में बहु एक छोटे-से मानने में भी एक शरर तट नहीं बौप सके थे ।' सन् १८९१ में गांधीजी बजिला धरनीका

गये और कहा २० वर्ष रह। भारत में उनका एवमात्र तब्य बोबिकोताईन ही था, किन्तु बगिण मन्त्रीका की समस्याओं ने उसकी जीवनबाध ही परिवर्तित कर दी। यहाँ से उनका राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हुआ। यहीं पर उन्हें जाने कानूनों के विरुद्ध सत्याग्रह-यज्ञ का प्रयोग बिना धीरे भारतीयों का निर्भीक बनने, सबाई से बुराई का मुकाबला करने आगम्य सहन न करने तथा मानरता की रक्षा करने का धमर सन्देश दिया। अन्ततोगत्वा बगिण मन्त्रीका में गांधी जी सम्मिलित हुए। १९१४ में जनरल स्मट्स से उनका सम्पर्क हुआ। गांधी जी ने सम्मेलन में जनरल स्मट्स से कहा है, "एक ऐसे व्यक्ति का विरोध करना मेरे भाग्य में क्या था, जिसके लिए उस समय भी मेरे मन में आधुनिक भारत का। उस समय उनको कृतिपां मेरे लिए बड़ी परेशानी थी थी। गांधी जी की एक नदीन ही बला थी। उनकी पद्धति जान-बूझ कर नाश करने और अपने अनुयायियों को एक जन-आन्दोलन के रूप में संगठित करने की थी। लेकिन मेरे लिए जिस पर कि कानून और व्यवस्था के संरक्षण का उत्तरदायित्व था, सदा की नरिणित तिर-बर्त हो गया कि कानून के भावी दायित्व को निमाई, उस कानून को, जिसे जारी लोकमत का समर्थन नहीं था। अन्त में जब कानून बाध लेना पड़ा तो उसकी बेवैनी श्री मुझे सहन करनी पड़ी।" बगिण मन्त्रीका के कार्यों ने गांधी जी की पर्याप्त लोकप्रिय बना दिया था। उन्हें भारतीयों के हृदय की विविध कर लिया था। सन् १९१४ में जब गांधी जी भारत आये तो महात्मा कहलाये। सम्मरत 'महात्मा' की उपाधि रवीन्द्रबाब ठाकुर से की थी। गांधी जी ने अपने भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के प्रवेश के सम्बन्ध में कहा है, "मुझे घर पीरोजराह हिमालय बिते, सोनमाय-समुद्र के समान धीरे योक्ते रंदा के तुषय प्रतीत हुए—इस रंगा में ही मैं रहा सकता था—हिमालय पर तो बड़ा नहीं जा सकता था और समुद्र में डूब जाने का भय था। रंगा ही की पार में मैं खेल-नूद सकता था।" इस प्रकार गांधी जी ने अपना राजनीतिक मुख भोगामदृष्ट्य पोखते को ही बताया और उदार एवं जन-बोनों विचारबाधों को समन्वित कर भारतीय राजनीति को एक नदीन दिशा प्रदान की। उन्हें अन्तारज के टिष्ठानों को, जो नीस की खेटी करनेवाले गोरों के बर्बर आत्माचारो से पीड़ित थे, मुक्त कराया। अहमदाबाद निम के मन्त्रियों की समस्या को मुम्बयवा धीरे सैफी सत्याग्रह का संवालय कर जिलाओं को लपल की छूट दित्ताने में आधिक का से सकलता प्राप्त की। १९१४ ई के प्रथम विरबपुत्र में गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार को सहायता प्रदान की। उनकी सभी तक ब्रिटिश सरकार में पूर्ण निष्ठा थी। किन्तु सैनेट कानून खिलाफ आन्दोलन



धीरे बलियाँ बाने बाग की घटना ने गांधी जी के मानस-घटस को झकझोर दिया। अब सनका ब्रिटेन की ईमानदारी और न्यायप्रियता में विश्वास नहीं रहा। इसी समय गांधी जी के हाथ में कांग्रेस की बागडोर घा घई थी क्योंकि १९२० में लोकमान्य तिलक का भी निधन हो चुका था। ब ही कांग्रेस के अब एकमात्र नेता थे। ४ नवम्बर १९२१ को दिल्ली में कांग्रेस महासमिति ने अहिंसात्मक सश्रय अस्त्र-आन्दोलन के पक्ष में प्रस्ताव पारित कर दिया। गांधी जी ने इस असहयोग आन्दोलन के लिए बारबोली की जुना किन्तु गोरखपुर में धीरीधीर में अहिंसात्मक कएड हो बाने के कारण असहयोग आन्दोलन को बापस ले लिया। गांधी जी की ब्रिटिश सरकार ने विरपडार कर दिया और उन्हें ३ वर्ष की सजा मिली। १५ सितम्बर १९२४ को गांधी जी ने किन्तु मुस्लिम ऐवर के लिए २१ दिन का उर बास दिया। कौंसिल में प्रवेश क सम्बन्ध में नेकाधो में मतभेद था। विस्तरजन बास, मोतीसाल नेडक और बी० बी० पटेल कौंसिल में प्रवेश कर अङ्गा भीवि को अन्नाता चाहते थे। फरत स्वराज्य-रस की स्थापना हुई। सन् १९३० में गांधी जी ने सश्रय-अस्त्र-आन्दोलन (Civil Disobedience Movement) डीडी-रुच के साथ प्रारम्भ किया। १९३१ में द्वितीय मोलमेज सम्मेलन में गांधी जी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से भाप लिया किन्तु गांधी जी ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम सम्प्रदायबावियों के पैठबन्धन के कारण बाली हाप लीटे। २८ दिसम्बर को बम्बई में गांधी जी ने कहा, "मैं लाली हाप लीटा हूँ परन्तु मैंने अपने देश की इज्जत पर बड्डा नहीं लगने दिया।" इस समय भारत का राज नीतिक बाठाकरण बड्डा हो अछाल्य था। गांधी जी ने लषापणुक बाइसराय लार्ड बिसिमटन से मिलने की इच्छा प्रकट की किन्तु वे असफल रहे और उन्हें विरपडार कर परबरा जेल में भेज दिया गया। गांधी जी ने साम्प्रदायिक पचाट के विरोध में बिसले किन्तु जाति विभटित होती थी, २० सितम्बर १९३२ को धामरण अन्तक प्रारम्भ कर दिया किन्तु सीमाय से पूना-समन्धीता हो गया, बिसले गांधी जी के प्राण बच गये। ८ अगस्त १९४२ को गांधी जी ने मारखीयों को 'अधेओ मारख घोड़ी' का नारा और 'करो या मरो' का संदेश दिया। गांधी जी के नेतृत्व में १३ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ। किन्तु गांधी जी ने भारत-विभाजन को एक 'आध्यात्मिक दुर्घटना की सजा प्रदान की। वे इस विभाजन से बहुत सबास थे और उन्होंने १३ अगस्त के राष्ट्रीय समारोह में भाग लेने से इन्कार कर दिया था। वे कनकता में साम्प्रदायिक रंषों को रोकने में व्यस्त थे। १३ अगस्त को उन्होंने उरबास रखा और शर्बना की। देश के लिए

कहने कोई संभव नहीं दिया। साम्प्रदायिकता की विपाक धाम गांधी जी की प्राकृति लेकर शान्त हुई। १० जनवरी १९४८ को विकास भवन, नई दिल्ली में तापुराम गोडसे ने विस्तीर्ण की भोषियों से इस युव-पुरुष की जीवन-सीमा समाप्त कर दी। सुई फिलार लिखता है, "धार्मिक इतिहास में किसी व्यक्ति के लिए इतना महान् और इतना अवागुण शोक प्राप्त तक नहीं मनाया गया।" अंस के समाजवादी मिर्चो धाम ने कहा 'मैंने गांधी जी कभी नहीं देखा। मैं उसको मरना नहीं जानता। मैंने उसके देश में कभी पाँच नहीं रखा, परन्तु फिर भी मुझे ऐसा शोक हो रहा है जैसे मैंने अपना कोई जियन को दिया है। इस घटाकारण मनुष्य की मृत्यु से सारा संसार शोक में डूब गया है।'

## गांधी जी की प्रेरक शक्तियाँ

पीता ने गांधी जी के जीवन की सर्वाधिक का से प्रभावित किया। उनकी चिन्तनशक्ति को परिवर्तित करने का श्रेय पीता की है। सन् १८८६ में गांधी जी ने सर एडविन आर्नेस्ट का पीता का अनुवाद पढ़ा था उसी से पीता उनकी पत्र प्रवर्तक बनी रहे। जब कभी गांधी जी किफतलम-विपुल हुए, पीता ने ही उन्हें प्रेरणा प्रदान की। गांधी जी के शब्दों में 'जब शंकाएँ मुझे बेर लेती हैं, जब निररा मिथी और झूठो है और चित्त में प्रकाश की एक किरण भी दिखाई नहीं देती तब मैं भगवद्गीता का ध्याय सेता हूँ और अपने मनको सन्तोष देने के लिए एक स्तोक या श्लोक हूँ और मैं और चिन्ताओं के बीच मुस्कराने लगता हूँ। मेरा जीवन बाध दुर्घटनाओं से परिपूर्ण है और यदि कहीं मुझ पर कोई प्रकृत बिज नहीं छोड़ा है तो यह पीता की ही शिक्षाओं के कारण है।' पीता ने गांधी जी की कर्मयोगी बना दिया। १९२६ में गांधी जी न लिखा था, "पीता के शब्दार्थ के अनुसार यह कहा जा सकता है कि फल के परिष्कार के साथ-साथ मुझ भी बस सकता है किन्तु चाहीस वर्ष तक पीता की शिक्षाओं को अनवरत रूप से अपने जीवन में उठाने के परभाव मैंने यह अनुभव किया है कि अहिंसा की प्रवेश का से अवी कार किने बिना पूर्ण परिष्कार असम्भव है।'

✓ गांधी जी का अहिंसा में विश्वास होने का कारण पैतृक था। यद्यपि उनके पिता कैप्टन ने किन्तु उनके परिवार पर ब्रिटिश शासकशाही का प्रभेद प्रभाव था। गांधी जी इन्हीं स्वामीजी की कृपा से कानून पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड जा सके थे। इन्हीं स्वामीजी ने इंग्लैण्ड प्रस्थान करने के पूर्व गांधी जी को अहिंसा, श्री और

मांस का सेवन न करने को तीन प्रतिज्ञार्थ कराई थी। गांधी जी के जीवन पर हींदू धर्म का भी प्रभाव था।

गॉन रस्किन की 'घनू दिव्य वास्तु' पुस्तक ने गांधी जी के जीवन पर विचार एवं ध्यान का प्रभाव डाला। उनकी विचारधारा के निर्माण में इसका पर्याप्त योगदान था। यह पुस्तक 'टॉमबाल कीटिक' नाटक पत्र के सम्पादक हैनरी एस रोलर ने गांधी जी को दी थी। गांधी जी ने रस्किन की कोई रचना अभी तक नहीं पढ़ी थी। उन्होंने एक बार इस पुस्तक को पढ़ा था। १९४६ में उन्होंने कहा था, "इस पुस्तक ने मेरी जीवन श्रृंखला ही परिवर्तित कर दी।" उनका कथन था कि, "यह पुस्तक एक घोर घामुर्छी से निवृत्त हुई है।" गांधी जी ने इस पुस्तक के अनुवाद ही जीवनयापन करने का संकल्प ले लिया। उन्होंने इस पुस्तक में तीन बातें प्रकृत की —

(१) यह आर्थिक व्यवस्था सर्वोपेक्ष है जिससे सभी लाभान्वित होते हैं।

(२) बरीत के काम का बही मुख्य है जो एक भाई के काम का, क्योंकि प्रत्येक को अपने कार्यनुसार अपने जीवनोपार्जन का अधिकार है।

(३) यज्ञुर का जीवन ही वास्तविक जीवन है।

गांधी जी ने रस्किन की इस पुस्तक का अनुवाद 'तर्वीर्य' नाम से किया है।

सन् १९०८ में गांधी जी वास्कोडास्ट जेल में थे। वहाँ पर उन्होंने थॉरो (Thoreau) के 'सविनय-अवज्ञा पर विन्ध्य' (Essay on Civil Disobedience) को पढ़ा था। इसी अवसर पर बहुतों ने कहा था कि सत्याग्रह की कल्पना गांधी जी ने थॉरो से ली थी। किन्तु १० सितम्बर १९१३ को भारत-सेवाक समिति के श्री कोरएड राव को मिले पत्र में गांधी जी ने इस कथन का सख्त खण्ड किया था। उन्होंने लिखा था 'यह कथन कि मैंने सविनय अवज्ञा की कल्पना थॉरो की पुस्तक से प्राप्त की मिथ्या है। सविनय अवज्ञा पर थॉरो के विन्ध्य मेरे हाथ में पढ़ने से पूर्व बसिल्ल प्रकीर्ण में सत्या के विन्ध्य प्रतिरोध बहुत बढ़ चुका था। किन्तु उक्त समय यह आन्दोलन 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के नाम से प्रसिद्ध था। यह शब्द पूर्ण नहीं था। अतः मैंने पुस्तक की पाठकों के लिए 'सत्याग्रह' शब्द की रचना की। जब कि थॉरो के महात्मा विन्ध्य का शीर्षक देखा तो मैंने थॉरो की पाठकों को अपने संघर्ष की व्याख्या करने के हेतु यह शब्द प्रयोग

किया।" गांधी जी ने इसे एक महान् रचना स्वीकार की और कहा था कि, "इसने मुझ पर बहुत बड़ा प्रभाव छोड़ा।"

गांधी जी टास्टराय से भी प्रभावित हुए थे। टास्टराय से गांधी जी का परिचय टास्टराय की रचना 'ईश्वर का साम्राज्य धारके धनर है' (The Kingdom of God is within you) के द्वारा हुआ। गांधी जी का कथन था कि इस पुस्तक ने, "मेरा संसार और नास्तिकता दूर कर दी और प्रकृति ने मुझे पूर्ण विश्वास बना दिया।" गांधी जी ने टास्टराय से व्यक्तिगत सम्पर्क एक लम्बा पत्र लिखकर स्थापित किया था। उन्होंने इस पत्र में टास्टराय को सविनय-प्रणम्य आन्वोत्तन से परिचित कराया था। टास्टराय ने गांधी जी के इस पत्र के सम्बन्ध में अपने मित्र रॉट कॉड को लिखा था, 'ट्रांसवाल-हिन्दू के पत्र ने मेरे हृदय को झुका है।' टास्टराय ने गांधी जी को उनके पत्र के उत्तर में लिखा "ट्रांसवाल के हमारे भाइयों तथा सहकर्मियों की समस्याय यह है। मैं बन्धुत्व की भावना से आपका य भेवावन करता हूँ और आप से सम्पर्क होने में मुझे हर्ष है।" गांधी जी ने ४ अप्रैल १९१० की एक पत्र के साथ अपनी पुस्तक 'हिन्दू स्वयम्' टास्टराय को भेजी। इस पत्र में गांधी जी ने अपने को टास्टराय का 'एक विनम्र अनुयायी स्वीकार किया। टास्टराय ने इस पत्र के उत्तर में लिखा था 'विश्वव्यापी प्रविष्टि केवल भारत के लिए नहीं, अपितु समस्त मानवता के लिए सर्वाधिक महत्त्व का प्रश्न है।' गांधी जी ने स्पष्ट यह मानना प्रमित प्रकट किया था कि "स्वयं राजधर के उपरान्त टास्टराय ही आधुनिक मानवों में से एक हैं, जिन्होंने मेरे जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है, और तीसरे स्थान पर।"

राजधर बम्बई के एक उद्योगी के समाज-सुधारक थे। इन्हीं के सीटने के बाद गांधी जी इनके सम्पर्क में आये थे और इन्होंने गांधी जी को बहुत प्रभावित किया था। राजधर ने गांधी जी के हृदय में हिन्दू धर्म-धर्मों के पढ़ने की अभिरुचि पैदा की।

## राजनीतिक दर्शन

गांधीवाद—प्रसिद्ध व्यक्ति गांधी जी के विचारों को 'गांधीवाद' की संज्ञा प्रदान करती है, किन्तु बहुत देर नहीं है। गांधी जी राष्ट्रीय धर्मों में राजनीतिक पारंपरिक नहीं थे। उन्होंने किसी राजनीतिक दर्शन का राष्ट्रीय पद्धति से न तो संशोध्य और सर्वगत निष्कास ही किया है और न इस प्रकार किसी प्रथा करने की कबली अपनी पद्धति ही थी। गांधी जी न तो इस प्रकार के सूच-बद्ध मीठम

को अपने जीवन में कोई महत्त्व ही प्रदान करते थे और न वे अपने को विविध शास्त्रों का पूर्ण ही समझते थे। बल्कुल वे तो उबड़ोठि के सुधारक और कर्मयोगी थे। वे अपने को सत्य का साधक मानते थे। इस प्रकार गांधीबाब कोई 'बाब' नहीं है। पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में गांधीबाब "सिद्धान्तों मजों नियमों, विनियमों और धारकों का समूह नहीं है अपितु वह एक जीवन-रीसी है। वह एक महीन विद्या की धीर ईमित करती है अपना मानव-जीवन की समस्याओं के विषय में पुण्यतन दशा का पुनः स्थापन करती है और प्राकृतिक समस्याओं के लिए प्राचीन साधनों को प्रस्तुत करती है।" धारार्थ कृष्णमानी जो गांधीबाब के धारिकारिक विचार हैं, उनका भी यही मत है "गांधीबाब किसी कोई चीज अपनी अस्तित्व में नहीं धार है। इसके असावा गांधी भी कोई तत्त्ववेत्ता नहीं हैं। उन्होंने किसी प्रणाली को जन्म नहीं दिया है। शुरू से ही वे अमनी सुधारक रहे हैं। वे सर्वोपरि कर्मप्रधान पुरुष हैं। उनकी समस्या पुण्यतन अमाने के पैयम्बरों और सुधारकों जैसी है। गांधी भी ने अपनी सम्मतियों के लिए पूर्णता का दावा नहीं किया। वे अपनी प्रवृत्तियों को सत्य की खोज अथवा सत्य के प्रयोग कहते हैं। अथ गांधीबाब किसी कोई चीज अपनी पैदा नहीं हुई, सिर्फ गांधी भी का बताना हुआ मार्ग और दृष्टिकोण है जो न संभव है, न नियमित और न अन्तिम। वह अचानक आते अन्तिम रूप से अथवा हर समय के लिए तय करने की कोशिश नहीं करता, सिर्फ एक विद्या सूचित करता है।" गांधी भी वे स्वयं इस धारिकारिक का स्पष्टीकरण किया था, "गांधीबाब किसी कोई बस्तु मेरे अस्तित्व में नहीं है। मैं कोई सम्प्रदाय अथवा प्रवर्तक नहीं तत्त्वज्ञानी होने का मैंने कभी दावा नहीं किया। मेरा यह प्रयास भी नहीं है।" "मैंने किसी महीन सत्य की खोज नहीं की है, अपितु सत्य की जैसा मैं जानता हूँ तदनुकूल ही अथवा का और अन्य लोगों को बताने की चेष्टा करता हूँ। हाँ, कुछ प्राचीन सत्य सिद्धान्तों पर महीन प्रकारा अथवा का दावा करता हूँ।" 'सत्य और अहिंसा अपने पुण्यतन हैं जितने कि अर्थ। मैंने इन दोनों का अतनी अस्तित्व सीमा में प्रयोग करने का प्रयत्न किया है जितना कि मैं कर सकता था। ऐसा करने में मैंने अथवा-अथवा भूल भी की है और अपनी भूलों से मैंने शिक्षा ग्रहण की है—और, तो मेरा सम्पूर्ण अर्थ, यदि हम इसे अर्थ की संज्ञा अथवा अर्थ, यह सत्य में अतिरिक्त है जो मैंने कहा है। आप इसे 'गांधीबाब' के नाम से नहीं पुकारेंगे, इसमें कोई 'बाब' नहीं है।"

किन्तु गांधी भी ने गांधी-अर्थिक समझौते के अर्थगत अर्थों की एक अर्थ-अर्थिक अर्थ में यह अर्थगत अर्थों की भी कि, "गांधी अर्थिक अर्थ है, किन्तु गांधीबाब

सब धीमे-धीमे चलेगा।" हमसे यह निष्कर्ष निवास्तना कि गांधी जी ने 'बांधीवाद' जैसे किसी शांतिपूर्ण 'बाह' का धोखेवर्ष सिद्ध किया था, तर्जुमंयत नहीं होया। पट्टाभिसी सारमेया ने कहा है, 'उन्होंने सन्कास बांधीबाह शब्द की रचना की, जो पूर्णतया उस सिद्धास्य की संरक्षण: समिप्यक करता है जो उनके सत्य धीर संहिता के मत में संप्रतिष्ठ है। गांधी-संरक्षण समन्धीता बस्तुतः सत्य संहिता की विजय थी, बिना कि सुई फिटार ने कहा है, 'भारत धीर संरक्षण के बीच सिद्धांत रूप से जो बराबरी का बर्जा नापम हो गया था वह उस ब्यावहारिक रियासत से अधिक सद्बुद्धपूर्वक था बिसे वह इस समिप्यक साप्राप्त्य से पेट सचते थे।' इस प्रकार गांधी जी के साथ किसी 'बाह' विरोध का प्ररत नहीं उठता। उनके विज्ञानों एवं कार्यों की कोई सुनिश्चित एवं समिप्यत योजना नहीं थी। सत्य धीर संहिता समन्धी उनके प्रयास भी कोई समिप्यत धीर संरक्षणवर्षित नहीं थे। साधारण ब्रजभागी के शब्दों में, वे स्पष्टतः प्रंशीकार करते हैं कि मिस-मिस परिस्थितियों एवं संरक्षणों में उनका असम संकाय सच से प्रयोग किया जा सकता है। उनके इस प्रकार के रवेके के कारण ही बहुधा उनका अनुयायी धीर सत्य बीच विविधता में पड़ जाते हैं धीर यह वह संकाय प्राक संरक्षण हो जाता है कि वे किसी विरोध परिस्थितियों में क्या करते? श्रुति उनका समिप्यक समिप्यतिसीम एवं विकसतमान है, इसीलिए उनके बांधी धीर कार्यों का साधारण-प्रकार समिप्यत धीर पर निरिचत नहीं हो सकता।

### धर्म और राजनीति

गांधी जी ने धर्म धीर राजनीति में कोई विभेद नहीं किया। उन्होंने राजनीति को साम्यात्मिक कर देते हुए धर्म में शीरुक्रता का समावेश किया। उनके राजनीति धीर धर्म के समावेश का धर्म नहीं है कि अत्येक दशा में सत्य को ही बरख करना चाहिए। गांधी जी की दृष्टि में ईश्वर धीर सत्य ही परमसंवाधी शब्द हैं। 'संसार सत्य की तुल्य बीच पर उल्ला हुआ है। असत्य या समिप्यत असत्य संधी 'न रहना' है धीर सत्य का धर्म सत्मास जिसका सतिरख है। जब असत्य का कोई सतिरख ही नहीं है तो उसको विजय का कोई शरत ही नहीं उठ सकता। धीर सत्य का धर्म ही है वह जिसका सतिरख है, इसीलिए वह गट नहीं हो सकता।' अतः गांधी जी सत्य का जीवन के विविध क्षेत्रों में समावेश मानते थे। राजनीति भी इसके समिप्यत नहीं है। असत्य वह बांधे फिटना ही पुटना ही सचे फिटनी ही बहुमास्यता प्राप्त हो धीर, असत्य बीच फिटना ही विरुध पूर्व ब्यापक ही गया हो, सचके सतिरख में कोई समिप्यक, लका या भय नहीं

होना चाहिए। जिस शक्ति जिस बात के सम्बन्ध में सत्य की प्रतीति हो, उसके लिए सर्वत्र प्राप्ति देनी चाहिए।

गान्धी जी का कथन था कि यदि राजनीति में अराजकता है और वह दूषित है तो इसका एक कारण यह भी है कि इसमें ईश्वर से सम्बन्धित होनेवाले अराजकता, निःस्वार्थ, सच्चे एवं धर्मप्रधान व्यक्ति राजनीति से अलग रहते हैं। राजनीति को विमुक्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इसमें धार्मिक व्यक्तियों का बाहुल्य हो और वे राजनीतिक समस्याओं में अपनी प्रतिबद्धि प्रदर्शित करें। गान्धी जी ने पोलक से कहा था, बिना धार्मिक व्यक्तियों के सम्पर्क में मैं प्राया है उनमें से अधिकतर अशुभमेव हैं। किन्तु मैं जिसने राजनीति का अशुभमेव कारण कर रखा है, हृदय से धार्मिक व्यक्ति हूँ। अतः गान्धी जी राजनीतिक विमुक्तता के लिए बाह्य धार्मिक आधार नहीं चाहते थे, अपितु हृदय की पारंगता पर बल देते थे। वे राजनीति को प्राध्यात्मिकता से अनुप्राणित करना चाहते थे। उन्होंने कहा था, यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो इसका नेत्रण यही कारण है कि राजनीति हम सभी को सर्व के भेदे के समान भेदे हुए है और जिससे कोई कितना ही प्रयास करे बाहर नहीं निकल सकता। मैं उस सर्व से उग्राम करना चाहता हूँ, मैं राजनीति में धर्म का सम्मिलन करने की कोशिश कर रहा हूँ।

“मैं बरा भी संकोच के बिना तथा निःस्वार्थ विनम्रता से कह सकता हूँ कि जो व्यक्ति यह कहते हैं कि राजनीति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे नहीं जानते कि धर्म का क्या धर्म है?” गान्धी जी राजनीति और मेरे सम्पूर्ण कार्यों का जोड़ मेरा धर्म है। मैं तो इतना भी कहूँगा कि धार्मिक व्यक्तियों के प्रत्येक कार्य का जोड़ उसका धर्म ही होता है, क्योंकि धर्म का अन्वय ईश्वर से सम्बन्ध रहने का है अर्थात् हमारे प्रत्येक शब्द पर अंगण का नियंत्रण है। “मुझे विश्व के अन्तर नेत्र की जगह नहीं है, मैं तो स्वर्ग के साम्राज्य अर्थात् प्राध्यात्मिक विमुक्ति के लिए प्रयास कर रहा हूँ। इसलिए मेरे राष्ट्रपति श्री अन्तर्गत राष्ट्र और स्वातंत्र्य के देश की ओर मैं यथा का एक पञ्चायत मान है। इससे स्पष्ट है कि मेरे लिए धर्म से अलग राजनीति की कोई सत्ता नहीं है। राजनीति धर्म का साधन मात्र है। धर्मरहित राजनीति मृत्यु का पंदा है, क्योंकि वह अन्तः का हनन करती है। गान्धी जी का प्रत्येक कार्य यह उसका सम्बन्ध जीवन के किसी भी क्षेत्र से हो, धार्मिकता से अलग-अलग था। प्रत्येक क्षण जो उनके मुखारविन्द से प्रसृष्टि होना उसके पीछे धार्मिक अर्थ एवं धार्मिक लक्ष्य रहा था। गान्धी जी की समस्त राजनीतिक विचारधारा उनके धार्मिक एवं वैदिक

विरासत से। किन्तु उनका बर्न संकृषित धीर साम्प्रदायिक नहीं था। वह विरस-पनीन था। यद्यपि उनकी जिज्ञा हिन्दूधर्म में थी, लेकिन उनके हिन्दू धर्म का दृष्टि बिन्दु ब्यापक एवं उदार था। उनका मत था कि 'मिथ हिन्दू धर्म सर्व ब्यापक है। उसमें न ही किसी के प्रति विद्वेष की भावना है धीर न धनमलुम्भ, सभी धर्म एक-दूसरे से मिले-जुले हैं। प्रत्येक धर्म में अपने-अपने विशिष्टताएँ हैं किन्तु एक धर्म धर्म से अलग नहीं है। जो एक धर्म में है वह धर्म में नहीं है। अतः एक धर्म अन्य धर्म का पूरक है।' गांधी जी की दृष्टि में विरस के सभी धर्म एक ही समय तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग थे। इस प्रकार उनका धार्मिक दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर विरासत एवं ब्यापक था। उनकी यह धार्मिकता सभी लोगों में व्याप्त थी। उनका समस्त जीवन धार्मिक भावना से सीत प्रोत्त था। फिर राजनीतिक क्षेत्र, जिसमें उन्होंने सत्य धीर अहिंसा के ध्यापक प्रयोग किये, जिस प्रकार प्रामुखा रह सकता था। फलतः उन्होंने धर्म की लौकिकता धीर राजनीति को धार्मिकता का रूप प्रदान किया।

## अहिंसा

सत्य धीर अहिंसा गांधी जी की समस्त चिन्तन-धार्य की आधारभूत है।<sup>१</sup> वे उनके जीवन-संराम में एक सिक्के के दो पहलू हैं जिनका परस्पर सम्बन्ध है धीर को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। गांधीजी सत्य को साधना का विज्ञान धीर अहिंसा-सत्य के साक्षात्कार का साधन है। किन्तु गांधी जी ने अहिंसा की अपेक्षा सत्य पर अधिक बल दिया था। वे सत्य के लिए अहिंसा का परिचय कर सकते थे; किन्तु अहिंसा के लिए सत्य का नहीं। उनका अर्थ था कि अहिंसा कभी हीरे की प्राप्ति सत्य की खोज में हुई। उनकी दृष्टि में अहिंसा सभी धर्मों का जीवन-सत्य है। अहिंसा का धर्म धर्म का ध्यात्मबन्ध से विरोध करना है। यह 'कोई निष्क्रिय धर्मावलम्बक मनोवृत्ति नहीं है यद्यपि वह प्रवाह के विरुद्ध चलने की एक क्रियारमक धीर भावना-प्रधान प्रवृत्ति है।' जब कोई व्यक्ति अहिंसा का बरण करता है तो उसके यह भासा की जाती है कि वह अपने विरोधी द्वारा दी गई समस्त संरक्षणों को सहर्ष सहन करेगा धीर मनसा, भासा, कर्मणा भी उक्तका अहिंसक नहीं चाहेगा। अतः अहिंसक ही परम कर्तव्य होगा। अहिंसा का क्षेत्र इतना ब्यापक है कि क्षेत्र जीवन-जन्तु ही नहीं यद्यपि अहिंसक पशु भी इसकी परिधिमा में आ जाते हैं। गांधी जी के मत में, अहिंसा का सिद्धान्त केवल अधिर्षा धीर-सत्ता तक ही परिमित नहीं है, बल्कि जनसाधारण के लिए



भी यह आवश्यक है। जिस प्रकार हिंसा पशुओं का जीवन-सिद्धान्त है, उसी प्रकार-अहिंसा हम मानवों का है। गांधी जी ने अहिंसा के तीन प्रकार बताये— (१) अहिंसा का वह उच्चतम रूप जिसे एक शक्तिशाली या बहादुर अपनाता है। अहिंसा में उसकी निम्न किसी कष्टकारक भावश्यकता के कारण नहीं होती प्रत्युत उसका आधार नैतिक विचार होते हैं। और पुरुष अहिंसा में पूर्ण भास्वा करने के कारण जान-बूझकर हिंसा से बचता है और पूर्ण विरवास के साथ अहिंसा का प्रयोग करता है। ऐसी अहिंसा केवल राजनीतिक न हाकर जीवन के समस्त क्षेत्रों से सम्बन्धित होती है। जिसकी कोई भी शक्ति ऐसी अहिंसा का मुकाबला नहीं कर सकती। गांधी जी इसी अहिंसा को वास्तविक एवं सच्ची अहिंसा मानते थे। (२) दूसरे प्रकार की अहिंसा यह है जिसे मोति के रूप में ग्रहण किया जाता है। ऐसी अहिंसा निर्बलों या असहायों की होती है। जिसमें नैतिक निष्ठा की अपेक्षा बीबंस्य का समावेश होता है जो हिंसा के प्रयोग को मस्वीकार करता है। यदि सबाई के साथ ऐसी अहिंसा का नीति के रूप में प्रयोग किया जाने तो प्राथिक रूप से सक्षम की पूर्ति में यह सहायक सिद्ध हो सकती है। किन्तु फिर भी यह प्रधानकारी नहीं होती, किन्तु कि शक्ति-सम्पन्न की अहिंसा होती है। इसमें परिस्वित्तिबन्धन हिंसा होने की सम्भावना रहती है। (३) तीसरे प्रकार की अहिंसा भीर की निष्क्रिय अहिंसा होती है। ऐसा व्यक्ति भीरुता के कारण हिंसा करने का साहस नहीं कर सकता। जिस प्रकार अग्नि और जल एक साथ नहीं रह सकते, उसी प्रकार भीरुता और अहिंसा का भी साथ नहीं हो सकता। भय या शर्तक के कारण किसी के सम्मुख नतमस्तक हो जाना अहिंसा नहीं है। यह तो जखोटि की कायदा है। ऐसी अहिंसा से हिंसा कहीं भेडतर है। गांधी जी के मत में एह हिंसक के अहिंसक हो जाने की सम्भावना हो सकती है किन्तु एक तर्पुसक के मरो। जो व्यक्ति बर्बर अत्याचारों का सामना अहिंसा के द्वारा नहीं कर सकता उसे हिंसा मत्नाकर उनका मुकाबला करना बाहिए। गांधी जी के शब्दों में, "जब मेरे सम्मुख केवल वो ही विकल्प रह जावे कायदा और हिंसा तो मैं हिंसा के लिए सनाहूँगा। इसके बजाय कि भारत कायदापूर्वक धरने ही असम्भाल का शिकार बने या बना रहे, मैं यह पसन्द करूँगा कि वह धरने सम्भाल को एता के लिए इवियार ठाये।"

गांधी जी न साम्य एवं सामन में कोई भेद नहीं किया। वे सामनों की पवित्रता पर कठोर धन देते थे। उनकी भारतीय राजनीति को यह बहुत बड़ी देन थी। उनका विरवास था कि केवल साम्य के लिए केवल सामन भी होने परयाकरक हैं।

यदि दूषित साधनों का प्रयोग किया जायगा तो हमारा सपना भी कल्पित हो जायगा। किन्तु ठिकरू जैसे सरकारी नेता साध्य के समान साधन को नगण्य समझते थे। उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ धारकों की उत्सविक में हीन साधनों को प्रयोग करने में कोई शेष नहीं था। माधो जी ने भारतीय एवं भारतीय राजनीतिज्ञों के इस दृष्टिकोण का भलीभाँति विचार किया। वे साध्य एवं साधन में सम्बन्धमाध्य सम्बन्ध मानते थे। उनके मतानुसार, साधन बीज है और साध्य फल। इसीलिए जो सम्बन्ध बीज और फल में है, वही सम्बन्ध साधन और साध्य में है। मैं रोवान की उपासना करके ईश्वर मजन का फल नहीं प्राप्त कर सकता।" यद्यपि गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के लिए हिंसा, छल-कपट आदि हीन साधनों को अमान्य ठहराया। वे कहते थे कि यदि भारत हिंसक साधनों के द्वारा अपनी स्वतंत्रता प्राप्त भी कर लेता है तो ऐसा स्वयंय हिंसा विहीन नहीं होगा। ऐसा स्वयंय भारत तथा विश्व के लिए एक मन्वीर बतल होगा। इसी कारण गांधी जी अहिंसामक उपायों के अग्रगण्य पर जोर देते थे। एक बार माधो जी ने माधो जी के अग्रगण्य से कहा था कि यदि समाजवादी हिंसा का परिधान कर दें तो मैं उनकी पार्टी का सदस्य बन सकता हूँ। इस प्रकार गांधी जी के लिए अहिंसक साधनों की बड़ी महत्ता थी। वे लक्ष्य के समान ही साधन एवं श्रेष्ठ थे। उनके लिए साधन साध्य वे और साध्य साधन।

### उत्थाग्रह एवं साधन

गांधी जी केवल धारकोंवादी नहीं थे, अपितु कर्मयोगी भी थे। उन्होंने अहिंसक विद्रोहों का प्रतिपादन किया अतः परीक्षण भी किया। अत्यन्त धीरे अहिंसा का प्रयोग गांधी जी ने भारत के स्वतंत्र्य-आन्दोलनों में किया था। इन विद्रोहों का अन्त विचार एवं व्यापक प्रयोग गांधीजी से पूर्व किसी भी विचारक ने नहीं किया था। यद्यपि रस्किन धीरे टास्टराय आदि ने केवल व्यक्ति की ही अपने अहिंसक विद्रोहों का आचार माना था, किन्तु गांधी जी ने व्यक्ति के साथ-साथ जातिधर्मों की भी अपना आचार बनाया। उन्होंने अपने परीक्षण केवल व्यक्ति तक ही परिमित न करके उन्हें सामूहिक रूप प्रदान किया। अत्यन्त धीरे अहिंसा का केवल व्यक्ति ही नहीं अपना अन्त, अत्यन्त अत्यन्त निर्मित जातिधर्म, समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र भी अपना अन्त है। अत्यन्त धीरे अहिंसा की जीवन के आचारमूल विद्रोह मानकर उनका राजनीतिक क्षेत्र में अन्त बड़ा प्रयोग गांधी जी की बहुत बड़ी महत्ता थी। उन्होंने अहिंसा को व्यक्तिगत की अनेकों सामूहिक बनाया और यह सिद्ध किया कि अहिंसा राष्ट्रीय अन्तिया करने में भी अत्यन्त है।

## सत्याग्रह

गांधी जी का 'सत्याग्रह' राष्ट्र प्रेम विरवास और त्याग का द्योतक था। यह एक सक्रिय दर्शन था। इसमें क्रोध, घृणा और असत्य के लिए कोई स्थान नहीं था। यह एक ऐसी कला थी जिस में शारीरिक बल का प्रयोग से विरोध करना होता था। यह सत्याग्रहियों में अनुशासन और धारम-विरवास की उच्चतर भावना को जामुद करती थी और जमें यह भावना बनी रहती थी कि स्वेष्यापूर्वक कटु संहने से व्यक्तित्व निखरता है। सत्याग्रही "अपने विरोधी के सम्मुख अपना धार्मिक व्यक्तित्व स्थापित करता है और उसके हृदय में इस भावना की जागृत करता है कि वह बिना अपने व्यक्तित्व को हानि पहुँचाये उसे हानि नहीं पहुँचा सकता। इस प्रकार सत्याग्रह के कार्य का अन्तिम विरसेपक्ष 'भारतात्मुति और संयोग' की कला द्वारा कर भावे बढ़ता है। सत्याग्रह या धारम-शक्ति या प्रेम-शक्ति ऐसी कि गांधी जी ने इसे संज्ञा प्रदान की है उस सिद्धे के समान है जिसके एक और हम प्रेम और दूसरी ओर सत्य पढ़ते हैं।" सत्याग्रही अपने विरोधी की कमजोरियों से साध उग्रने की कमी कोशिश नहीं करता। वह शत्रु की धारति के समय सहस्यता करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता है। गांधी जी सत्याग्रहियों से कहा करते थे, 'वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी बनें, ब्रिटिश धारति के नहीं।' इस प्रकार गांधी जी के सत्याग्रह-दर्शन में एक सत्याग्रही के लिए पाठ से घृणा करना था, न कि पापी से। सत्याग्रह में भीरुता एवं दुर्बलता के लिए कोई स्थान नहीं था। उनका कहना था कि यदि हम अपनी त्रिपों तथा धार्मिक स्थानों की रक्षा प्रहिता द्वारा नहीं कर सकते तो हमें लड़कर उनकी रक्षा करनी चाहिए। उनकी दृष्टि में हिंसा कामरता से श्रेष्ठतर थी।

गांधी जी के सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में अत्यन्त मिश्रता थी। सत्याग्रह एक नैतिक शक्ति थी जबकि निष्क्रिय प्रतिरोध अपयुक्ति का एक राजनीतिक प्रस्य। सत्याग्रह शक्तिसम्पन्न का अस्त्य था और निष्क्रिय प्रतिरोध निर्बल का। सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध की धोखा धाउरिभ शक्ति पर बल देता था और उसे निविधित करता था। यह प्रयोग और निरंकुशता के बिच्छ अधिक प्रमाणकारी विरोध प्रस्तुत कर सकता था। सत्याग्रही दुष्कृत्य से घृणा करता था किन्तु दुष्कृत्य करनेवाले से प्रेम करता था जब कि निष्क्रिय प्रतिरोधी में प्रेम के लिए कोई स्थान नहीं था। सत्याग्रही का मध्य दुर्गुण को सङ्गुण से घृणा की प्रेम से असत्य को सत्य से और हिंसा को प्रहिता से निमित्त करना था।



### 3 साम्प्रतिक बिचार एवं संरक्षण सिद्धान्त

गोपी जी का स्वतंत्रता से अभिप्राय तीन प्रकार की स्वतंत्रता से था— राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक स्वतंत्रता। वे केवल राजनीतिक स्वतंत्रता को ही बन-कस्याख के लिए पर्याप्त नहीं समझते थे। राजनीतिक स्वातंत्र्य के साथ-साथ धार्मिक स्वातंत्र्य भी परमावश्यक है। वे एक घोर कुछ मुट्टी भर लोपों के हाथों में पूँजी का केन्द्रीयकरण और दूसरी घोर असंख्य लोगों के बेरोजगार होने को एक महान् सामाजिक धनघप मानते थे। यद्यत् उनके मन में 'जिन बन्द पूँजी-पतियों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का अधिकार भाग इकट्ठा हो गया है, उन्हें नीचे उतरना चाहिए, और जो करोड़ों भूले-नये हैं, उनकी स्थिति उज्ज्वल होनी चाहिए। जब तक यमी और निर्धन के मध्य यह बौड़ी खाई रहनी, जब तक अहिंसक राज्य-व्यवस्था निरालम असम्भव है। यदि सम्पत्ति का घोर सम्पत्ति से होनेवाली सत्ता का सह्य परित्याग नहीं किया जायेगा और सार्वजनिक बस्याख हेतु उसका विभाजन नहीं होना तो हिंसक अन्ति और रक्तपात ध्वस्तम्भाकी है।' वे कहते थे कि सम्पत्ति का अनभोग सही प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार हवा और पानी का होता है। इस पर किसी बर्ग-विरोध का एकाधिक्य नहीं होना चाहिए। हिन्दु साम्प्रतिक परित्याग गोपी जी अहिंसारमक साधनों द्वारा करना चाहते थे। उनका कहना था कि यदि पूँजीपति अपनी सम्पत्ति वा अपनी परिहार नहीं कर सकता है तो उसे अपने साम्प्रतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिए। उसे अपने को सम्पत्ति का स्वामी न समझ कर उसका संरक्षक (Trustee) समझना चाहिए और समाजिक दृष्टिकोण से उसका उपभोग करना चाहिए। यदि पूँजीपति और सामन्त अपने को धार्मिक एवं कृत्यक वा संरक्षक समझ लें तो फिर बर्ग-संघर्ष के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा। बर्ग संघर्ष का स्थान बर्ग-सम्बन्ध और बर्ग-एकता से लेगी, जो बन्द-विहीन जनतन्त्र के लिए प्रथम पद होना। ऐसे समाज में किसी-किसी रूप में सभी शारीरिक श्रम करेंगे और कोई शोषक नहीं होगा। पूँजीपति और जमींदार अपने विवेक और पूँजी का उपभोग समाज हित के लिए करेंगे और उन्हें भी अपने योगदान के अनुकूल ही समुचित पारिव्यमिक मिलेगा। यदि वे संरक्षक की दृष्टियत से काम करना पसन्द नहीं करेंगे, तो उनके विकट असहयोग की नीति को अनुमाना होगा।

गोपी जी न जिस संरक्षण सिद्धान्त (Theory of trusteeship) का प्रतिपादन किया है, वह उनकी कोई मौसिक देन नहीं है। उनसे पहले भी विलियम गोडविन (William Godwin) ने अपनी पोसिटिविस्त थिडिस'

नामक पुस्तक में इसका जल्सेन किया था। उसने लिखा था "समस्त सामिन्-सहाचार्यो का एक ही आधार है धीर यह है धन के सम्बन्ध में किया गया पन्नाम। धन सभी धर्मों के प्रवर्तकों ने धाने समाधि-समाप्त शिष्यों से कहा है कि उन्हें यह समझना चाहिए कि जो धन उनके पास है उसके वे संरक्षक हैं, उसमें धर्म के एक-एक अर्थ का बाधित्व उन पर है। उनका काम केवल व्यवस्था करना है, किसी भी ब्रह्म में वे उनके स्वामी या प्रभु नहीं हैं।" गुरुकुल में गांधी जी का संरक्षण-सिद्धान्त इस प्रकार है—(१) संरक्षण आधुनिक पूर्वीवादी समाज-व्यवस्था को साम्य-व्यवस्था में परिपूरित करने का साधन प्रदान करता है। यह पूर्वीवाद को कोई आधार नहीं देता, किन्तु यह वर्तमान पूर्वीवादी वर्ग को अपने को सुधारने का एक गुणमय प्रदान करता है। यह इस विषय पर आधारित है कि मानव प्रकृति से उत्पत्ती है।

(२) यह सम्पत्ति के किसी भी निजी स्वामिन् के स्वत्व को ध्वंसित नहीं करता, परित्यक्त इससे कि बहुत तक समाज इसे धाने निजी कस्पाण के लिए धारित होता है। (३) यह स्वामिन् के विभिन्न संभामन का नियंत्रण नहीं करता। (४) इस प्रकार राज्य द्वारा सहायित संरक्षण में एक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को स्वार्थी परिष्कार के लिए या समाज-हित की जेब्या कर के प्रयोग करने प्रवृत्त रहने में स्वच्छन्द नहीं होगा (५) क्योंकि व्यक्तियों के स्मृतम वेतन को निर्धारित करण का प्रस्ताव किया जा रहा है। धन लोगों की अधिकतम आमदनी की भी, जो समाज में किसी व्यक्ति की भी जाती है, एक परिधीमा निश्चित कर देनी चाहिए। स्मृतम धीर अधिकतम आमदनी का विवेक उचित धीर स्वयम् हीला चाहिए धीर समय-समय पर परिवर्तित होते रहना चाहिए, जिससे इसकी प्रकृति इस विवेक के अनुसम की धीर हो जाय। (६) गांधी जी की आर्थिक व्यवस्था में उत्पत्ति की माया की समाज की आवश्यकताएँ निरिक्त करेगी न कि व्यक्तिगत आकांक्षाएँ धीर प्रसोभन।

गांधी जी कहते थे कि यदि पूर्वीवादी संरक्षण का कार्य करने में प्रसन्न सिद्ध होने लगे उनके अधीनों का राजकीयकरण कर बिना गन्धेगा। ऐसी स्थिति में इन अधीनों में काव धाम की दृष्टि से न होकर मानवता के हित की दृष्टि से होगा। सरकार के छाव-साध अधिका को भी इन अधीनों की व्यवस्था में सम्मिलित किया जाएगा। किन्तु गांधी जी आर्थिक केंद्रीयकरण को जनतंत्र के लिए अनिर्वाण समझते थे। केंद्रित अधीन धीर अधिका साव-साव नहीं बन सकते। उनके

मतामुद्धार 'जनतंत्र बखप्रवर्ती जायों द्वारा विकसित नहीं हो सकता। लोकतंत्र की भावना बाहर से नहीं घोंपी जा सकती वह तो भीतर से प्राणी है।' वे उद्योगों के विवै-त्रीकरण के पक्षगती थे। बड़े-बड़े कस-कारखानों की स्थापना से जनता स्वतंत्र धीरे स्थापना नहीं बन सकती। इसक प्रतिरिक्त मशीनों बन की इतनी बखत कर दालती है कि प्रतस्व लोगों की भूखों मरना पड़ता है धीरे शहर बनने के लिए कनका भी उतलन नहीं होता। इस संशोधन के कारण प्रायः पूर्वी कुछ व्यक्तियों के हाथों में एकत्र हो गई है धीरे के शोधन कर रहे हैं। वे मशीनों 'साप के जिस हैं जिनके अन्दर एक नहीं, सबको सार रहते हैं। एक के बाव दूसरा निकसता ही जाता है।' फलतः वे भारत के प्री-धोपीकरण के विरोधी थे धीरे इसके स्वाम पर वे कुटीर उद्योग-बन्धों की महत्व देते थे। पाषाण की राज्यीय हिंसा से व्यक्तियत हिंसा को श्रेष्ठतर समझते थे, क्योंकि "यदि राज्य पूर्वी-बाव का हिंसा से सम्भूतम करता है तो वह स्वयं हिंसा के बन्कर में फँस जायेगा। धीरे किसी समय में भी बहिंसा को विकसित नहीं कर सकेगा। राज्य एक कनिष्ठ धीरे संघटित व्यवस्था में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति के प्रात्मा होती है, किन्तु राज्य एक प्रात्मा बिहीन र्थ है। इसलिये मैं संरक्षण के सिद्धान्त को पसन्द करता हूँ।"

### राज्य और उसका कार्य क्षेत्र

पाषाण की वे मानो बहिंसात्मक राज्य की बन-रखा का कोई स्पष्ट चित्रण नहीं किया क्योंकि वे मकिय की प्रवेसा वर्तमान समस्यार्थों पर अधिक विचार करते थे। वे मकिय के सम्मन्ध में किसी निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन करना भी व्यवहारिक समझते थे। वे कहते थे जब भारत का निर्माण बहिंसात्मक पद्धति से हो जायेगा तो इसका रूप नि-सन्देह धातुनिक सामाजिक टकि से सर्वप भिन्न होगा। किन्तु उसक रूप का पूर्ण चित्रण करना अभी सम्भव नहीं है।

पाषाण की एक दार्शनिक प्रभावकतावादी थे। उन्होंने राज्य का नैतिक, प्राकिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतीकित्व सिद्ध किया, धीरे राज्य को बखत बनने की प्रवृत्ति की नैतिक दृष्टि से प्राकिक दलनाया। उनके मत में बड़ी कार्य नैतिक हा सकता है जो स्वच्छ से किया गया हा। यदि हम वर्तम्य भावना में प्रविष्ट होकर किसी कार्य को करते हैं तो वह नैतिक है। राज्य का बाह बनकारी रूप ही क्यों न ही, वह हिंसा पर प्राकारित है। ऐसी हिंसा शोधन की जननी है। राज्य सामूहिक एवं संघटित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। वह प्रात्मा

विहीन बंध है। इसका नाम हिंसा से हुआ है, और इसके पुनर्होना कदापि सम्भव नहीं है। गांधी जी के विचार से आदर्श सामाजिक व्यवस्था राज्य-विहीन जनतंत्र है। "हमें राज्य में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासन है। यह धरना शासन हम प्रकार करता है कि अपने पड़ोसी के मार्ग में कभी बाधापैदा नहीं होता। जन-प्रदर्श राज्य में कोई भी राजनीतिक शक्ति नहीं होती, क्योंकि यह कोई राज्य ही नहीं है।" ऐसी आदर्श समाज-व्यवस्था में आम सर्व तथा आम-समाज दोनों का संयुक्त ऐच्छिक आचार पर हीवा और राज्य-सत्ता विभेदित होती। गांधी जी ने यह स्वीकार किया था कि एक वर्ग एवं राज्य-विहीन समाज की प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं होती क्योंकि एक सरकार पूर्णतः अहिंसामक होने में सक्षम नहीं हो सकती। इसका प्रमुख कारण उसका सभी व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करना है। फिर भी, मैं एक अहिंसामक समाज की परिकल्पना करता हूँ और उसके लिए प्रयत्नशील हूँ।

गांधी जी हीरोस की भाँति राज्य को एक राज्य नहीं मानते थे, यद्यपि उनकी दृष्टि में यह अधिकतम सम्भाव्य का एक शासन मात्र था। वे बहुमतवादीयों और प्रजासत्तावादीयों की भाँति निरंकुश प्रमुख-सिद्धान्त (Absolute sovereignty) का अस्वीकार करते थे। किन्तु उनका विरक्त व्यक्तिके प्रमुख सिद्धान्त में था जो कि मुख्य नैतिक सत्ता पर आधारित है। गांधी जी ने व्यक्तियों को राज्य के नियमों का विरोध करने-का भी अधिकार प्रदान किया था, किन्तु यह विरोध अहिंसामक साधनों द्वारा ही होना चाहिए। उन्होंने राज्य के नियमों का परिपालन करने को उसी सीमा तक कहा, जहाँ तक कि वे उचित एवं न्यायसंगत हों। इस प्रकार गांधी जी ने अहिंसामक साधनों द्वारा राज्य के नियमों के विरुद्ध व्यक्तियों को अधिकार दिया। वे राज्य के कार्य-क्षेत्र को भी परिमित करने के पक्ष में थे। उनके स्वराज्य का अर्थ, 'शासन के विरक्षण से स्वतंत्र होने के लिए जनवश प्रयत्न' करना था। वे कहते थे कि राज्य के अधिकारा कार्य ऐच्छिक अनुयायी द्वारा सम्पादित होने चाहिए। किन्तु गांधी जी कुछ विषयों में राजनीतिक सत्ता को अस्वीकार भी समझते थे और कुछ में विश्वस्त नहीं। वे जाँटी के इस कथन से सहमत थे "बहु सरकार सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करती है।" किन्तु यह तभी सम्भव है जब कि राजनीतिक सत्ता विभेदित हो और निम्नतम इकाई पूर्ण रूपसे स्वायत्ततावादी हो। इसी कारण गांधी जी धर्मों की आत्मनिर्भरता और उनके स्वायत्ततावादी होने पर विशेष बल देते थे।



## गांधीवाद और मार्क्सवाद की तुलना

कभी-कभी यह समझ जाता है कि गांधी और मार्क्स के विचारों में कोई मूल भूत अन्तर नहीं था। दोनों के सम्मुख एक ही समस्या थी— दोनों के लिए में मानव-जगत् के करोड़ों गरीब-मुझे बसित-शोषित, साधनहीन, ज्ञानहीन, मवेशी और जंगल के जलधरों की तरह हँकाने या मारे जानेवासे बेजबान लोगों के प्रति गहरी छद्ममुक्ति और चिन्ता थी।<sup>१</sup> दोनों ही अराजकतावादी ने और व्यक्तिगत सम्पत्ति के विषय में दोनों के विचारों में साम्य था। दोनों व्यक्तिगत अन्न को ही महत्व देते थे, किन्तु यदि दोनों में कुछ थोड़ा-बहुत अन्तर था तो वह साधन का था। यदि हिंसा को मार्क्सवाद से निकाल दें तो फिर दोनों में कोई विभिन्नता नहीं रह जाती। मराठाना के शब्दों में 'अन्तर यह कहा जाता है कि साम्यवाद से हिंसा को हटा दिया जाय, तो गांधीवाद और साम्यवाद एक ही चीज है; या गांधी भी महिषक साम्यवादी थे; या गांधी भी और साम्यवादियों के बीच साम्य का कोई फर्क नहीं, केवल साधन का हो फर्क है। साधन यानी कुछ सत्य और महिषा पर ही गांधीजी का धोरण था। अगर साम्यवाद इस शर्त को मंजूर कर ले तो गांधीवाद और साम्यवाद एक ही चीज हो जाते हैं। किन्तु यह तुलना निश्चयी-सी बन जाती है। यह तुलना उतनी ही बेकार है जितना यह कहना कि जास के मानी पीसेवन और नीसेवन से रहित—हृदय या कीड़े के मानी ज्वैर बहर का सौंप।

"गांधी जी और मार्क्स साज और हरे रंग की तरह भिन्न हैं। जहाँ, एक ऐसा पाँख का रोप होता है जिसकी बबह से रोगी साज और हरे का फर्क नहीं देख सकता, और दोनों को एक ही काले से रंग का पदार्थ समझता है। परन्तु साज और हरे में जितनी समानता है, उससे ज्यादा समानता गांधी और मार्क्स में नहीं है।" विनोबा के मठानुसार, "दोनों विचार-धाराएँ बेमेल हैं, उनका अन्तर मूलभूत है। और दोनों एक-दूसरे की कट्टर विरोधी हैं।" के सम्मान में मार्क्सवाद और गांधीवाद की तुलना इस प्रकार की है, वहमा बहिर्मुखी है और बूझा अन्तर्मुखी। एक भीतरबासी है और दूसरा बाहरबासी। गांधीवाद मूलतः धार्मिक है दोनों की सभी विभिन्नताओं को एक शब्द में कहा जाय तो समाजवाद को 'वैज्ञानिक भीतिवाद' और गांधीवाद को 'क्रियाशील धार्मिकवाद' कहा जा सकता है।

(१) गांधीवाद और मार्क्सवाद के मध्य धारणभूत बिनेर दोनों के बीच और अन्त की देखने की दृष्टि में है। इसी बिनेर के कारण ही साम्य या साधन,

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक धारों में भी अन्तर दिखाई देता है। इस विवेक को समझने के लिए यह धारण्यक है कि यह बड़ बेतन से परिपूर्ण जगत् बस्तुतः है क्या बस्तु ? इसके मूल में एक तरफ है या दो, अथवा अनेक बेतन से बड़ की उत्पत्ति हुई अथवा बड़ से बेतन की। गांधी जी और मार्सल दोनों ही इस जगत् के मूल में एक ही तरफ मानते थे, किन्तु वह कौन-सा तरफ है—बेतन या बड़ यही एक विचारवाचक प्रश्न है। गांधी जी उस मूल तरफ को बेतन मानते थे। यह बड़ दृष्टि भी शैतन्य का परिणाम है और उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। इसे किसी भी संज्ञा से पुकारिये चाहे सत्य, परमात्मा, ब्रह्म, कुछ भी बहो, यही एक मूलभूत शैतन्य बस्तु है। इसी के अनुसार सम्पूर्ण जगत् का संवाहन होता है। इसमें आस्था रखे बिना जीवन का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता। जिसका इसमें विश्वास नहीं है वे समुद्र से अक्षय का पकने वाली उस बूँद की भाँति हैं जो बिगड़ हो कर रहती है।

किन्तु मार्सलवाद की आध्यात्मिकता इन्डुस्त्रियल भीतिवक्तव्य है। मार्सल की दृष्टि में जो जगत् के मूल में तरफ है वह बड़ है, न कि बेतन। बड़ में ही शैतन्य की उत्पत्ति होती है और उसी के आधार पर अज्ञान अस्तित्व रहता है। शैतन्य के नष्ट होने पर बड़ प्रकृति शेष रह जाती है तथा परिवर्तित होती दृष्टिकोण होती है। 'मार्सलवादी वर्तन बड़ और बेतन की युक्त-युक्त स्वतंत्र सत्ता—इतवार नहीं मानता वह बतलाता है कि आदिम अवस्था से अब तक पदार्थ का जो अन्तर्गत हुआ है उसके क्रम से ही अवस्था विरोध में शैतन्य का प्राकृतिक इतिहास है अर्थात् शैतन्य विकासमान पदार्थ का एक कुछ है। दूसरे शब्दों में हम मार्सलनवादी वर्तन को पदार्थवादी प्रवृत्तवार कह सकते हैं।' इस प्रकार गांधीवाद प्रकृतः आध्यात्मवादी है जब कि मार्सलवाद प्रकृतः भीतिवक्तव्यी।

(१) गांधीवाद और मार्सलवाद में जो एक बहुत बड़ा अन्तर है वह सर्व-सर्व-सम्बन्धी आध्यात्मिकता का है। 'मार्सल को विचारवाचक के अनुसार सर्व विश्व और मनुष्यों की उल्लासही के अर्थों में' का अन्त कर देने का सिद्धान्त तथा अमीन आन अमीर शैली कुररत की आध्यात्म-आध्यात्मिक पर अर्थिक, राष्ट्रीय पुत्रीवाद अर्थों का राष्ट्रीयकरण और अज्ञान के जीवन और नामों पर सम्पूर्ण संकष्ट यह सब धारण्यक होता है। दूसरी ओर गांधी जी के सिद्धान्त हैं। अर्थ-वर्तन (वर्तनों को अर्थव्यवस्था का मान कर उनका अनुशीलन) अर्थव्यवस्था, पंच, अर्थव्यवस्था

करल, इस्वीपिय और सामाजिक जीवन में मानक व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा लोक-  
 शाही की स्थापना।" पौबीवार बर्न-संघर्ष की घोषणा बर्न-सामंजस्य या बर्न सहयोग  
 में विरवास करता है। यह स्वामी रूप से समाज को दो परस्पर विरोधी वर्गों में  
 विभक्त नहीं मानता। इसके प्रतिरिक्त गौरी की अपने साम्राज्य में मित्रारी और  
 राजा दोनों को रक्षना चाहते थे। उनके शब्दों में "मैं जिस साम्राज्य का स्वयं  
 देखता हूँ उसमें राजाओं और निजाधियों—दोनों के अधिकार सुरक्षित रहेंगे।"  
 वे पूर्वीरति और अमिद-बर्न में बर्न-सामंजस्य की बात करते थे। वे कहा करते  
 थे, "पूर्वीरति और अमिदों को एक-दूसरे का पुरक बन जाना चाहिए। इन्हें  
 एक ऐसे विशाल परिवार के समान होना चाहिए जिसमें वे एकठा और सामंजस्य  
 के साथ रह सकें।" वे शोएल की प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहते थे और एक  
 ऐसे गुण की परिकल्पना करते थे जब पूर्वीरति नियंत्रण का शोएल स्वेच्छा से इन्व  
 कर देना और शोएल द्वारा बनी बतने की सुखास्वद कृत्य समझेगा। इसी प्रकार  
 पण्डित की पूर्वीरति के प्रति पूजा भी स्नेह में परिणत हो जायेगी। इस प्रकार  
 पौबीवार दोनों वर्गों में ऐसब सहयोग और प्रेम चाहते थे न कि वर्न संघर्ष। वे  
 पूर्वीरति की घोषणा पौबीवार का अनुसरण चाहते थे।

बर्न-संघर्ष मार्क्सवाद का एक प्रमुख गुण है। मार्क्स ने कम्युनिस्ट मनीफेस्टो  
 में लिखा है, "मानव जाति का इतिहास भेखी-संघर्ष का इतिहास है।" आचार्य  
 बरेन्ड्रेथ के शब्दों में "सबसे अधिक समाज में जो प्रगति हुई है, प्रगति की एक संश्लि  
 त उठ कर जब-जब मानव-समाज एक दूसरी लंबी संश्लि पर पहुँचा है, तब-तब  
 यह बर्न-संघर्ष के द्वारा ही सम्पादित हुआ है। बर्न-संघर्ष ही सामाजिक प्रगति  
 का आधार रहा है।" अस्तु ने भी कहा था "संघर्ष सभी मनुष्यों की माँ है।  
 मार्क्स के अनुसार, यदि बाल से सबसे अधिक के मानव-समाज में प्रभावित हो ही बर्न  
 मिलते हैं — एक तो इन व्यक्तियों का, जो समाज में स्वामी के रूप में विराजमान  
 हैं, और जिसका एकाधिकार उत्तराधिक के सभी सदस्यों पर है। दूसरा बर्न उन  
 लोगों का है, जिसका प्रमुख कार्य इस सत्ताहीन स्वामी बर्न के मारेलों का परिष्  
 लन करना होता है। यह बर्न दासता में शहर प्रथम बर्न के शोएल का शिपार  
 बना रहता है। इन दोनों वर्गों के द्वि परस्पर-विरोधी हैं अतः दोनों में पारस्परिक  
 प्रतिद्वन्द्विता सामाजिक है। मानव-समाज के इतिहास पर यदि हम इतिहास करें तो  
 देखेंगे कि प्राचीन काल में एक बर्न मानिषों का था तो दूसरा दुलामों का मध्य  
 काल में एक बर्न सामन्तों का था तो अन्त्य युद्ध-काल (Serf) का और आज  
 इस पूर्वीरति समाज में एक बर्न पूर्वीरतियों का है, तो दूसरा अमिदों का।

प्रधानतः इन को वर्गों के प्रतिरिक्त समाज में अन्य वर्ग भी होते हैं, किन्तु धनहीन मरवा उनके स्वार्थ इन्हीं वर्गों से सम्बन्धित होते हैं। मार्स वर्ग संघर्ष को वर्ग के साथ उत्तम और वर्ग के साथ ही नष्ट होने वाला मानता था। यह वर्ग-संघर्ष सब इस प्रकार की पहुँच गया है कि अफिर-वर्ग पूर्णतः वर्ग के अत्याचारों से सब तक विमुक्ति नहीं पा सकता जब तक कि यह पूरे समाज की वर्ग-सैर, शीपण, उन्नीहण से सुन्दर न बिकता है।

(१) गांधीवाद और मार्स में एक महत्वपूर्ण विवेक साधनों का है। गांधी जी साधन की श्रेष्ठता एवं परिश्रम पर विशेष बल देते थे। उनके साधन ही साध्य ही जाती थे और साध्य साधन। गांधी जी के लिए साधन ही सब कुछ थे। वे कहा करते थे, "पाप से पूछा करो, न कि पापी से।" अपने विरोधी का भी मन, बचक और कर्म से हित-चिन्तन करना चाहिए। गांधी जी की हृदय-परिवर्तन में बहुत निष्ठा थी। वे मानते थे कि बिना शान्ति के शान्ति स्थापित नहीं हो सकती किन्तु यह शान्ति अहिंसामय होगी। एक-काट और मूठ की उनके दर्शन में कोई स्थान नहीं था। इसके विरहीत मार्सवाद साधनों की पुनीतता पर कोई बल नहीं देता। अन्ती लक्ष्य-शक्ति के लिए किन्हीं भी साधनों को अपनाया जा सकता है। मार्स ने पूँजवारी समाज को उठाड़ केंचने के लिए हिसक साधनों के अपनाये जाने पर जोर दिया था, किन्तु उसने सब साधनों को उठाड़ा भी नहीं की। जब और कहा कि साधनों को अपनाया जाहिए, यह देखा, कास और परिस्थिति पर निर्भर करता है। मार्स ने सन् १८७२ में एम्बरबन में सट्ट कन से धीपित किया था कि सर्वहारा की स्वतंत्रता के लिए सभी जगह एन-डे साधनों को नहीं अपनाया जायेगा। यह सब कुछ विभिन्न देशों की संस्थाओं, रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं पर निर्भर करता है। मार्स ने अपना विरवाच प्रकट किया था कि इंग्लैण्ड, अमरीका और हालीएड में अफिर-वर्ग अपनी लक्ष्य-शक्ति में शान्तिपुर्ण साधनों द्वारा अठकौकृत होंगे। एंग्लैण्ड में भी सब उपायों का धीपित्य सिद्ध किया था— 'हम 'आधिकारी' और 'राज्य के अघटनेवाले' और-काशुनी उपायों की अपेक्षा काशुनी उपायों का सम्भव लेकर कहीं अधिक उपजता प्राप्त करते हैं।' मार्स ने आधिकारिक का विरोध किया था। यह उसे अफिर-वर्ग के लिए आधिकारिक सम्भवता था। उन्ने कहा था कि अफिरों की पहुँच रखने की कवा आकरवकता है उनही ही सुनी समाप्त है। जब प्रकाशकन से काम नहीं चल सकता सभी अन्य उपायों को अपनाया पड़ता है। डॉ० सम्पूर्णतः के लक्ष्यनुसार, साम्बवारी कोई हिन हत्यारे नहीं होते। नरयेक में उन्हें यज्ञ नहीं था।

साम्यवादी जीवन के मूल्य को समझता है। यदि बिना रक्तपात उद्वेग की सिद्धि हो जन्म तो उसे हर्ष होया।" जब तो भारतीय साम्यवादी-वर्ग ने भी अपनी भावना जनतन्त्रीय एवं वैश्व जगत् में प्रकट की है। निःसन्देह गांधीवाद की यह बहुत बड़ी विजय है। किन्तु इसका परिपालन के कर सके, संदिग्ध है क्योंकि जनका विगत इतिहास ऐसी उदात्तिक कलावाचिनी से परिपूर्ण है।

(४) गांधीवाद विकेन्द्रीयकरण पर बल देता है जबकि मार्क्सवाद में केन्द्रीयकरण सर्वहारा के प्रतिनायकत्व तक परमावश्यक है। गांधी की राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीयकरण के पक्षपाती थे। वे केन्द्रीयकरण और जनतन्त्र को एक दूसरे का विरोधी मानते थे। केन्द्रीयकरण में हिंसा और निरंकुशता समाविष्ट है। इसी कारण गांधी जो मशीनों के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने मशीनों को 'सपि के बिल' की संज्ञा प्रदान की थी। वे चाहते थे कि कम-से-कम ऐसी मशीनों को जो मनुष्य का स्थान ले लेती हैं और जिसके द्वारा प्रतियोगिता होती है, हटा देना चाहिए। चीनेवासी मशीन जैसी छोटी मशीनों का जहाँ मनुष्य की भी आवश्यकता पड़ती है, रखने में कोई हानि नहीं समझते थे। गांधी जो ने स्वयं के औद्योगिककरण को भी ठीक नहीं समझा। उन्होंने कहा था "जब मैं स्वयं पर दृष्टिपात करता हूँ, जहाँ औद्योगिककरण अपने अस्मत्त्व पर पहुँच गया है, तब मुझे जहाँ का जीवन प्रभावित नहीं कर पाता।" किन्तु मार्क्स ने सर्वहारा की शान्ताहारी का प्रतिपादन किया था। फलतः ऐसी स्थिति में आर्थिक एवं प्रशासकीय केन्द्रीयकरण का हीन स्वभाविक है। मात्र स्वयं इस केन्द्रीयकरण का अन्ततः उदाहरण है। जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी और सरकार के सर्वोच्च पद पर एक ही व्यक्ति की अधिकार सत्ता केन्द्रीयकरण के अन्ततः की अभिव्यक्ति है। यह प्रतिनायकवादी की बात है।

(२) गांधी की विकेन्द्रीकृत जनतन्त्र में विरवास करते थे। उनका कहना था कि सर्वोच्च शक्ति का निर्माण बयस्क मजदूरिकार के आकार पर ही होता है और यह केवल छोटे पक्षतन्त्र में ही सम्भव है; क्योंकि शासक और शासित के बीच निकट सम्पर्क नहीं स्थापित हो सकता है। व्यक्तिगत का पूर्ण विकास भी बिना लोकतन्त्रीय परम्पराओं के नहीं हो सकता। वे सम्राज्य की स्थापना के लिए व्यक्ति-स्वार्थ और लोकतन्त्र दोनों को आवश्यक समझते थे। किन्तु गांधी की वे भी पूर्वोक्त शक्ति के अन्ततः प्रकट की थी। वे उसे सर्वोच्च शक्ति नहीं समझते थे। उन्होंने कहा था कि हमें यह "सर्वोच्च शक्ति देना नहीं है।" अपनी शक्ति में, सर्वोच्च जनतन्त्र नहीं था जो द्वितीयक हो। मार्क्स भी जनवादी था।

ससके बाई-बिहीन-समाज की बसना परिष्कृत एवं विमुक्त जनतंत्र की परिचायक है। आचार्य नेल्सने के शब्दों में, "कम्युनिज्म की जो जरम व्यवस्था है, यह मार्क्स के अनुसार भारत-निपट-सम्पन्न है। जनका सांस्कृतिक स्तर इतना ऊँचा हो गया है कि जन-साधारण स्वतः बिना किसी बाह्यी नियंत्रण के या राज्यदण्ड के मय के बिना ही सहयोग की भावना से प्रेरित हो समाज का संभालन करते हैं। जनतंत्र का यह जरम बिकसित है। जनतंत्र की प्रथम रच कर समाजवाद की कल्पना हो ही नहीं सकती। किन्तु मार्क्सवादी साधुनिक पूँजीवादी जनतंत्र के बटु भासोचक है। ट्राट्स्की ने कहा था कि, "जनतंत्र एक मिश्रित धीर निरर्थक स्वाय है। हम सर्वहारा-बर्ग के नाम में इसका प्रतिहार करते हैं। सोकर्सतीय पद्धति के द्वारा सत्ता हस्तगत करने की कामना निताम्तमेव ध्यर्ष है।" बेनिन बहवा था कि सर्वहारा का जनतंत्र तो नयीर का जनतंत्र है, न कि पूँजीपति का। ऐसे जनतंत्र में पूँजीपति के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसा जनतंत्र पूँजीवादी जनतंत्र से सौगुना अधिक जनतंत्र है। मार्क्सवादी सोकर्सतीय वैम्वहार (Democratic Centralism) में विरवाध करते हैं। वे राजनीतिक स्वातंत्र्य को इतना महत्व नहीं देते जितना कि धार्मिक स्वातंत्र्य की देते हैं। संवन्तिकाम में साम्यवादी राजनीतिक स्वातंत्र्य की उपेक्षा करना ही भेयस्कर समझते हैं, क्योंकि बिना इसकी उपेक्षा के पूँजीवादी शर्कों का किमारा सम्भव नहीं होगा। इस प्रकार नाबीवाद धार्मिक जनतंत्रवादी है, उपेक्षाइत मार्क्सवाद के, क्योंकि उसमें हिंसा और शानाग्राही के लिए स्थान है। किन्तु एक दृष्टि से मार्क्सवाद भी पाँचीवाद की उपेक्षा धार्मिक जनवादी है। गाँधी जी के राजराज्य में धमीर धीर नयीर दोनों रहुँगे जबकि मार्क्सवाद में धमीरी धीर परयीर का कोई जरण ही नहीं है। मार्क्सवाद गाँधीवाद की तुलना में समलता पर धार्मिक बस देता है। मार्क्सवाद पूँजीपति धीर पूँजीवाद वालों को बकुस नष्ट करना चाहता है, जब कि गाँधीवाद केवल पूँजीवाद का ही उन्मुसन चाहता है। पाँचीवाद में पूँजीपति सुरक्षित रहते हैं।

## सर्वोदय

पांभी जी की जीवन धारा को परिवर्तित करने में सर्वाधिक प्रभाव रस्किन की पुस्तक 'Unto this last' का रहा है, वैसा कि पांभी ने कहा था, "मेरा विश्वास है कि मेरे हृदय के गहनतम प्रदेश में जो भावनाएँ छिपी पड़ी थीं उनका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रन्थरत्न में देखा और इसलिए उन्होंने मुझे अभिभूत कर जीवन परिवर्तित करने के लिए विवश कर दिया।" उनकी दृष्टि में, "यह पुस्तक एक और आँसुओं से लिखी गयी है।" पांभी जी ने 'Unto this last' का अनुवाद 'सर्वोदय' नाम से किया। विनोबा पांभी जी के 'सर्वोदय' को मूर्त रूप प्रदान करने में रत्न हैं। सर्वोदय का अभिप्राय सभी के उदय, सभी के उत्कर्ष और सभी के विकास से है। सर्वोदय सिद्धान्त मानसंबन्ध और उसकी विभिन्न शाखाओं—समष्टिवाद, सबबाह और खेती-समाजवाद से सर्वथा विपरीत है; क्योंकि इनके द्वारा एकमात्र सर्वहाथ का ही हित-चिन्तन होता है और पूंजीपरि-वर्ग उन्मुख एक तिरस्कृत्य रूढ़ता है। सभी का हित-चिन्तन करने वाला यदि कोई दर्शन है तो वह सर्वोदय है—

सर्वेभ्यो सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु विरामया ।

सर्वे म्हाणि परयन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

विनायक्य समंतमद्र के शब्दों में "सर्वोपयामन्तु इरं निरन्तरं सर्वोदयं तीर्त्तविरं तवेव ।" किन्तु यह कुछ बुद्धिसंगत नहीं जान पड़ता कि सभी का उत्कर्ष कैसे हो सकता है। कुछ व्यक्तियों का भयना अधिकारी व्यक्तियों का उदय तो सम्भव है किन्तु सभी का समुदय हमारी बौद्धिक परिधि में नहीं आता। क्या इस दर्शन की आधार-भूमि वैज्ञानिक है? क्या यह व्यवहार्य और साध्य है? विनोबा का कथन है, 'सर्वोदय कुछ का या बहुतों का या अधिकतम का उत्पादन नहीं आया। हम अधिकतम के अधिक मुक्त से संतुष्ट नहीं हैं। हम तो केवल एक को या सबकी उंचे और नीचे की, सबत और निर्बल की, बुद्धिमान तथा बुद्धिहीन की मसाई से संतुष्ट हो सकते हैं। केवल सभी हम संतुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय उन्मत्त इस

उत्कृष्ट एवं सर्वव्यापक भावना को अभिव्यक्त करता है।' इस प्रकार सर्वोदय का मासरी प्रवृत्त है और उसकी नीति है समन्वय। "सर्वोदय की दृष्टि में जीवन एक विद्या भी है, एक कला भी। जीवमान के लिए प्राणिमान के लिए समाह, प्रत्येक के प्रति सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। Milk of human Sympathy, जीवमान के लिए सहानुभूति का यह समूत जब जीवन में प्रवाहित होता है, तो सर्वोदय की सभा में गुरभिपूर्व नुमन भिन्न उठते हैं।"

सर्वोदय, चाहे वह निर्धन और शोषितवर्ग हो यथा पूर्वीपति, सभी का उत्कर्ष चाहता है। विनोबा भी का कथन है कि मात्र सभी का यथा-पतन ही यथा है, यथा सभी के उत्थान को प्राक्स्यकता है। पूर्वीपति का नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत पहले हास हो चुका है; क्योंकि जगदी सम्पत्ति का मात्र शोषण, हिंसा और घन कपट है। जगदी आध्यात्मिक दृष्टि से उत्थान प्रतिरिक्त यथापति के परिहार से ही सखा है और यथापति व्यक्ति जिनके जीवन में कमी प्रभुमास प्राया ही नहीं है और जो सदैव यथापति के ही शिखर रहे हैं उन्हें नैतिक रूप से स्वकथित किया जा सकता है। इस प्रकार सर्वोदय यथा-सम्पन्न व्यक्तियों की आध्यात्मिक और शोष-बुद्धियों को नैतिक दृष्टि से समुन्नत करना चाहता है। सर्वोदय की तुलना न तो हम यथापतिवाहियों के अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख (The greatest good of the greatest number) से ही कर सकते हैं और न ही सामान्य हित की मासना से ही और न हस्तके के "जियो और जीने दो" (Live and let live) के सिद्धांत से ही, प्रत्युत सर्वोदय की आधार-नीति है—"जियो के लिए जियो" (Live to let live)। जो यथापति हैं उन्हें यथापति बनाया जाय (fitting the unfit to survive)। दुःख के शब्दों में,

‘दूर के करिबे जिह्न वन्दु।

पर के करिबे भाई॥” (मीतांजलि)

वीनोबा भी के मत में, 'अहिंसा का एक उत्थान अधिकतम के सुख के लिए प्रवृत्त करेगा और इस आधार की यथापति के प्रयास में मर मिटने के लिए नो उत्तर रहेगा। यथा वह यथा व्यक्तियों को जीवित रखने के लिए स्वयं मर जायगा और स्वयं मर कर शेष के साथ वह यथापति सेवा करेगा।"



इस प्रकार सर्वोदय की घुटनुमि आध्यात्मिक है। श्रम, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह आदर्शों की पवित्रता इसका मूलाधार है। जीवन का विकास और जीवन का अधिकाधिक विस्तार इसका पैदासूत्र है; सर्वोदय समाज-विरपेक्ष राष्ट्रवत् एवं ध्यानक मूर्त्यों की प्रविष्टा तथा आदर्श मूर्त्यों का परिहार करना चाहता है। इसका आदर्श वर्षाविहीन, शोषणविहीन एवं अति-विहीन जमान की रचना करना है। सर्वोदय-समाज में वैषम्य प्रतिस्पर्धा और वर्षाव्य सफल के लिए कोई स्थान नहीं होगा। अभावता, अज्ञेय एवं अज्ञेय ही जीवन का मुक्तक होगा। सर्वोदय-समाज में अति धनी आदर्यवृत्ताओं को अत्यन्त और धनी आदर्यवृत्ताओं को निमग्नित रखेगा। उसका आदर्श विनोबा के शब्दों में 'धन्यों की आदर्यवृत्ताओं का ध्यान रखो और अपनी ऐसी कोई आदर्यवृत्ता प्रस्तुत नहीं करो जिसके कारण धन्यों का अनीकता हो।' सर्वोदय में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समस्याओं का प्रश्न ही नहीं उठता है। जो भी निर्लज्ज हूँ, अद्वेष की अपेक्षा मरिचक से हूँ। सर्वोदय की मान्यता है, "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।" "जो तोड़ें नहीं हूँ, काहि बोध नू हूँ।" "अपार का अभाव अपार से देने में, अत्याचार का प्रतिफल परत्याचार से करने में, सून के बदले सून बढ़ाने में कील-ही कांति है? कांति है दुरमन को सते समयों में, कांति है अत्याचारों को अमा करने में, कांति है धिरे हुए को ऊपर बढाने में। और इस अति का साधन है—हृदय-विवर्तन, जीवन-सुखि आनन्द सुखि और प्रेम का अधिकतम विस्तार।"

### सूदान

विनोबा बापू जो के आन्दोलित उत्तराधिकारी हैं, वे अपने सूदान-आन्दोलन के कारण अर्थात् लोकहित हो गये हैं। वे सूदान के द्वारा भूमि-समस्या के समाधान का प्रयास कर रहे हैं। सूदान-विषयक विचार उनके अस्तित्व में कैसे प्राये? क्या उनकी चिन्तनधारा की घुटनुमि वैज्ञानिक है या वह अंधवश्याय का प्रतिफल है? इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें इसकी ऐतिहासिक घुटनुमि पर दृष्टिगत करना होगा। जब टर्नबाना में भारतीय साम्यवादिनों ने भूमिपरियों के विरुद्ध हिंसामयक विद्रोह किया और भूमिगत कार्यवाहियों ने अत्यन्त बाराण किया तो विनोबा मुक्त बर्तक बने नहीं रह सके। सन् १९२१ में विनोबा अहिंसामयों के सर्वोदय-सम्मेलन से लौटते समय जब पंचमाली में वे ही एकत्र बनसुद्ध में से कुछ भूमिहीन हरिजनों ने हमसे आचना की कि हमें कुछ भूमिगत कोलने-कोलने के लिए मिल जाय तो हमारी जीविता की समस्या हल हो

बाम। बिजोबा ने सबसे बड़ा तुम्हें कितनी पनीन चाहिए। पत्नी एक, उत्तर मिसा। बिजोबा बिचार मग्न हो गये कुछ दण्ड के लिए धीरे जन-समूह से प्रश्न किया, 'माइयो, क्या आप में कुछ ऐसे भी हैं जो अपने माइयों को भूमि देते जिससे कि वे कुलों न मर जायें। वे बेबस ८० एकड़ भूमि चाहते हैं।' एक जनसमूह में कुछ बाल के लिए विस्तार्यता व्याप्त हो गयी। किन्तु प्रचलन एक सहाय्य भूमिपति के अधीन से, जिसने कहा—“मैं एक ही एकड़ भूमि दान करता हूँ, जननीय अनुप्राणित हो ली। बिजोबा को भूमि-समस्या के समाधान का सूत्र मिला गया। १८ अप्रैल १९३१ को इस भूमिपति रामबन्धु रेड्डी ने एक इलाके में सिद्ध कर सुदान को पन्न दे दिया। बिजोबा जहाँ कहीं गये यही कहते हैं, “यदि तुम्हारे पाँच पुत्र हैं जिनके बीच तुम भूमि बाँट रहे हो तो मुझे भी अपना छोटा पुत्र समझे धीरे को मरा भाग है उस मुझे दे दो। बिजोबा माँ के सख्त ३ करोड़ एकड़ भूमि का है जिसके लिए उन्होंने देश के विभिन्न क्षेत्रों का परिभ्रमण किया है। यद्यपि वे धनी अपनी सत्यपति में सख्तीभूत नहीं हो सके किन्तु बिजु सांस्कृतिक आन्दोलन का उन्होंने सूत्रपात किया है, मानव इतिहास में सर्वथा एक नवीन प्रयोग धीरे वह अद्वितीय है। बिजोबा भूदान के द्वारा धार्मिक शक्ति का बीजारोपण कर रहे हैं। इस शक्ति की यधि बोनी हो सकी है, किन्तु इस नवीन शक्ति का प्रयोग कर उन्होंने भारत में विचारलक्ष शक्ति की सम्भावनाओं को कम कर दिया है। भूदान ने न केवल माइयों को प्रसूत विवेकियों को भी समुचित रूपेण आकृष्ट किया है। हमारे को संख्या में सर्वोपरी कार्यकर्ता इस आन्दोलन के सान्त्वयित्व प्रयत्नरत हैं। उनकी परमात्माओं ने एक ऐसा नैतिक आशावरण पैदा किया है जिसने व्यक्तियों को इस विद्या में सोचने के लिए विवश किया है। परमात्मा का यह क्रम प्रभावमति से चल रहा है। इसके द्वारा बर्ग विभेद के स्थान पर बर्ग-समन्वय को प्रतिष्ठा हुई है। विस्तरेह कितनी बर्गिय संवेदन्य की परिभाषित इस आन्दोलन के द्वारा हुई है किसी अन्य आन्दोलन प्रकाश बस या संघ से नहीं हुई है।

भूदान-आन्दोलन केवल भूमि विवरण का ही एक कार्यक्रम नहीं है, यद्यपि इसका मुख्य लक्ष्य व्यक्तियों की कितनपारा धीरे उनके परिश्रम में एक सांस्कृतिक परिवर्तन लाना है। जिनमें मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी है। “यह एक नवीन सामाजिक वर्तन है। यह एक नवीन मानवता तथा एक अभिनव सम्प्रदाय का सूत्रपात है।” यह एक नैतिक आन्दोलन है जिसके द्वारा व्यक्तियों में यह भाव भरना है कि ‘सब भूमि बोपाव की।’ इसके प्रति समस्त धीरे अधिकार-सिद्धा क्या ?

यदि इसका लक्ष्य एकमात्र भूमि-वितरण ही होता तो यह कार्य बड़ी सरलता से सरकार द्वारा जनोपकारी कानून जैसे कानूनों द्वारा सम्पन्न हो सकता था। किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या त्याग की भावना कानून द्वारा संभवित की जा सकती है। किन्तुवा के शब्दों में, 'मिलवैहू कानून के द्वारा प्रतिरिक्त भूमि को छोना जा सकता है, किन्तु क्या उससे मोह तथा भ्रमिमान के बन्धन बट जाएँगे ? क्या हन कानून क द्वारा मनुष्य की प्रहंकार का परिस्पाग करने, अन्धिन की भावना को त्यागने तथा त्याग वा बीचन-यापन करने और प्रसोनन के परिस्पाय के सिर् बाध्य कर सकते हैं ? क्या यह कानून द्वारा सम्भव है ? मिथित रूप से ये ऐसे कार्य हैं जिन्हें मनुष्य स्वेच्छा से ही कर सकता है।' 'यदि तुम्हारा हृदय परिवर्तित हो जाता है और तुम अपनी भूमि को स्वत ही उन अपने से कम मान्यवान् व्यक्तियों में विनक्त करने लपो, एक कंबूस की भाँति नहीं प्रत्युत प्रीशार्य और प्रेन के साम, त्रिस भाँति एक पिता अपने पुन को बेठा है; यदि तुम उनकी सेवा करने लपो और उनके सुख-दुःख में भागीदार बन जाओ तो हमारे प्राधुनिक समस्त रोगों की समाप्ति हो जायगी।' इस प्रकार से मूदान प्रबानत हृदय-परिवर्तन की एक पद्धति है। इसके द्वारा हृदय की एकता प्रबिहित होती है। अहोप भयवा एकता बवान् नहीं लारी जा सकती। यह तो हृदय की वस्तु है। शक्ति बाध बना सकती है, मिथ और सहयोगी नहीं। यह मनुष्य के घन्तस्तर में स्त् वृत्तियों को पाप्रत नहीं कर सकती 'यह उनके बन की छोण सकती है,' किन्तु उन्हें प्रग्यासी के रूप में काम करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।' मूदान-घान्धोसन केवल बड़े मूतियों के मानस को ही परिवर्तित नहीं करता बरन् निर्बन और छोटे मून्बामियों में भी स्नेहानुर पैदा करता है।

मूदान-घान्धोसन उस प्रधिकार भावना पर प्रबस प्रहार करता है जिसके प्रबीन बड़ा भयना छोटा मूतित हाता है। यही कारण है, विनावा से न कवच बड़े मून्बामियों को ही जमीन देने के सिर् कहा बल्कि उन भूमिगतियों से भी याचना की त्रिके बाध ६ और ७ एकद भूमि को। अत् हृदय-शुद्धि बड़े और छो सभी क सिर् है। हृदय परिवर्तन की पद्धति सर्व-म्यानी है। गरीब भी लय प्रधिकार-सत्ता का परिस्पाय करे उसके बरीनूत प्रमोर है। इस प्रकार मूदान एक ऐसा बातावरण पैदा करता है जिसमें परस्पर स्नेह, सहयोग और समर्पस हो। अतः 'इसका प्रामार और स्वकन सांस्क्रतिक है। यह समस्या सांस्क्रतिक समस्या है। इसमें नैतिकता का समावेश है।' भूमि पर सभी का स्वाधिक ली

प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार ईश्वर-श्रद्धा जस, बामु पीर प्रभय पर है। मूदान का मूल सिद्धांत यह है कि जो जोशता है बरतो उसी की हा। किन्तु यह भी अधिक बमीन का उपनोग नहीं करे। जिसकी जसे बाबरयक है उसी ही रखे पीर शेष समाज को धर्मित करे। इस प्रकार मूदान व्यक्तिगत सम्पत्ति पर प्रहार करता है किन्तु उसका उन्मूलन नहीं धीर नैतिक मूर्खों को व्यक्ति में समाविष्ट करता है।

## सम्पत्ति-दान

मूदान से ही सम्पत्ति-दान का जन्म हुआ। मुम्बईनों को बमीन तो किसी किन्तु उसको बोलें किसे, बीज नहीं से भाए धीर नार तथा सिचार्ड के तापनों की व्यवस्था कैसे हो? बिना धन के इस समस्याओं की परिपूर्ति नहीं हो सकती थी। अतः बिनोबा ने पूर्वापत्तियों से धन की याचना की- बर्षाधिक धन पर एकाधिकार तो समाज का है। पूर्वापत्ति तो केवल प्रत्यासी (Trustee) हैं। ग्रांभी जी का संरक्षण सिद्धान्त (Theory of Trusteeship) बिनोबा द्वारा बार्थान्वित हुआ। सम्पत्ति-दान में संघ का निराकरण, बीबिका का शुद्धीकरण और अनु-त्याकर व्यवहारों का निराकरण सम्मिलित है। सम्पत्ति दान कोई भिदा-भूति का प्रतीक नहीं है, यह तो बस एक मात्वा का प्रकटीकरण है कि जो कुछ भी धन है वह तो समाज व्यवस्था ईश्वर का है, जिसका अनुपयोग अनिर्हीनों के सम्मताई होना चाहिए।

## ग्रामदान

ग्रामदान मूदान का विकसित स्वरूप है। यह मूदान की उत्तरावस्था का प्रतीक है। ग्रामदान के द्वारा समस्त ग्रामीण भूमि मूदान में दे दी जाती है। भूमिपति धरती समस्त भूमि का परिहार कर देता है। वह समस्त सम्पत्ति भूमि समाज के एकाधिकार में आ जाती है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का विनाश हो जाता है और ग्रामवासियों में परस्पर नवीन सम्बन्ध स्थापित होते हैं। ग्रामदान का पाँच एक बड़े परिवार में परिचलित हो जाता है। पाँच के सभी व्यक्ति एक-दूसरे के मुक्त-मुक्त के सहयोगी हो जाते हैं। विभिन्न फेरोंबाने अपना कार्य करने धीर इन्हें जो बाने की बार्थिक उपज होयी उसमें से हिस्सा मिलेगा। सभी एक सामान्य जीवन-यापन करते हुए एकज की भावना से प्रेरित-प्रेरित होंगे। बिनोबा का मत है कि व्यक्तिगत स्वामित्व जब सामाजिक स्वामित्व में परिवर्तित हो जाता है तब उसकी सुरक्षा

धीरे धीरे बढ़ जाती है। संपूर्ण समाज का संरक्षण हो जाता है। विनोबा का कथन है, 'प्रत्येक व्यक्ति अपना सर्वस्व समाज को समर्पित कर देना और समाज उसकी सुरक्षा करेगा। तोप समझते हैं कि ग्रामदान एक महान् त्याग है। ग्रामदान त्याग नहीं बल्कि सजीवन के लिए अपनी संरक्षित का अनुपयोग है।' ग्राम-समाज बच्चों की शिक्षा तथा विवाह के व्यय को भी व्यवस्था करेगा। वर्ष व्यवस्था के लिए एक ग्रामसभा होगी जिसके उठने ही संभव होंगे जिसने कि उस वर्ष में परिवार होंगे। प्रत्येक परिवार से एक प्रतिनिधि होगा। इसकी बैठक मास में एक बार हुमा करेगी। ग्राम-सभा १०-१२ सदस्यों वाली एक समिति का निर्माण करेगी जो वर्ष के प्रतिदिन काननों का सम्पादन करेगी। समिति के निर्णय ग्रामसभा द्वारा स्वीकृत होने आवश्यक होंगे। इसकी बैठकें भी सीधे ही होगी। यहां कोई चुनाव का प्रश्न नहीं होगा, क्योंकि सभी परिवारों का ग्राम-सभा में प्रतिनिधित्व होगा। अतः यहां राजनीतिक दलों का प्रभाव होगा और वर्ग-विभेद, जाति-विभेद तथा शोषण के लिए कोई स्थान नहीं होगा। राजनीति लोक-नीति में परिणत हो जाएगी। विनोबा का कहना है, "ग्रामदान और ग्रामसभा का लक्ष्य व्यक्ति-उत्पादन में वृद्धि करना नहीं है। यह लक्ष्य ही नेकत प्रसारणक होगा। इसका प्रमुख लक्ष्य मानव-हृदय में सम्पूर्ण समाज के प्रति स्नेह की उत्पत्ति करना है।" "ग्रामदान वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के मध्य द्वैत भाव को समाप्त कर देगा।" इस प्रकार ग्रामदान व्यक्तियों को एक समितिक दृष्टि या एक नवीन लक्ष्य प्रदान करने का प्रयास कर रहा है।"

## राज्य और राजनीति

सर्वोत्तम समाज में एक विकेंद्रित राज्य के लिए कोई स्थान नहीं होगा। राज्य अपने प्राथमिक स्वरूप को छोड़ देगा। सर्वोदयी समाज विकेंद्रित होगा। छोटे छोटे स्वशासित गाँव होंगे जो धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से साम्यिक विकेंद्रित होंगे। राजनीति उन्हें दूषित नहीं कर पाएगी, क्योंकि राजनीति को परिणति लोक-नीति में हो जाएगी। यहां सत्ता का, जो राजनीति की आधार-नीतिना है, अस्तित्व ही नहीं होगा। राजनीति में सम्प्रदायवाद भाषावाद और जातिवाद का बाहुल्य है, किन्तु लोक-नीति में इन दूषित तत्वों के लिए कोई स्थान नहीं है। न विकेंद्रित राजनीति ही लोक-नीति है। 'राजनीति को, सत्तावाद को बिखेर देने से सत्तावाद विकेंद्रित हो जाता है। केवल विकेंद्रित सत्तावाद का महत्त्व लोक-नीति नहीं।

असते लोकनीति का प्राबुधान नहीं होता। यह केवल विवेक्षित सत्तावाद है।" बुभुक्ष-प्रणाली के द्वारा सत्ता की स्वर्णों का विकेंद्रीकरण होता है, सत्ता का विकेंद्रीकरण नहीं होता। 'वाक्याही की बुभुक्षारें कम बचसेवी? जब हमारी प्राथमिक इकाई, राजनीतिक इकाई धीरे प्राथमिक इकाई इन तीनों में कम से कम घंटा रहेगा। धीरे दूसरी बात यह होगी कि समाज सार-का-सार उल्टा रहने का होगा। उसमें मानिक कोई नहीं रहेगा। इसके लिए प्राथमिक क्षेत्र में हमारा पहला कदम होना—अनुपादक की मासकियत का विचर्जन, दूसरा कदम होगा उत्पादक की मासकियत की स्वात्मा धीरे तीसरा कदम होना—स्वामित्व का निराकरण। ऐसा जो उत्पादकों का समाज बनेबा यह सार-का-सार उल्टा रहने का होगा उस समाज में स्वर्णपूर्णता की दृष्टि से विकेंद्रीयकरण होगा धीरे उस विवेक्षित समाज में प्राथमिक धीरे प्रशासन, दोनों सम्बन्धित होने। प्रशासन का संश्लेष बस्तु निर्यन्त्र होगा, व्यक्ति-निर्यन्त्र नहीं। यह प्रशासन से अनुशासन की धीरे जाने का कदम है। प्रशासन कम होता जना जामना अनुशासन बढ़ता जाता जाएगा।" "लोक-नीति का आधार है कानून को लोक-सम्मति के रूप में विकसित करना। कानून के पीछे लोक-सम्मति का अधिष्ठान आवश्यक है।" लोक-नीति में सर्वसम्मति या एकमत आवश्यक है। लोकसत्ता का अधिष्ठान एक शक्ति नहीं, लोक-सम्मति है। जहाँ धर्म मात्रा में भी एक-शक्ति के आधार पर राज्य-सत्ता निर्भर हो, वह जन-शक्ति का अंतिम अधिष्ठान अत्याग्रह ही हो सकता है।" इस प्रकार सर्वोच्च लोक-नीति का पक्षपाती है। राजनीति में जहाँ शासन मुख्य है, जहाँ लोकनीति में अनुशासन। राजनीति में जहाँ सत्ता मुख्य है, जहाँ लोकनीति में स्वतंत्रता। राजनीति में जहाँ निर्यन्त्र मुख्य है, जहाँ लोक-नीति में संवम। राजनीति में जहाँ सत्ता की स्वर्णों प्राथमिक की सर्वां मुख्य है जहाँ लोकनीति में कर्तव्यों का आधार। सर्वोच्च का कदम यही है कि शासन से अनुशासन की धीरे, सत्ता से स्वतंत्रता की धीरे, निर्यन्त्र से संवम की धीरे प्राथमिक प्राथमिकों की स्वर्णों की धीरे से कर्तव्यों के आधार की धीरे बढ़े।" कांट ने भी प्राथमिकों की धर्मशा कर्तव्यों के आधार पर प्राथमिक बच दिया है।

### सर्वादय का मूल्यांकन

महात्मा के कथनानुसार, 'इस प्रकार मुहाल नये समाजकी सन्धि के लिए एक प्राथमिक तीर्थ-यात्रा बन जाता है।' "जब जिनोबा ने इस यात्रा को प्रारम्भ

किया तो अधिकांश व्यक्तियों की यह एक नवीनो वा एकमात्र धारणावाद लगा । विप्लव पीछे बर्षों में इस आन्दोलन की शक्ति एवं शीघ्र ने इसकी व्यावहारिक सम्भावनाओं को सिद्ध कर दिया है । जिस भाँति बर्षों का बहुत बड़ा भाग भूगम में उपबन्ध हुआ है और मुमिद्दीनों में एकत्र विभाजन हुआ है जिस भाँति शमील मानव-समाज इससे विमुक्त हो उठा है और जिस भाँति इसके द्वारा व्यक्तियों में सहयोग, स्नेह संवेदना और बन्धुत्व के भाव संवर्धित हुए हैं, उससे स्वयं विषय में समस्त संशयों का निवारण हो गया है ।' चाहे हमें इस ध्येय तक पहुँचने में एक बर्ष लगे या अधिक या मानवजाति को इसके लिए अभिहित काल तक प्रतीक्षा रख पड़ना पड़े, किन्तु उसने मानव का जीवन-समस्याओं के समाधान करने की कुञ्जी दे दी है और इस अत्यन्तकारुण्य युग में एक आशा-हार जोल दिया है ।' मसाली की इस आशावादिता और एक पिछा के बाबदूर, सर्वोदय दर्शन की पयसिस्मेलु बट्ट आलोचना हुई है । चाहे समाजवादी, साम्यवादी या राष्ट्रीय प्रकाशकन से इसके प्रशंसक रहे हों, अग्रकटक ने इसकी व्यावहारिकता पर संशयकन रहे हैं । जब विनोबा ने मूकाल के सम्बन्ध में अपनी ऐतिहासिक पर भाषा प्रारम्भ की तो देश के विभिन्न क्षेत्रों में एक हलचल-सी मच गयी । बुद्धिवादी से लेकर साधारण कार्यकर्ता तक इसके भीक्षित्य अनौचित्य के सम्बन्ध में विचारमग्न हो गया । अथपि इस देश में साधु-धर्मों का कभी अभाव नहीं रहा । राजसीमता, स्नेह और दया का प्रबलन प्रत्येक काल में होता रहा है । मसहाय और दौल-बुद्धियों के प्रति सहानुभूति-उदरार्थय सब-सम्मान व्यक्तियों को सर्वत्र प्राप्त किया जाता रहा है । हिन्दू-धर्म और इसकी विभिन्न शाखाओं के धार्मिक धर्म्य इन उपदेशों से परिपूर्ण हैं । धर्म की परम्परा इस देश का अथवा वैशिष्ट्य है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह व्याप्त है । विनोबा ने धार्मिक धर्म्य से कटाहते हुए बर्षों को देखा, समय की गति की पहचाना और परम्परागत धर्म-बुद्धि का आयत से क्या उसको मूकन पुन दे, एक नया मूक दे दिया । विनोबा ने बर्ष-समन्वय को प्रचारित कर मार्क्स द्वारा प्रतिपादित बर्ष-संघर्ष पर कटाघी बोट की । अतः विनोबा के इस आंदोलन से किन्त्यत्र मार्क्सवादी संवेत हो गयी । समाजवादियों में भी बर्ष-संघर्ष की सिद्धान्तिक पुनर्गुमि को लेकर अन्तोर किन्त्यन हुआ । स्वर्गीय आचार्य अलेखदेव और डा० रामनोहर सोहिया बर्ष-संघर्ष के प्रबल समर्थकों में बने रहे, किन्तु अग्रजशाठनायकण बर्ष-संघर्ष को अंधीकार करते हुए बर्ष-स्नेह पर बल देते हैं । वे अत्र पूर्णतः सर्वोदयी हैं । मार्क्सवादी

यही कहते रहे हैं, यदि भूदान के द्वारा बिना किसी बर्न-संपर्प या हिंसा के धार्मिक साम्य की प्रतिष्ठा होती है, तो यह सर्वसुन्दर है, किन्तु इसकी उपादेयता में सबकी संतुष्टता सबैत बनी रही है।

एक विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या हृदय-परिवर्तन सम्भव है उस बर्न का जो पीड़ियों में शोषक रहा है? दान और अधिकार को मिला बस्तुएँ हैं। यदि सबे भूमि मोपास की या समाज की तो यहाँ दान का प्रश्न कहाँ छठा है? यह तो समाज का अधिकार ही क्या। फिर दान में यह दान और हीय भावना का समावेश है। दान व्यक्ति के स्वामित्व का जोट पहुँचाता है, इसके पुनर्प्राप्त को विनियोजित है, उसकी प्रकर्मण्यता का प्रीक्ष्य सिद्ध करता है और एक इष्टित प्रकृति को बम देता है। विनोबा जी कहते हैं कि भूदान केवल धार्मिक समस्या का हल नहीं है, प्रत्युत मूलमूल प्रश्न है नैतिक बाधाकरण पैदा करने का। उनका विश्वास है कि मनुष्य स्वभाव से भसा और छिष्ट है, अतः हृदय-परिवर्तन क्रिया का संकेत। भूदान के प्रीक्ष्य को सिद्ध करने के लिए वह भी उच्च प्रस्तुत किया जाता है कि विनोबा को पर्याप्त भूमि और सम्पत्ति मिली है। उनके वर्तन की सफ़लता इससे प्रकट होती है। जहाँ तक स्वभाव का प्रश्न है, मनुष्य में सच्चे और सच्चे दोनों प्रकृतियों का समावेश है। वह सच्चे प्रकृतियों का शीघ्र ही छिष्ट हो जाता है। फिर, ऐसा व्यक्ति जो धर्म बनपति का उपयोग करता है यदि उसमें कुछ धार्मिक सहायता कर देता है तो हम उसे हृदय-परिवर्तन नहीं कह सकते, क्योंकि इसकी दानप्रकृति ही उसे परम्परागत मित्री है। प्रत्येक व्यापार के यहाँ दानकाता बना रहता है। उनका यह विश्वास कि जो पूर्ण बर्न से संश्लि की बनी है, उसमें से कुछ दान भी धार्मिक है ताकि वह पाप का भागी नहीं बने। यह बर्न-मय है। इसके प्रतिरिक्त, विनोबा के भूदान में सत्कारीय दान और सरकारी षण की प्रकृतयः सहायता रही है। विभिन्न प्रकार एक पूर्णपति हवापों, साजों की बनपति से काप्रेस की सहायता करवा है, यही भावना भूदान-समर्पण में रही है। यही नहीं, जो भूमि भूदान में मिली है या तो वह बँबर है या विनायकता या भूतविहीन। विरुद्धा भी इस समर्पण में एक कररु रही है। भय नै मी इसमें मुख्य बाम किया है—सहिष्णु और प्रेम से भूदान करो तो प्रभुता, साम्यता कानून और हिंसा से बनीय कर बँटवाप होकर ही रहेगा। बनीहरियां यह, बड़े-बड़े उन्ने और एकाके पने और धन विनास सुखएक के स्वामियों, निम्न-मासिकों और पूर्णपतियों की बायी है। हाँ, कुछ ऐसे भी उदाहरण मिल सकते हैं जिन्होंने स्वेच्छा से भूमि का दान किया है। किन्तु क्या



इस सोच से तय्यों को एकत्र कर मानव-समाज में प्रतिष्ठित इस धार्मिक वेदम्य को दूर किया जा सकता है ? ग्यारह वर्ष में जो भुवाल, सम्पत्ति-दान और धामदान की स्थिति रही है उससे इनके व्यावहारिक पक्ष की सीद्धिपता की परिपुष्टि हो जाती है। जैसे-जैसे धार्मिक वेदम्य बढ़ा है जैसे-जैसे वर्ष विनेद और सुदृढ़ हुमा है। इस सर्वोत्तम वर्तन आदर्शमय है, व्यावहारिक नहीं। भुवाल असम्भव है, जबकि धामदान सम्भव हो सकता है, क्योंकि इसमें भूमिपति कुछ छोटा नहीं। यह तो कसो के सार्वभौम समाज के समान है। किन्तु धाम धरादनीतिक एवं राज्यविहीन होवे, यह भी बुद्धिमत्त नहीं है। सेमिन के भी मार्गों द्वारा प्रतिपादित राज्यविहीन समाज को प्रतिष्ठा को परिष्करण का विषय कह कर अपने को काल्पनिक ( Utopian ) बहने जाने से बचा लिया है। सत्ता एवं स्वार्थ से विहीन प्रशासन सचार्थों के जोरक ही सकते हैं, किन्तु व्यवहार में यह असम्भव-सा है। सत्ता और स्वार्थ की मात्रा घट सकती है। यह परिमाप्यारमक मात्र ही सदिब रहा है किन्तु विपुष्टि व्यावहारिक और कल्पनातीत है। प्लेटो का धार्मिक राजा जैसे बिन्दु एवं अनुशीलन का विषय यह बसा है, जैसे ही विनोबा की भी राज्य एवं कल्पित समाज की कल्पना बौद्धिक बर्षा का विषय रह जायी।



## प्रभुसत्ता (Sovereignty) और अद्वैतवाद (Monism)

वस्तुतः प्रभुसत्ता राज्यशास्त्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारणा है और बिना किसी शक्यता के यह सत्य है कि प्रभुसत्ता शब्द राज्यशास्त्र में नहीं रखा है। प्रभुसत्ता शब्द बिलोपबी (Willopghby) के शब्दों में, 'राज्य-विज्ञान में प्रभुसत्ता शब्द नहीं है जिस पर विचारकों में इतना अधिक विचार-बैकान्य रखा हो। जिस प्रकार प्रभुसत्ता में 'प्रभु' शब्द है, उसी प्रकार राज्य-विज्ञान में प्रभुसत्ता शब्द है।' लॉर्ड ब्राइस (Lord Bryce) ने भी इस शब्द को अत्यधिक विचारप्रस्तुत स्वीकार किया है। सम्भवतः इस विचारप्रस्तुता के कारण ही कुछी होकर मास्को ने कहा था कि यदि प्रभुसत्ता के विचार का परिष्कार कर दिया जाय तो राज्यशास्त्र को एक स्थायी नाम होगा। प्रभुसत्ता शब्द प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है और इन अर्थों के मध्य अन्तर स्थापित करना कोई सज्जन कार्य नहीं है। 'सोवरेनिटी' (Sovereignty) शब्द की रचना लैटिन भाषा के शब्द का 'सुपरेन्स' (Superantus) से हुई है, जिसका अर्थ होता है परमेश्वर या सर्वोपरि। इस प्रकार प्रभुसत्ता का अर्थ राज्य की सर्वोपरि सत्ता से है। यह सत्ता आन्तरिक एवं बाह्य दृष्टि से सर्वोच्च है।

प्रभुसत्ता राज्य का एक आवश्यक तत्त्व है। यही तत्त्व ऐसा है जो राज्य तथा अन्य मानव-समुदायों में आचारानुष्ठान प्रकट करता है। किसी व्यक्ति परिपक्व या अल्प-समुदाय (निर्वाचक मण्डल) को प्रत्येक पूर्ण स्वतंत्र राज्य में सामूहिक इच्छा को वैधानिक रूप में अभिव्यक्त करने और उसका परिपालन करने की सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती है। वह आदेश देने और उसके पालन करने की शक्ति से सम्पन्न होता है। किन्तु ऐसे अन्य समुदाय भी हो सकते हैं जिनका किसी संघटन हो और जो अपनी सामूहिक इच्छा को निजों के हित में व्यक्त करते हों। पर ऐसे मानव-संघ सम्प्रभुतावादी नहीं होते। प्रत्येक राज्य में एक ऐसी सत्ता अन्वय अवस्थित होती है जो राज्य में निवास करने वाले

व्यक्तियों को अपनी भासा के परिपालन के लिए विवश कर सके। प्रभुतावादी राज्य की छोड़कर अन्य कोई भी समुदाय पुलिस, जेल और न्यायालय वैसे संस्कार नहीं रखता। राज्येच्छा ही सर्वोपरि है, और उसके निर्णय ही अन्तिम निर्णय होते हैं जो सर्वमान्य होते हैं।

सुरे १४ को कहता था, "राज्य क्या है? मैं ही तो राज्य हूँ।" उसके इस कथन का अर्थप्रथम यह था कि जब राज्यों का शासन मध्यकाल में एकदम था तो राज्य प्रभुसत्ता का प्रकटीकरण राज्य द्वारा होता था। वह अपनी प्रत्येक इच्छा को कानून बनवा राजशा के कान में प्रस्तुत कर सकता था और सभी उसके परिपालन के लिए बाध्य थे। प्राचीन काल में प्रभुसत्ता श्रेणीतन्त्र (Aristocracy) में ही विद्यमान यह साक्षात्कृत है जन-शाही में।

## राज्य के दो पहलू

प्रभुसत्ता के दो पहलू होते हैं धान्तरिक और बाह्य। राज्य-प्रभुसत्ता राज्य के धान्तरिक एवं बाह्य दोनों क्षेत्रों में अन्तर्निहित एवं अन्तर्गत होती है। धान्तरिक क्षेत्र में उसकी सत्ता सभी के लिए शिरोधार्य है और उसका कोई अस्मरण नहीं कर सकता। अधिकारों एवं अनुबन्धों का स्रोत राज्य ही है। यही कारण है, व्यक्तिगत अधिकारों और अनुबन्धों को राज्य के विरुद्ध विहित-मात्र भी सत्ता नहीं है। विधान की 'श्रेष्ठता अथवा निरुद्धता' विधान के परिपालन में कोई अक्षरों अन्तर्गत नहीं करती। प्रत्येक नागरिक राज्येच्छा के परिपालन के लिए बाध्य है। राज्य अन्तर्गत एवं अन्तर्गत शक्ति से अन्तर्गत है, किन्तु वह इस अन्तर्गत शक्ति अन्तर्गतता का प्रयोग नहीं करता। वह अपनी अन्तर्गत शक्ति दूसरों को भी दे देता है। किन्तु इसका अन्तर्गत यह नहीं है कि राज्य द्वारा प्रत्येक शक्ति मानव के निजी अधिकारों को अन्तर्गत करती है। जिस प्रकार शक्ति अन्तर्गत की जाती है, सभी प्रकार उसे नीटाला भी पड़ता है। राज्य सर्वोपरि है। वह शासकों से अन्तर्गत है। शासक केवल सभी कार्य कर सकते हैं जिसे राज्य चाहता है। राज्य द्वारा अन्तर्गत अन्तर्गतों में जब किसी प्रकार के परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो अन्तर्गत राज्य ही को प्रेरित करते हैं। इस प्रकार धान्तरिक विषयों में राज्य ही शक्ति अन्तर्गत एवं अन्तर्गत है। राज्य में स्थापित कोई मानव-संघ और व्यक्ति राज्य-अधिकार से न तो विमुक्त ही सकता है और न उसकी भासा को अन्तर्गत ही कर सकता है। किसी भी प्रकार का इस पर कोई वैधानिक विरोध नहीं है। राज्य में कोई अन्तर्गत

सत्ता इसके समतल नहीं है। राज्य प्रभुसत्ता-सम्पन्न होते हैं, जब कि मानव-सर्व प्रभुसत्ता-विहीन होते हैं।

बाह्य प्रभुसत्ता का अर्थ 'स्वाधीनता' शब्द से भरी भ्रांति प्रकट ही जाता है। इसका तात्पर्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक राज्य के, बिना किसी अन्य राज्य के हस्तक्षेप के, अपनी नीति का निर्धारण एवं कार्यान्वयन में पूर्ण स्वतंत्रता से है। प्रत्येक राज्य अन्य राज्यों से अतिरिक्त है। उस पर बाह्य एक मात्र स्वेच्छा से है। निस्संदिग्ध परिभाषा शिप्यों में राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय विधानों एवं शिपियों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। किन्तु इसके उनकी प्रभुसत्ता किंचित्मान भी प्रभावित नहीं होती क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय शिपियों एवं विधानों की स्वीकृति प्रदान करने अथवा न करने में राज्य पूर्णतः स्वतंत्र हैं। यदि कोई राज्य अपने अधीन किसी उपनिवेश को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करता है, तो न तो उस राज्य की प्रभुसत्ता में किसी प्रकार का अभाव ही जाता है और न वह विभक्त ही होती है। यदि वहीं प्रभुसत्ता विभाजित है तो वहाँ एक राज्य न होकर अनेक राज्य हैं। विभाजित राज्य प्रभुसत्ता पूर्णतः अपरिचित एवं अस्पष्ट होती है। राज्य-प्रभुसत्ता का अन्त राज्य के अन्तर्गत ही स्थित करता है।

## प्रभुसत्ता की परिभाषा

विभिन्न विचारकों की दृष्टि में प्रभुसत्ता की परिभाषा इस प्रकार है—(१) "नारणिकों तथा प्रजा पर कानून से अमर्यादित राज्य की सर्वोपरि सत्ता का नाम प्रभुसत्ता है। (बोरो)"

(२) "जिसकी शब्दा का अस्तित्व नहीं किया जा सकता और जिसके द्वारा किसी अन्य के अधीन नहीं होते, उसी सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का नाम प्रभुसत्ता है।" (सीटियस)

1 "It is the supreme power over citizens and subjects unrestrained by laws," (Bodin)

बोरो सर्वप्रथम राजनीतिक विचारक वा जिसने प्रभुसत्ता शब्द का प्रयोग किया।

2 "Sovereignty is the supreme political power vested in him whose acts are not subject to any other and whose will can not be overridden," (Grotius)

(३) "राज्य के सभी व्यक्तियों और मानव-समुदायों पर जो भौतिक निर्भरता और धर्म शक्ति है, उसीकी प्रमुखता रहते है।" ( बर्देस )

(४) "राज्य की परमेश शक्ति ही प्रमुखता है।" ( बिचोबी )

(५) झाबी— 'प्रमुखता राज्य की प्रादेश देने वाली शक्ति को रहते है, वह राज्य के इन में संकलित सम्पत्ति है, उसे राज्य प्रदेश में प्रवर्धित समस्त मानवों को निर्वाह इन से प्रादेश देने का अधिकार है।'

(६) सर लेजरिक बोवर्क— 'प्रमुखता वह शक्ति है जो न तो प्रत्यापी है न किसी के हाथ की यही, न किसी ऐसे नियमों के अधीन किन्तु वह बल न सके और न दुष्पी पर किसी अन्य शक्ति के समान बतलवायी है।'

(७) ब्लैकस्टोन— "प्रमुखता वह सर्वोच्च सुनिवार, निरालेख और अनियंत्रित शक्ति है जिससे राज्य की सर्वोच्च शक्ति निराम करती है।"

(८) बर्दिनेक— 'प्रमुखता राज्य का वह वैशिष्ट्य है जिसके कारण वह अपनी इच्छा के अतिरिक्त अन्य किसी से बाधित नहीं है और न अपनी शक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरी शक्ति द्वारा वह प्रवर्धित है।'

1 "Sovereignty is the original, absolute, unlimited power over the individual subjects and over all associations of subjects" (Burgess)

2 "Sovereignty is the will of the state." (Willoughby)

3 "Sovereignty is the commanding power of the state, it is the will of the nation organised in the state, it is the right to give unconditional orders to all individuals in the territory of the state." (Duguit)

4 "Sovereignty is that power which is neither temporary nor delegated, nor subject to particular rules which it can not alter" ( Sir F Pollock )

5 "Sovereignty is the supreme, irresistible, absolute uncontrolled authority in which the *jura summa superiora* reside" ( Black stone ).

6 "Sovereignty is that characteristic of the state in virtue of which it can not be legally bound except by its own will or limited by any other power than itself." ( Jellinek )

(३) आस्टिन — “यदि एक मुनिरिषत उच्चतर मानव जिसे सभी प्रकार के किसी अन्य अधिकारी के आज्ञा-गतन का सम्पत्त न हो और जिसकी आज्ञा का समाज के अधिकारों व्यक्ति स्वभावतः पालन करते हों, तो वह अधिकारी उस समाज का राजप्रभु है, और वह समाज ( उस राजप्रभु सहित ) एक राजनीतिक और स्वतंत्र समाज है। प्रभु के आदेश कानून होते हैं।”

## प्रभुसत्ता सिद्धान्त का विकास

प्रभुसत्ता-सिद्धान्त भरस्तू की ही मूर्ति पुष्टतम है। यद्यपि उसने अपनी रचनाओं में इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है लेकिन उसने राज्य की सर्वोच्च शक्ति का अर्थय उल्लेख किया है। भरस्तू ने इसी सर्वोच्च शक्ति के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण किया है। यार्नर लिखता है, “यद्यपि प्रभुसत्ता शब्द प्रायुक्तिक है, किन्तु इसका जो भाव है वह हमें भरस्तू के साहित्य में भी मिलता है। भरस्तू ने इसके लिए राज्य की ‘सर्वोच्च सत्ता’ शब्द का प्रयोग किया है। रोम के कानून-विशेषज्ञों को भी इसका ज्ञान था क्योंकि उन्होंने भी राज्य की सर्वोच्च सत्ता की अभिव्यक्ति के लिए *Summa Potestas* और *Plenitudo Potestatis* प्रादि शब्दों का प्रयोग किया था। किन्तु “मध्ययुग के अधिकारों में राज्य समाज की प्रधान संस्था नहीं थी। वास्तव में श्रावीन युवाजी तथा रोमन कल्पना के अनुसार उस समय राज्य का कोई अस्तित्व ही नहीं था। किसी भी प्रदेश में व्यक्तियों पर संगठित नियंत्रण रोमन चर्च, पवित्र रोमन सम्राट्, राजा, सामन्त आजापन प्राप्त नगर तथा विद्वद् प्रादि विभिन्न अधिकारियों में विभक्त था। ये विभिन्न सत्तार् व्यक्ति पर अपने अधिकार का विस्तार करने के लिए प्रायः पक्षर प्रतियोगिता करती थीं।” फ्लोरीसी कानून-विद्वान् बोर्दा ( Bodin ) ही वह

1 “If a determinate human superior, not in a habit of obedience to a like superior receive habitual obedience from the bulk of a given society that determinate superior is sovereign in that society and that society (including the superior) is a society political and independent. the command of the sovereign is law” ( Austin )

२ राज्य-विद्वान् में प्रभुत्ववादी चर्च ( Monism ) से तात्पर्य है कि किसी राज्य में एकनाम एक सर्वोच्च सत्तासम्पन्न व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह रहता है।

प्रथम विचारक वा विद्वाने १६वीं सदी में अपनी पुस्तक 'Six Books on the Republic' में प्रभुसत्ता की प्रकृति तथा कसखों पर विस्तृत रूप से विचार किया। उसका मुख्य उद्देश्य फ्रांसीसी राज्य-शक्ति को सबल बनाना थीर उसके अधिनियम को सिद्ध करना था। उसकी दृष्टि में प्रभु का मुख्य कार्य राजमन्त्री की रचना है। प्रभु अपने द्वारा निर्मित कानूनों से उत्पन्न है। उसके इस कथन ने प्रभुसत्ता को निरपेक्ष बना दिया है। बोर्दा ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रभुसत्ता सभी भावों से उत्पन्न है, मसीम थीर अनिभाष्य है। इस प्रकार प्रभुसत्ता का वैशिष्ट्य है निरपेक्षता, अवेयता, अनिभाष्यता, व्यापकता थीर स्थायित्व। प्रभुसत्ता के इन्हीं के कारण बोर्दा को 'मोन्टेस्क्ये' (Montesquieu) का प्रथम विचारक कहा जाता है। बोर्दा ने प्रभु-शक्ति को 'कानून से अबाधित' (unrestrained by laws) कहा है। उसकी परिभाषा का यह अर्थ विवादास्पद बन गया है। कुछों की धारणा है कि इसका अर्थिप्राप है कि प्रभु की शक्ति पर किसी भी प्रकार का बाधन नहीं है, किन्तु वास्तुस्थिति इसके अर्थवा विपरीत है, क्योंकि अपने राजा को शक्ति पर दो प्रतिबन्ध लगाए हैं—(१) वैश्विक तथा ऐसी नियम (२) थीर 'राज्य के नियम'। प्रथम के अनुसार राजा व्यक्तिगत सम्पत्ति का अपहरण या विविध समझौतों का उत्पन्न नहीं कर सकता थीर दूसरे के अनुसार राजा व दो इन कानूनों की अवहेलना ही कर सकता है थीर न इनमें किसी प्रकार का संशोधन ही कर सकता है क्योंकि वे उसी प्रभुसत्ता से उत्पन्न हैं, जिन्हें वह बाराट्ट दिए हैं।

इस प्रकार बोर्दा ने पृथ-पृथों की व्यर्थता थीर नागरिकों की राज्य के प्रति सर्वस्य-वरायणता तथा भावों के परिपासन पर विशेष बल दिया थीर मुद्रण की वैश्विक आत्मता को दूर करने का अवीरक प्रयत्न किया।

हॉब्स (Hobbes) सर्वप्रथम आधुनिक बार्थनिक वा विद्वाने प्रभुसत्तात्मक राज्य को पूर्णतः निरपेक्ष (absolute) बताया। सारकी का विचार है कि हॉब्स मोन्टेस्क्ये की धर्म (monism) का सम्राट् था। बोर्दा ने कहा कि अन्त रहा है, प्रभुसत्तावादी को प्राकृतिक नियमों एवं राज्य के नियमों से प्रतिबन्धित किया था किन्तु हॉब्स ने अपने राजा पर किसी प्रकार के बाधन नहीं लगाए थीर इस प्रकार उसे पूर्णतः निरकुश बताया। उसकी शक्ति परिमित नहीं। इस प्रकार हॉब्स एक प्रतिष्ठित मोन्टेस्क्ये था। उक्तवा हक मठ था कि निर नियमों की पृष्ठभूमि में राज्य की उत्पत्ति न हो, वे नियम राष्ट्रमात्र हैं। इस

दृष्टि से नैतिक सीमाओं और नैतिक नियम के अन्तर्गत रहना चाहिए। इनकी उपाय देयता उसी सीमा तक है जहाँ तक कि राजनीतिक प्रभु उन्हें न्यायता प्रदान करे। उनके मत में नागरिक-संघ प्राकृतिक मानव की प्रवृत्तियों में कीड़ों के समान है। इसलिए वे नागरिक-संघ राज्य के अन्तर्गत हैं।

लॉक (Locke) हॉम्स के विरोधी सीमित प्रभुत्व का प्रतिपादक था। उसका उद्देश्य राज्य विरुद्ध जन-अधिकारों का विरुद्ध करना था। उसने प्राकृतिक नियम, सम्य समाज और व्यक्तिगत सम्पत्ति को सर्वोच्च बताया। लॉक ने जनता को, यदि राजा द्वारा उसके अधिकारों का उल्लंघन होता है तो राज्य को अस्वीकार कर अन्य जनप्रिय शासक की नियुक्ति का अधिकार दिया। मांटेस्क्यू (Montesquieu) ने भी लॉक के मार्ग का अनुसरण किया। वह निरंकुश शासन का अत्यधिक आलोचक था और उसका अत्यन्त विश्वास था कि स्वतंत्रता केवल विभाजन की व्यवस्था में ही सम्भव हो सकती है। इस प्रकार मांटेस्क्यू का अल्प-विभाजन का सिद्धांत अंग्रेज-विरोधी था।

हॉम्स की अंग्रेजवादी विचारधारा को रूसो (Rousseau) ने किया। हॉम्स की सति उसने का भी यही मत था कि राज्य की प्रभुत्व पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध, चाहे वह नैतिक हो या प्राकृतिक, नहीं लगाया जा सकता। किन्तु उसने और हॉम्स की प्रभुत्व-सम्बन्धी अन्वयताओं में विभेद यह है कि हॉम्स प्रभुत्व को उचित एक 'लीवियर' (Leviathan) में मानता है, जब कि उसने राजनीतिक समाज (body politics) अथवा सामान्य इच्छा (General will) में। उसका कथन है कि वास्तविक नैतिक एवं नागरिक स्वतंत्रता केवल सामान्य इच्छा के अनुसार ही बन-यापन में ही सम्भव है। चीन के अनुसार सामान्य इच्छा का अर्थ है सामान्य हित की सामान्य चेतना (Common Consciousness of the Common end)। उसी की अनुसंधान निरूपण, व्यापक, अर्थ, अविभाज्य और स्वाधीन है।

अपयोगितावादी विचारक बेन्थम (Bentham) ने हॉम्स की अंग्रेजवादी विचारधारा का पुनरुत्थान किया। यह पुनरुत्थान उसने अपने अल्पवादी एवं अपयोगितावादी विचारों की पुष्टि के लिए किया था। उसने प्रभुत्व को निरंकुश तो स्वीकार किया किन्तु उसे उपयोगिता से परिशीलित कर दिया। जिस प्रकार बोहा ने प्रभुत्व को प्राकृतिक एवं राजनीय कालों से प्रतिबन्धित किया था उसी प्रकार बेन्थम ने प्रभुत्ववादी को उपयोगिता से प्रतिबन्धित कर दिया। प्रभुत्ववादी राज्य का यह पुनीत कर्तव्य है कि उसके नियमों का आचार



‘अधिकतम व्यक्तिओं का अधिकतम हित’ हो। लोक का विचार है कि बेल्जियम ने हॉम्स के ‘सोशियल’ पर ‘अधिकतम हित’ कपी बनाया लगायी और उसे उपयोग-विताबादी बाकी को लौकनै दीग्य बनाया था।

जॉन ऑस्टिन ( John Austin ) ने बोवा, हॉम्स और बेल्जियम को मजेट बाकी विचारसरणी को नैतिक कलेवर प्रदान किया। उसकी प्रभुसत्ता की परिमाया अद्वैतवाद की प्रायायिक परिमाया है। ऑस्टिन ने प्रभुसत्ता पर किबो प्रकार का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं किया। ऑस्टिन की नैतिक प्रभुसत्ता की परिमाया *Provincie of Jurisprudence determined* नामक पुस्तक में मिलती है। उसका यह दत्व मेसबोर्न ( Lord Melbourne ) को अखनिक नीरस बना और उसका विचार है कि अछडे अधिक नीरस रचना-अनुशीलन का औभाग्य उडे कनो अफल्य नहीं हुआ। ऑस्टिन की परिमाया पर विचार हम इसी अध्याय में करेंगे।

प्रभुसत्ता के इस परम्परागत सिद्धान्त पर अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों तथा बहुसत्तावादियों ने प्रबल आक्रमण किया है। अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों का कथन है कि जब तक पट्टीय प्रभुसत्ता ( National sovereignty ) का सिद्धान्त अखिण्ट नहीं होता तब तक एक शक्ति-सम्पन्न विश्व-स्यवस्था ( World order ) सम्भव नहीं है। बहुसत्तावादी राज्य को सम्य मानव सबों के समकक्ष हो स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में इसरी स्थिति इन मानवीय समुदायों से अकथर नहीं है। अतः प्रभुसत्ता का प्रमाण आंशिक रूप में इन सबों को भी मिलना चाहिए।

### प्रभुसत्ता की विशेषताएँ

१—निरपेक्षता ( Absoluteness ) —प्रभुसत्ता असीमित एवं निरपेक्ष नहीं जाती है और अतस पर कोई ऐसी सत्ता नहीं है जो उसे अयर्पित कर सके। वह किसी के अधीन भी नहीं है। यह अदीकार करना कि राजप्रभु किसी आन्तरिक अथवा बाह्य सत्ता द्वारा निर्दिष्ट है, स्वयं प्रभुसत्ता का ही निरपेक्ष ( Negation ) करना है।

प्रभुसत्ता की असीमता अति काल से ही एक विवादास्पद प्रश्न रहा है। अतिहासिक लेखकों के मत में प्रभुसत्ता असीम नहीं होती। उसके शक्ति-प्रबोध को भी परिधीमाएँ होती हैं। ब्लून्सली ( Bluntschli ) के शब्दों में, “बाह्य क्षेत्र में प्रभुसत्ता अपने राज्यों के अधिकारों द्वारा और आन्तरिक क्षेत्र में अपनी

प्रकृति तथा नागरिकों के अधिकारों द्वारा नियंत्रित होती है।" इसका अर्थिभाव यह है कि जैसे ही वैधानिक दृष्टि से राज्य की प्रभुसत्ता पर कोई अक्षरोंब नहीं है, पर व्यवहारण उसके लिए अपनी प्रजा की इच्छाओं की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। यह सोच भावनाओं के विरुद्ध आधारण नहीं कर सकती। जो प्रतिबन्ध बापसी (Dicey) ने राज्य की प्रभुसत्ता पर समझे हैं, वे दो प्रकार के हैं— (१) इस बात की अधिक सम्भावना बनी रहती है कि यदि प्रभुसत्ता का प्रयोग अनेकधा के विरुद्ध किया गया तो प्रजा प्रभु के विरुद्ध विद्रोह कर सकती है। (२) राज्य की प्रभुता का प्रयोग कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में रहता है जो शासन-सूत्र का संभालन करते हैं। ये शासन नैतिक मान्यताओं (ethical consideration) के प्रति निरालस उपेक्षणीय दृष्टिकोण नहीं अपना सकते। उनका लोकाचार के प्रति सम्मान बना रहता है।

अधिकार राजनीतिक किन्तकों का यह मत है कि राज्य की प्रभुसत्ता देवी कानून (divine laws) के सिद्धान्तों द्वारा भी मर्यादित की जाती है। राज्य द्वारा उद्देश्य तर्क एवं नैतिकतापूर्वक कार्यों का ही सम्पादन ही इसके लिए वह संचित रहता है। किन्तु इस समस्त प्रतिबन्धों की निर्मूला पहली इच्छा पर है। ये सभी प्रतिबन्ध उसी में लागू किए हैं। वैधानिक दृष्टि से पृथ्वी पर कोई भी ऐसी सत्ता अस्तित्व नहीं है जो उसे इन प्रतिबन्धों की अंगीकार करने के लिए बाध्य कर सके। किन्तु इन सब प्रतिबन्धों के सम्बन्ध में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि वे वैधानिक नहीं हैं। वे जहाँ सीमा तक राज्य के लिए प्रतिबन्ध स्वल्प हैं जिस सीमा तक वह उन्हें मानता है क्योंकि उनका धारणण उसी के द्वारा हुआ है। अतः राज्य जब चाहे उन्हें हटा सकता है। "एक अपरिचरणीय विचार वैधानिक असम्भाव्यता है।" पुनश्च राज्य के अधिकार इस बात का निर्लम्प कौन करे कि राज्य ने इन नैतिक मर्यादाओं का अति कर्मण किया है अथवा नहीं। अर्न्त कहता है कि वैधानिक दृष्टि से वे मर्यादाएँ कस्तुतः प्रभुसत्ता की मर्यादाएँ नहीं हैं। "प्रकृति के नियम सबाचार के सिद्धान्त ईश्वरीय नियम मानवता तथा बीधिक धारेण, जनमर्त-मय धीर प्रभुरण पर अन्य तुपाकभित प्रतिबन्धों का कोई भी वैधानिक प्रभाव नहीं है। यह प्रभाव केवल उसी समय धीर उसी सीमा तक है जहाँ तक राज्य उन्हें अंगीकार कर लेता है धीर उन्हें कियान्वित करता है।" अतः वैधानिक प्रभुसत्ता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रारिष्टन के इस कथन में उल्लास है कि "कानून द्वारा सीमित सर्वोपरि सत्ता विधीयित है।"

अन्तर्राष्ट्रीय कानून भी राज्य प्रभुसत्ता को प्रतिबन्धित नहीं करता, क्योंकि प्रभुसत्तावादी राज्य अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों एवं सम्झौतों का वही सीमा तक परिपालन करते हैं जहाँ तक उनके स्वार्थों की परिपूर्ति होती है। चीन और रूस ने कारिया के सम्बन्ध में भारतीय प्रस्ताव को, जो बहुमत द्वारा पारित हुआ था मन्तीकार करके इस राज्य की पुष्टि कर दी है। बहुजनवादी विचारक राज्य प्रभुसत्ता को अपरिमित नहीं मानते। वे मानवीय संबंधों को राज्य के समक्ष धीरे-धीरे उपमोही मानते हैं, जितना कि राज्य। किन्तु उनका यह दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था प्रभुसत्तात्मक राज्य के प्रभाव में समीचीनत भल सके, संविधान है।

२—सर्वव्यापित्व अथवा सार्वभौमता ( *Comprehensiveness or universality* )—गर्नर लिखता है, "प्रभुसत्ता को सर्वव्यापित्व से तात्पर्य राज्य-सीमाओं के अन्तर्गत प्रभुत्व की व्यापकता से है। उसका अधिकार राज्य के भीतर केवल उन वस्तुओं की छोड़कर जिन पर राज्य में अपने अधिकार का प्रयोग स्वेच्छा से छोड़ दिया है, समस्त शक्तियों, सत्त्वों और वस्तुओं पर होता है।" राज्य के जिन स्वार्थों पर विदेशी राजदूत रहते हैं, उन्हें राज्य के कानून के अधीन नहीं समझना सकता। गिल्क्राइस्ट ( *Gilchrist* ) के कथनानुसार "एक देश में एक दूतावास उसी देश से सम्बन्धित है, जिसका कि वह प्रतिनिधित्व करता है, दूतावास के सदस्य स्वयं अपने देश के बाह्य के अधीन हैं। यह फिर भी केवल एक अन्तर्राष्ट्रीय विनय ( *international courtesy* ) का विषय है और कोई वास्तविक अधिपत्य नहीं है। कोई राज्य अपनी प्रभुसत्ता के प्रभाव से ऐसे प्रबल क्रियेपायिहार को मना कर सकता है।" इस प्रकार विदेशी दूतावास, विदेशी राजा या राष्ट्रपति यात्रा भवना निराश हैं। किसी राज्य में आए हुए हों या कोई कोई विदेशी सेना किसी राज्य में से होकर जा रही हो तो ऐसी अवस्था-क्रियेप में से जहाँ उस राज्य के अधिकार अथवा नियन्त्रण से विमुक्त होते हैं। राज्यों ने स्वच्छा से उन्हें अपनी सर्वव्यापी प्रभुसत्ता के श्रेय से बाहर रखना मन्तीकार कर लिया है।

३ स्थायित्व ( *Permanence* )—गर्नर का कथन है "स्थायित्व का अर्थ है कि जब तक राज्य स्थित है तब तक प्रभुसत्ता प्रतिष्ठित रहती है। प्रभुसत्तावादी की मूल्य अथवा अस्थायीत पदच्युति तथा राज्य के पुनर्दण्ड के कारण

प्रभुसत्ता बिनट नहीं होती वह तुरन्त नवीन प्रभुसत्ताधारी के हाथों में पहुँच जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी भीतिक परिवर्तन में बाह्य परिवर्तन होने पर पुस्तकार्थण केन्द्र एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान को बना जाता है।" इस प्रकार प्रभुसत्ता राज्य के सदृश ही स्थायी होती है। राज्य और उसकी प्रभुसत्ता में घटमा और शरीर बैसा सम्बन्ध स्थापित है। जब तक राज्य स्थित है तब तक उसकी प्रभुसत्ता भी स्थित है। राज्य की समाप्ति ही प्रभुसत्ता के अन्त को इंगित करती है। किन्तु एक शासक के शरीरमृत से प्रभुसत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। "यह सरकार में एकमात्र एक व्यक्ति परिवर्तन है न कि राज्य की अधिकारप्रदाता में एक व्यवधान।" इस वचन का स्पष्टीकरण इस प्रकार से होता है—“यका स्वयंवासी हुए, यका विरम्य हों।”<sup>१</sup>

४ अद्वैतता (Inalienability)—अद्वैतता का अर्थ है कि राज्य अपनी मूलभूत बिकिरणधर्मों में से किसी एक का भी स्वयं को नष्ट किए बिना छुट् नहीं कर सकता। लीबर (Leiber) के शब्दों में, जैसे एक बुद्ध अपने अपने धीर मनपने के अधिकार को नहीं छोड़ सकता वगैरह एक मनुष्य अपने जीवन या व्यक्तित्व का विनाश किए बिना अपने से छुट् नहीं कर सकता, जैसे ही कोई राज्य अपनी प्रभुसत्ता की बिनट किए बिना अपने से बिनग नहीं कर सकता।

कसी का भी ऐसा ही विचार है। अस्सी दृष्टि में सत्ता का हस्तान्तरण हो सकता है, पर रक्षा का नहीं। प्रभुसत्ता का विच्छेदन अपना हस्तान्तरण सम्भव नहीं, क्योंकि वह राज्य के व्यक्तित्व का सार है और उसके हस्तान्तरण के साथ उस व्यक्तित्व का भी विनाश हो जाएगा। प्रभुसत्ता राज्य की सर्वोपरि सत्ता है। वह उसका जीवन-तत्व है और उसकी बिनगता राज्य से उसकी धारमहत्वा के सदृश है।

५ एकता या अविभाज्यता (Unity or indivisibility)—प्रभुसत्ता की अविभाज्यता से तात्पर्य है कि उसे विभक्त नहीं किया जा सकता। यदि एक राज्य में दो अधिकारी प्रभुसत्ता-सम्पन्न हैं तो हुए उस राज्य को एक राज्य नहीं कहा सकते। अस्तुत वहाँ दो राज्य स्थित हैं। राज्य में केवल एक ही

1. It is only a personal change in the government, not a break in the continuity of the state.

2. "The king dead, long live the king"

सर्वोच्च दृष्ट्या ही संकपी है। कोल्बुन (Calboun) के शब्दों में 'प्रभुसत्ता सम्पूर्ण वस्तु है उसे विभक्त करना उसे विनष्ट कर देना है। यह राज्य में सर्वोपरि सत्ता है। अर्थात् प्रभुसत्ता की बात करना ठीक वैसा ही है वैसा कि अर्द्ध वर्ष धर्मशास्त्र विद्वान की बात करना।' १ धर्मशास्त्र के मत में "विभक्त प्रभुसत्ता विरोधी है।"

किन्तु कुछ अमेरिकन विद्वान् राज्य की अविभाज्यता से सहमत नहीं हैं। लार्ड ब्रायस (Lord Bryce) का कथन है, 'प्रभुसत्ता का विभाजन हो समान अधिकारियों के मध्य' २ सम्भव है। लोवेल (Lowell) के विचार में 'एक ही राज्य के अन्दर दो प्रभुसत्तावादी शासक एक ही प्रजा को आदेश दे सकते हैं, किन्तु विभिन्न मामलों में।' मैडिसन (Madison) ने भी अपनी सङ्ग्रहित प्रभुसत्ता के विभाजन में प्रवृत्त की है। सम्भवतः इन धर्मशास्त्रीय विचारों की कारणता का आधार संयुक्त राज्य धर्मशास्त्री की शासन-प्रणाली है। धर्मशास्त्रीय शासन प्रणाली का स्वतन्त्र संचालन है। वहाँ संघीय शासन संघीय विधियों में प्रभुसत्ता को प्रयुक्त करता है और राज्यों के शासनशास्त्रों के मामलों में इसका प्रयोग करते हैं। संविधान में शक्तियों को केन्द्र और राज्यों के बीच विभक्त कर दिया है। किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। धर्मशास्त्रीय प्रभुसत्ता न तो केन्द्र में और न राज्यों में अविहित है। प्रायुक्त संविधान में संशोधन करनेवाली समिति में इसका निवास है। रौसो (Rousseau) के इस कथन में अत्यधिक बल है कि दृष्ट्या का अर्थात् विभाजन नहीं हुआ केवल शासन-शक्ति विभक्त की जा सकती है। कैल्बुन (Calboun) विलोबी (Willoughby) और जार्ज टिक्नर कर्टिस (George Ticknor Curtis) प्रभुसत्ता ही इसी मत के हैं कि राज्य की प्रभुसत्ता ही अविभाज्य है, किन्तु शासनशास्त्र का विभाजन हो सकता जाता है। अतिसारी विचारक प्रभुसत्ता को राज्य और मानवीय संघों के बीच विभक्त करते हैं, किन्तु वह कृत्रिम्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि समुदाय राज्य के

१ "Sovereignty is an entire thing to divide it is to destroy it. It is the supreme power in a state and we might just as well speak of half a square or half a triangle as of half a sovereignty" (Calboun)

२ Sovereignty can be "divided between two co-ordinate authorities." (Bryce)

अन्तर्गत ही होते हैं, चाहे उनका क्षेत्र अतिना ही विस्तृत क्यों न हो। वे राज्य के समन्वय नहीं हो सकते। बहुसंख्य को व्यच्छेद करने का सर्व होना राज्य के मूल को धामन्वित करता।

## प्रभुत्व का स्थिति

### (Location of Sovereignty)

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि प्रभुत्व का निवास कहाँ है, सर्वोच्च कौन व्यक्ति या समूह राज्य की इच्छा को अभिव्यक्त करता है। सोवर्हीन राज्याधीन में जब प्रभुत्व के सिद्धांत का अर्थ हुआ तो यह राजा में संनिहित समझा जाता था। क्योंकि उस संघर्ष का मूल्य उसके द्वारा प्रभुत्व प्रविष्ट हुई राजा में ही किया था। किन्तु धार के जनवादी युग में इसका निवास राजा में नहीं समझा जाता है। वस्तुतः जनता की सम्मानी अर्थात् अन्तिम थी। १६वीं और १७ वीं राज्याधीन में राजाओं की स्वैच्छाचारिता एवं निर्दोषता के विरुद्ध जन-आन्दोलन हुए थे। सामाजिक प्रभुत्ववादी विचारक (Social Contractualists) एक और कठी बनता की प्रभुत्व के विकास में बड़े सहायक सिद्ध हुए, किन्तु 'जनता' अर्थ जनता थी। क्या 'जनता' राज्य का सर्व जन संघर्ष व्यक्तियों से है जो उस राज्य में निवास करते हैं या निर्वाचक मण्डल (Electorate) से है। यदि प्रथम को स्वीकार करते हैं तो जनता एक संघर्षित समुदाय है। यह संघर्षित समुदाय के रूप राजनीतिक प्रभुत्व (Political Sovereignty) की ही रचना करता है, जिसे न्यायमय सम्प्रदाय प्रदान नहीं करते क्योंकि जन-अन्तिम या लोकमत कानून नहीं होता। वैश्व का यह विचार सर्वसंगत ही है कि जनता एक अनिश्चित जन-समूह के रूप में प्रभुत्व को प्रकृत नहीं कर सकती। यदि हम प्रभुत्व का अधिवास निर्वाचकों में मानें तो भी अनेक व्यक्ति प्रश्न उपस्थित होते हैं—प्रथम निर्वाचक मण्डलसदस्य ही होते हैं और द्वितीय निर्वाचन द्वारा सरकार परिचालित होती रहती है और निर्वाचक कानून-निर्माण शक्ति से वंचित रहते हैं और निर्वाचक एक निर्धारित मंडल के अधीन ही होते हैं। यह निर्वाचक-मण्डल की प्रभुत्व अधिकांशतः युग ही रहती है।

इसके धार्मिक युग विचारक प्रभुत्व को अनिश्चित सर्वोच्च कानून-निर्वाची विधान मण्डल में मानते हैं—वैश्व इंग्लैंड में संघर्ष प्रभुत्वसम्पन्न है। किन्तु यहाँ भी हम संघर्ष की पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न नहीं कह सकते क्योंकि यह अनिश्चयपूर्ण

(Conventions) और जनमत (Public opinion) की उपेक्षा नहीं कर सकती। और जिन देशों का संविधान लिखित एवं अनरिवर्तनीय है वहाँ यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है, क्योंकि वहाँ संवैधानिक कानून और साधारण कानून में अन्तर रहता है—यैसे संयुक्त राज्य अमेरिका वहाँ शासन-सत्ता केन्द्र और राज्यों में विभक्त है और संविधान में संशोधन के लिए एक विशिष्ट प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। अतः अमेरिकी नमूने और भारतीय संसद् को हम प्रमुखतात्मक विधान-मॉडल नहीं कह सकते।

उभोउनी सरी के कुछ ग्यामबादियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सभारमक राज्यों में प्रमुखता का भाषाव संविधान-निर्मात्री या उसमें संशोधन करने वाली संस्था में संविहित है। इस विचार के संवीकार करने में भी दो बड़ी कठिनाइयाँ हैं—(१) संविधान संशोधनकारी संस्था सदा कार्य नहीं करती और इसे केवल अल्पकाल के लिए ही, जबकि संविधान में संशोधन करना हीया है, माहूत किया जाता है। जब कि प्रमुखता सर्वत्र कार्य-सम्पादन में रत रहती है। (२) गैरिज के अनुसार, यह संस्था परिमित अधिकारों से सम्पन्न नहीं होती। वह कानून नहीं बना सकती, केवल संशोधन कर सकती है। अतः यह प्रमुखतात्मक नहीं हो सकती।'

धार्मुिक जाल में, विरोध, वैनेस इस मध के हैं कि प्रमुखता प्रतिष्ठित होती है समस्त विधि निर्मात्री संस्थाओं के योग में। व इन संस्थाओं में प्रमुखता का निवास मानते हैं—(१) म्यबस्वापिका-राष्ट्रीय राज्याय और स्वामीय, (२) म्यायालय, वहाँ तक कि कानून की व्याख्या और निर्वाचन (interpretation) में कानूनों का निर्माण करते हैं, (३) कार्यपालिका और प्रशासनिक अधिकारी जो अम्पाटैय और उच्चोपणाओं के द्वारा कानून का निर्माण करते हैं, (४) निर्वाचक मण्डल जब कि वह जनमत-रुद्ध (Referendum or Plebescite) के अधिकारों का उपयोग कर रहा है और (५) सम्मेलन (Convention) जब कि विधान-कानून निर्मात्री सभा के रूप में कार्य करते हैं। किन्तु दिनकारस्ट ने इस सिद्धान्त के प्रति अत्यन्त प्रकट की है। उनका विचार है कि इस सिद्धान्त को निर्मिता राज्य और सरकार के अमान्यक भागों पर है। राज्य-प्रमुखता का धारण, इस सिद्धान्त के समर्थकों की दृष्टि में राज्येच्छा के प्रकटीकरण है। इस प्रकटीकरण में समस्त कानून-निर्माण करने वाले भाग सम्मिलित हैं। राज्य में प्रमुखता संनिहित है, इसी कारण से वे इस दृष्ट्या को अमान्यक करते हैं।

ये लोग एकमात्र सब विधिष्ट स्वयं को प्रकट करते हैं, किन्तु उनका योग प्रयुक्तता नहीं है। इन लोगों की सरकार द्वारा राज्य-प्रयुक्तता का स्पष्टतः एकमात्र प्रकटीकरण ही है। इसलिए "ये राज्य प्रयुक्तता के विनाश होने की धोखा उधकी धार्मिक एकता के साकार रूप हैं।" इस विचारमय स्थिति में, प्रयुक्तता के प्रतिपाद की समस्या का केवल एक ही हल है और वह यह है कि हम प्रयुक्तता की प्रतिष्ठित समस्त राज्य में स्वीकार करें।

## प्रयुक्तता के विभिन्न रूप

( Various aspects of Sovereignty )

प्रयुक्तता के विभिन्न स्वरूप विनाश करने राजनैतिक विचारकों ने किया है, निम्नलिखित हैं—(१) नाम मात्र की प्रयुक्तता ( Nominal or Titular Sovereignty )—सम्राज्य में प्रयुक्तता राज्य का प्रयोग धार्मिक धर्मों में होता है। बिना राज्यों में नैप शासन ( Constitutional Government ) प्रतिष्ठित है उनके नाम मात्र के प्रतिपाद को प्रयुक्त करते हैं। ब्रिटेन का सम्राट् स्वयंका सर्वोच्चता उदाहरण है। शासन का सम्पूर्ण कार्य उन्हीं के नाम से चलता है। राज्य के समस्त घाटे उन्हीं के नाम से प्रचारित किए जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति प्रयुक्तता सम्राज्य ने राज्य के विरुद्ध किसी प्रकार का विरोध किया हो या किसी मध्य प्रकार से राज्य का प्रतिष्ठित किया हो तो ऐसी स्थिति में इन पर बताने गए धर्मियों में बाबी का स्थान राजा की प्रयुक्तता करना पड़ता है। वास्तविकता यह है कि राजा किसी भी प्रकार की शक्ति से सम्पन्न नहीं होता। वह तो एक धार्मिक नाम है। उसकी प्रयुक्तता इसी से प्रभावित होती है कि यदि उससे अपने ही मृत्यु प्रकट-वचन पर हस्ताक्षर करने को कहा जाय तो वह प्रतीक नहीं कर सकता। मध्य कालीन ब्रिटिश सम्राट् बस्तुतः प्रयुक्तता, इसी कारण उसे प्रयुक्तता से विमुक्ति किया जाता है। उस समय उसकी शक्ति ही ब्रिटिश कानून थी। यद्यपि धार्मिक स्थिति यिन है तथापि प्राचीन परम्पराएँ उसे मात्र भी प्रयुक्त बनाए हुए हैं। किन्तु वास्तविक प्रयुक्तता का उपयोग सम्राट् न करके ब्रिटिश संसद् करती है। वह तो नाम मात्र का प्रयुक्त है और इसे हम मात्र मात्र की प्रयुक्तता भी कह सकते हैं। बिना प्रयुक्त एक पताका का उद्देश्य एक विधिष्ट भाव, एक प्रयुक्त विचार और धार्मिकों को प्रतिष्ठा करता है, धीरे-धीरे ही ब्रिटिश प्रयुक्तता राजा द्वारा प्रकट होती है।

(२) वैधानिक प्रयुक्तता ( Legal Sovereignty )—बहुधा वैधानिक एवं राजनीतिक प्रयुक्तता में विभेद किया जाता है। राज्य में कानून निर्माता को सर्वोच्च



संस्था होती है, समी जगह उसके घातों पर आधारित होता है, वैधानिक दृष्टि से जिस पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं होता और स्वायत्तता भी उसके घातों का परिपालन करती है वहीं प्रभुसत्ता वैधानिक है। यदि वैधानिक प्रभुसत्ता द्वारा निमित्त कानून बाबादनीय एवं अनैतिक है तो भी न्यायालय उसके कार्यान्वयन के लिए बाध्य है। ऐसी प्रभुसत्ता कान्फेडरेशन तथा सहित संसद् (King in Parliament) है। डायसी का कथन है, 'संसद् वैधानिक दृष्टि से इतनी सत्ता सम्पन्न है कि वह एक सिधु को पूर्ण बयस्क कर सकती है, वह मुलु के बार किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह का अपराधी बना सकती है वह धर्म के बन्धों को बेध बना सकती है और यदि उचित समझे तो वह एक व्यक्ति को मनने ही अभिषेक में स्वाधीन सिधु कर सकती है।' १७१६ में ब्रिटिश संसद् ने अपना कार्यकाल ३ से ७ वर्ष कर दिया। यह कार्य ऐसा था जिसे कोई प्रभुसत्तावादी ही कर सकता था। संसद् साधारण विधि और संवैधानिक विधि के संयोजन के लिए एक ही प्रक्रिया को अपनाती है। ब्रिटिश संसद् के विरुद्ध धर्मबता के तर्कों को कोई भी न्यायालय नहीं सुनता, चाहे वह संविधान के पवित्रतम नियम के विरुद्ध ही क्यों नहीं हो। (पलर)

(१) राजनैतिक प्रभुसत्ता (Political Sovereignty) राजनैतिक प्रभुसत्ता को परिभाषित करता हुआ कार्य है। जहाँ जनवादी प्रणाली प्रवृत्ति है, एक ओर जहाँ वैधानिक प्रभुसत्ता (Legal Sovereignty) है, जो सर्वोपरि कानून-निर्माता एवं कार्यन्वयनकारी सत्ता है और दूसरी ओर अधिकारित है उसके पीछे वहीं की जनता की सम्पत्ति व्यवस्था इच्छा को सभी प्रकार की अधिकार-शक्ति का सर्वोपरि एवं अन्तिम स्रोत है। इस सत्ता के निर्णय के विरुद्ध अतीत का प्रसंग ही नहीं उठता। डायसी के मतानुसार, 'जिस प्रभु को बर्फीत-वर्ष संशोधन करता है उसके पीछे एक अन्य प्रभु भी विरासत करता है जिसके सम्मुख वैधानिक प्रभुसत्ता को अत्यन्तक होना पड़ता है।' 'वही सत्ता राजनैतिक प्रभुसत्ता है जिसकी इच्छा का परिपालन धर्मिक कर्म में नागरिक करते हैं।'

1 The parliament according to Dicey is, "so omnipotent legally speaking .. that it can adjudge an infant of full age it may attain a man of treason after death, it may legitimise an illegitimate child, or, if it sees fit, make a man a judge in his own case" (Dicey)

विलहार्स्ट ( Gilchrist ) ने इसे परिभाषित किया है, "राज्य की वह सम्पूर्ण प्रभावपूर्ण सत्ता जो नानुस के पीछे विद्यमान रहती है।" जनवादी राष्ट्रीय वं जहाँ प्रत्यक्ष जनतंत्र स्थापित है वहाँ नैदानिक प्रभुसत्ता ही राजनीतिक प्रभुसत्ता होती है, किन्तु अप्रत्यक्ष जनतंत्र में इन दोनों के मध्य एक विभेद रहता है। ऐसी शासन-प्रणाली में, विभिन्न राजनीतिक विचारक प्रभुसत्ता को संघटित समाज ( Collective Community ), सामान्य इच्छा ( General will ) साम जनता ( mass of the people ), जनमत ( Public opinion ) और शारीरिक शक्ति ( Physical power ) के साथ एकत्रित कर सकते हैं। यार्जर की दृष्टि में, राजनीतिक प्रभु-सत्ता निर्वाचक मण्डल है, उससे नहीं, क्योंकि निर्वाचक यदि आकाशकारिता पर बल है तो संसद को अन्ततःपरमा सोकमत की आका की नैदानिक कसेवर देना ही पड़ेगा। विलहार्स्ट का विचार है कि "आधुनिक विस्तृत राष्ट्रीय राज्यों में नैदानिक एवं राजनीतिक प्रभुसत्ता का अन्तर सरकार-परिवर्तन या व्यवस्थापिका के पुनर्गठन के समय प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होता है।

किन्तु कुछ राजनीतिक लेखकों की कारण है कि नैदानिक और राजनीतिक प्रभुसत्ता में विभेद नहीं हो सकता, क्योंकि प्रभुसत्ता अविभाज्य और पूर्ण होती है। वेटिस का मत है, 'नैदानिक प्रभु के पीछे किसी एक राजनीतिक प्रभुसत्ता के अन्वेषण का प्रयत्न प्रभुसत्ता के अन्त विचार को बिगड़ कर देना है।' किन्तु यह भ्रान्ति निराधार है, क्योंकि नैदानिक और राजनीतिक प्रभुसत्ता के मध्य जो विभेद है उसकी आधारभूमि विभक्त प्रभुसत्ता का सिद्धान्त नहीं है। प्रभुसत्ता तो एक ही है, किन्तु ये उसके विभिन्न स्वरूप हैं। बहुधा ऐसा होता है कि नैदानिक प्रभु की इच्छा राजनीतिक प्रभु की इच्छा के अनुकूल नहीं होती। अतः ऐसी स्थिति में राजनीतिक प्रभु के इच्छा-नुसार काहुनी प्रभु का पुनर्गठन होना चाहिए। जनवाद की सार्थकता के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक प्रभु की इच्छा की नैदानिक प्रभु अविच्छन्न करता रहे।

1 "The will of the legal Sovereign is or should be the, authorised embodiment or manifestation of the will of the Political Sovereign if the popular will is accurately expressed by the Legal Sovereign, the power of the people & effective otherwise it is not" ( McKechnie )

(४) लोक प्रभुत्वता ( Popular Sovereignty )—लोक प्रभुत्वता सिद्धान्त के अनुसार अन्तिम प्रभुत्वता जनता में समिहित होती है। प्राचीन काल में जन प्रभुत्वता को कुछ अनिश्चित एवं अस्पष्ट रूप में स्वीकार किया गया था। रोमन कानून ने यह निरासक्त प्रकट किया था कि सम्राट की शक्ति का स्रोत जनता है। मध्ययुग में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मार्शल्लो पैदुवा ( Marsiglio of Padua ) विलियम ओकम ( William of Occam ), जॉर्ज बुचानन ( George Buchanan ) और एल्मुसिबस ( Althusius ) प्रभृति में किया। ओकम ने भी लोक प्रभुत्वता के विचार को व्यक्तित्व रूप प्रदान किया। विल्लु निर्योक्त क्यो ने, अठारहवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त की नींवस्था 'डॉके' की शक्ति पर की। क्यो ने कहा कि प्रभुत्वता जनता में समिहित है जिसका प्रतीक सामान्य इच्छा है। उसके से ही विचार भाषी विचारकों के लिए प्रेरणा-स्रोत बने। फ्रांसीसी क्रांति का यह उपयोग बना और जेफरसन ( Jefferson ) ने अमरीकी संविधान में इस सिद्धान्त के अंतर्गत पर बत दिया और कहा कि शासक अपनी शक्ति शक्तियों की अनुमति से उत्पन्न करते हैं। यही "जनवाद की आधार-नीति" एवं धारणा है। ( भारत )। रीट्के ( Ratzke ) जो इस सिद्धान्त के प्रथम अनुसंधानों में से हैं उनका मत है कि जनता अत्यन्तः इस सर्वोपरि शक्ति को अपनी निरासक्त-शक्ति के द्वारा प्रभुत्व करती है जबकि अत्यन्त यह प्रयत्न प्रयोग करने प्रभाव, अतः ही और क्रांति का सम्बन्ध प्राप्त करता है। राजा को भी अत्यन्तः अपने धारणा के परिपालनार्थ पारम्यिक शक्ति का सहाय लेना पड़ता है और यह पारम्यिक शक्ति भी जन-समाज की ही होती है। एतदर्थ जनता ही प्रभु होती है। जनता अपनी इस शक्ति के रूप पर कानून एवं उच्चतम शक्ति को भी अमनीत कर सकती है और यदि आवश्यक समझे तो जनसत्त भी कर सकती है। किसी भी वैधानिक प्रभुत्वता को दीर्घकाल तक अन्त-माधनार्थों के साथ अतिबाध करते हुए अस्तित्व रक्षना सम्भव नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में, जनता अन्ततः अन्ततः शक्ति का अत्यन्त से क्रांति करके, एक नव शासन को अस्था कर सकती है। 'लोकप्रिय शासन' ( Popular government ) और जन-निगरण ( Public Control ) जो समाज के अन्त-माधनी शक्ति हैं जनता की प्रभुत्वतात्मक भावना की अभिव्यक्ति करते हैं।

लोक-प्रभुत्वता की परिपालन करवा निरन्तर ही अन्ति कार्य है। लोक प्रभुत्वता में, 'लोक' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है—प्रथम के अनुसार अन्त-माधनी, अनिश्चित जन-समुदाय है और द्वितीय के अनुसार,

कुल जनता का वह भाग जिसे मताधिकार प्राप्त है और जो इसे प्रयुक्त करते हैं। यहाँ का कथन है, 'धार्मिक रीति से प्रमुखता का प्रयोग एवमात्र वे ही व्यक्ति कर सकते हैं और वे भी केवल धार्मिक मामलों से, जिनकी विधि द्वारा मताधिकार प्रदान किया गया है। परंपरित जनमत, यह चाहे किता हो शक्तिमय हो, उस समय तक यह प्रयुक्ततायक नहीं हो सकता जब तक कि उसे धार्मिक कमेटर प्रदान नहीं किया जाय—ठीक उसी भाँति, जिस प्रकार विधान-सभाओं का धार्मिक एवं वैयक्तिक प्रस्ताव विधि नहीं बना सकता।'<sup>1</sup>

धार्मिक प्रमुखता और राजनीतिक प्रमुखता में विवेक (Difference between Popular Sovereignty and political Sovereignty)—सर्वप्रमुखता और राजनीतिक प्रमुखता के विवेक से ऐसा धारणागत होता है कि दोनों में कोई विवेक नहीं है, किन्तु बसुस्विति यह है कि दोनों में पर्याप्त फरक है। राजनीतिक प्रमुखता का अर्थ किसी एक समुदाय द्वारा ही और निम्न संरक्षित शक्ति से ही प्रकृत है। यह व्यवस्थित जनसमूह की शक्ति प्रकृत है जबकि लोक प्रमुखता समस्त जनता की होती है। फिर भी राजनीतिक प्रमुखता और लोकप्रमुखता में फरक तथा मताधिकार के विस्तार के कारण विचारजनकरी देखा नहीं हो सकेगा ही नहीं है। बिलब्रिड के मतानुसार, "लोक प्रमुखता एक शाब्दिक प्रकृतियों की शक्ति के विचार जनताधारण की शक्ति है, जिसमें दो भागें सम्मिलित हैं—व्यापक मताधिकार और जन प्रतिनिधियों द्वारा विधान-सभाओं पर नियंत्रण।"<sup>2</sup>

1 "Sovereign power can be legally exercised only by those upon whom the Law confers the right or privilege of voting, and then only through legal channels. Unorganised public opinion, however powerful, is not Sovereignty unless it is clothed in legal form no more so than the informal or unofficial resolutions of the members of the legislative body is law" (Garner)

2 "Popular sovereignty roughly means the power of the masses as contrasted with the power of an individual ruler or of the classes. It implies universal suffrage and the control of the legislature by the representatives of the people" (Gilchrist)

## लोक-प्रभुसत्ता का महत्त्व

यद्यपि यह सिद्धान्त पर्याप्तकालेण अस्पष्ट-सा प्रतीत होता है किन्तु इस प्रश्न खँटा के होने पर भी यह सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह सिद्धान्त जनहित-भावना पर बल देता है। सरकार का अस्तित्व स्वयं निजी कल्याण की अपेक्षा जन कल्याण के लिए है। यदि जन भावनाओं का ध्यान होता है, उनके प्रति उपेक्षणीय दृष्टिकोण अपनाया जाता है तो जनता की सम्मान बना बनी रहती है। अतः यह आवश्यक है कि वैधानिक प्रभु को जनमत का धनवरत ध्यान रखना चाहिए। जनमत की अभिव्यक्ति के लिए सरल वैधानिक उपाय होने चाहिए। जनता के हित अपेक्षाकृत वर्ग-विरोध के हितों के अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जनता में शासन बनना चा, जनता के लिए धीर जनता के द्वारा ही होता है।

इस सिद्धान्त की उपादेयता के बावजूद इसमें कुछ घमभीर दोष भी हैं। सर्वप्रथम, यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि जनता उच्च नैतिक बल से सम्मान होती है। किन्तु धार्मिक वैधानिक क्रम में राज्यों से सुझाव खीट-सा मानवसमूह असंयतित विरासत जन-समुदाय को बड़ी सरलता से नियंत्रित कर सकता है। द्वितीय, यह सिद्ध करना भी दुष्कर है कि प्रभुसत्ता का अधिवास मतदाताओं में है, क्योंकि अधिकांश मतदाता अपने मतों का प्रयोग नहीं करते धीर भी प्रयाग भी करते हैं। उनमें मूर्खत्व-शक्ति का अभाव होता है धीर वे बहुधा अल्पकाल के कक्षाओं अथवा दलीय नेताओं के आकर्षक प्रसौमनों से प्रभावित हो मतदान करते हैं। अतः प्रभुसत्ता इन मतदाताओं में अधिहित न होकर प्रभावकारी तत्वों में अधिहित होती है। अतः यदि हम व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य से देखें तो असंयतित जनसमान अथवा साधारण मतदाताओं की प्रभुसत्ता का कोई अधिवास ही नहीं है।

(२) वैधानिक धीर अथवा प्रभुसत्ता (De jure and De facto)—  
प्रभुसत्ता वैधानिक अधिवास ही न होकर राजनीति की एक अत्यन्त वस्तु है। यही आधार है जिसके कारण इन दोनों में विभेद किया जाता है। वैधानिक प्रभुसत्ता वैधानिक दृष्टि से सर्वोपरि होती है धीर अत्यन्त कानून राज्य में उसी के नाम से प्रचलित किए जाते हैं। इसका आधार नैतिक शक्ति (Physical power) नहीं होता। विधि की दृष्टि में यही प्रभुसत्ता मान्य होती है धीर वैधानिक प्रभु के अस्तित्व लिए जाने पर भी, वह धीर होने धीर आदेश-परिपालन के अधिकांश

स सम्पन्न होता है। यथार्थ प्रभुसत्ता बिबि की दृष्टि में समान्य होती है। बिबि उते यह अविद्वत् नहीं करती कि वह अपने धारियों को प्रचारित करे और बनना को इनके परिपासनाई बाध्य करे। बनता इसके धारियों को समझाएत होकर ही मानवी है। यथार्थ प्रभुसत्ता का धारार सर्वदा एकमात्र नीतिक ही नहीं होता प्रभुत धार्मिकप्रभु भी होता है। इतिहास यथार्थ प्रभुसत्ता के उदाहरणों से परिपूर्ण है। अनेक अधिनायक यहाँ बनना सेवापतियों ने बाधित करके बैधानिक प्रभुसत्ता की परिणति यथार्थ प्रभुसत्ता में की है। उदाहरणार्थ—रूस की १९१७ की अस्थि १९१६ में सोव में गृह-युद्ध के उपरान्त बनरम क्रॉकी का सत्ताधिस्य मित्र में बनरम मन्त्र द्वारा शक्ति हस्तगत करना और अक्रमानिष्ठान में गधिर का द्वारा शक्ति ग्रहण करना। कुछ कास बाव इस प्रकार का अधिनायक बैधानिक प्रभु का रूप धारण कर लेता है। जो यथार्थ प्रभु देश में शक्ति एवं मुख्यबन्धा स्थापित करने में अफसीमूत हो जाते हैं उन्हें अन्तत बनता यज्ञा की दृष्टि से देखने सगती है और इनके धारियों का पालन करने सगती है। फिर बनता के लिए यही बैधानिक प्रभु बन जाते हैं। सार्ड ब्रास (Lord Bryce) ने इन दोनों प्रभुसत्ताओं के बिभेद को इस प्रकार स्पष्ट किया है—(१) जब बैधानिक प्रभुसत्ता की स्थिति सुदृढ़ प्ती है तब यथार्थ प्रभुसत्ता भी उससे अधिहित होकर हट होती है। (२) बैधानिक प्रभुसत्ता के अनिश्चित होने पर यथार्थ प्रभुसत्ता भी अनिश्चित होती है। (३) यथार्थ प्रभुसत्ता के हट होने पर कुछ कास के लिए बैधानिक प्रभुसत्ता अनिश्चित प्ती है, किन्तु अन्ततः प्रबल होती है और यथार्थ प्रभुसत्ता के बाव एकजन हो बनती है और फिर बैधानिक प्रभु की संज्ञा से प्रथित होती है। (४) यथार्थ प्रभुसत्ता की सम्भवस्थिति स्थिति में बैधानिक प्रभुसत्ता भी अर्थकर स्थिति में आ पड़ती है।

## आस्टिन का प्रभुसत्ता-सम्बन्धी सिद्धान्त

### (Austin's theory of Sovereignty)

बैधानिक प्रभुसत्ता के धार्मिक व्याख्यातार बोर्डा और बेन्सन हैं। बोर्डा के अनुसार, 'बिबि काय शक्ति प्रत्येक स्वतंत्र समाज में किसी ऐसी सत्ता का होना आवश्यक है, चाहे वह सत्ता एक व्यक्ति बनना अनेक व्यक्तियों के हाथ में ही, जो बिबि का निर्माण और कार्यान्वयन करे। वह सत्ता बिबि का अंत होने के कारण बिबि से उन्मत्तर रहनी चाहिए, अर्थव्य और नैतिक उत्तरदायित्वों में उन्मत्तर न होकर।' बेन्सन के शब्दों में, "बैधानिक दृष्टि से प्रभुसत्ता अक्षीम

है और ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं जिनमें नैतिक दृष्टि से प्रतिबन्ध होना उचित होता है।" विन्तु अन्य तन्त्र पर अधिक बल देता है कि 'सम्प्रभु के लिए यह परम आवश्यक है कि वह अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिक सुख की दृष्टि से सामान्य कानूनों का निर्माण कर अपनी सत्ता का धीरे-धीरे सिद्ध करे।' जॉन आस्टिन ने भी जमीनसही शताब्दी का प्रख्यात न्यायशास्त्री (Jurist) था, वैधानिक प्रभुसत्ता की विरुद्ध व्याख्या अपनी पुस्तक (Lectures on Jurisprudence) में की है। हाँ, और बेन्थम का सट्ट प्रभाव उस पर दृष्टिपोषक होता है। आस्टिन की प्रभुसत्ता की परिभाषा उसी वाक्य की परिभाषा से सम्बन्धित है। कानून की परिभाषा उसके मत में, 'प्रत्येक कानून पूर्णरूपेण उचित धर्म में एक व्यक्ति या व्यक्तिसमूह की एक स्वतंत्र राजनीतिक समाज के सदस्य या सदस्यों को, जिन्हें व्यक्ति या व्यक्तिसमूह सम्प्रभु है, प्रबल धारता है।' कानून की इस परिभाषा के अन्तर्गत आस्टिन के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह सम्प्रभु (Sovereign) के स्वकार एवं समर्थों का विवेचन करे। उसके अनुसार "यदि एक सुनिश्चित उत्कर्ष मानव जिसे उसी प्रकार के किसी अन्य अधिकारी के आज्ञा-पालन का अभ्यास न हो और जिसकी आज्ञा का समाज के अधिकतम व्यक्ति स्वभावतः पालन करते हों, वी वह अधिकारी उस समाज का सम्प्रभु है, और वह समाज (जो सम्प्रभु सहित) एक राजनीतिक धीरे स्वतंत्र समाज है। प्रभु के आदेश कानून होते हैं।"

आस्टिन के इस प्रभुसत्ता-विवेक सिद्धान्त में सर्वधिक महत्त्वपूर्ण तन्त्र यह

1 "Every positive Law or every Law Simply or Strictly so called, is set directly or circuitously, by a sovereign person or body to a member or members of the independent political society wherein that person or body is sovereign or Supreme" (John Austin)

2 "If a determinate human superior not in a habit of obedience to a like Superior, receive habitual obedience from the bulk of a given society that determinate superior is Sovereign in that society and the society, (including the Superior) is a society political and independent. The Command of the sovereign is law" (John Austin)

है कि वह शक्ति को निर्यात्मिक तत्त्व मानता है। वही 'दृष्ट्या' पर बल देता है जब कि आस्टिन शक्ति पर। बोसोके (Bossanquet) का कथन है कि, 'आस्टिन की प्रभुसत्ता-सम्बन्धी धारणा की आधार-भूमिका शक्ति है, इन धारणाधर्मियों के विचार में प्रभुसत्ता आधारित है समस्त जनसमाज की दृष्ट्या पर।'<sup>1</sup> टी० एच० वीन ने प्रयास किया है आस्टिन धीरे धीरे के परस्पर विरोधी विचारों में सन्धि स्थापित करने का।

आस्टिन की इस प्रभुसत्ता की परिभाषा का छार निम्नलिखित चार प्रमेयों (Propositions) में है—

(१) प्रत्येक राज्य ( जो आस्टिन के अनुसार एक स्वतंत्र राजनीतिक समाज है ) में एक सुनिश्चित उच्चतर मानव होता है जिसकी आज्ञा का पर्याप्ततम समाज में अधिकांश नागरिक स्वभावतः करते हैं।

(२) यह उच्चतर मानव जो कुछ भी आज्ञा देता है वही कानून होता है और उसकी आज्ञा के बिना किसी कानून का निर्माण नहीं हो सकता।

(३) इस उच्चतर मानव की शक्ति, जिसे प्रभुसत्ता कहते हैं, अधिनात्म्य है।

(४) यह शक्ति, निरपेक्ष होती है, और यह प्रतिबन्धित नहीं की जा सकती।

## आलोचना

आस्टिन की प्रथम मान्यता यह है कि प्रत्येक राज्य में एक सुनिश्चित उच्चतर मानव होता है जिसकी आज्ञा का पर्याप्ततम राज्य के नागरिकों का अधिकांश भाग स्वभावतः करता है। हेनरी मेन ( Sir Henry Maine ) ने अपनी पुस्तक 'Early Institutions' में इसकी आलोचना की है। उसके कथनानुसार पूर्व के अनेक साम्राज्यों में आस्टिन के 'सुनिश्चित उच्चतर मानव' जैसी सत्ता का कोई अस्तित्व ही नहीं है। अपने रंजान के राजा रणनीत सिंह का स्पष्ट उल्लेख किया है। उस के मत में रणनीत सिंह ने अपनी प्रजा पर निरंकुश अधिकारों का प्रयोग किया था और उसके छोटे से आदेश का अर्त्तव्य करने पर बंद-बंद का इएक अथवा मुकुन्द-वद्व मिथता था। किन्तु ऐसे निरंकुश राजा ने भी कभी सामाजिक परम्प

1 "Austinian sovereignty is based on the idea of force; Sovereignty in our sense ( the idealistic ) is based on the will of the whole"



उपरोक्त कानूनों ( Customary laws ) का प्रतिष्ठा नहीं किया। उद्विग्न और परम्पराओं का विकास अनेक युगों में होता है और किसी 'निरिच्छत वर्ग' प्रकृति 'अच्छि-समुह' को उन्नी उद्विग्न के लिए उद्विग्न नहीं बनाया जा सकता। अतः इसके यह स्पष्ट है कि अस्तित्व ने अनेक प्रभु का उद्विग्न किया है यह राज्य के अस्तित्व के लिए अस्ति नहीं है। फिर, जॉन चपमैन ( John Chapman ) का कथन है कि समाज के वास्तविक शासक उन्नी नहीं जा सकते। अर्थात् संवत्सरिक शासक-प्रणाली प्रतिष्ठित है अर्थात् किसी 'मुनिच्छित उद्विग्नतर मानव की ओर उद्विग्न करना और भी उद्विग्न कार्य है। इसके अतिरिक्त अस्तित्व की यह प्रमुखतात्मक विचार-कारण अन्त-प्रमुखता ( Popular Sovereignty ) के प्राथमिक सिद्धान्त के अनुकूल नहीं प्रतीत होती। अन्तरे के अर्थों में, "यह उद्विग्नतर मानव ( अर्थात् अस्तित्व का प्रभु ) वैसा कि किसी ने विचार किया था, न ही सामान्य इच्छा ही हो सकती है और न जन-समुह, न निर्वाचक-मण्डल, न जनमत, न नैतिक भावना, न सामान्य विवेक और न परम्परा ही इच्छा अस्ति ही।

(२) अस्तित्व की द्वितीय प्रस्थापना यह है कि प्रभु जो अद्विग्न होता है अर्थात् कानून है और उसके बिना कोई कानून नहीं है। अर्थात् सर्वोच्च विधान निर्माता है। किन्तु आलोचकों का मत है कि प्राचीन साम्राज्यों में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। इन साम्राज्यों में शासक का प्रमुख कार्य राजस्व-ग्रहण करना और उद्विग्न-संपन्न करना था। 'अवयव-समय पर अद्विग्न अस्ति अस्ति' के अतिरिक्त यह अन्त किसी प्रकार के कानूनों को लागू नहीं करते वे और न कभी परम्परागत विधान को स्थापना ही लागू किया गया। यह अद्विग्न-सत्ता सामान्यतः उद्विग्न अन्त-वंचायकों में ही अस्तित्वित थी। अस्तित्व के प्रमुखता-सम्बन्धी सिद्धान्त में मुख्य दोष यह है कि अन्त प्रकार के कानूनों को केवल अद्विग्न अन्त-सिद्धा मन्त किया गया है और केवल अन्त पर ही अद्विग्न अन्त दिया गया है। प्रो० लस्की ( Prof Laski ) के अर्थों में "कानून को एवमात्र एक अद्विग्न मानना अद्विग्न अन्त के लिए, परिभाषा को अस्ति अन्त ही अस्ति अन्त अस्ति, कानून में एक प्रकार की अद्विग्नता होती है, अन्तमें अद्विग्न का अन्त अन्त अद्विग्न अन्त ही अस्ति है।" उदाहरणार्थ यह अन्त अन्त अस्ति है कि अद्विग्न-कानून अद्विग्न

1 'To think of law as simply a Command is, even for the jurist, to strain definition to the verge of decency for, there is a character of uniformity in law in which the element of Command is, practically speaking pushed out of sight.' ( Laski )

गयी है। दुगुयी (Duguit) को यहाँ तक कहा है कि कानूनों का निर्माण राज्य द्वारा नहीं होता, प्रायुक्त कानून ही राज्य का निर्माण करते हैं। वे तो सामाजिक आवश्यकता की प्रकृतिक अभिव्यक्ति हैं।

(१) आस्टिन की तीसरी मान्यता यह है कि प्रभुसत्ता अभिमान्य है। किन्तु यह कथन भी तर्कसंगत नहीं मान पड़ता। उदाहरणार्थ, ईंग्लैण्ड में बहाई एकलपक्ष शासन प्रणाली (Unitary form of government) अस्तित्व में है और परिवर्तनशील संविधान लागू है, बहाई किसी सीमा तक यह संघीयता किंवा वा सङ्घता है कि व्यवस्थापिका ही सम्प्रभु है और प्रशासन के दोष को माग कार्यपालिका और न्यायपालिका उसके प्रत्यर्पण हैं। किन्तु बिन देशों में संघात्मक शासन-प्रणालि को अपनाया गया है—बैसे, अमरीका, बहाई बैसे प्रभुसत्ता को अभिमान्य कहा जाएगा। वस्तुतः बहाई तो केन्द्र और राज्यों के मध्य क्षेत्रीय सीमाएँ सुनिश्चित हैं और परस्पर क्षेत्रीय अतिव्यमल सम्भव नहीं है।

(२) आस्टिन का शुरुब प्रमेय यह है कि प्रभुसत्ता विरपेय और असीम होती है तथा वैशिक संवैधानिक दृष्टि से अतिव्यमित नहीं की जा सकती। आलोचकों ने आस्टिन के इस विचार से भी अपनी असहमति प्रकट की है। ब्लन्टशिल (Bluntschill) का कथन है कि, राज्य अपने सम्प्रकल में सर्व सत्तात्मक नहीं है, क्योंकि बाल दृष्टि से वह अन्य राज्यों के अधिकारों और अन्तरिक दृष्टि से स्वयमेव निजी प्रकृति एवं व्यक्तित्व सदस्यों के अधिकारों से परि सीमित है।" लैसली स्टीवेंस (Leslie Stephen) ने ब्रिटिश संसद् की प्रभुसत्ता के सम्बन्ध में कहा है कि वह बाहर और भीतर दोनों ओर से परि सीमित है। मोतर से यह एक कारण परि सीमित है, क्योंकि व्यवस्थापिका कुछ निश्चित सामाजिक परिस्थितियों की उपज है और समाज का निर्धारण करने वाली शक्तियों से बह भी निर्धारित है। बाहर से परि सीमित होने का कारण यह है कि कानून लागू करने की उसकी शक्ति व्यक्तियों की कानून-परिपालन करने की प्रेरणा पर निर्भर है और यह प्रेरणा स्वयमेव सीमित है। यदि व्यवस्थापिका यह निर्णय ले कि नीची अंशों वाले सभी राज्यों की हत्या कर देनी चाहिए, तो ऐसे राज्यों को बचाए रखना अशभव हो जायगा, किन्तु व्यवस्थापिका ऐसा कानून पाठि

1 "The state as a whole is not almighty, for it is limited externally by the rights of other states and internally by its own nature and by the rights of its individual members" (Bluntschill)

करने पूर्व विहित हो जायों और बनता ऐसे कानून के सम्मुख नतमस्तक होने से पूर्व बड़ एवं सुबह हो जायों।<sup>1</sup> किन्तु तथ्य यह है कि परमपूर्व एवं अग्रोत्थित प्रभुसत्ता का अस्तित्व कहीं भी नहीं है। जेम्स स्टीफन (James Stephen) के मत में, "बिना प्रकार प्रकृति में कोई पूर्ण रूप नहीं है, उसी प्रकार प्रकृति में कोई ऐसा प्रभु नहीं है जो परमपूर्व हो। अधिनायकवादी राज्यों में ऐसे अनेक प्रमाण होते हैं जो प्रभुसत्ता को प्रभावित करते रहते हैं।

शास्त्र के प्रभुसत्ता सम्बन्धी सिद्धांत की अन्तर्राष्ट्रीयतावादी और बहुत बारी बारी में बट्टा धाबोबना की है। प्रथम के अनुसार अग्रोत्थित प्रभुसत्ता का सिद्धांत विरवशांति के ताव में नहीं जाता वैसा कि तास्की का कथन है, "निरवशांति ही बाह्य दृष्टि से एक ऐसे निरपेक्ष और स्वतंत्र सर्वसत्कार्यक सम्बन्धों से बनती सरकार के प्रति पूर्ण राज-निष्ठा की मांग करता हो और अपनी शक्ति के बल पर उसका परिपालन करता हो, की परिकल्पना मानवता के हितों से मेल नहीं खाती। सर्वसत्कार्यक सम्मता में राज्यों के पुनः-पुनः होने की ऐतिहासिक पटना की महत्ता नहीं है, अस्तु संसार की आत्मनिर्भरता के वैज्ञानिक तथ्य की महत्ता है। विरव ही निष्ठा की वास्तविक इकाई है। आजाकारिता का वास्तविक इतिहास मानव मान के समग्र हित के प्रति है।"<sup>2</sup>

1 It is limited both from within and without, from within because the legislature is the product of a certain social condition, and determined by whatever determines society, and from without because the power of imposing law is dependent upon the instinct of subordination which is itself limited. If a legislature decided that all blue-eyed babies should be murdered, the preservation of blue eyed babies would be illegal, but legislatures must go mad before they could pass such a law and subjects be idiotic before they could submit to it" (Lease Stephen)

2 "Externally, surely the concept of an absolute and independent sovereign state which demands an unqualified allegiance to government from its members and enforces the allegiance by the power at its command is incompatible with the interests of humanity. In a creative civilization what is important is not the historical accident of separate states but the scientific fact of interdependence. The real unit of allegiance is the world. The real obligation of obedience is to the total interests of our fellowmen" (Laski)

## कानून (Law)

कानून की आवश्यकता—राज्य का प्रभुत्व उद्वेग जनकत्वपूर्ण करना है। इस ध्येय की अन्तर्निहित तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि जन-साधारण के कुछ समान नियम निर्धारित न कर दिए जायें। कानून के अभाव में सामाजिक जीवन की परिकल्पना असंभव ही रहेगी, क्योंकि ऐसी अवस्था अश्वस्तचित्त और अराजक होगी। अतः राज्य अपने अस्तित्व की प्राप्ति एकमात्र कानून के माध्यम से ही कर सकता है। सास्की के शब्दों में, "कानून ही सामाजिक शांति का मूल प्रयत्न उद्देश्य है।" प्रत्युत्पत्ता भी सर्वपूर्ण उभरी है जब कि वह कानून के रूप में अभिव्यक्त होती है और इसका उपयोग कानून के द्वारा होता है। अतः मानव समाज की प्राप्ति में ही यह अनुसृष्टि हो गयी थी कि सामाजिक जीवन की सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए सर्वोत्तम नियमों की परम आवश्यकता है। ये सामान्य प्रवृत्त एक-एक नियम आरम्भ में सामाजिक अङ्कियों एवं प्रवृत्तियों के रूप में थे, किन्तु कालान्तर में जब इनको राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त हो गयी तो वे सामाजिक जीवन के अभिव्यक्त अंग बन गये। आज बिना कानून की आवश्यकता है अतः प्राचीन काल में नहीं थी, क्योंकि प्राथमिक जीवन अराजक, अमान्य और अस्थिर था जब कि आज अस्मान, विषम और अस्थिर है। अतः आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के लिए आज कानून परम आवश्यक ही नहीं है, प्रत्युत लोक-व्यवस्थाकारी ध्येय की प्राप्ति के लिए भी वह आवश्यक है।

कानून का अर्थ—ग्लोसोबल का कथन है कि कानून (Law) शब्द की व्युत्पत्ति पुष्यन ट्यटन (बर्मन) नाम की *Leg* शब्द जिसका अर्थ है—'वह जो स्थिर और अर्थात् समान रहे' से हुई है। अंग्रेजी में *Leg* का अर्थ है, 'वह जो एक-सा (uniform) रहे।' कानून राज्य अनेकानेक है। अतः, वेदा-

1 "The word 'Law' comes from an old Teutonic root *leg*, which means something which lies fixed or evenly. In the English language the word is used to denote that which is uniform." (Gilchrist)

निक कानून ( Scientific law ) जिसका घर्ष कार्य और कारण के निश्चित क्रम ( Definite sequence of cause and effect ) से होता है। उदाहरणार्थ गुरुत्वाकर्षण नियम ( Law of gravitation )। द्वितीय वैज्ञानिक नियम के कानून हैं जिसका सम्बन्ध जनता के घटवृत्त या विवेक से तथा निम्न-निम्न कार्यों के मानसिक प्रेरकों ( motives ) से होता है। तृतीय, राजनीतिक कानून का घर्ष उन कानूनों से होता है जो नागरिकों के व्यवहार को नियमित एवं पथप्रदर्शित करते हैं। जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य आचरण से है अर्थात् उनके ऐसे कार्य जो अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करते हों। उभय विधुं बताना मनवाता हो और न मानने पर दण्ड देता हो।<sup>1</sup> किन्तु सामाजिक कानूनों और राजनीतिक कानूनों में विवेक है। सामाजिक कानून के परिपालन में उच्च प्रकार की शक्ति का प्रयोग नहीं होता वैसे कि राजनीतिक कानून में होता है। मैकाइवर के मतानुसार, "एक विकसित राज्य में राज्य के प्रतिरिक्त अन्य सत्त्वार्थों के कानून अपने सदस्यों को तभी तक नियंत्रण में रख सकते हैं जब तक कि ये सदस्य सत्त्वा की सदस्यता से अपसम्पन्न लोगों को खोने की प्रवृत्ति उन नियन्त्रणों की अर्थकारण करण पसन्द करते हैं।" "राज्य के कानून ही स्वतन्त्र एवं उन्नत समाज में दण्ड दे सकते हैं।" इस प्रकार प्रत्येक कानून एक अनिवार्यता की व्यवस्था है। कानून के अभाव में व्यवस्था सम्भव नहीं है और बिना व्यवस्था के मनुष्य मटक जाते हैं, क्योंकि वे जान नहीं पाते कि उनका क्या सदय है और उन्हें क्या करना है? प्रत्येक स्तर पर एक व्यवस्थित सम्बन्धों की पद्धति का होना मानवीय जीवन की प्राथमिक शर्त है।<sup>2</sup>

कानून की परिभाषा—कानून को परिभाषित करना निस्सन्देह बड़ा ही डूबर कार्य है। सर हेनरी पोसक का कथन है, कानून की परिभाषा करना

1 "A law is a rule of behaviour for the members of a state the disregard of which meets with a penalty which will be enforced by the state's machinery of power" (R H S Iltan)

2 "Without Law, there is no order, without order men are lost, not knowing where they go or what they do. A system of ordered relationship is a primary condition of human life" (Maciver)

सम्भव नहीं है।" 'जे० एच० बन के मत में, कानून की परिभाषा करना ठीक उसी भाँति है जिस भाँति कि "हम ब्रूट के पारों घोर परिष्कार रायाते हैं और जिसका फल यह होता है कि जहाँ से हमने प्रस्थान किया था, वहीं घा बसते हैं। सी० के० एमन ने तो निराश होकर कहा था कि 'दण्ड्य नहीं होना कि कानून को परिभाषित ही नहीं किया जाए, क्योंकि इसकी परिभाषा या तो अशुद्ध शब्द होनी या फिर अशुद्ध शीर्ष।" फिर भी, एक राजनीति के विचारार्थ के लिए कानून की निम्नांकित परिभाषाओं पर विचार करना आवश्यक है जो विभिन्न विचारकों ने अपनी बुद्धि के अनुसार की हैं—

(१) सामरस (Salmond) — 'कानून निम्नों का वह समूह है जिस राज्य भाग्यता देता है और न्याय-व्यवस्था के प्रशासन में लागू करता है।'

(२) आस्टिन — 'मनु की आज्ञा ही कानून है।

(३) ब्लेकस्टोन — "कानून नानारिक-आचरण का नियम होता है, जिसका निर्माण राज्य की सर्वोच्च शक्ति करती है। और यह भी विहित करती है कि क्या ठीक है, और कर्म को करने से मना करती है।"

(४) वेम्बम — 'कानून एक ऐसी आज्ञा है जिसमें बरत के भाव उचित होते हैं।'

(५) बिखोबी — "व्यवहार में ये नियम कानून के अन्तर्गत आते हैं जिनके अनुसार न्यायालय न्याय करते हैं और ये नियम समाज में प्रचलित नियमों से पूर्णतः भिन्न होते हैं और जिनका पालन मनुष्य राजकीय पूर्ण शक्ति के बजाय के कारण करता है।"

(६) सिम्लिक — 'ये सामान्य प्रारित कानून कहे जाते हैं जिनके द्वारा सामान्य व्यक्तियों का व्यवहार निर्धारित किया जाता है, जिनका पालन न

1 "Laws are the commands of a sovereign" (Austin)

2 "Laws may be defined as those rules of conduct that control courts of justice in the exercise of their jurisdiction. As distinguished from all other rules of conduct, that obtain more or less general recognition in community of men, they are such as have for their ultimate enforcement the entire power of the state" (Willaughby)

करने के कारण राजकीय शक्ति किसी-न-किसी प्रकार का एक साधारणतः होती है ।”

(०) विद्वान्—“प्रतिष्ठित विचारों एवं प्रार्यों के इस संग्रह को कहते हैं जिसे शासन सत्ता और शक्ति द्वारा समर्पित सामान्य नियमों के रूप में स्पष्ट और औपचारिक मान्यता उपलब्ध हो चुकी है ।”

(८) हाबैबट्ट—“कानून हमारे द्वारा व्यवहार को निर्दिष्ट करने वाले वे सामान्य नियम हैं जिनको सत्ता लागू करती है। यह सत्ता मानवीय है, और मानवीय सत्ताओं में भी वह भी एक राजनीतिक समाज में सर्वोच्च होती है या संश्लेष में, कानून हमारे द्वारा साधारण को निर्दिष्ट करने वाले वे सामान्य नियम हैं जिनको एक मनुष्यपूर्ण राजनीतिक सत्ता लागू करती है ।”

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कानून की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

- (१) कानून किसी राज्य की सामाजिक सत्ता की प्रतिबिम्बित कला है।
- (२) कानून एक नियमों का समुह है।
- (३) कानून व्यक्ति के द्वारा साधारण को नियंत्रण करने वाली शक्ति है।
- (४) कानून में एकाग्र समिहित है, जो नैतिक न होकर शारीरिक है।

## कानून के विभिन्न सिद्धान्त

१—विरक्षेपणमक सिद्धान्त (The Analytical School)—जॉन ऑस्टिन (John Austin) को विरक्षेपणमक विचारधारा का जनक कहा जाता है। सम्प्रति ऑस्टिन ने ये विचार हॉम्स और केम्ब्रिज से ग्रहण किए थे। ऑस्टिन ने कहा है “मनु की भांति ही कानून है।” व्यक्ति कानून को पालन इस कारण

1 “Laws are the general directions as to the conduct of members of the community, for obedience to which a penalty of some kind will normally be inflicted by the authority of government” (Sidgwick)

2 “Law is that portion of the established thought and habit which has gained distinct and formal recognition in the shape of uniform rules backed by the authority and power of government.” (Dr Woodrow Wilson)

3 “A Law is a general rule of action taking cognizance only of external acts, enforced by a determinate authority

ले करता है कि इसके पीछे राज्य शक्ति है और प्रभु की आज्ञा के निवेद पर दण्ड भोगना पड़ेगा। फलतः कानून का निर्माण एवं वास्तविक प्रभुत्व में निहित है। इस सिद्धान्त के अन्य प्रतिपादक बोश, हॉम्ब, मैकेवली, वेल्स, हॉमिग्ट और बिरोली हैं। हॉमिग्ट और बिरोली के विचारों पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

किन्तु प्राचिनिकों का मत है कि परम्पराओं का आज्ञा सिद्धान्त से क्या सम्बन्ध है और प्राचिनिक समाज में कानून निर्माता क्या हैं? पाउएल का मत है कि, "कानून-व्यवस्था चाहे प्राचीनकालीन ही प्रथम व्यवस्था या प्राचिनिक, उनका निर्माण ही कानून-व्यवस्था का मूलकार नहीं है।" सेट (Salt) ने आरिडन के विचार का केवल प्रमुख शीप यह बताया है कि, "उसने सर्वसाधारण के मतों के प्रभाव को निवेद्यात्मक संयोजक किया या जब कि वह सदाशक्त होता है।" यद्यपि कानून का आधार शक्ति नहीं है यद्यपि अनेक्य और जनमत की शक्ति है। इसके अतिरिक्त उनके सम्पत्त की पद्धति विकसितक नहीं है। वे कानून को प्रवर्तनीय की अपेक्षा स्थायी और स्थिर मानते हैं।

२—ऐतिहासिक सिद्धान्त (The Historical School)—इस सिद्धान्त का प्राचिनिक जर्मनीय शताब्दी में हुआ और जर्मनी इसकी जन्मस्थली थी। फ्रेडरिक वॉन सेवार्डनी (Frederick Van Savigny) इसका प्रथम प्रतिपादक था। इसके प्रथम समर्थकों में सर टैनटीमेन, मैटमैड सर केडरिक पोल्क प्रभृति थे। इस सिद्धान्त के अनुसार कानून प्रभु की आज्ञा का परिष्कार न होकर विकासशील विकासशील समाजिक एवं वास्तविक प्रक्रिया का प्रतिफल है। हॉमिग्ट की दृष्टि में कानून के तीन स्रोत हैं—(१) सार्वजनिक स्वीकृति (२) कृत्रिम एवं परिपाटियाँ और (३) राजनीतिक सत्ता जिसमें कानून-निर्माण की सत्ता सम्मिलित है। जेन (Zane) का कहना है, "साबतक सत्ता कानून का शासन इस कारण प्रवर्तित हुआ है क्योंकि उसके प्रति सर्वसम्मति की एक स्वीकृति रही है। तब यह है कि सभी की यह मालूम है कि जब भी बहुमत किसी कानून के विरुद्ध रहता है तो ऐसे कानून का शासन व्यर्थ रहता है

which authority is human and among human authorities is that which is paramount in a political society; or, briefly, a law is a general rule of external action enforced by a sovereign political authority" (Prof Holland)



वाहे कानूनों का निर्माण किसी भी प्रकार हो। उदाहरणार्थ, वाहे विमान-भएइकी हाय, वाहे न्यायालयों के निर्णयों हाय उनकी उत्पत्ति हो वाहे वे शासकों की प्राप्ता के रूप में उपजे हों, किन्तु कानून तभी कानून हीये जब उन्हें समाज का बहुमत प्रतीकार कर ले।”

उपरोक्त ऐतिहासिक सिद्धान्त के विवेचन से हमें जिससभ की परिभाषा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है उसका उल्लेख हम पूर्व कर चुके हैं। वाइस का कथन है, “कानूनी संस्थाओं की प्रकृति उनकी परिवर्तनशीलता है, अर्थात् कानून समयानुक्रम अपनी उपयोगिता खरीखते हैं। इसलिए उनमें आबरमकठानुसार परिवर्तन, संशोधन एवं परिवर्द्धन की सदैव आवश्यकता बनी रहती है।”

इस सिद्धान्त का बोध यह है कि इसके समर्थक साधारणतः कानून-परिवर्तन के विरोधी होते हैं और कानूनी इतिहास पर प्रत्यधिक बल देते हैं। परिणामतः न्यायिक दर्शन (Philosophy of law) उपेक्षित रह जाया है। वे कानून और परिपाटियों तथा आदिक सिद्धान्तों में कोई खेद नहीं कर पाते और न कानून के नैतिक पक्ष पर ही दृष्टिपाठ करते हैं। जिससभ ने भी अपनी कानून की परिभाषा में दोनों सिद्धान्तों का सामंजस्य किया है।

१ दार्शनिक सिद्धान्त (The Philosophical school)—इस विचार के प्रतिपादक भूतकालीन अथवा प्राकृतिक विधियों का स्वरूप वैसा वा और है, इसकी अपेक्षा वे कानून के धनुष (Abstract) रूप का अनुशीलन करते हैं। वे नैतिक कानूनों पर विशिष्ट बल देते हैं। वे आदर्शमिक कानूनों के प्रवचन में विश्वास करते हैं। इसके समर्थक क्लो, वाइट, डीन पाउण्ड प्रसूति हैं। वे विचारक १८ वीं शताब्दी में प्राकृतिक कानूनों (Natural laws) पर, जिनका निर्माण मानवीय बुद्धि के अनुसार हुआ है, और खोजियों खी में कानून के नैतिक पक्ष पर बल देते थे, जबकि बीसवीं शताब्दी में उनका ध्येय सामाजिक न्याय की प्रबल मांग हो गया है। किन्तु यह सिद्धान्त रहस्यवादी विवेचन तक ही परिसीमित रहा। प्राकृतिक जनवादी प्रणाली के लिए यह संपन्न धनुषमुक्त है, क्योंकि इसमें जन मानना वा विहित मात्र महत्त्व नहीं है।

२ तुलनात्मक सिद्धान्त (The comparative school)—यह एक नया सिद्धान्त है जिसमें विभिन्न देशों की कानूनी व्यवस्थाओं और प्रथाओं का वाहे वे प्रतीवकाशोन वा प्राकृतिक हों, सभी का अध्ययन, समीक्षा एवं तुलना कर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यह ऐतिहासिक सिद्धान्त का विकसित स्वरूप है। कुछ विद्वानों ने, जिनमें लाहरी तथा एम्पनी व पीण्ड प्रसूत हैं, इसे नैतिक

सिद्धान्त भी कहा है। उनकी दृष्टि में कानूनों परिपालन प्रभु की आज्ञा या प्रवृत्ति परम्पराओं के कारण न होकर इसलिए होता है, क्योंकि वे हमारी नैतिक प्रकृति के अनुकूल होते हैं। इसके समर्थक सर पास बीनो प्राडोऊ, कैरेबीयम, मार्गन, मैक्समूलर और स्पेन्सर आदि हैं। हेनरी मेन और पोलक ने भी इसका समर्थन किया है। निरसम्भेह इस सिद्धान्त का कानून-शास्त्र के परिजान में विरिष्ट योगदान रहा है। इसके द्वारा यह विद्विष्ट हुआ है।

२. समाज-शास्त्रीय सिद्धान्त ( The Sociological School )—इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों में डुग्बी (Duguit), क्रेब (Krabbe) और वास्सी हैं। इन विचारकों की दृष्टि में, कानून की आधार-नीतिरा है मानव-जीवन के मुख्य और सामाजिक आचना। वे सामाजिक शक्ति की हैं, अतः उन्हें सामाजिक आधार-कृतियों की परिपूर्ति का ध्यान होना चाहिए। कानून का निर्माण किसी संवर्धित मंत्र द्वारा नहीं हुआ है प्रत्युत समाज में निरिक्त एवैशियाँ हैं जो निर्णय करके आदेश निवापती हैं और जिन्हें समाज का बहुसंख्यक समुदाय स्वीकार करता है। कानून मानव-आवहार के वे नियम हैं जिनके परिपालन से प्रत्येक व्यक्ति के सुख में वृद्धि होती है। उनका पासन इसलिए नहीं किया जाता कि वे आदेश हैं, और एएड इनमें समाविष्ट है, अपितु उनके पासन के पीछे मुख्यतः भावना यह है कि वे सामाजिक जीवन को दशाएँ हैं जिनके परिपालन बिना मानव-जीवन निर्वाह करने योग्य नहीं है। डुग्बी के मत में कानून की स्वीदृष्टि प्रथमतः मनी वैज्ञानिक है। वे सामाजिक आवश्यकताओं पर आधारित हैं और सामाजिक दृढ़ता की उपज हैं। व्यक्ति सामाजिक सहवास का मूस्यांकन करता है। वह सामाजिक उपबोधिता की आनता है और संवैतन्य है इस भावना से। अतः स्वार्थकशास्त्र व्यक्ति कानूनों का पासन करता है। इससे समाज सुदृढ़ एवं सखत होता है, और राज्य का पुनीत कर्तव्य यह है कि वह ऐसे कानूनों की रचना करे। इस प्रकार कानून का निर्माण राज्य नहीं करता प्रत्युत उन विद्विष्ट नियमों को, जो धार्मिक कन्याण के सिद्ध आवश्यक हैं, वैधानिक कलेवर प्रदान करके कानून में परिणत कर देता है। क्रेब के मत में, 'कानून सब सामाज्य या विरोय निरिक्त या प्रसिद्धि नियमों का कुल योग है जो मनुष्य के मनीं या म्याव भावना से पैदा होते हैं।'<sup>1</sup>

1 "Law is the sum total of all those rules, general or particular, written or unwritten which spring from men's feeling or sense of right" (Krabbe)

“मानवीं द्वारा अपनी प्रकृति और स्वभाव के कारण किए गये अनेक निर्णयों में से किसी एक को अन्तिम्यक्ति हो कानून है।”<sup>1</sup> कानून राज्य से उच्चतर एवं स्वतंत्र है। शास्त्री के विचार में, कानून का शीत व्यक्ति का अनुमतिदाता मन है। व्यक्ति कानून का परिपालन अपनी इच्छाओं की परिपूर्ति के कारण करते हैं। अतः स्रेष्ठ कानून वही है जिसके फलस्वरूप व्यक्तियों की अधिकतम आजीविका की पूर्ति होती है।

इस सिद्धान्त में कुछ यह है कि यह सार्वभौमिक माननात्मक स्वल्प से प्रभावित होता है। कानून जनसाधारण का सबसे सामन्य भाग होता है, जिस पर कोई परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार कानून का स्वभाव एवं बढोछा अमूर्तरूपपूर्ण ही होते हैं।

कानून के विभिन्न सिद्धान्तों में संपात है, किन्तु वे अलग हैं। वेने व एक-दूसरे के पूरक हैं। राज्य प्रमुखता कानून को वैधानिक मान्यता प्रदान करती है। कानून की आचार्यमूर्ति कर्मियों, भासिक एवं शैतिक सिद्धान्त होने चाहिए। ताज ही कानून विकसित एवं प्रगतिशील भी हो, जो जनता के नैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं की प्रतिबिम्बित करता हो।

### कानून के स्रोत (Sources of law)

इंग्लैण्ड के अनुसार कानून के निम्नलिखित प्रमुख स्रोत हैं —

१. रीति रिवाज (Customs and usages) — प्रायः समाज में कानून का सर्वप्रथम स्वरूप रीति-रिवाज है। प्राथमिक कब्रियों में सभी विचारों का मिलेय सत्ताधीन प्रवृत्त परिपादियों के अनुसार ही दिया जाता था और रीति-रिवाज कबीले वा पौत्र के उपयोगी प्रवृत्त पर आधारित होते थे। इंग्लैण्ड और भारत जैसे विकसित राज्यों में भी प्रथाओं का अहमपूर्ण योगदान था। इंग्लैण्ड में आज भी अधिकतम ब्रिटिश संसद के उभे-वाले बने हैं। रीति रिवाजों के पालन का कारण प्रथम तो उनके मानने का एक स्वभाव बन जाता है और दूसरे उनके परिपालन से सुरक्षा की अनुभूति होती है। अतः सामाजिक अन्वेष्यता ही उनका परिपालन कराती है। जब इन शौर्यकालीन प्रथाओं का राज्य द्वारा मान्यता अन्वेष्य हो जाती है और उनके परिपालन के लिए शक्ति प्रमुख की

1 Law is, “the expression of one of the many judgement of value which we human beings make by virtue of our disposition and nature” (Hobbes)

बाती है तब ये कानून में परिणत हो जाते हैं। कोई भी राज्य अपने देश के रीति रिवाजों की उल्लंघना करने की धृष्टता नहीं कर सकता। यदि राज्य ऐसी अनधिकार कृष्ठा करता है तो जनमत का उसे उग्र विरोध सहना हीमा। मैनाइ-वर का कथन है—“कानून के विद्यालय ग्रन्थ में राज्य केवल नये कानूनों की निबन्धा है और यत्र-तत्र पुरानों को मिटा देता है। ग्रन्थ का अधिकारित भाग राज्य द्वारा कभी भी नहीं लिखा गया और राज्य उसे पूर्णतः मालम के सिद्ध स्वयमेव विपन्न होता है, एकमात्र इस कारण कि यह पीढ़ी-वर पीढ़ी उसके कानून का संशोधन कर देता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने शरीर का पुनः निर्माण नहीं कर सकता उसी प्रकार राज्य भी कानून का किसी भी समय समग्रत्वेण पुनः निश्चित नहीं कर सकता।”

२ धर्म (Religion)—प्राचीन काल में रीति रिवाजों की भाँति ही धर्म भी कानून का एक विशिष्ट स्रोत रहा है। धार्मिक प्रथाओं के पीछे शैविक शक्ति रहती थी। धार्मिक प्रथा के कारण ही ईश्वर की भी कानून का अन्वय समझा जाने लगा। धर्म कानून के परिगमन में एक महत्वपूर्ण शक्ति रहा है और अनेक समुदायों में कानून का आधार धर्म ही रहा है। ईरानीय कानून, के कानून हैं जिन्हें ईश्वर की ओर से उसके अवतारों ने प्रकट किया है।<sup>1</sup> मैनाइ-वर का मत है कि पश्चिम में कानून की प्रवृत्ति राजनीतिक स्वयं को बरख करने की रही है, और पूर्व में धार्मिक स्वयं को प्रवृत्त करने की। हिन्दुओं के कानून का स्रोत मनुस्मृति में है और मुस्लिम कानून का शरीरत में है। मनु द्वारा रचित मनुस्मृति हिन्दुओं की एक पवित्र धार्मिक पुस्तक है। पाकिस्तान में धार भी इस्लाम धर्म वहाँ की संवैधानिक एवं कानूनी व्यवस्था की आधाररहिता है।

( १ ) न्यायिक निर्णय (Judicial decisions)—नैतिक का विचार है कि, 'राज्य की वास्तविकता कानून-निर्माता के रूप में नहीं हुई, प्रत्युत कानून-व्यवस्थाता एवं कार्यवाहक के रूप में हुई।' जैसे-जैसे सामाजिक जीवन बढ़ता

1 'Early laws were a mixture of customs and religion. Religion has importance in law not only as giving a concurrent sanction to law based on other principles such as custom, but religion in itself is a basis of law in most communities. Divine law in its proper sense is law revealed through man from God' (Gilchrist, R. N.)

धीरे विपन्न होता गया जैसे-जैसे रीति रिवाज विवादों के निर्णय में धनुरयोमी सिद्ध होने लगे। धीरे विभिन्न कबीलों में व्यापारिक वैवाहिक तथा अन्य कार्यों के लिए सम्पर्क स्थापित हो गये तो जैसे-जैसे ही विभिन्न कबीलों के रीति-रिवाजों में संघर्ष सामान्य हो गये। इन समस्याओं को समाज के सर्वाधिक प्रबुद्ध व्यक्तियों को सौंपा गया। उनके निर्णय अधिक्य में हुंने वाली बेसी ही समस्याओं के लिए मान्य समझे जाने लगे। इस प्रकार न्यायाधीश कानून की सट्ट ब्याख्या करके निर्णय ही नहीं देते, अपितु कानून को वे विस्तृत करते हैं धीरे फलत के नूतन कानूनों की रचना करते हैं। ये निर्णय अन्ततोगत्वा अन्य न्यायाधीशों के लिए दृष्टान्त बन गये। दिसनब्राइस्ट का मत है कि पहले ये न्यायिक निर्णय मौखिक होते थे किन्तु फिर परिपाटियों द्वारा एक पीढ़ी से अगले पीढ़ी को उपपन्न होने लगे और अन्त में वे लिखित बन कारण करने लगे। जस्टिस हॉम्स (Justice Holmes) के बयानानुसार, 'न्यायाधीश विषयों को निर्मित करते हैं धीरे उन्हें निर्माण करना चाहिए।' इंग्लैण्ड के संविधान को ही न्यायाधीश द्वारा नियमित (Judge made constitution) भी कहा जाता है।

(४) वैज्ञानिक टीकाएँ (Scientific commentaries)—प्रस्ताव न्यायिकों की टीकाएँ धीरे कानूनी-म्याख्या भी कानून के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। न्यायशास्त्री धीरे महान सेलरु अपने विचार टीकाओं के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं धीरे जब इन विचारों को स्वीकृति मिल जाती है तो उन्हें न्यायिक निर्णयों से भी अधिक प्रामाणिक और शक्ति-सम्पन्न समझा जाता है। इंग्लैण्ड में लोक धीरे स्वेहस्टोन तथा भारत में मिताक्षर धीरे दयामाय प्रभृति ही कानूनी सम्प्रदायों की बड़ी शक्ति की दृष्टि से देखा जाता है। दिसनब्राइस्ट का बयान है कि टीकाकार कानून-विद्वानों, रीति-रिवाजों धीरे निर्णयों का संक्षेप करके अभी एक-दूसरे से तुलना करते धीरे उन्हें अमरबद्धता प्रदान करके सम्प्रतिष्ठ प्रवृत्तियों के लिए मार्ग-निर्देशन के विद्वानों का कार्य करता है। वह प्राबुद्धिक कानूनों के दोषों को धीरे सूचित करता है धीरे उनके निवारण के उपायों पर प्रकाश डालता है।"

1 "The commentator by collecting, comparing and logically arranging legal principles customs, decisions and laws, lays down guiding principles for possible cases. He shows the omissions and deduces principles to govern them," (Gilchrist)

भारत में मनु और याज्ञवल्क्य से हिन्दू-संहिता (Hindu code) में वर्णन संशोधन उपस्थित किये हैं।

( ५ ) न्याय-भाषणा ( Equity )—यद्य-कदा न्यायाधीशों के सम्मुख पैदा भी अनियोग या पाठा है जिसके सम्बन्ध में कानून परमत् एवं मौल होता है। ऐसी विषय स्थिति में न्यायाधीश को अपने ही किये से निर्णय देने के लिए विवश होना पड़ता है। इन्हीं स्थितियों से न्याय भाषणा के कानून विकसित होते हैं।<sup>1</sup> ऐसे प्रबन्ध स्वाभाविक होते हैं क्योंकि सामाजिक परिवर्तन जितने द्रुत गयी होते हैं वैसा द्रुत परिवर्तनशीलता कानून-संहिता में नहीं होती। ईगरी मेन का कथन है कि न्याय भाषणा का कानून में हस्तक्षेप प्रबन्ध और निरिषय है। यह केवल कानून की परिपूर्ण ही न होकर उसे परिवर्तनशील भी बनाती है। यह नवीन कानून की जन्यकारी और पुष्पक के परिवर्तन की अनियमित पद्धति है। मिसब्रिड्जस्ट न्याय भाषणा को तीन भागों में विभक्त करते हैं— (१) बाह्य विषयक ( exclusive ), (२) समविषयक ( concurrent ) और (३) सहायक ( auxiliary )। जब न्याय-भाषणा उन परिदृश्यों को धंगोकार करती है जो सामान्य कानून में स्वीकृति नहीं किये गये हैं तो उसे बाह्य विषयक की संज्ञा दी जाती है। जब सामान्य कानून परिदृश्यों को स्वीकृत तो करता है जिन्में उसकी उपस्थिति या सुरक्षाएँ पर्याप्त नहीं होतीं तो वह समविषयक कहाता है। न्याय भाषणा सहायक तब कहायी है जहाँ सामान्यक साक्ष्य ( evidence ) नहीं मिल सकता।

३ व्यवस्थापन ( Legislation )—व्यवस्थापिकाएँ कानून के सर्वाधिक एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ये प्रतिबिम्बि संसदाएँ हैं जहाँ जनतन्त्र की अनिवार्यता उनके द्वारा होती है। जैसे-जैसे जनतन्त्र का प्रचार और प्रसार होता जाता है जैसे-जैसे व्यवस्थापक संसदों का प्रभाव बढ़ता जाता है। विधान-मण्डल जन कल्याण के कानून बनाते ही रहते हैं और पुष्पकों में संशोधन कर उन्हें वर्तमान पाठ्यपुस्तकों के अनुकूल बनाए रखते हैं। व्यवस्थापिकाओं के कारण कानूनों

1 Equity is, "any body of rules, existing by the side of the original civil law, founded on distinct principles and claiming incidentally to supersede the civil law in virtue of a superior sanctity inherent in those principles."

के सम्य सोतों की महत्ता कम हो गयी है। कुछो विनयन मे कानून के विकास की विधि का सुन्दर विवेचन इस प्रकार किया है, 'रीति रिवाज कानून का सर्वाधिक प्रादि सोत है, किन्तु बर्न समजापीन है और समी के सहरा ही सत्य सोत है और राष्ट्रीय विकास की समान प्रकल्पा में प्रायः मे दोनों ही घुने मिले रहते हैं। वंश-निर्लुप (Adjudication) स्वतः अधिकार सत्ता के रूप में प्राता है और अति प्राचीन काल से न्याय माकता का सह्यापी है। कानून का संवेतन और वैचारिक संयुक्त अर्थात् कानून निर्माण एक राजनीतिक परिपक्व समाज में ही सम्भव हो सकता है। वैचारिक विचार-विमर्श और उसके सिद्धांती का उर्ध्व संयुक्त विकास, कानून निर्माण में सभी सक्रिय साहाय्य प्रदान करता है जबकि समाज समुचित अ्येण विनयित हो पाता है।'

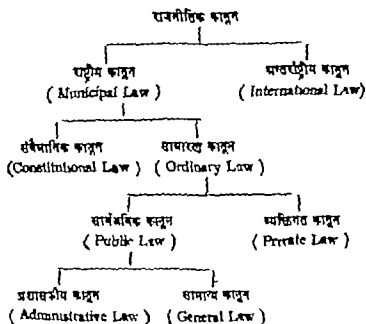
### कानून के विभिन्न प्रकार (Various Kinds of Law)

कानूनों का वर्गीकरण विभिन्न राजनीतिक विनयों मे निम्न-निम्न प्रकार से किया है। हॉगिण्ड ने कानून की प्रकृति, क्षेत्र और मानव-विशिष्टताओं की दृष्टि में रखते हुए कानून की दो भागों में विभाजित किया है—(१) अन्तर्राष्ट्रीय कानून और राष्ट्रीय कानून (Municipal law) और फिर वह इन राष्ट्रीय कानूनों का भी विभाजन दो भागों—व्यक्तिगत (Private) और सार्वजनिक (Public) में करता है। जिन कानूनों के द्वारा नागरिकों के परस्पर सम्बन्ध निर्धारित होते हैं, उन्हें निजी या व्यक्तिगत कानून कहते हैं और जो कानून व्यक्तियों और राज्यों के सम्बन्धों को निरिधत घषका स्थिर करते हैं वे सार्वजनिक कहे जाते हैं।

सोत घषका निर्माण की प्रकिया के अनुसार मिलब्राइन्ट ने कानूनों को बर्गी कृत किया है—(१) संवैधानिक कानून (२) साधारण घषका संविधि कानून (Statute law) (३) सामान्य कानून (Common law) (४) अघ्यदेश्य (Ordinances) (५) प्रशासकीय कानून और (६) अन्तर्राष्ट्रीय कानून।

मैकडारर ने कानून का बर्गीकरण अपनी पुस्तक (The Modern state) में निम्नलिखित रूप में किया है।

(१) संवैधानिक कानून—संवैधानिक कानून प्रमुख साधारण कानून से निम्न होता है। अघन के द्वारा राज्य स्वर्ध नियन्त्रित होता है और घूमरे के द्वारा राज्य बनता पर रासन करता है। संवैधानिक कानून मैकडारर के अनुसार, सरकार के विभिन्न विभागों के बर्गी की निर्धारित करता है और राज्यक एवं



शासित के मध्य परस्पर सम्बन्धों को निश्चित करता है। इसकी सहायता सामाजिक एकता के परिष्कार-स्वरूप होती है, जो स्पष्टतः यह स्मरण और ठम करती है कि राज्य के क्या कर्तव्य हैं और उसके संबन्ध का स्वरूप कैसा होना चाहिए। संवैधानिक कानून यह भी निश्चित करता है कि विधि की दृष्टि में सरकार और जनता एक स्रष्टा हैं और सरकार को कोई विधिभंगिकार अनुमत्त नहीं है। संवैधानिक कानून विहित और अनिश्चित दोनों ही कर्तव्यों में हो सकता है। इसके निर्माण पूर्व संशोधन के लिए एक विधिपूर्व प्रक्रिया की व्यवस्था है, जिससे कि साधारण कानून के साथ नहीं होता। इसका निर्माण विधिपूर्व संवैधानिक-निर्माण के द्वारा होता है और संशोधन भी संवैधानिक में उल्लिखित प्रक्रिया के अनुसार होते हैं।

(२) साधारण कानून (Ordinary Law) —नेकाद्वार से कहा है, 'उच्च कानून का अर्थ और सहायता दोनों हैं। जनक की दृष्टि से राज्य अपनी व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा कानून का निर्माण करता है। वे कानून राज्य के साथ नागरिकों के परस्पर सम्बन्धों और नागरिकों के परस्पर सम्बन्धों को निश्चित करते हैं। इन्हें साधारण (Ordinary) या विहित (Statute) कानून की



संज्ञा प्रदान करते हैं। न्यायालय केवल सामारण कानून को मानते हैं और उनके सम्बन्धन पर दृष्ट देते हैं।

(३) व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कानून—हॉमिअर ने राष्ट्रीय कानून को दो भागों में विभक्त किया है, वैसा कि ऊपर कहा गया है—व्यक्तिगत ( Private ) और सार्वजनिक ( Public ) कानून। व्यक्तिगत कानून व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों का नियमन करता है। यह नागरिकों के अधिकारों एवं दायित्वों को निर्धारित करता है। इसमें दोनों पक्ष वैयक्तिक ही होते हैं। राज्य निर्णायक का कार्य करता है। हिन्दु राज्य व्यक्ति को समस्त व्यक्तिगत कार्यों का नियमन नहीं करता। वह उन्हीं को निर्धारित करता है जिनकी सृष्टि सामाजिक दृष्टि से होती है।

सार्वजनिक कानून राष्ट्रीय मण्डल, राजकीय कार्यों के परिधीय और राज्य के सम्बन्धों को नागरिकों के साथ बन्धित करता है। मेकाइवर के शब्दों में 'सार्वजनिक कानून समाज को व्यवस्थित करता है और राज्य की सुरक्षा के साथ साथ राज्य के विच्छन्न नागरिकों के अधिकारों को भी सुरक्षा प्रदान करता है।

( ४ ) राष्ट्रीय कानून—सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत कानूनों का सामंजस्य ही राष्ट्रीय कानून ( Municipal Law ) कहाता है। इसका कार्यन्वयन राष्ट्रीय शरीररि सत्ता द्वारा होता है और राज्य के समस्त व्यक्तियों एवं समुदायों पर यह लागू होता है।

( ५ ) प्रशासकीय कानून—सार्वजनिक कानून को प्रशासकीय और सामान्य कानून में विभक्त किया जाता है। प्रशासकीय कानून राज्य का अपने कमबन्धियों के साथ सम्बन्धों को निर्धारित करता है। यह सार्वजनिक कानून का वह भाग है जो संसदन को मुहूर्त करता है और राज्यीय कर्मचारियों की योग्यता को ज्ञापित करता है तथा नागरिकों को निर्देशित करता है कि राज्य द्वारा उनके स्वार्थों के परदहन पर ध्यान रखना उनके क्या कर्तव्य है। प्रशासकीय कानून मोसासो न्याय व्यवस्था का एक आवश्यक भाग है। अतः में जब कोई सरकारी कर्मचारी अपने प्रदत्त अधिकारों का उन्वयन या प्रतिव्ययण करता है तो प्रशासकीय न्यायालयों में प्रशासकीय कानून के ही मन्तव्य उन्हें विच्छन्न कार्यवाही होती है।

( ६ ) अन्तर्राष्ट्रीय कानून—'अन्तर्राष्ट्रीय कानून उन विषयों का संकलन

है जो सम्म राज्यों के परस्पर व्यवहारों को नियमित करते हैं।<sup>1</sup> सौम्यहारन की दृष्टि में, "अन्तर्राष्ट्रीय कानून उन प्रथाओं एवं परम्परागत नियमों का समूह है जिन्हें सम्म सम्म परस्पर व्यवहार में एक-दूसरे पर विचारमठ सम्मनकारी मानते हैं।"<sup>2</sup> स्टार्क के मत में, अन्तर्राष्ट्रीय कानून वह कानून है जिसमें अविश्वतम व्यवहार के नियम और विद्यमान रहते हैं और जिनका परस्पर व्यवहार में परिणाम भी करते हैं। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय हर्षों एवं बँधनों के संवासन उनके परस्पर सम्मन्धों और उनके सम्मों तथा व्यक्तियों के साथ सम्मन्धों के बारे में नियम रहते हैं। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून में व्यक्तियों से सम्मन्धित कानूनी नियमों का भी समावेश रहता है जो ऐसे व्यक्तियों के उन अधिकारों एवं कर्तव्यों के भी सम्मन्ध रहते हैं जो कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज के लिए मूल के नियम हैं।<sup>3</sup>

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या अन्तर्राष्ट्रीय कानून वस्तुतः एक कानून है? मास्तिन, वेटेल (Vattel), हासैएड, केम्बल और हाँड (Hobbes) प्रभृति विचारक अन्तर्राष्ट्रीय कानून को एक कानून नहीं मानते, क्योंकि इसके पीछे कोई ऐसी सत्ता नहीं है जो इसके परिपालन के लिए राज्यों को बाध्य कर सके। मास्तिन के शब्दों में, "अन्तर्राष्ट्रीय कानून एवमात्र यथार्थ अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता है, जिसमें राज्यों के मध्य सामान्यतः प्रचलित मत और भावनाएँ विद्यमान हैं।"<sup>4</sup>

1 "International law is the body of rules which determine the conduct of the general body of civilized states in their mutual dealings." (Lawrence)

2 "International law is the name for the body of customary and conventional rules which are considered legally binding by civilized states in their intercourse with one-another." (Oppenheim)

3 "International law may be defined as that body of law which is composed for its greater part of the principles and rules of conduct which states feel themselves bound to observe, and therefore do commonly observe in their relations with each-other, and which includes also the rules of law relating to the functioning of international institutions or organisations, their relations with each-other and their

हालएक ने उन्हें केवल शिष्टाचार का नमूना माना है ।<sup>1</sup> किन्तु इसके विपरीत होल (Holl), लॉरेन्स (Lawrence) जैसे मनीषि अन्तर्राष्ट्रीय कानून को एक सच्चा विकसित कानून मानते हैं, क्योंकि यह विश्व राज्य स्थापना परिस्थितियों में उनका पालन करते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी की व्याख्या करता है और उसी के अनुसार परम्पराओं के विचारों का निर्धारण दिया जाता है । इसके धार्मिक वास्तविक समन्वित, संविदा और परम्पराएँ इसे विकसित कर रही हैं । इसके द्वारा कुछ निम्नलिखित सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा हो रही है, जिन्हें राज्य स्थापना मानते ही हैं । बोवेन हाइप के शब्दों में, "कानून समाज के अन्तर्गत सामाजिक व्यवहार के उन नियमों का समुह है जो समाज की सामान्य सहमति से बाह्य शक्ति द्वारा लागू किए जाते हैं ।"<sup>2</sup> इस प्रकार कानून के लिए बार बार आवश्यक हैं—(१) समाज (२) समाज के अन्तर्गत मान्य व्यवहार के कुछ नियम (३) एक बाह्य शक्ति, जिसके द्वारा ये लागू किए जाते हैं और (४) समाज की सामान्य सहमति ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सम्बन्ध में ब्रीसे (Briely) का यह कथन सुक्तिरगत है अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अस्तित्व का स्रोत प्रमाण नहीं है कि प्रत्येक देश अपने राज्य उसके अस्तित्व की संरक्षा करता है और यद्यपि यह अर्थव्यवस्था है कि उसका पालन करे । जिस प्रकार व्यक्ति यथा यदा राष्ट्रीय कानूनों का अतिक्रमण कर सकते हैं किन्तु जिस प्रकार व्यक्ति यह नहीं कर सकते कि वे कानून से उबरते हैं उसी प्रकार राज्य भी स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीय कानून से उबर

---

relations with states and individuals and certain rules of law relating to individuals so far as the rights or duties of each individuals are the concern of the international community" (Sterke)

1 "International law is positive international morality consisting of opinions and sentiments current among nations generally" (Austin)

2 "Such rules as are voluntarily though habitually, observed by every state in its dealings with the rest can be called law only by courtesy" (Halland)

तर सिद्ध नहीं कर सकती।" फिर भी, मिल्लरंड का यह विचार तब-तुर्कि के धार्मिक सचिव है—“इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय कानून अथवा कानून और धर्म” नैतिक विषय है।”

## कानून और नैतिकता

यद्यपि कानून राज्यशासक और नैतिकता नीतिशास्त्र का विषय है फिर भी, दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों शासक मानव का अधमयम समाज में नैतिक शासन के रूप में करते हैं। मिल्लरंड का कथन है, “राज्य की स्थापना उसके नागरिकों के दिलों में होती है और नागरिक उसके नैतिक प्रतिनिधि होते हैं।” कानून समाज की सुसंरचित शक्ति का प्रतीक है जब कि नैतिकता हमारे आदर्शों की संकेतक है और सामान्यतः लोकमत की अभिव्यक्त करती है।

प्राचीनकाल में राजनीतिक चिन्तकों ने कानून और नैतिकता के मध्य कोई विभेदकारी रेखा नहीं खींची। उनका चर्चत विचार था कि यदि नागरिक मरे हैं तो राज्य भी मरना होगा और यदि राज्य मरता है तो नागरिक भी मरे ही होंगे। प्लेटो का कहना है, “सर्वोत्तम राज्य यह है जिसमें रहने कुछ हों जिसमें कि एक व्यक्ति में हो सकते हैं। यदि राज्य का कोई रंग उत्पीड़ित होता है तो सम्पूर्ण राज्य की दृष्टि होती है।” यह निदान सत्य है कि मानव प्रजाति ही आत्मोच्छार की सम्भव बनाते हैं, किन्तु मनुष्य का निवास स्थान तो राज्य ही है। मेकाइवर का विचार है कि, “राज्य सामाजिक व्यवस्था की सर्वोच्चायी

1 “The existence of some kind of international law is simply one of the inevitable consequences of this co-existence in the world of a plurality of states necessarily brought into relations with one-another. The best evidence for the existence of international law is that every actual state recognises that it does exist and that it is itself under obligation to observe it. States may often violate international law, just as individuals often violate municipal law, but no more than individuals do states defend their violations by claiming that they are above the law” (J. L. Brierly)

2 “International law is in this way half law half morality” (Gilchrist)

बाह्य परिस्थितियों का निर्माण करता है, जो स्वतंत्र एवं नैतिक व्यक्तित्व के विकास तथा प्रकटीकरण के लिए आवश्यक है।" बिना राज्य के मनुष्य का नैतिकीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि "राज्य द्वारा प्रबल व्यवस्था समाजता और न्याय के अभाव में अस्तमा घुटने समेगी।" अतः कानूनों का आधार समाज के नैतिक सिद्धान्त होने चाहिए। जो कानून जनता के नैतिक मनोरस को धाहत करते हैं वे सफलमूल नहीं हो सकते। सास्की के इस कथन में स्पष्टा ध्वज है कि कानून की वास्तविक शक्ति के पीछे समाज की दमनकारी शक्ति नहीं होती, बल्कि उसमें एक सामाजिक उद्देश्य निहित होता है जिसके कारण उसकी परिपूर्ति होती है। कोस के शब्दों में "जो कानून सामाजिक उद्देश्यों से हीन होता है और जो किसी नैतिक ध्येय की परिपूर्ति नहीं करता वह एक शब्द के समान अनुयोगी होता है।" इस प्रकार कानून और नैतिकता सर्वत्र एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। नागरिकों के नैतिक मापदण्ड उसके कानूनों के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। कानून एक प्रकार का दर्पण है जिसमें जनता की नैतिकता स्पष्ट परिभाषित होती है। विन्ध्य कानून कभी-कभी ऐसी बातों को स्वीकृत कर लेता है जो नागरिकों के नैतिक मापदण्ड से ध्वज धार्य की होती हैं और जनता के परिभाषन में कठिनाई का अनुभव करती है। जैसे, शारदा कानून, जिसके अन्तर्गत १४ वर्ष की सड़री और १८ वर्ष के सड़के की प्राप्ति से कम के विवाह अवैध घोषित किया गया था। यह भारतीय जनता के नैतिक विचारों के प्रतिबुद्ध था अतः अवैध सिद्ध हुआ। कभी-कभी कानून व्यक्तियों की नैतिकता में सुधार करता है, संवाहरणार्थ सती-प्रथा। सती-प्रथा को भारतीय एक आदर्श परम्परा के रूप में मानते थे, विन्ध्य सतीप्रथा विरोधी कानून ने उनके इस विरुद्ध नैतिक विचार में शर्म-शर्म: सुधार कर उन्हें सत्ता समर्थक बना दिया। अतः मिलब्राइन्स्ट का बहना है कि "राज्य नैतिक प्रहरी के रूप में एक और ऐसी कानूनों को निर्मित करता है जो जनहित के अनुकूल ही और दूसरी ओर उन कानूनों में संशोधन भी करता है जो नागरिकों के लिए अहितकर हो गए हैं। अतः राज्य को दो प्रकार के कार्य करने चाहिए— (१) सकारणक (Positive), जिसमें नागरिकों का हित सम्बन्ध होता हो और जो उनके नैतिकीकरण में सहायक हों तथा (२) नकारणक (Negative) जो ऐसी परिस्थितियों को दूर करता हो जिनके द्वारा नागरिकों का अहित होता हो। लेकिन यदा-कदा यह कठिनाई होती है कि कानून और नैतिकता के मध्य इतनी अतिक्रमता होती है कि "अस्य और अनतिक्रम के बीच का अन्तर सदा

स्पष्ट नहीं हो पाता । जो भाव प्रबल है वह कम धार्मिक हो सकता है और इसके विपरीत । अतः राज्य को एक साम्य मान लेने में बड़ी मुश्किल होगी । यह स्वयं में साम्य न होकर एक अनुक्रम साम्य है । "हम राज्य को नैतिकता की दृष्टि के रूप में धर्मीकार करते हैं । राज्य और कानून द्वारा मोक्षमय और सर्व शक्ति की प्रभावित करते हैं; इसके बदले के कानून जनमत की अभिव्यक्ति करता है और इस प्रकार कानून नैतिकोत्थान के सूचकांक ( Index ) के रूप में कार्य करता है ।"

## दोनों में विभेद

कानून और नैतिकता में परस्पर अनिष्ट सम्बन्ध के साथ-साथ विभेद भी पर्याप्त है, जो निम्नलिखित है:—

प्रथम विभेद यह है कि कानून व्यक्ति के बाह्य आचरण से सम्बन्धित है । यह मनुष्य के सामाजिक शक्तियों एवं क्षमता से कीर्ति सम्बन्ध नहीं रखता, क्योंकि अन्तस्त्व के मामलों में किसी को बाध्य नहीं किया जा सकता । इसके विपरीत नैतिकता का सम्बन्ध मनुष्य के समस्त जीवन से होता है । वह न केवल बाह्य आचरण का अध्ययन करती है प्रकृत मानक-नियतकृतियों का उसकी भावनाओं, प्रेरक शक्तियों और कृत्यों का भी अनुशीलन करती है । नैतिकता का पुरीत अर्थ व्यक्ति की कृतियों को बाध कर सके मार्गदर्शक शक्तियों के लिए अनुप्रेरित करना है । ईश्या होव निष्ठा मापण एवं विनियम कार्य आदि नैतिक दृष्टि से धार्मिक हो सकते हैं, किन्तु कानूनी दृष्टि से उन्हें धार्मिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इससे कानून मंच नहीं होता । उदाहरणार्थ, जब तक एक व्यक्ति अपने श्रेय को अपने तक ही परिमित रखता है और उसकी अभिव्यक्ति केवल शक्तियों तक ही सीमित रहती है तो वह किसी कानून का उल्लंघन नहीं करता । किन्तु आक्रोश के बरतौमुठ होकर जब वह आक्रमक हो जाता है और किसी को बाध कर देता है तो वह कानून को मंच करता है और सबका भागी होता है । इस प्रकार नैतिकता का लेख कानून की अपेक्षा अधिक व्यापक और विस्तृत है । द्वितीय, कानून का लेख अपेक्षाकृत नैतिकता के यथावत्, स्पष्ट और सुनिश्चित है तथा सभी के लिए समान होता है । कानून का निर्माण एक संवत्स के द्वारा होता है और उसके धर्मकार्यों होने के अन्तर्गत अध्ययन होते हैं । जबका एक निश्चित धर्म होता है । किन्तु नैतिकता अस्पष्ट, अनिश्चित और धर्मकार्यों होती है । एक धर्म की एक व्यक्ति अथवा एक नैतिक समुदाय है किन्तु अन्य व्यक्ति

धीरे धीरे राष्ट्र उसे धार्मिक समझते हैं। मेकाइवर का मत है, "नैतिकता और कानून के क्षेत्र पूर्णतः निम्न हैं। नैतिकता सर्वथा व्यक्तिगत होती है और उसका निर्माण सम्पूर्ण स्थिति का अध्ययन करके ही किया जा सकता है, जब कि राज नीतिक परिवेश इसका एक मात्र एक पहलू ही है।" दुतीय कानून शार्वरीय होता है और यह सभी पर समान दशामी में लागू होता है। किन्तु नैतिकता निष्पक्षता वैयक्तिक और असमान होती है। एक ही राज्य में विभिन्न प्रजातियाँ विभिन्न संहिताओं (Codes) का पालन कर सकती हैं, वैसे कि भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों विभिन्न प्रजातियाँ अपनी-अपनी संहिताओं का रूप-रूप पालन करती हैं। किन्तु कानून में नैतिकता वैसी वैयक्तिकता और असह्यता नहीं है। यह सभी पर समान रूप से लागू होता है। सभी उसकी परिधि में आते हैं। मेकाइवर के शब्दों में 'नैतिकता नियम-स्वतंत्रता पर आधारित है और धार्मिक है जब कि वैधानिक कार्यों में तुलना विषयक स्वतंत्रता के अन्तर्गत विविध मान भी नहीं हैं। कानून का कानून के रूप में पालन किया जाना आवश्यक है। यह अर्थ पर आधारित नहीं है। अतः कानून का धारण धारण की अपेक्षा व्यवहारिकता और उपयोगिता पर है। उदाहरणार्थ, यथायात विधि। सड़क पर बाईं ओर चलने का नियम किसी धारण का प्रतीक नहीं ही सत्ता बल्कि बुद्धिमत्ता से रखा करने के कारण इसे लागू किया गया है। नैतिकता धारण की द्योतक होती है, यह सदा धारण की द्योतक होती है, यह सदा धारण की द्योतक करती है-व्यक्ति को अत्युक्त कार्य करना चाहिए। अन्त में, दोनों के सम्बन्धन में भी विभेद है। कानून राज्य द्वारा कार्यनिष्ठ किए जाते हैं और इनकी शक्ति बल पर बल भी निश्चय है। इस प्रकार कानून की धारण शक्ति है। किन्तु नैतिकता राज्य द्वारा लागू नहीं की जाती और न ऐसा करना राज्य के लिए सम्भव ही हो सकता है। यदि किसी नैतिक धारण की व्यवस्था होती है तो बल का विधान नहीं है। इस प्रकार नैतिकता के पीछे कोई राज्य-बल नहीं है। उदाहरण, ईश्वरीय कोष और शार्वरीय मन्त्रालय का अर्थ ही नैतिक कार्यों के सम्भारण के लिए विषय करता है। "सभी नैतिक उत्तर दायित्वों को कानूनी धारणों का रूप देने का अर्थ होना—नैतिकता की निष्पक्षता।" न तो राज्य नैतिक धारण है ही सत्ता है और न हम राज्य द्वारा निष्पक्ष नैतिकता की नैतिकता की संज्ञा प्रदान ही कर सकते हैं। नैतिकता स्वतः प्रेरित बस्तु है। उसका सम्भारण अन्त-करण से है। हमारी धार्मिक निष्ठाओं का यह प्रतिकूल है।

अभिप्राय है, अपराध का निवारण। कठोर दण्ड का मय मनुष्य की अपराध प्रवृत्ति को रोकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार दण्ड इतना कठोर हो कि मनुष्य दण्ड मय के कारण धनराश ही नहीं करे। दण्ड एक चेतावनी के रूप में हो जिससे कि अपराध ही नहीं हो सके।<sup>1</sup> और यह एक दण्ड के रूप में भी ही जो शिक्षा का माध्यम बन सके। इसी कारण इसे दण्ड सिद्धान्त (Theory of exemplary punishment) की संज्ञा देते हैं। प्राचीन और मध्ययुग में विरोधरूप से निवारक सिद्धान्त प्रचलित था। छोटे छोटे अपराधों के लिए भी कठोर दण्ड देने की प्रथा थी। मौर्यकालीन भारत में साधारण चोरियों के लिए मृत्यु-दण्ड अथवा अंग-भंग का दण्ड दिया जाता था। पाण्डित्य ने १० प्रकार के कठोर दण्डों की एक सूची बनायी थी जिसके साधारण पर क्रियप्रति एक महीन कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी थी। इंग्लैण्ड के मध्ययुग में भी बर्न सोहे से धागाबा, पाक-काल काट सेना सार्वजनिक रूप से फाँसी देना या भीषित बसा देना आदि कठोर दण्ड दिए जाते थे। निरोधात्मक सिद्धान्त का दौर्धित्य एक न्यायाधीश के इस कथन से मचीमति सिद्ध होता है। जन्मे दण्ड की घोषणा करते हुए एक चोर से कहा "तुम्हें दण्ड इसलिए नहीं दिया जाता कि तुमने यह चुराया था बल्कि इसलिए दिया जाता है कि भेड़ों की मन्थि में चोरी न हो सके।"<sup>2</sup>

किन्तु यह सिद्धान्त भी दोषरहित नहीं है। इसके द्वारा अपराधी सुधारने की अपेक्षा और अपनी अपराध प्रवृत्ति में परिपक्व हो जाता है। यह सिद्धान्त अपराधी को साम्प्रत न मानकर अन्य व्यक्तियों की शिक्षा का सामन मात्सा है। शीत में भी इसी साधारण पर इसे अमान्य ठहराया है। यही नहीं इसके द्वारा दण्ड भी अपराध के माप से अधिक कठोर दिया जाता है। यह सिद्धान्त अन्य व्यक्तियों को अपराध से विरत करने में सफलभूत भी नहीं हो सता।

1 "According to the preventive or deterrent theory, the aim of punishment is to prevent the criminal himself and others from committing similar offences in future to make the consequences of wrong doing so terrible that the offender would thereby be deterred from a repetition of this offence and others from any imitation of it." (Ibid)

2 "That he was being punished not for having stolen the sheep but that sheep may not be stolen for future."



मुभारणमरु सिद्धान्त ( Tb Reformative Theory )—यह सिद्धान्त सभ्य-  
 यिक जनप्रिय है । इसका उद्देश्य अपराधी का सुधार करके राष्ट्र का एक उत्प्रेरक  
 नागरिक बनाना है । अपराध-सम्बन्धी विज्ञान ( The Modern Science of  
 Criminology ) ने अपराधी के कारणों की खोज करके यह सिद्ध कर दिया है  
 कि अपराधी ही बेबल अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं है बल्कि यह अज्ञानात्मिक  
 बाधाबल्ल और मानसिक बिहति भी है जो उसे अपराध प्रवृत्ति की ओर विचल  
 करती है । इससे उत्प्रेरक प्रतिक्रिया है कि अनेक अपराध व्यक्ति अपने बाधों और  
 ब्याप्त हुए बाधाबल्ल के कारण करता है । उदाहरणार्थ प्रायिक बेवम्य, बेकारी  
 अज्ञानता अज्ञानमय संघर्ष, सामाजिक परिस्थितियाँ प्रादि । अतः अपराध के  
 दो कारण हैं—(१) सामाजिक विपदाएँ और (२) व्यक्तिगत एक मानसिक दोष  
 स्व । इस प्रकार प्रत्येक अपराधी मानसिक रोग का शिकार है और हमारी सहा  
 सुमुक्ति का पात्र है । हमें उन कारणों का अनुशीलन करना चाहिए, जिन्होंने उसे  
 अपराध करने के लिए प्रोत्साहित किया है । हमें उसे तिरस्कृत उपेक्षित और  
 प्रवर्धित नहीं समझना चाहिए । उसे जीवन-निर्वाह के साधन देने चाहिए और  
 उसकी मानसिक एतता का समुचित व्यवस्था करनी चाहिए । अतः शक्य होने का  
 परिणाम होता कि वह अधिक पथभ्रष्ट और अनैतिक बने । इस प्रकार राष्ट्र का  
 उद्देश्य अपराधी को अपराध प्रवृत्ति से विमुक्त करना है । मही कारण है कि इस  
 सिद्धान्त के समर्थक जेम्स बी बोसार्ड गृह मन्त्रालय के पदाय हैं । अपराधी को सुधारने  
 की दृष्टि से दृष्ट देते समय हमें उसकी धारु, उसकी प्रेरक स्थिति, उसके उद्देश्य  
 और अपराध की पुनरावृत्ति पर ध्यान देना चाहिए । साथ ही नागरिक का बाधा  
 बल्ल स्वत्व, रोषक शिक्षाप्रद और स्नेहपूर्ण होना चाहिए । नागरिक अपराधी  
 की मानसिक स्थिति के दूर करने में सहायक हों, तभी वांछित सफलता की संतुष्टि  
 हो सकती है, अन्यथा नहीं । उत्तर-प्रदेशीय सरकार के इस प्रकार प्रयोग कर रही  
 है और ये प्रयोग वहाँ तक उत्तम होते हैं यह भविष्य ही बताएगा ।

इस सिद्धान्त के आलोचकों का कथन है कि सभी अपराधी मानसिक रूपी  
 नहीं होते और न उन्हें जेलों में सुख बाधाबल्ल ही मिलना चाहिए, अन्यथा  
 उनकी अपराध प्रवृत्ति की और प्रोत्साहन मिलेगा । अतः राज्य का मुभारणमरु  
 उद्देश्य के साथ-साथ त्रिरीकारमरु उद्देश्य भी होना आवश्यक है । बोसार्ड  
 ( Bosinquet ) के शब्दों में, राष्ट्र का धर्म यह है कि अपराधी को यह  
 अनुमुक्ति हो कि भविष्य में, मैं बेबल इसी कारण और अपराध नहीं करूँगा क्योंकि  
 फिर से मैं उसके पक्षस्वल्प उत्प्रेरक की अनुमुक्ति करने को उत्तर नहीं हूँ, अनुमुक्त

बिना किसी शर्त के तैयार हो गए । यद्यपि पुश्तिस इस सत्कार्य में अचूक रही और इस सामाजिक क्षमति का उसने स्थापन नहीं किया फिर भी, विनोबा का यह ऐसा अद्भुत प्रयोग था जो मानव-इतिहास में अमम्य नहीं मिलता ।

बैठे अधिकांश राष्ट्र मृत्यु-दण्ड का मौखिक सिद्ध करते हैं और यह व्यवस्था नहीं प्रतिष्ठित है । प्राण-दण्ड की अपनी एक उगाहेयता है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता । यदि जन्म कृत्यों के लिए मृत्यु दण्ड की व्यवस्था नहीं रहे तो निस्सन्देह हृत्पार्श्व दिन-प्रतिदिन की घटनाएँ हो जाएँगी और जीवन असुरक्षित हो जाएगा । मेरी दृष्टि में, हीनों विचार-सरणियों के साम्राज्य में ही इस समस्या का हल है ।



सुधारामक सिद्धान्त ( The Reformative Theory )—यह सिद्धान्त सर्वाधिक जनप्रिय है। इसका उद्देश्य अपराधी का सुधार करके राष्ट्र का एक सस्योगी नागरिक बनाना है। अपराध-सम्बन्धी विज्ञान ( The Modern Science of Criminology ) ने अपराधों के कारणों की खोज करके यह सिद्ध कर दिया है कि अपराधी ही केवल अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं है, बल्कि यह सामाजिक वातावरण और मानसिक विवृति भी है जो उसे अपराध प्रवृत्ति की ओर विवश करती है। हमें सर्वथा धर्मिक है कि अनेक अपराध व्यक्ति अपने पारों और भ्रष्ट रूपित वातावरण के कारण करता है। उदाहरणार्थ धार्मिक वैषम्य, बेकारी, मानसिकता, जेनामय संबर्द्धन, सामाजिक परिस्थितियाँ आदि। अतः अपराध के दो कारण हैं—(१) सामाजिक विषमताएँ और (२) आर्थिक एवं मानसिक दोष-स्य। इस प्रकार प्रत्येक अपराधी मानसिक दोष का शिकार है और हमारी सहाय्यता की आवश्यकता है। हमें इन कारणों का अनुशीलन करना चाहिए, जिन्होंने उसे अपराध करने के लिए प्रारसाहित किया है। हमें उसे तिरस्कार उपेक्षित और प्रवर्धित नहीं सम्मना चाहिए। उसे जीवन-निर्वाह के साधन दान चाहिए और उसकी मानसिक एकाता का समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। अतः दण्ड देने का परिणाम होना कि वह अधिक पथभ्रष्ट और अनेतिक बने। इस प्रकार दण्ड का उद्देश्य अपराधी को अपराध-प्रवृत्ति से विमुक्त करना है। यही कारण है कि इस सिद्धान्त के समर्थक जनों को अपराधी मूढ़ बनाने के पक्ष में हैं। अपराधी को सुधारने की दृष्टि से दण्ड देते समय हमें उसकी मान्यता, उसकी प्रेरक स्थिति, उसके उद्देश्य और अपराध की पुनरावृत्ति पर ध्यान देना चाहिए। साथ ही नागरिक का वातावरण स्वस्थ, रोचक शिक्षाप्रद और स्नेहपूर्ण होना चाहिए। नागरिक अपराधी की मानसिक एकाता के दूर करने में सहायक हों, तभी वांछित लक्ष्य की उत्पत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। अंतर-प्रदेशीय सरकार के इस प्रकार प्रयोग कर रही है और ये प्रयोग नहीं तक सफल होते हैं वह भविष्य ही बताएगा।

इस सिद्धान्त के धारकों का कथन है कि सभी अपराधी मानसिक दोषी नहीं होते और न उन्हें जेलों में सुन्दर वातावरण ही मिलना चाहिए, अन्यथा उनकी अपराध प्रवृत्ति को और प्रोत्साहन मिलेगा। अतः राज्य का सुधारामक उद्देश्य के साथ-साथ निरोधक उद्देश्य भी होना आवश्यक है। बोसनेट ( Bossinquet ) के शब्दों में, 'दण्ड का अर्थ यह है कि अपराधी को यह अनुमति हो कि भविष्य में मैं केवल इसी कारण को' अपराध नहीं करूँगा क्योंकि फिर से मैं उसके अस्वस्थ उदाहरण की अनुमति करने को उत्तर नहीं हूँ, प्रत्युत

इस कारण से भी कि जब मैं स्वीकृत्य हो गया हूँ धीरे मैं यह सम्यक् कमेण समझ गया हूँ कि ऐसी भूल करना अनुचित है।' धीरे का मत है कि वास्तविक सुधार तो स्वच्छ मनसा आन्तरिक प्रेरणा से होता है।

### तीनों सिद्धान्तों का सामञ्जस्य आवश्यक

यद्यपि सुधारणमक सिद्धान्त को धार्मिक महत्त्व तथा प्राथमिकता मिलनी चाहिए, फिर भी, तीनों सिद्धान्तों का समन्वय एक सम्यक् ब्रह्म-सिद्धान्त के निर्धारण के लिए आवश्यक है। धीरे भी समन्वयवादी है जबकि वह प्रधानतः सुधारणमक सिद्धान्त का प्रतिपादक है। उसने उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों को उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त नहीं किया है कि उक्तिवित है। उसके मतानुसार ब्रह्म का एक नैतिक सद्देश्य (Moral purpose) होता है धीरे वह है एक रचनात्मक गुण (positive quality)। इसका अंतिम ध्येय है कि समाज के प्रत्येक सदस्य की नैतिक इच्छा (Moral will) के लिए काम करने की स्वतंत्रता सुरक्षित रहे।<sup>1</sup> यदि सरकारों को यह अनुभूति होती है कि ब्रह्म के रूप में जो उसे उपलब्ध हुई है वह उसका पान है धीरे उसका अन्तर् ही कार्य ब्रह्मत्वका लक्ष्य पर आ रहा है तो वह प्रतिपादणमक हो जाता है। किन्तु जब वह अपने द्वारा किए गये कार्य के समाज विरोधी स्वभाव को जानकर प्रापञ्चित करने लगता है तो वह सुधारणमक हो जाता है। अतएव रूप में ब्रह्म एक ऐसा प्राणात है जिससे सरकारों की इच्छा का सुधार होता है (or rather a shock which makes possible the criminal's reformation of his own will) इस अर्थ में ब्रह्म विरोधात्मक है धीरे केवल बन्धनों को दूर करता है।<sup>2</sup>

### मृत्यु दण्ड (Capital punishment)

मृत्यु-ब्रह्म अपम्यतम अन्तःकरण के लिए दिया जाता है। निःशस्त्र महत्त्व-सत्ता द्वारा अपराधी की बलिबुद्ध पर हत्या कर देने की प्रथा है। प्राचीन योद्धी धार्मिक प्रजातियों में मृत्यु-ब्रह्म कबीले के उपास्य पशु के बच, इजेरसीस

1 "Its ultimate aim is to secure freedom of action for the moral will of every member of the community" (Green)

2 "Even in this latter aspect punishment is still 'a removal of obstacles for the obstacles which the criminal opposes is not only a force, but a will'" (Green)



विषय किसी शर्त के तैयार हो गए। यद्यपि पुस्तक इस सलाह में बबरीबद रही थी कि इस सामाजिक क्रांति का उठने स्वगत नहीं किया, फिर भी, किसीका यह ऐसा बहमूत प्रयोग या जो मानव-इतिहास में अत्यन्त नहीं मिलता।

वेसे अविनाश पाए मृत्यु-बद का भीकित्य सिद्ध करते हैं और यह व्यवस्था यहां प्रतिष्ठित है। प्राण-दण्ड की अपनी एक उदाहरण है, इससे इन्कार नहीं किया या सद्यः। यदि बहमूत कृत्यों के लिए मृत्यु बद की व्यवस्था नहीं रखी तो निरस्येह इत्यर्पे दिन-प्रतिदिन की पटनाएँ हो जाएँगी और जीवन अनुरक्षित हो जाएगा। मेरे इष्टि में, दोनों विचार-सरणियों के सामंजस्य में ही इस समस्या का हल है।



